कृष्णस्तु भगवान् स्वयम्

भूमिका

प्रिय पाठकगण !

परिपूर्णतम अवतार, गोलोकाधिपति, असंख्य ब्रह्माण्डों के संचालक, व्रजविहारी, असुरसंहारी, भक्तहितकारी, भगवान् श्रीकृष्णचन्द्र के चरण कमलों में सादर प्रणाम करके आधि, व्याधि और उपाधि से पीड़ित मन को शान्ति पहुंचाने के लिये आपकी पवित्र सेवा में अब की बार श्रीमन्महर्षि कृष्ण द्वैपायन वेदव्यासजी रचित श्रीमद्भागवत् ग्रन्थ का अनुवाद लेकर उपस्थित हुआ हूं। यह उसी दीनबन्धु, अशरण-शरण, परमात्मा की असीम कृपा का फल है कि पं० राधेश्यामजी की रामायण की तर्ज़ में महाभारत के प्रकाशन के बाद भगवान् की पवित्र लीला को यथामति उसी तर्ज़ में आपके सन्मुख रख रहा हूं। जिस समय महाभारत प्रकाशित हुआ था, उस समय मैंने यह आशा प्रदर्शित की थी कि यदि जनता ने महाभारत का समुचित आदर किया और मेरे उत्साह को बढ़ाया तो मैं शीघ्र ही श्रीमद्भागवत् को भी इसी तर्ज में लेकर उपस्थित होने का प्रयत्न करूंगा। हर्ष है कि अब वह समय आ पहुंचा और मैं अपनी प्रतिज्ञा के अनुसार आप लोगों की सेवा में श्रीमद्भागवत् उपस्थित कर रहा हूं।

श्रीमद्भागवत क्या है? यह वेद और उपनिषदों का सारांश है, भक्ति के तत्वों का खज़ाना है, परमार्थ का द्वार है, तीनों तापों को समूल नष्ट करने वाली महौषधि है, शांति निकेतन है, धर्मग्रंथ है, इस कराल कालि-काल में आत्मा और परमात्मा का ऐक्य करा देने का मुख्य साधन है, महर्षि द्वैपायन व्यासजी की उज्ज्वल बुद्धि का ज्वलंत उदाहरण है तथा भगवान् कृष्ण का साक्षात् प्रतिबिंब है।

श्री मद्भागवत में साधारणतया सभी अवतारों की कथा का संक्षिप्त दिग्दर्शन है परन्तु इसका मुख्य विषय परिपूर्णतम अवतार भगवान् श्रीकृष्ण का चरितामृत पान कराना है। महाभारत लिखने के

पश्चात् श्रीकृष्ण भगवान् के जो चरित शेष रह गये थे उन्हीं को वेद्व्यासजी ने भागवत में लिखा है, एवं हमने भी इसी का अनुसरण किया है। सूक्ष्म-दृष्टि से विचार करने पर भागवत में वेद-वेदांग, उपनिषद्, न्याय, सांख्य आदि का विवेचन पूर्णतया आजाने पर भी कृष्ण-भक्ति की ही पुष्टि की गई है, जिसका पूर्णतया समझ लेना सर्व साधारण के लिये असंभव सा है। कई स्थानों पर इसमें ऐसे वर्णन आये हैं जो तत्व की दृष्टि से ठीक होने पर भी अल्पज्ञ जीव भ्रम में पड़कर उस पर-ब्रह्म के चरित्रों पर दोषारोपण एवं आक्षेप करते हैं। उनकी शंकाओं के निवारण करने का प्रयत्न भी इस ग्रन्थ में काफी तौर से किया है और इसी हेतु प्रसंगवश अन्य ऋषि मुनियों के निर्मित ग्रंथ तथा भगवद्भक्तों के समय २ पर कहे गये भगवच्चरित्रों से सहायता ली गई है। अस्तु इसमें कई स्थलों पर आप लोगों को नवीन कथायें मिलेंगी, जिनको पढ़कर चौंकना न चाहिये क्योंकि 'हरिअनंत हरि कथा अनंता' इस पदके अनुसार जो कुछ लिखा गया है वह भक्ति का प्रतिपादन करने एवं शंकाओं को जड़मूल से उखाड़ फेंकने के लिये लिखा गया है और इसी से हमने इसका नाम "श्रीमद्भागवत्" अथवा "श्रीकृष्ण-चरित्र" रक्खा है। मगर मैं यह दावे के साथ नहीं कह सकता कि इसमें जो कुछ लिखा गया है उससे सबके संशय निवारण हो ही जायेंगे, हां इस दिशा में मैंने प्रयत्न अवश्य किया है।

आकाश का पार नहीं है और उसमें पक्षी अपनी २ सामर्थ्य के अनुसार उड़ते हैं उसी प्रकार इस ग्रंथ के बारे में भी समझना चाहिये। इसके लेखन में मुझे कहां तक सफलता मिली है इसका निर्णय मैं सहृदय पाठकों पर ही छोड़ता हूँ। यद्यपि मेरे जैसा अल्प बुद्धि का मनुष्य इस महत्व-पूर्ण कार्य करने के लिये सर्वथा अयोग्य था, तथापि घट २ निवासी श्रीकृष्णचन्द्रजी की प्रेरणा ही इसमें मुख्य है और जैसी भी टूटी फूटी, निरस, उपमादि अलंकाररहित, केवल तुकबन्दी मात्र, घड़ंत घड़ी गई है वह शुद्ध भाव से उन्हीं बुद्धि प्रेरक भगवान् के अर्पण कर देना ही अपना मुख्य

कृष्णस्तु भगवान् स्वयम्

मङ्गलाचरण

(१)

महि के उधारन को वराहरूप धारि लीन्हों।
भक्त प्रह्लाद हित नरसिंह बन धायो है॥
गज की पुकार सुनि छांडि आयो वाहन को।
राम परशुराम वनि वसुधा हलकायो है॥
द्रौपदी की टेर पर वस्त्र रूप भयो हरि।
कपिल हो ज्ञान देवहूती को सुनायो है॥
वही दीनबंधु प्रभु भारत हित साधन काज।
"कृष्ण चरित" रूपसे प्रगट होय आयो है॥

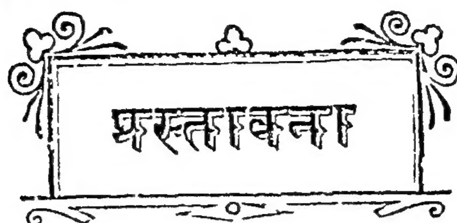
---

(२)

पीताम्बर धर पाप हर, गोकलेश गोपाल।
ताप हरन जन सुख करन, जय जय दीन दयाल॥
जय जलशायी जलदसम, सुभग सुहावन रूप।
सृष्टि रचन, पालन, हरन, शिव अज विष्णु स्वरूप॥
तुम गुरु गणपति शारदा, सहस बदन तुम शेष।
विघन हरो मंगल करो, जग व्यापक अखिलेश॥
वंदहुं वेदव्यास सुत, श्री शुकदेव सुजान।
गायो कलिमल हरन जिन, "कृष्ण चरित" गुणखान॥

❀ श्लोक ❀

बंसी विभूषित करान्नवनीरदाभात्पीतांबरादरुण बिंब फला धरोष्ठात् ।
पूर्णेन्दु सुन्दर मुखादर विन्द नेत्रात्कृष्णात्परं किमपि तत्वमहं न जाने ॥



प्रस्तावना

सरस्वती के तीर था, आश्रम एक ललाम ।
पाराशर-नंदन तहां, रहते थे गुण-धाम ॥
नित्य नियम से एक दिन, हो निवृत्त मुनिराय ।
बैठे थे एकान्त में, हृदय उदास बनाय ॥

इतने में भ्रमते हुये तहां, श्री देव-ऋषी नारद आये ।
मुनिव्यास का लख अनमना भाव, कुछ समझ सके नहि चकराये ॥
सोचा इन ब्रह्म-ऋषी सदृष्य, जगमें न कोई दृष्टी आता ।
सुर लोक में भी देवों द्वारा, इनका शुभ यश गाया जाता ॥
जब ऐसे महा पुरुषों को भी, पल में दुख आन दबाता है ।
तब अल्पज्ञों की क्या गिनती, उनका रखवाल विधाता है ॥

इन्हीं विचारों में हुये, नारद मग्न क्षणेक ।
आसन पा श्रीव्यास से, बोले सहित विवेक ॥

हे द्वैपायन ! शुकदेव जनक !, झट कहो आज क्या बात हुई ।
मुख मुद्रा क्यों गंभीर बनी, किसलिये उदासी छाय रही ॥
इस दुनिया में जानने योग्य, जो कुछ है आपने जाना है ।
अति गूढ धर्म के तत्वों को, परिपूर्ण-तया पहिचाना है ॥
फिर मोक्ष मार्ग दर्शक उत्तम, १ महा भारत ग्रन्थ बनाया है ।
कर भाग वेद के वेद-व्यास, शुभ नाम जगत में पाया है ॥
इसके सिवाय जो अजर, अमर, अच्युत, अखण्ड, अविनाशी हैं ।
अविकार, अजन्मा, अद्वितीय, आनन्द कन्द, सुखराशी हैं ॥

---

१ महाभारत का हाल जानने के लिये पाठक हमारा बनाया हुआ महाभारत पढ़ें ।

जग पैदा हो, बस, नस जाना, जिनका एक खेल कहाता है ।
जिनकी इच्छा बिन दुनिया में, शुभ अशुभ न कुछ हो पाता है ॥
फिर जो निर्गुण होने पर भी, स्वेच्छा से सगुण रूप धरते ।
सुर विप्र धेनु सन्तों के लिये, जो वार वार आया करते ॥
उन जन-मन-रंजन भव-भंजन, परिपूरनतम लीला-धारी ।
मुनि-मन-मानस के सुभग हंस, अभिराम,अकाम अरु असुरारी॥
श्रीकृष्ण को मय उनकी शक्ती, श्री राधा सहित निहारा है ।
हो गया कृतार्थ जन्म फिर क्यों, ये भाव आपने धारा है ॥

ब्रह्म पुत्र के वाक्य सुन, बोले व्यास मुनीस ।
फ़रमाया जो आपने, सच है विश्वा वीस ॥

नर को जो कुछ करना चहिये, ये नर शरीर धारन करके ।
वो सारा मैंने किया ऋषी, यम नियम आदि दृढ़ व्रत धरके ॥
मुझको मेरी आत्मा के लिये, चिन्ता न तनिक भी छाई है ।
इसका कारन कुछ और हि है, जिस लिये उदासी आई है ॥
वो ये है जब से कलियुग का, पृथ्वी पर दौरा शुरू हुआ ।
हो गया नष्ट वैराग्य ज्ञान, बस पाप जगत का गुरू हुआ ॥
जिससे प्रति दिन यहां वालों की, मुनिवर ! आयू घटती जाती ।
नहि रहा भरोसा जीवन का, बुद्धी स्थिर न नजर आती ॥
शारीरिक, मानसिक तापों से, मिलता पलभर अवकाश नहीं ।
पा रहे हैं सारे घोर क्लेश, मुक्ती मिलने की आश नहीं ॥
इन जीवों का संकट लख कर, दिन रात हृदय दुख पाता है ।
पर इन्हें मोक्ष दिलवाने का, रस्ता न समझ में आता है ॥

दैव योग से आप यहां, आ पहुँचे हो आज ।
अस्तु कृपा कर कहिय अब, होय सिद्ध किम काज ॥

किस प्रकार अल्प परिश्रम से, अल्पायू प्राणी गति पावें ।
छुटकारा आवागमन से हो, कर्मों के बन्धन नस जावें ॥

अज्ञान अन्धेरा नाशन को, हो आप सूर्य सम मुनिराई ।
कल्यान जगत का हो जिससे, वो सुगम राह दो बतलाई ॥
सुन बचन कृष्ण-द्वैपायन के, मुस्काये चतुरानन-नन्दन ।
बोले मुनिराज धन्य हो तुम, लग रहा परोपकार में मन ॥
पर अब सारी चिन्ता तज दो, मैं तुम्हें उपाय बताता हूं ।
जिससे प्रानी आसानी से, भव तरें ये सब समझाता हूं ॥
निश्चय जानो विश्वास करो, नहिं युग कोई कलियुग सम है ।
दोषों का घर होने पर भी, इसमें इक गुण अति उत्तम है ॥
यदि सतयुग, त्रेता, द्वापर में, तुम मुझे पूछते मुनिराई ।
तो सरल मार्ग बतलाने में, पड़ जाती अतिशय कठिनाई ॥
क्योंके सतयुग में महा कठिन, तप ही मुक्ती दिलवाता था ।
त्रेता में विधि अनुसार यज्ञ, करने से नर गति पाता था ॥

द्वापर में भी थी नहीं, सुगम मोक्ष की राह ।
प्रभु-पद पूजन के बिना, मिलती थी नहिं थाह ॥

पर कलियुग में न ज़रूरत है, दूसरे युगों के धर्मों की ।
इसमें तो आवश्यकता है, केवल भक्तीमय कर्मों की ॥
ये युग भक्ती प्रधान युग है, भक्ती ही मोक्ष दिलायेगी ।
तप यज्ञ व पूजन की चर्चा, नहिं काम किसी के आयेगी ॥
ये प्रेम रूपिणी भक्ति सदा, करती निवास जिसके अन्दर ।
उसको सुपने में भी दर्शन, नहिं देते हैं यम के किंकर ॥
अस्तू श्री हरि से मिलने का, यदि कुछ उपाय है तो भक्ती ।
दुनियां के फन्द छुड़ाने में, करती सहाय है तो भक्ती ॥
इसलिये आप तज योग यज्ञ, भक्तीमय ग्रन्थ बनाइयेगा ।
उस निर्गुण प्रभु के सगुण रूप, सम्बन्धी गुणगन गाइयेगा ॥
चित में परिपूर्ण भरोसा रख, जो ईश्वर के गुण गायेंगे ।
मैं सत्य रूप से कहता हूं, वे अन्त परम पद पायेंगे ॥

अस्तु करो मत खेद मुनि, ये कलिकाल निहार ।
पावन यश प्रभु का कहो, भव भय नाशन हार ॥

❀ गाना ❀

इस कलियुग में हे द्वैपायन, प्रभु नाम की ही प्रभुताई है ।
जिसने विश्वास सहित गाया, उसने सहज हि गति पाई है ॥
सतयुग में योग से मोक्ष मिले, त्रेता में यज्ञ से काम चले ।
द्वापर हरि पूजन पाप टले, इस युग में भक्ति बताई है ॥
मन में हरिपद पंकज धरलो, मुख से अघनाशक जप करलो ।
यों पुन्य पाप दोनों हरलो, झट आन मिले यदुराई है ॥
सुख सागर हैं प्रभु चरन युगल, करते हि ध्यान हो बुद्धि विमल ।
माया न उसे दिखलावे शकल, हो जाय जन्म सुखदाई है ॥

खुशी होगये व्यासजी, सुन नारद के बैन ।
हृदय भक्ति से भर गया, अश्रुपूर्ण भये नैन ॥
मन में प्रभु का ध्यान धर, प्रेम सहित सिर नाय ।
द्वैपायन कहने लगे, विधिसुत प्रति हरषाय ॥

हे देवऋषी मैं धन्य हुआ, सुन वचन आपके सुखदाई ।
पर थोड़ी और कृपा करके, इतना तो दीजे बतलाई ॥
उस निर्गुण प्रभु ने सगुण होय, अवतार कई एक धारे हैं ।
पृथ्वी का भार उतारन हित, अगणित चरित्र कर डारे हैं ॥
उनमें से किस अवतार के मैं, गुण कथन करूं हे ऋषिनायक ।
जो कलियुग में जीवों के लिये, हो जावें मुक्ती में सहायक ॥

वैसे तो प्रभु के चरित, हैं सब एक समान ।
सभी जगत बाधा हरें, अन्त करें कल्यान ॥

पर सबका लिखना है अशक्य, इसलिये आप बुद्धी द्वारा ।
जो धरा हो प्रभु ने सर्व श्रेष्ठ, उस रूप का हाल कहो सारा ॥
पाराशर-नन्दन के सुनकर, अस वचन देव-ऋषि मुस्काये ।
अरु कहन लगे पुलकित होकर, आंखों में प्रेमाश्रू छाये ॥
आवेश, कला, अंशांशि, अंश, पूरन, परिपूरनतम मुनिवर ।
इतनी प्रकार के रूपों में आते हैं निर्गुण प्रभु भूपर ॥
इन अवतारों का पृथक् पृथक्, मैं तुम्हें भेद समझाता हूं ।
जो सुना है विधि मुख से मैंने, वह पूर्णतया बतलाता हूं ॥
उस अलख, अगोचर ईश्वर के, विधि. हरि, हर, अंश कहाते हैं ।
यम, वरुण, कुवेर आदि सब सुर, अंशांशी माने जाते हैं ॥
कूरम, वामन, कपिलादिक को, बस गिनों कला अवतारों में ।
भृगुवर को आवेशावतार, तुम समझो ब्राह्मण सारों में ॥

भूमी पर जब जब बढ़े, असुरों का अति भार ।
तब तब उसको मेटने, होय पूर्ण अवतार ॥

इस श्रेणी में नरसिंह और, हैं अवधपती श्री रघुराई ।
हैं पूरन रूप जगत पितु के, भक्तों को सब विधि सुखदाई ॥
पर, परिपूरनतम तो केवल, श्रीकृष्ण हि माने जाते हैं ।
है इनसे परे न तत्व कोई, ये स्वयम् वेद बतलाते हैं ॥
इस कलियुग का है कृष्णवर्ण, शास्त्रों ने हमें बताया है ।
उसके प्रभाव के नाशन हित, कृष्णावतार जग आया है ॥
उस पूर्ण ब्रह्म पुरुषोत्तम के, अवतारों में है श्रेष्ठ यही ।
क्या कहूं स्वयम् निर्गुण भगवन्, हो कृष्ण रूप अवतरे मही ॥
फिर चिदानन्द आनन्द हेतु, आल्हादिनि शक्ती लाये थे ।
निज जन्म से ले निर्वाण तलक, कइ चमत्कार दिखलाये थे ॥
मुनि! इन लीला पुरुषोत्तम ने, जो लीलायें कीन्हीं भूपर ।
वे हैं अस अद्भुत रहस्य भरी, लख जिन्हें चकित होते सुरनर ॥

कोई निज बुद्धी से इनको, योगेश्वरों का ईश कहें।
कइ रसिक कहें अरु कई इन्हें, परिपूरनतम जगदीश कहें॥

कहें राजनीतिज्ञ कोई, रण पंडित कोई मान।
कोई वीर गिने इन्हें, कोई दया निधान॥
गरज़ थे कि हर क्षेत्र में, नँद नन्दन गोपाल।
अद्वितीय थे अस्तु तुम, लिखो इन्हीं का हाल॥

फिर पूर्व काल में जितने भी, जगदीश्वर ने निज रूप धरे।
वे थे सब एकहि रस प्रधान, उस ही से सारे काम करे॥
पर व्रज-जीवन यदु-नन्दन का, नव रस-प्रधान अवतार हुआ।
हो गई मोक्ष की राह सुगम, सब ही का हलका भार हुआ॥
फिर कृष्ण शब्द का अर्थ स्वयम्, द्योतक है परिपूरनता का।
रवि है अज्ञान अंधेरे का, अरु नाशक है भव बाधा का॥
अतएव आप मन थिर करके, गुन कीर्तन करो बिहारी के।
श्री कृष्णचन्द्र, आनन्द—कन्द, यदुपति, गोवर्धनधारी के॥
मन मोहन श्याम मुरारी का, है चरित अपार अथा सागर।
पाया न किसी ने पार मुनी, शिव, शेष, गणेश थके मिलकर॥
पर ज्यों एक बूंद सुधामृत की, मृत्यू के डर से अभय करे।
त्योंही थोड़ा हरि चरित गान, भव बाधाओं के प्रान हरे॥

कुरुकुल संबंधी सभी, मधुसूदन के काम।
'महाभारत' में आपने, वर्णन किये ललाम॥

अब उनके जन्म काल का सब, वृत्तान्त लिखो हे मुनिराई।
सिलसिले वार मैं कहता हूं, कलि जीवों के हित सुखदाई॥
भारत प्रदेश में सात पुरी, मुक्ती दायक मानी जाती।
उन सब में कृष्ण-जन्म-भूमी, श्री मथुरा अति आदर पाती॥
गोलोक की सुखदायक शोभा, यहां पर दृष्टी आती सारी।
बस इसीलिये सब कहते हैं, त्रिलोकी से मथुरा न्यारी॥

द्वापर युग का था अन्त समय, कलियुग पृथ्वी पर आया था ।
उस समय राज्य इस नगरी का, यदु के वंशियों ने पाया था ॥
जिस समय कथा आरम्भ हुई, नृप थे यहां उग्रसैन नामी ।
हरि भक्ति परायन धर्मात्मा, सारे व्रज मंडल के स्वामी ॥

दैवयोग से इन तिया, जना पुत्र इक क्रूर ।
हुआ कंस के नाम से, दुनिया में मशहूर ॥

यह महाबली अभिमानी था, हरि द्रोही, भक्तों का घालक ।
फिर था हिंसा-प्रिय दुष्ट नीच, और दानव कुलका प्रति पालक॥
पा समय इस दुराचारी ने, निज पितु को क़ैद बना डाला ।
कर लिया दख़ल सिंहासन पर, और करन लगा गड़बड़ भाला ॥
इस खल के [१] अत्याचारों से, बेचारी पृथ्वी घबराई ।
कर धेनुरूप सुरलोक गई, पर स्वयम् दुखी थे सुरराई ॥
क्योंके यज्ञादि न होने से, बलि भोग न कुछ मिल पाया था ।
इसलिये भूमि को सुर मंडल, अति व्याकुल दृष्टी आया था ॥
आख़िर सलाह कर देव सभी, श्री चतुरानन के पास गये ।
सृष्टा इन सबको लेकर के, भगवान् शंभु पै जात भये ॥
शंकर ने भी दुख हरने में, असमर्थपना जब दिखलाया ।
तब सारा दल त्रिपुरारि सहित, क्षीरोदधि के भीतर आया ॥

यहां विष्णु बोले सुरों, जाउ सकल गोलोक ।
बिना गये वहां के नहीं, मिटे तुम्हारा शोक ॥

ब्रह्मा, मैं अरु कैलाशनाथ, सब अंश हैं गोलोकेश्वर के ।
वे स्वयम् ब्रह्म परिपूरन हैं अस्तु संग जाउ महेश्वर के ॥
अल क़िस्सा श्री गिरजापति ने, विष्णु का कहना मान लिया ।
[२] गउलोक सुरों को पहुँचाया, तहं कृष्ण ने यह आदेश दिया ॥

देखो श्रीमद्भागवत—(१) दूसरा भाग, (२) तीसरा भाग,

जन्म लेउ सब भूमि पर, मम आज्ञा अनुसार ।
आता हूं मैं भी सुरो, हरन भूमि का भार ॥
लिख कर इतना हे वेद व्यास, किम [१]प्रगटे प्रभु ये रच डालो ।
क्यों कर पहुँचे फिर नन्द भवन, ये सुन्दर गाथा कथ डालो ॥
वर्णन कर नन्द महोत्सव का, संहार पूतना का लिखदो ।
शकटा व तृणावत मरने पर, क्या हुआ फेर इसमें चितदो ॥
दर्शन हित कुंवर कन्हाई के, शंकर जिमि नँद के घर आये ।
नन्दरानी से जो बात हुई, जिस तरह कृष्ण दर्शन पाये ॥
यह लिखकर फिर ऊखल बन्धन, यमलार्जुन मोक्ष बयां करना ।
[२]माखन चोरी की भी इक छवि, भक्तों के लिये अयां करना ॥
मिट्टी खाकर के विश्व रूप, दिखलाया जिमि निज माता को।
इसका वर्णन कर फिर लिखना, [३]कालिया नाग की गाथा को ॥
[४]ब्रह्माजी को ज्यों मोह हुआ, उसका लिखना न भूल जाना ।
फिर चीर हरन की लीला का, अद्भुत रहस्य तुम दिखलाना ॥
पुनि पूर्णतया वर्णन करना, [५]गोवर्धन धारन का कारन ।
जंगल में गऊ चराते हुये, कई एक खलों का संहारन ॥
[६]शरद पूर्णिमा रात्रि का, लिखना हाल तमाम ।
तत्व सहित हे व्यासजी, रास किया जिमि श्याम ॥
या विधि पवित्र ब्रजलीला लिख, फिर लिखो कंस का घबराना ।
अक्रूर साथ दोउ भ्रातन को, मथुरा नगरी में बुलवाना ॥
कुबजा व रजक की कथा याद, वर्णों प्रभु ने किमि धनु तोड़ा ।
कुवलयापीड़ हाथी वध कर, जिमि मल्लों का मस्तक फोड़ा ॥
आखिर सिंहासन पर चढ़ कर, कैसे [७]कंसासुर को मारा ।
ये लिख, फिर लिखो मिला जैसे, नृप उग्रसैन को छुटकारा ॥

देखो श्रीमद्भागवत—(१) चौथा भाग, (२) पाचवा भाग, (३) सातवां भाग, (४) छठा भाग, (५) आठवां भाग, (६) नवां भाग, (७) दसवां भाग ।

तदनन्तर लिखना सुने, बन्दीगृह में जाय ।
किये मुक्त माता पिता, निज कर से यदुराय ॥

यज्ञोपवीत कुल के माफ़िक, फिर कृष्णचन्द्र ने धारन की ।
भक्ती मुक्ती देने वाली, श्री गायत्री उच्चारण की ॥
पुनि गये भ्रात युत गुरु के घर, विद्या वारिध शिक्षा लेने ।
था सारा कर्म लोक संग्रह, आदर्श सकल जग को देने ॥
केवल चौंसठ दिन में सारी, विद्या समाप्त मुनि कर डाली ।
आश्चर्य चकित गुरुदेव हुये, हृदय में छाई खुशियाली ॥
पढ़ना समाप्त हो जाने पर, दक्षिणा का जब अवसर आया ।
तब गिन समर्थ गुरु ने इनसे, अपने मृत सुत को मंगवाया ॥
जो पल में तिनों लोक रचे, उसको पड़ती क्या कठिनाई ।
ला दिया ऋषी का पुत्र फेर, आये निज घर दोनों भाई ॥
माता यसुदा व गोपियों का, सारा विषाद खोने के लिये ।
[1]उद्धव को ब्रज में भिजवाया, सतज्ञान हृदय होने के लिये ॥
ये लिख कर [2]जरासंध से रण, जिस तरह हुआ वह कथा रचो ।
वध काल-यवन का वर्णन कर, मुचुकुन्द मोक्ष गाया कथदो ॥
इसके उपरान्त द्वारिका का, निर्माण लिखो हे मुनिराई ।
किस तरह [3]रुक्मणी आदि कई, कन्यायें श्री हरि ने व्याही ॥

मित्र [4]सुदामा को किया, पल में लक्ष्मीवान ।
फिर [5]भौमासुर के हरे, कृष्णचन्द्र ने प्रान ॥

सीमंतक मणि का भी चरित्र, हे द्वैपायन रह ना जावे ।
वाणासुर पुत्री [6]ऊषा के, मिस शिव से रण भी आजावे ॥

देखो श्रीमद्भागवत—(१) ग्यारवां भाग, (२) वारहवां भाग, (३) तेरहवां भाग, (४) सतरहवां भाग, (५) पन्द्रहवा भाग, (६) सोलहवां भाग।

फिर लिखो द्वारिका का [1] विहार, वसुदेव [2] यज्ञ पूरन करना ।
दे दर्श प्रभास क्षेत्र में फिर, सब ब्रज वालों का दुख हरना ॥
फिर लिखो कृष्ण की माया ने, कैसा एक चक्र चलाया था ।
जिसने आपस में लड़वाकर, सब यदुकुल नाश कराया था ॥

यों सब भार उतार कर, कीन्हीं भूमि सनाथ ।
उद्धव को पुनि ज्ञान दे, भेजा बद्रीनाथ ॥
फिर लीला संवरन कर, गये कृष्ण [3] गोलोक ।
इस प्रकार प्रभु के चरित, लिखो हरन दुखशोक ॥

संक्षेप में प्रभु की लीलायें, हे वेद व्यास सुनाई है ।
मायाधारी की महिमा की, नहिं थाह किसी ने पाई है ॥
तुम स्वयम् जानने वाले हो, ज्यादा क्या तुमको बतलाऊं ।
है बात कौनसी छिपी हुई, तुम से जो ऋषिवर कहजाऊं ॥
हे महाभाग ! दृढ़व्रती हो तुम, फिर हो सत के वक्ता ज्ञानी ।
पुनि निज नयनों से देखे हैं, तुमने नटवर शारंगपानी ॥
इसलिये हृदय में ध्यान धार, परिपूरनतम यदुनंदन का ।
आरंभ करो लिखना चरित्र, नाशन कलिमल के बंधन का ॥
श्रोताओं केवल चार श्लोक, श्री नारद ने द्वैपायन को ।
बतलाये थे अति तत्त्व भरे, जगदीश प्रेरणा के बस हो ॥
भगवान् के सकल चरित्रों का, मुनिको इनसे ही ज्ञान हुआ ।
इनही से कलिमल हरनरूप, भगवत् पुराण निर्मान हुआ ॥

सुन हरि के पावन चरित, पाराशर के लाल ।
रोमांचित तन होगये, मिटा सकल भ्रम जाल ॥

बंधगया ध्यान प्रभु मूरत का, जिससे मस्तीसी छाय गई ।
प्रेमाश्रु नयन में दृष्टि पड़े, मुरभी तबियत लहराय गई ॥

देखो श्रीमद्भागवत—(१) चौदहवां भाग, (२) अठारवा भाग (३) उन्नीसवां भाग

कुछ देर बाद कर चित्त स्थिर, करजोड़ वचन ये फरमाये ।
हे ब्रह्म-पुत्र मैं धन्य हुआ, कलि-जीवों के दिन फिर आये ॥
अब बहुत शीघ्र श्रीकृष्ण-चरित, मुनिनाथ ! लिखूंगा सुख पाई ।
शंकाएं सब निर्मूल हुईं, मन ने पूरन थिरता पाई ॥
हो प्रेम मग्न श्री नारद मुनि, वीणा पर प्रभु यश गाने लगे ।
कुछ ऐसा समां बंधा जिससे, दोनों निज होश भुलाने लगे ॥
लग गई समाधी सी इनकी, कुछ देर में जब चैतन्य हुये ।
चलदिये देव-ऋषि बिदा मांग, ये कहकर 'मुनि हम धन्य हुये' ॥

इधर व्यासजी देखकर, शुभ मुहूर्त सानंद ।
बैठे आसन पर तुरत, कहि जयजयति मुकुंद ॥

दृगमींच, चित्त स्थिर करके, एक महा तेज का ध्यान किया ।
निज इष्ट-देव यदुराई का, फिर बार बार आह्वान किया ॥
होगई सांवरी मूर्ति प्रगट, अति दिव्य तेज को लिये हुये ।
वय था किशोर नव-नीरद सम, छबि ललित त्रिभंगी किये हुये ॥
जनु ढले हों सांचे में ऐसे, सुन्दर अवयव दरसाते थे ।
जग-मोहन-शोभा से जगपति, अति मंद मंद मुस्काते थे ॥
कर रहे थे पावों में मृदु-ध्वनि, रत्नों से जड़े हुये नूपुर ।
था तड़ित विनिन्दित पीतांबर, कटि में करधनी सहित सुंदर ॥
प्रभु ने विशाल वक्षःस्थल पर, सुन्दर कौस्तुभ मणिधारी थी ।
आजानु भुजाओं की शोभा, सुरमुनि मन हरने वारी थी ॥
मुख कमल सुधाकर कोटि सरिस, अतिही कमनीय लखाता था ।
अवलोकन करने वाले का, मन तृप्ति न कभी जताता था ॥
कानों में मकराकृति कुण्डल, सिर अनुपम मुकट सुशोभित था ।
मृगमद कुंकुम का तिलक भाल, जगका चित करता मोहित था ॥

बजरही थी मुरली मृदु स्वर से, प्रभु के अधरों पर धरी हुई ।
लख अलख, अनादि, अगोचर को, मुनि व्यास कीतर्वियत हरी हुई ॥

इष्ट-देव का दर्श पा, द्वैपायन मुनिराय ।
कहन लगे कर जोड़कर, प्रेम सहित सिरनाय ॥

हे परमब्रह्म, हे प्रकृति परे, हे जगकारन, जग के स्वामी ।
अद्वैत तत्व हे अद्वितीय, आनन्द-रूप, अन्तरयामी ॥
हे सर्व, सनातन, सर्व बीज, हे निर्गुण, सगुण, कृपासागर ।
हे गोलोकेश्वर, श्रीकृष्ण, गोविन्द, गरुड़ध्वज, नटनागर ॥
है नमस्कार मम बार बार, हे सर्व-लोक-आश्रय तुमको ।
कर दया दयानिधि, दीन-बन्धु, चरणांबुज भक्ति देउ हमको ॥

*** गाना ***

परिपूरनतम स्वामी तुम पर जाऊं बलिहार ।
दीनबंधु प्रभु करुणा सागर, जन-रक्षक मोहन नटनागर ।
ब्रज-जीवन सुख सागर, तुम पर जाऊं बलिहार ॥
अहो भाग्य जो दर्श दिखाया, करी कृपा जन पर यदुराया ।
घर में गंगा न्हाया, तुम पर जाऊं बलिहार ॥
हृदय कमल पर आसन लीजे, निज कर से लीला लिख दीजे ।
इतनी किरपा कीजे, तुम पर जाऊं बलिहार ॥
तुम्हरे चरन कमल में स्वामी, रहे सदा मन अंतरयामी ।
मिले भक्ति सुख-धामी, तुम पर जाऊं बलिहार ॥



यों कहते कहते किया, मुनि ने दण्ड प्रणाम ।
हाथ जोड़कर फिर कहा, सुनिये लीला-धाम ॥

तुम्हरे गुण गुण माया के लिये, हैं काल-रूप इतना सुनकर ।
मैं किंचित मात्र आपकी प्रभु, लीला लिखने को हुआ तत्पर ॥
हूँ मैं अल्पज्ञ मन्द बुद्धी, इसलिये सहाय कीजियेगा ।
हे सर्व-शक्ति-संपन्न ईश, लिखने की शक्ति दीजियेगा ॥
फिर यह भी वरदो कलिरूपी, निशि में जो नर टक्कर खावे ।
उसको यह ग्रन्थ सूर्य सम बन, सतमार्ग प्रदर्शक हो जावे ॥

कह तथास्तु श्रीकृष्ण झट, होगये अन्तरध्यान ।
खोली आँख मुनीश ने, कहि जय कृपानिधान ॥

फिर निशि दिन अति प्रयत्न करके, सब शोक मोह हरने वाली ।
अरु यदुराई के चरणों में, भक्ती पैदा करने वाली ॥
'श्रीमद्भागवत संहिता' रची, रचकर दीन्ही शुक ज्ञानी को ।
अरु रहस्य समेत पढ़ाय दई, निर्गुण स्वरूप के ध्यानी को ॥
इसको पढ़कर द्वैपायन सुत, बनगये भक्त बनवारी के ।
दिन रात ध्यान में रहन लगे, कंसारी, गिरवरधारी के ॥
इस तरह बहुत दिन बीत गये, एक समय ये गंगा तट आये ।
यहां पर इक अद्भुत दृश्य लखा, जिससे मन में अति चकराये ॥
क्या देखा एक मण्डप नीचे, बैठे हैं अगणित ऋषि-राई ।
अरु मध्य में जिनके अभिमन्यू, के सुत देते हैं दिखलाई ॥
नृप का है वेष त्यागियों सम, कुछ पूँछ रहे हैं मुनियों से ।
होरहा है शंका समाधान, अध्यात्म तत्व के गुनियों से ॥
श्रोताओं भूप परिक्षित क्यों, साधूवन आ बैठे यहां पर ।
ये सारी गाथा तुमको हम, कहते हैं सुनो ध्यान देकर ॥



कथा प्रारम्भ

जय व्रजनायक व्रजपते, जय व्रजराज व्रजेश ।
जय माधव मंगल करण, मनमोहन मायेश ॥
महाभारत के अंत में, श्रीकृष्ण भगवान् ।
दुष्टन बिनु जब भूमि कर, होगये अन्तरध्यान ॥

तब हो उदास श्री धर्मराज, सब राज परीक्षित को देकर ।
चल दिये हिमालय की जानिब, पत्नी भ्राताओं को लेकर ॥
इस तरफ़ पुत्र अभिमन्यू के, नीती युत राज चलाने लगे ।
लख धर्म-पुत्र सम धर्मराज्य, सारे पुरजन हरषाने लगे ॥
था नृप को मृगया करने का, इन दिनां शौक कुछ बढ़ा हुआ ।
आता था नज़र सब दिन बन में, बस धनुष कान तक चढ़ा हुआ ॥
इक दिन इनको फिरते फिरते, एक भीषण दृष्य नज़र आया ।
लख उसे भुजायें फड़क उठीं, सारे तनमें गुस्सा छाया ॥
वो क्या था, एक बलिष्ट शूद्र, हाथां में डंडा लिये हुये ।
कर रहा प्रहार वृषभ, गउ पर, अति निठुर आकृती किये हुये ॥
जिसके डर से हो दुखित दोऊ, आगे को भागे जाते हैं ।
हो रहा है तन कंपायमान, आँखों से अश्रु गिराते हैं ॥

सह न सके तब धनुष पर, फौरन तीर चढ़ाय ।
ललकारा उस शूद्र को, कहन लगे रिसियाय ॥

बस ठहर ठहर श्रो दुष्ट ठहर, क्या पार्थ को दूर गया जाना ।
जिससे निशंक होकर तूने, दुर्बलां को दुख देना ठाना ॥
रख याद पांडु-कुल में ऐसा, तू नहीं किसी को पावेगा ।
जिसके सन्मुख दीनां को कोई, मनमाना दुख पहुँचावेगा ॥

सुन ऐसी फटकार को, शूद्र होगया मौन ।
तब नृप ने गउ, बैल से, पूछा तुम हो कौन ॥

जितनो भी मेरो रैयत है, सब आनन्द मग्न लखाती है।
केवल तुम दोनों की सूरत, ग़मगोन दृष्टि में आती है॥
अस्तू कहदो सब भय तज कर, जो कुछ कि तुम्हारी गाथा है।
फिर लखना इस पापी को ये, राजा किस तरह छकाता है॥
सुनलो जिस मदोन्मत नृप के, राज्य में प्रजा दुख पाती है।
उसका परलोक बिगड़ जाता, सब कीर्ति नष्ट हो जाती है॥

कहा वृषभ ने धन्य हो, धन्य परीक्षित भूप।
अभय हुये हम, कर श्रवण, तुम्हरे बचन अनूप॥

क्योंके कुल-दीपक पांडू के, पुत्रों के अद्भुत गुण लखकर।
भगवान् कृष्ण कहिं दूत बने, कहिं बने सारथी हर्षाकर॥
हैं आप उन्हीं के पौत्र श्रेष्ठ, फिर क्यों न दया दिखलावेंगे।
हम दुखी अनाथों को राजन्, किस लिये न सुख पहुँचावेंगे॥
सुनिये मैं धर्म हूँ ये पृथ्वी, और शूद्र जो है कलिकाल है ये।
तप, धर्म, सत्य, दान के लिये, अति भयदायक भूचाल है ये॥
अस्तु मैं भागा जाता हूँ, पृथ्वी भी सह नहिं सकती है।
आशा है हमको जिसकी फ़क़त, वो एक आपकी शक्ती है॥
कारण हैं धर्म-धुरीन आप, वंशज हैं धर्मात्माओं के।
कर लेंगे शीघ्र विचार प्रास, हम दुखी जनों की आहों के॥

ये सुन खींचा धनुष को, लखकलियुग तत्काल।
गिरा चरण में आयके, बोला हे भूपाल॥
तीनकाल और चारयुग, जो विधि ने रचदीन।
नहीं मिटाये से मिटें, अस्तु सुनो परवीन॥

रहने के लिये मुझे भूपर, कुछ जगह आप बतला दीजे।
इस तरफ न फिर आऊँगा मैं, इतना कहना मेरा कीजे॥
राजा बोले झूँठों के घर, जूये, चोरी, हत्याओं में।
मद्-पान जहां होता है बहुत, सोने में और वेश्याओं में॥

तुम रहो खुशी से जा करके, यह सुनकर कलि-युग चला गया।
होगई गाय भूमी-स्वरूप, अरु धर्म को नृप ने धार लिया॥
प्रजा पालने में हुये, नरराई लवलीन।
एक दिवस फिर साजसज, गमन विपिन में कीन॥
सुन इनके रथ की गड़-गड़ाट, हिंसक जन्तू थर्राने लगे।
भागे पर भाग नहीं पाये, मर तुरत अमरपुर जाने लगे॥
होगये क्लांत फिरते फिरते, तब फिरने की मन में ठानी।
अति अधिक प्यास लगने के सबब, ये चले खोजने को पानी॥
पर कहीं जलाशय मिला नहीं, एक ऋषि-आश्रम दृष्टी आया।
कर आशा पानी मिलने की, नृप ने झट स्यंदन दौड़ाया॥
लेकिन यहां के मालिक मुनिवर, श्री शमीक ध्यानावस्थित थे।
मन प्राण वुद्धि इन्द्रियों सहित, सब परं-ब्रह्म में स्थित थे॥
होरहा था तन देदीप्यमान, दृष्टी न तहां ठहराती थी।
थे वाह्य-ज्ञान से शून्य ऋषी, तुरियावस्था दर्शाती थी॥
पर प्यासे नृप को तनिक नहीं, इनकी समाधि का ज्ञान हुआ।
जाते हि मांगने लगा नीर, मनमें अतिशय हैरान हुआ॥
उत्तर मिला न भूप को, तब चित में रिसियाय।
कहा वृथा बैठा ऋषी, तप का ढोंग बनाय॥
इतने में नृप ने लखा, मरा हुआ इक व्याल।
उठा धनुष से ऋषी के, दिया गले में डाल॥
था धर्म-भीरु अभिमन्यु सुवन, लेकिन एक तो ये प्यासा था।
फिर था सिर पर जो स्वर्ण- मुकुट, उसमें कलियुग का बासा था॥
इस कलि ने पिछला बैर साध, राजा का ज्ञान भुलाय दिया।
पांडव-कुल के सर्वथा विरुध, ये निन्दित कर्म कराय दिया॥
कुछ देर बाद दल बल समेत, आगये महल में नरराई।
मस्तक से मुकुट उतारते ही, इनको पिछली सब सुधि आई॥

बोले हा ! हाय ! किया ये क्या, ऋषि कण्ठ में मरा सर्प डारा ।
जाने इस पातक से कब-तक, होवेगा मेरा छुटकारा ॥
धन, धाम, पुत्र, पत्नी आदिक, नसजाते सोच नहीं आता ।
यहां तक के प्राण चले जाते, तो भी न कभी मैं दुख पाता ॥
पर कलि के चक्कर में आकर, मुनिवर को व्यर्थ सताया है ।
क्या करूँ कहां जाऊं हे प्रभु, भाग्य ने क्या रंग दिखलाया है ॥

❁ गाना ❁

करना क्षमा मुझे प्रभु निर्दोष जानकर, आया हूँ शरण तुमको दीन-बंधु मान कर ।
मैंने तो आज तक न दुखाया किसी का दिल, किन पातकों के फलने सताया है आनकर ॥
है घोर पाप करना दया दुष्ट जनों पर, छोड़ा था कलि को शिष्ट समझ इतमिनान पर ।
जो कुछ हुआ हुआ मगर अब तो हे चक्र-धर, छुटकारा इससे जिमि मिले वो मग प्रदान कर ॥



सोच मग्न व्याकुल हृदय, थे यहां पर नरनाथ ।
उत ऋषि सुत से जायकर, कही किसी ने बात ॥
शृंगी ऋषि ! यहां क्या करते हो, अन्धेर किसी ने मचाया है ।
एक मरा सर्प कहिं से लाकर, तुम्हरे पितु को पहिराया है ॥
सुन वचन क्रुद्ध मुनि बाल हुआ, बोला धर ध्यान सुनो भाई ।
श्रीहरि के सुरपुर जाते ही, फैली जगमें मादकताई ॥
होगये हैं राजा अभिमानी, इनका मद दूर करूँगा मैं ।
जब तक न दुष्ट को दण्ड मिले, नहिं कुछ भी हृदय धरूँगा मैं ॥
यों कह कौशिकी नदी का जल, चुल्लू में ले यों फरमाया ।
जिस कुलांगार ने मम पितु के, गल मृतक सर्प है पहिराया ॥
है उस पापी को शाप मेरा, "सातवां दिवस जब आवेगा ।
तो महा उग्र तक्षक भुजंग, फौरन उसको डस जावेगा" ॥
यों कह पितु ढिंग आय कर, सत्वर सर्प निकाल ।
कहा जोर से हे पिता, खोलो दृग तत्काल ॥

तुम्हरी समाधि का ध्यान न कर, गल मरा सर्प जिन डाला है ।
मम शाप से सात दिनों में वह, दुनियां से जाने वाला है ॥
अपमान हमारा करके फिर, कोई कब सुख पा सकता है ।
क्या क्षात्र तेज से ब्रह्म तेज, दुर्बल माना जा सकता है ॥
सुन बचन मूंद आँखें अपनी, ऋषि ने कुछ देर विचार किया ।
शाबासी देने के बदले, सुतको भरपूर धिकार दिया ॥
फिर बोले रे! अलपज्ञ बाल, तूने अपराध किया भारी ।
एक मामूली सी ग़लती पर, राजा को श्राप दिया भारी ॥
उस धर्मात्मा के राज्य में हम, आनंद से दिवस बिताते हैं ।
पापी, चोरों, दुष्टों का भय, हृदय में तनिक न लाते हैं ॥
अपराध का बदला लेने में, होकर समर्थ भी मुनिराई ।
बस क्षमा कर दिया करते हैं, है इसी में गौरव प्रभुताई ॥

सुतको यों समझाय कर, एक शिष्य बुलवाय ।
भेजा राजा पै उसे, सारा हाल सुनाय ॥
भूप परीक्षित ने सुना, जब समस्त वृत्तांत ।
सोच फिक्र जाता रहा, हृदय हो गया शान्त ॥

बोले प्रभु ने अति कृपा करी, दिलवाया शाप ऋषी द्वारा ।
होवेगा प्रायश्चित अघका, इन सात दिनों ही में सारा ॥
वरना जाने कितने जन्मों, मुझको संकट सहना होता ।
किस किस योनी में किस प्रकार, क्या जाने किमि रहना होता ॥
इस राज पाट की तृष्णा तो, दिन दिन बढ़ती ही जाती थी ।
हरि सुमिरन करने की युक्ती, कुछ भी न समझ में आती थी ॥
कर दया शाप द्वारा प्रभु ने, अज्ञान अन्धेरा मिटा दिया ।
वैराग्य का दीपक कर प्रकाश, अन्तिम कर्तव्य पथ दिखा दिया ॥
दे राज्य पुत्र जन्मे-जय को, घर तज बनमें चलना चहिये ।
इन सात दिनों में जितना हो, भगवान् भजन करना चहिये ॥

यही हृदय में सोचकर, गये भूप दरबार ।
सभासदों के सामने, कीन्हें प्रगट बिचार ॥
सुन ऐसी अप्रिय बानी को, सब सभा दीन छबि छीन हुई ।
छागया एक दम सन्नाटा, सबकी आकृती मलीन हुई ॥
पर चला न चारा किसी का कुछ, मुँह शाप ने सब के बन्द करे ।
होगया तिलक जनमेजय को, नृप भीतर गये अनन्द भरे ॥
रानियों ने भी अतिरुदन किया, परकुछ न हुआ, आखिर नृपवर ।
सब तज कर प्रभु भजने के लिये, आ बैठे गंग किनारे पर ॥
जिसने जिस समय जहां पर भी, राजा का समाचार पाया ।
बेचैन बिकल हो दर्श हेतु, फौरन गंगा तट पर आया ॥
सुरपुर, नरपुर, नागपुर, चहुंदिशि देश विदेश ।
कोलाहल सा मचगया, सुनकर यह संदेश ॥
अग्नी, वशिष्ठ, अंगिरा, भृगू, कात्यायन, परशुराम, गौतम ।
श्री भरद्वाज, कश्यप, अगस्त, पाराशर, वामदेव सत्तम ॥
भगवान् महर्षि द्वैपायन, जमदग्नि, विश्वामित्रादी ।
मुनियाज्ञवल्क, सनकादि और, लोमश, नारद ऋषि श्रुतिवादी ॥
यानी त्रिभुवन के देवऋषी, ब्रह्मर्षि, राजऋषि, आय गये ।
लख ऐसी दया दयानिधि की, अभिमन्यु तनय पुलकाय गये ॥
झट उठकर दंड प्रणाम किया, पदपूज सुखासन बिठलाया ।
बोले मैं धन्य हुआ ऋषियों, तुम लोगों का दर्शन पाया ॥
है सात दिनों का मम जीवन, इसलिये धर्म वह फरमाओ ।
हो जाय मुक्ति जिससे मेरी, इतनी किरपा प्रभु दिखलाओ ॥
वचन श्रवणकर मुनि सभी, करने लगे विचार ।
इतने में आये तहां, वेदव्यास कुमार ॥
एक सोलह वर्षीय बालक सम, इनका वय दृष्टी आता था ।
था भेष दिगम्बर चहरे पर, एक महा तेज दरसाता था ॥

लख इन्हें समस्त उपस्थित मुनि, हर्षित हो आतुर उठधाये ।
अर्चन, वंदन, पूजन, करके, अति हित से साथ लिवा लाये ॥
फिर मध्य में वृहत सिंहासन पर, कर विनती इनको बैठाया ।
तब भूप परीक्षित की जानिब, लखकर सबने यों फरमाया ॥
होगया उदय कुछ पुण्य तेरा, आये शुकदेव मुनी ज्ञानी ।
इससे हमको विश्वास हुआ, अब होगी तेरी मनमानी ॥
हम जितने यहां उपस्थित हैं, वय में ही फक़त बड़े जानो ।
पर ज्ञान में, तप में, निष्ठा में, शुकदेव को अति उत्तम मानो ॥

अस्तु गहो इनकी शरण, पूछो शीश झुकाय ।
जिससे तव आवागमन, तुरत नष्ट होजाय ॥

ये सुनते ही हर्षित होकर, राजा ने अर्घ्य प्रदान किया ।
दे परिक्रमा चरणामृत ले, गुरु सम इनका सम्मान किया ॥
फिर बोले जो भव-भय-भंजन, कल्याण के हैं करने वाले ।
साधू संतों के अभय रूप, दुष्टों का मद हरने वाले ॥
उन कृष्णचन्द्र ने किरपा कर, भेजा है तुम्हें सहर्ष प्रभो ।
वरना मुझ सम मतिमंद नीच, कैसे पाता तव दर्श प्रभो ॥
अस्तू हे मुनियों के मुनिवर, गुरुओं के गुरु पण्डित ज्ञानी ।
एक प्रश्न आपसे पूछता हूँ, गिन शिष्य करिय संशयहानी ॥
आगई हो जिसकी मृत्यु निकट, उसको क्या क्या करना चहिये ।
क्या सुनना, क्या जपना चहिये, किम ईश ध्यान धरना चहिये ॥

सात दिवस की आयु मम, शाप विवश है नाथ ।
मुक्ति होय बस धर्म वो, कहकर करिय सनाथ ॥
वचन श्रवण कर भूप के, कृष्ण ध्यान उर धार ।
अमृत सम मीठे वचन, बोले व्यास कुमार ॥

❀ गाना ❀

जगत में सतसंगत है सार।

सतसंगत से पुण्य बढ़त है नष्ट होय अघभार, जीवन मुक्त बने नर इससे पावे साक्षात्कार
भूप ! स्वर्ग अपवर्ग सकल सुखधरलो तुला मंझार, एक निमिष सत्सङ्गबराबर होय नहीं फलदार
गाधि सुवन ने करी तपस्या बरस साठ हज्ज़ार, पर वशिष्ठ के पल सत्सङ्ग के आगे हुई बेकार
सात दिवस का समय बहुत है निश्चय जान भुवार, मिली मुक्ति खट्वांग नृपति को दो ही घड़ी मंझार

अस्तू क्यों करते फिक्र भूप, क्यों दुख से नाता जोड़ा है।
क्यों सात दिनों के समय को तुम, मन में गिनते हो थोड़ा है॥
तुम नहीं जानते सतयुग में, खट्वांग हुये हैं नर राई।
जिनने नारद उपदेश से बस, दो घड़ी में थी मुक्ती पाई॥
वारीश पार करने के लिये, ज्यों तीन बात दृष्टी आती।
दृढ़यान, चतुरमल्लाह अरु इक, अनुकूल वायु मानी जाती॥
त्योंही भवसागर तरने को, हरि कथा रूप बेड़ा मानो।
श्रोताओं की श्रद्धा वायू, सद्गुरु रूपी मल्लाह जानो॥
ये सब बातें हैं प्राप्त तुम्हें, अस्तू एकाग्र चित्त करके।
मुक्तीदायक शुभ कथा सुनो, श्री हरि का ध्यान हृदय धरके॥
जिस समय तुम्हारे दादा को, भारत की घोर लड़ाई में।
मोह प्राप्त हुआ था तब प्रभु की, आये थे वे शरणाई में॥
तब उन्हें ज्ञान बतलाते हुये, बोले थे यों शारंगपानी।
जो अंतकाल में भजे मुझे, है वही भक्त मम गुणखानी॥
उसको शरीर के तजते ही, मैं नहीं भटकने देता हूँ।
बल्की करके अपना स्वरूप, अपने में लय करलेता हूँ॥

हो न सकें तिहुंकाल में, झूंठ कृष्ण के बैन।
लेकिन श्रद्धा चाहिये, मिले न इस बिन चैन॥

वैसे तो मुक्ती पाने के, कई साधन माने जाते हैं।
पर उनमें कर्म, ज्ञान, भक्ती, ये तीनों मुख्य लखाते हैं॥

अपनी अपनी श्रद्धानुसार, नर इनमें से चुन लेते हैं ।
क्योंकि आख़िर में सब रस्ते, हरि समीप पहुंचा देते हैं ॥
अब कथा कर्म कांडियों की सुन, उनको क्या क्या करना होता ।
किस सतर्कता के साथ उन्हें, अपने पथ पर चलना होता ॥
अव्वल तो इस राह का राही, कामना रहित होना चहिये ।
कर प्रगट ब्रह्मार्पण बुद्धी फिर, स्वारथ-बुद्धी खोना चहिये ॥
जिसने ये अन्त तक निभा लिया, वो मुक्ती का अधिकारी है ।
यदि ज़रा भी चूका तो उसकी, समझो फिर जगमें ख़्वारी है ॥

रस्ता है जो दूसरा, कहलाता वो ज्ञान ।
कर्मकांड से अति अधिक, इसे श्रेष्ठ पहिचान ॥

इस मग से चलने वाले की, मुक्ती सत्वर हो जाती है ।
लेकिन ये राह सुनो राजन् , तलवार की धार कहाती है ॥
इस पथ का जो पंथी होता, ज्ञानी की पदवी पाता है ।
और ज्ञान जहां पर रहता है, अज्ञान न तहां दरसाता है ॥
अस्तू गिन इसे स्वावलंबी, भगवान् ध्यान नहिं देते हैं ।
इस तरह ये ज्ञानवान प्राणी, ज्ञान के भरोसे रहते हैं ॥
पर इस रास्ते में पद पद पर, बहु बिघ्न दिखाई देते हैं ।
जो इनसे बच जाते हैं वे, मुक्ती अपनी कर लेते हैं ॥

बिना मदद भगवान् की, विघ्न टरे नहिं एक ।
इससे ज्ञानी जन सदा, पाते कष्ट अनेक ॥

अब रहा तीसरा जो साधन, वो भक्ती मार्ग कहाता है ।
जिसके जरिये से हे नृपवर, नर सहज मुक्ति पाजाता है ॥
इसमें न कर्मकांडियों सरिस, कामना सताने वाली है ।
और विघ्न की मूर्ति ज्ञान पथ सम, नहिं आड़े आने वाली है ॥
कारन भक्ती करने वाले, निज को गिनते हैं दास सदा ।
खाते, पीते, सोते, जगते, रखते हैं प्रभु की आस सदा ॥

यदि सुनते हैं कानों से कुछ, तो कथा कृष्ण की सुखदाई ।
शृंगार की कोरी बातों में, वे अरुचि दिखाते नरराई ॥
आंखें भी केवल श्री हरि के, दर्शन से ही हरषाती हैं ।
मायामय नाशवान चीजें, उनको न सौख्य पहुँचाती हैं ॥
जिव्हा कुछ रटती यही, तो उनका ही नाम ।
भक्तों को भगवान् बिन, भला कहां आराम ॥
जिसको इस सुखदा भक्ती का, परिपूर्ण स्वाद आजाता है ।
वो परिजन, स्वजन, आदि सब में, लख अपना प्रभु हरषाता है ॥
उसका संसार निराला ही, अद्भुत अचरज मय हो जाता ।
रहता न दुःख का नाम वहां, अविनाशी सुख दृष्टी आता ॥
इस में लौ लग जाने से जब, बिसराता है जन सुधि तन की ।
रखते हैं उसका ध्यान सदा, आदत है यही जनार्दन की ॥
ज्ञानी की ब्रह्मस्थिती और, लवलीनता हरि के दासों की ।
रच देती है एक ही शकल, इन पृथक पृथक विश्वासों की ॥
ज्ञानी आत्म स्वरूप लख, समाधिस्थ हो जाय ।
भक्त दरस भगवान् का, पाकर सुधि बिसराय ॥
फिर ज्ञानी नर तो मुक्तीपा, प्रभुमांहि लीन होजाता है ।
संसार में आने जाने का, सब झगड़ा तुरत मिटाता है ॥
पर भक्ती करने वालों को, जो गति मिलती है नरराई ।
उसको संपूर्ण बताने को, शक्ती न शेष, शिव ने पाई ॥
इस प्रेमीजन के पास सदा, नव-निद्धि आठ सिद्धी रहती ।
यहां तक मुक्ती भी कर जोड़े, प्रार्थना सदा करती रहती ॥
लेकिन उसका मन तो सदैव, हरि का अनुरागी बन जाता ।
तब रिद्धि सिद्धि अरु मुक्ती का, स्थान कहां रहने पाता ॥
ऐसा प्रेमी अन्त में, पाकर प्रेम प्रशाद ।
रहता है गोलोक में, कृष्ण रूप बन, शाद ॥

फिर जब जनहित जन-मन-रंजन, अवतार भूमि पर लेते हैं ।
दुष्टों का मद हरने के लिये, अद्भुत लीलायें करते हैं ॥
तो प्रभु प्रेमी भी प्रभु के संग, प्रभु दर्श हेतु आजाते हैं ।
रहते हैं हरदम साथ और, फिर अन्त में प्रभु संग जाते हैं ॥
ऐसा भय रहित अनन्त सौख्य, ज्ञानी को दुर्लभ है भाई ।
अस्तू सायुज्य मुक्ति के हित, तुम यत्न करो हे नरराई ॥
इस शिव अनपायनि भक्ती का, मैं तुम्हें रूप समझाता हूं ।
मम पितु द्वारा निर्मित पुराण, 'भागवत' जो है बतलाता हूं ॥
इस ग्रन्थ के सुनने वालों के, सारे कलेश नस जायेंगे ।
जीवन सुख मय बन जावेगा, गोलोक अन्त में पायेंगे ॥

रहेंगे यहां चिरकाल तक, हर दम हरि के साथ ।
अस भरोस उर धार कर, सुनहु कथा नरनाथ ॥

श्रोताओं यों कहकर शुक ने, 'भागवत' सुनाना शुरू किया ।
प्रभु अवतारों का पृथक पृथक, कुल हाल बताना शुरू किया ॥
यों नव स्कंधों की गाथा, क्रम से सब मुनिवर ने गाई ।
लेकर थोड़ा विश्राम फेर, बोले राजा से हरषाई ॥

अगणित प्रभु के रूप हैं, अगणित हैं अवतार ।
लीलायें भी हैं अमित, पा न सके कोउ पार ॥
इष्ट एक को मान कर, सदा धरो नृप ध्यान ।
मुक्ति शीघ्र होजायगी, तनिक न संशय जान ॥

शुकदेव मुनी ने इस प्रकार, सब मुख्य मुख्य अवतारों की ।
गाथायें अभिमन्यू सुत को, समझाई कई विचारों की ॥
हो गये मग्न मुनियों समेत, भूपाल परीक्षित गुणज्ञानी ।
अरु जान लिया निश्चय होगी, शुक द्वारा मम भव-भय हानी ॥
इतने में इन्हें अचानक ही, एक ऐसा मधुर ख्याल आया ।
द्वैपायन सुत ने अभी तलक, कृष्णावतार नहिं बतलाया ॥

यों तो हर एक नाम प्रभु का, भव-भंजन करने हारा है ।
पर जिसे इष्ट समझा जिसने, वोही उसको बस प्यारा है ॥
अस्तु परीक्षित कह उठे, मुनि कुल कमलदिनेश ।
कहो कृष्ण अवतार की, कथा हरन सब क्लेश ॥
उन श्याम वर्ण मुरलीधर को, हे मुनी इष्ट स्वीकारा है ।
वे ही पांडव कुल पालक हैं, उनका ही हमें सहारा है ॥
पद पद पर मम दादाओं की, थे वही मदद करनेवाले ।
दुख द्वंद विपति भय क्लेश सोच, आदिक सब के हरने वाले ॥
उनके उपकारों की गाथा, गाना शक्ति से बाहिर है ।
तो भी समयोचित कहता हूं, जितनी कि मुझको ज़ाहिर है ॥
जय राजसूय[१] करने से प्रथम, मगधेश का बल विक्रम सुनकर ।
महाराज युधिष्ठिर घबराये, तब इन्हीं ने समझाया सत्वर ॥
इनके ही कौशल द्वारा फिर, नृप जरासन्ध संहार हुआ ।
चंदेरी नृप भी स्वर्ग गया, यों यज्ञ का पूरा कार हुआ ॥
आगे महारानी कृष्णा[२] का, जब खैंचा चीर दुशासन ने ।
तब वस्त्र रूप धर मदद करी, इन ही गुपाल गरुडासन ने ॥
दुर्वासा[३] के शाप से, भी कीन्हा उद्धार ।
वरना पांडव वंश का, हो जाना अपकार ॥
फिर बनकर दूत[४] हमारे ही, उस अंध-पुत्र को समझाया ।
अर्जुन को जब मोह[५] प्राप्त हुआ, तब गीता का गाना गाया ॥
भीषम[६] से नित प्रति रण में जब, घबराते थे पांचों भाई ।
तब उन्हें धीर बंधवाते थे, कह मधुर वचन ये यदुराई ॥
फिर जयद्रथ[७] वध के समय भि जो, ये प्रभू न शक्ती बतलाते ।
तो निश्चय था दिन मुंदने पर, पारथ मर कर सुरपुर जाते ॥

देखो हमारा बनाया हुआ 'महाभारत'–(१) सातवां भाग (२) आठवां भाग ३) नवा भाग (४) १४ वां भाग (५) १५ वां भाग (६) १६ वां भाग (७) १८ वां भाग,

नारायण अस्त्र[१] गुरु सुत का, नागास्त्र कर्ण का भयकारी ।
कर देता महा अनर्थ यही, जो वहां न होते बनवारी ॥
आगे अंधे ने क्रोधित[२] हो जब भीम से मिलना चाया था ।
तब लोह प्रतिमा द्वारा प्रभु ने, उनका भी प्रान बचाया था ॥

फेर मुझे ही देखलो, मेरे भी ये प्रान ।
गुरुसुत के ब्रह्मास्त्र से, रक्खे हैं जन जान ॥
सिवाय इनके सैकड़ों, टाले हैं दुख जाल ।
अस्तू पांडव वंश का, ऋणी ऋणी है बाल ॥

नृप की बातें सुनते सुनते, मूरति श्री कुंज विहारी की ।
अंकित होगई हृदय पट पर, कंसारी गिरवरधारी की ॥
जिससे झट पट शुकदेव मुनी, श्रीकृष्ण ध्यान में लीन हुये ।
लग गई समाधि अटल इनकी, ऐसे रस में तल्लीन हुये ॥
दूसरे उपस्थित ऋषि मुनि भी, बस कृष्ण का ध्यान लगाने लगे ।
लगे रटने नाम कृष्ण का ही, अरु कृष्ण के ही गुण गाने लगे॥
होगई कृष्ण मय सभा सकल, जप यज्ञ का ऐसा दौर हुआ ।
सुधि बिसर गई तनकी सारी, पल में मन और का और हुआ ॥
क्या जाने कितने अरसे तक, ये समा बंधा रहता भाई ।
इतने में श्री शुकदेवजी ने, कर लई लाभ चेतनताई ॥
संबोधन कर ऋषि मुनियों को, द्वैपायन सुत पंडित ज्ञानी ।
बोले अब अद्भुत 'कृष्णचरित', धरध्यान सुनो अति सुखखानी ॥
श्रोताओं ! पुत्र व्यासजी के, 'श्रीकृष्णचरित' जो गावेंगे ।
"श्रीलाल" कथा वो अघनाशक, आगे के पृष्ट बतावेंगे ॥

अब श्रीकृष्ण कृपाल की, सुघड़ मूर्ति उर धार ।
आनन्दित हो प्रेम से, बोलो जय इक बार ॥

* श्री कृष्णार्पणमस्तु *

देखो हमारा बनाया हुआ 'महाभारत'—(१) १९ वा भाग, (२) २१ वां भाग



श्रीकृष्ण चरित्र अथवा श्रीमद्भागवत

दूसरा भाग

कंस अत्याचार

रचयिता—

श्रीलाल खत्री

प्रकाशक—महाभारत पुस्तकालय, अजमेर

मुद्रक—के. हमीरमल लूनिया, दि डायमण्ड जुबिली प्रेस, अजमेर.

प्रथम बार ३,०००	सम्वत् १९९१ विक्रमी सन् १९३५ ईस्वी	मूल्य ।) आने

कृष्णास्तु भगवान् स्वयम्

स्तुति

(१)

जय कृष्ण करुणासिन्धु करुणागार नमामी।
जय भक्त वत्सल भक्त के आधार नमामी॥
जय ज्ञानियों के निर्गुण निराकार नमामी।
जय जन के सगुण रूप जय साकार नमामी॥
पाया न पार तेरा, हे अपार ! नमामी।
कह नेति नेति वेद गये हार, नमामी॥
नैया को करो पार खेवनहार ! नमामी।
तुझ बिन नहीं है कोई मददगार नमामी॥

मंगलाचरण

(२)

पीताम्बर धर पाप हर, गोकलेश गोपाल।
ताप हरन जन सुख करन, जय जय दीन दयाल॥
जय जलशायी जलदसम, सुभग सुहावन रूप।
सृष्टि रचन, पालन, हरन, शिव अज विष्णु स्वरूप॥
तुम गुरु गणपति शारदा, सहस बदन तुम शेष।
विघन हो मंगल करो, जग व्यापक अखिलेश॥
वंदहुं वेदव्यास सुत, श्री शुकदेव सुजान।
गायो कलिमल हरन जिन, "कृष्ण चरित" गुणगान॥

❀ श्लोक ❀

वंशीविभूषितकरान्नवनीरदाभात्पीतांबरादरुणाबिंबफलाधरोष्ठात् ।
पूर्णेन्दुसुन्दरमुखादरविन्दनेत्रात्कृष्णात्परं किमपितत्वमहं न जाने ॥

❀ कथा प्रारम्भ ❀

कथा नवम स्कंध तक, कही हरन दुख द्वंद ।
अब दसवें स्कंध की, सुजन सुनहु सुखकंद ॥
भारत में विख्यात है, प्रिय दर्शन अभिराम ।
कालिंदी के तीर पर, पावन मथुरा धाम ॥

है पांच हज़ार वर्ष पिछली, जो गाथा तुम्हें सुनाते हैं ।
उस समय के दृश्य इस नगरी के, कुछ औरहि रंग बताते हैं ॥
थी सर्व सौख्य संपन्न पुरी, अन धन का तहां अभाव न था ।
चोरी, अन्यायी करने का, किसीनर का बुरा स्वभाव न था ॥
रस्ते, चौराहे, हाट, बाट, महलो मकान अस सुन्दर थे ।
मानों भूपर आपहुंचे हों, सब दृश्य मनोहर सुरपुर के ॥
खुशबू से उत्तम पुष्पों की, नित बाग महकते थे सारे ।
मन हरन सुघड़ आवाज़ों से, तहं पच्छि चहकते थे सारे ॥
परिपूर्ण पंकजों से तलाव, मतवाले भ्रमरों का गुंजन ।
कल कल रव श्री यमुनाजी का, तीनों बयार त्रयताप हरन ॥
कुछ ऐसी छवि आनन्दायक, ये सब मिलकर उपजाते थे ।
जिससे वहां जानेवालों के, हृदय मोहित होजाते थे ॥

फिर समस्त व्रजभूमि की, ये मथुरा सुखखानि ।
कहलाती थी उस समय, श्रोताओं ! रजधानि ॥

थे भोजवंशि यहां के राजा, बल विक्रम में लासानी थे ।
भगवान भक्ति करने वाले, पंडित कवि कोविद ज्ञानी थे ॥
जग से जब द्वापर विदा हुये, कलियुग ने सिक्का बैठाया ।
तब राज सिंहासन इस पुर का, श्री उग्रसेन के हाथ आया ॥

थे ये नृप भी अति धर्मात्मा, सतवादी, स्वारथ-त्यागी थे ।
सुतवत गिनते थे रैयत को, हरिचरणों के अनुरागी थे ॥
इनके बस इकहि पत्नी थी, था उसका नाम पवनरेखा ।
इसको तज नृप ने कभी नहीं, किसी अन्य नारि का मुख देखा ॥
रानी भी पति को परमेश्वर, समगिनकर हुक्म उठाती थी ।
इस तरह आयु इन दोनों की, सुख सहित बीतती जाती थी ॥

रहते रहते चैन से, गुज़रे वर्ष अनेक ।
समय पायकर रानि ने, किया प्रसव सुत एक ॥

मथुरा नरेश के महलों में, जिस समय पुत्र जन्मा आकर ।
त्रिभुवन को भय देने वाले, उत्पात आरम्भ हुये सत्वर ॥
थरथरा उठी पृथ्वी सारी, दिग्दाह दिशाओं में छाया ।
होगये उदय सब धूम्र केतु, और उल्कापात नज़र आया ॥
वायू ने भीषण रूप धरा, तरु टूट टूट कर गिरने लगे ।
तम पूर्ण दिशायें हुई सकल, हड़ बड़ा के पक्षी उड़ने लगे ॥
पल में नभ मेघाच्छन्न हुआ, बिजली में भीषण कड़क हुई ।
जल की ऐवज में लहू गिरा, कई इमारतें भी तड़क गई ॥
जल रहित जलाशय दीख पड़े, मुरझाये बन उपबन सारे ।
कर उठे भयंकर शब्द स्यार, रो उठे स्वान मति के मारे ॥
प्रतिमायें कभी नाचती थीं, कभि हंसती थीं रोती थी कभी ।
चैतन्य कभी दृष्टी आती, ध्यानावस्थित होती थी कभी ॥
अस भयदायक अपशकुनों को, लख सुर नर सब घबराय गये ।
सोचा भूमी लय होने के, नज़दीक दिवस अब आय गये ॥

मथुरापति ये दृश्य लख, गये बहुत घबराय ।
कुल प्रोहित को दूत के, द्वारा लिया बुलाय ॥

थे गर्ग मुनी उस समय गुरू, सब भोजवंशि राजाओं के ।
पंडित थे, ज्ञानी, कोविद थे, भूषण थे अभी सभाओं के ॥

लख इन्हें भूप वर खड़े हुये, आगे आकर मस्तक नाया ।
समयोचित पूजन वंदन कर, आसन दे सत्वर फ़रमाया ॥
हे मुनि ! ग्रह, लग्न, वार, तिथि सब, अवलोकन कर ज्योतिष द्वारा ।
कुल आयू का सच्चा सच्चा, मम कुंवर का हाल कहो सारा ॥
फिर एक विनय प्रभु और भी है, यदि कष्ट न हो तो फरमाओ ।
था पूर्व जन्म में कौन ये सुत, इसका वृतान्त भी कह जाओ ॥
प्राकृतिक उपद्रव देख देख, मैंने अंदाज़ लगाया है ।
ये कोई महाबली निश्चर, ले जन्म मेरे घर आया है ॥
हो तुम त्रिकालदर्शी मुनिवर, उत्कण्ठा मेरी मिटा दीजे ।
ये कौन अगाड़ी करेगा क्या, इसका सब भेद बता दीजे ॥

गर्ग मुनी कहने लगे, चितदे सुनहु नृपाल ।
देवासुर संग्राम में, था एक असुर कराल ॥

उसका था नाम कालनेमी, विष्णू ने मार गिराया था ।
तब शुक्राचार्य दैत्यगुरु ने, विद्या से इसे जिलाया था ॥
जीवन पा मंदराचल पर जा, विधिकी अतिकठिनतपस्या की।
तज खान पान निज हृदय में, पैदा एक नई समस्या की ॥
जब हो प्रसन्न आये स्रष्टा, वर मांग वचन ये फरमाया ।
तब विधि की विधिवत पूजन कर, अपना मतलब यों जतलाया ॥
जो सब से बड़े देवता हैं, और लक्ष्मीपती कहाते हैं ।
दैत्यों के करसे देवों को, हर समय जो आन बचाते हैं ॥
यदि वर देते हो तो ये दो, गिन मुझको चरनों का चाकर ।
वे विश्नू बध न सकें मुझको, भोगूं महि अचल अजय होकर ॥

कमलासन ने सकुचकर, दिया यही वरदान ।
हाथ उठा फिर यों कहा, सुन निश्चर धर ध्यान ॥

बेटा अपने अभिष्ट को तू, इस जीवन में नहिं पावेगा ।
जब लेगा जन्म दूसरा जा, तब मम वर फल दिखलावेगा ॥

मथुरापति के घर जन्मेगा, होवेगा "कंस" नाम तेरा ।
तब इन्द्र सरिस आनन्द करे, सुनले ये सत्य वचन मेरा ॥
यों कह विधि अन्तरध्यान हुये, दैत्य ने भि तप को छोड़ दिया ।
पा समय फेर हे मथुरापति, निज तन से नाता तोड़ दिया ॥
ये वोही दानव कालनेमि, जन्मा है तेरे घर आकर ।
ये पूर्व जन्म की कथा हुई, अब आगे को सुन चित लाकर ॥
होगा ये महाबली योधा, नहिं कहीं पराजय पायेगा ।
गउ विप्रों का घातक बनकर, भक्तों को खूब सतायेगा ॥
फिर होगा दुष्ट कुबुद्धि नोच, सत पथ खंडन करने वाला ।
स्वेच्छाचारी निर्दयी और, देवों का मद हरने वाला ॥
इसके साथी भी इसके ही, अनुरूप दुष्ट हिंसक होंगे ।
श्रुति शास्त्र पुराणों के विरुद्ध, होकर अभक्ष भक्षक होंगे ॥
आख़िर जब अत्याचारों से, सुर विप्र धेनु दुख पायेंगे ।
तब भक्त हेतु गोलोकनाथ, धर नर शरीर यहां आयेंगे ॥

उनके हाथों होयगा, तव सुत का अवसान ।
इन बातों में भूपवर, तनिक फ़र्क मत जान ॥

सुन लड़के का आयू वृतान्त, मथुराधिपती ख़ामोश हुआ ।
होगया भग्न हृदय सारा, पानी पानी सब जोश हुआ ॥
फिर हरि इच्छा को प्रबल जान, ज्यों त्यों नृप ने धीरज धारा ।
बच्चे का नाम कंस रक्खा, दुख सोच फिकर सब तज डारा ॥

जब से जन्मा दुर्मती, दुष्ट दुराशय कंस ।
मथुरा में दुख छागया, धर्म हुआ विध्वंस ॥

चहुंदिशि में हाहाकार मचा, अज्ञान अविद्या छाय गई ।
होगया अस्त सतज्ञान सूर्य, अंधियारी रजनी आय गई ॥
इस उत्पाती नृप बालक ने, यमराज का बाना धारलिया ।
सब व्रज मण्डल में घूम घूम, उत्पात मचाना शुरू किया ॥

ये दुष्ट प्रजा के बच्चों को, कर कपट पकड़ ले आता था।
यमुना जी के जल में लेजा, उनको तत्काल डुबाता था॥
फांसी देदेता किसिको ये, अरु किसी का गला दबा देता।
कई एकों के कोमल मस्तक, डंडे से चूर्ण बना देता॥
टांग किसी की पकड़कर, देता शीघ्र उछाल।
किसी बाल को मारता, शिलाखंड तलडाल॥
इस तरह बहुत दिन बीत गये, आयू भी बढ़ने को आई।
तब पापात्मा ने पापों में, कुछ और तरक्की दिखलाई॥
घुसगया नगर मंदिरों में ये, भक्तों को खूब सताने लगा।
मलसूत्र वहां पर डाल डाल, स्थान अस्वच्छ बनाने लगा॥
प्रतिमा को नष्ट भ्रष्ट करके, खल मनमें अति हरषाता था।
कोई कहता तो पकड़ उसे, लोकान्तर को भिजवाता था॥
लख ऐसे अत्याचारों को, सारी रैयत अकुलाय उठी।
"धर्मात्मा नृप का पापी सुत", हे विधि ये कैसी बातघटी॥
आखिर एका कर पुरवासी, पहुंचे फरियाद सुनाने को।
इस कंस के अत्याचारों से, जल्दी छुटकारा पाने को॥
पर पहुंच हुई नहि राजा तक, मग में ही दुष्ट ने घेरलिया।
कर लाल नेत्र फटकार सुना, बेचारों का मुंह फेर दिया॥
जन्म लिये जब कंस को, हुये अठारह साल।
चला दिग्विजय के लिये, संग ले कटक विशाल॥
ये बाल अवस्था ही से था, अति प्रबल मल्ल विद्याधारी।
कुश्ती में अच्छे अच्छों की, थी शान किरकिरी कर डारी॥
उन दिनों मगधपति जरासन्ध, इस हुनर में अति लासानी था।
इसके सिवाय रणचतुर भी था, बलवीर धीर भटमानी था॥
अतएव उसीसे सर्व प्रथम, इसका भयदायक युद्ध हुआ।
हरचन्द उसने तदबीर करी, पर ये रन से न विरुद्ध हुआ॥

आख़िर मल्लयुद्ध में हार मान, मगधेश्वर से बलखानी ने ।
अपनी दोनों कन्यायें दे, निज पिंड छुड़ाया ज्ञानी ने ॥
नाम कुबलयापीड़ था, हाथी इक बलवान ।
उसको भी ले कंस ने, आगे किया पयान ॥
जा चढ़ा महिष्मति नगरी पर, वहां के राजा को ललकारा ।
बोला यदि हारूं दास बनूं, वो दास है जो मुझसे हारा ॥
थे इस राजा के पांच पुत्र, सबके सब समर भयंकर थे ।
मुष्टिक, चाणूर, कूट, तोशल, शल, महा भयानक निश्चर थे ॥
मथुरापति सुत ने इन सबको, बारी बारी से हरा दिया ।
करलिया दास अपना पल में, फिर आगे बढ़ना शुरू किया ॥
गिरिराज प्रवर्षण पर जाकर, कपिश्रेष्ट द्विविदसेजाय भिड़ा ।
उसको भी अपना दास बना, केशी दानव से आय लड़ा ॥
गो ये खल अति बलशाली था, पर चली न कुछ भी चतुराई ।
हो क्रोधित वार अनेक किये, हर समय मगर मुंह की खाई ॥
इसको भी अपने बस में कर, गिरि मंदराचल पहुंचा जाकर ।
जहं तप में रत थे परसुराम, कीन्हा प्रणाम तेहि सिर नाकर ॥
देख नम्रता कंस की, हंसे परशुधर वीर ।
पर इसको क्षत्री समझ, गरमा गया शरीर ॥
बोले हे राजा के लड़के, हे काल विवश आ आगे तू ।
इक धनुष तुझे मैं देता हूं, इसको चढ़ाय दिखलादे तू ॥
मेरी आज्ञा के माफ़िक यदि, ये काम पूर्ण कर डारेगा ।
तब तो जीवन है वरना बस, यमपुर फौरन पग धारेगा ॥
सुन कंस ने सहज शक्ति द्वारा, ये महा धनुष ज्यायुक्त किया ।
टंकोरा बार बार उसको, चहुं दिशि में शब्द अपार भया ॥
तब बोले खुश हो परसुराम, ये चाप वीर लेजाओ तुम ।
रखो इसको घर में सयत्न, पुनि एक बात चितलाओ तुम ॥

परिपूरणतम अवतार बिना, ये कभी न तोड़ा जायेगा ।
जिसने तोड़ा ये भी सुन ले, तू मृत्यु उसीसे पायेगा ॥
धनु पा अति अचरज दिखा, आखिर हिय हरषाय ।
भौमासुर पर चढ़गया, कंस तुरत गरमाय ॥
इस धरा-पुत्र के आश्रित थे, कई असुरवीर अति बलशाली ।
रहते थे अकड़े हुये सदा, भुज फड़कत नयन लिये लाली ॥
उन सब में श्रेष्ठ धेनुसुर ने, पहिले आकर लड़ना ठाना ।
पर कंस ने एकहि मुष्टिक में, उसको तड़फाया मनमाना ॥
फिर बली प्रलम्बासुर बोला, मैं यमपुर तुझे पठाता हूं ।
तेरा सारा बल, शौर्य, तेज, पलमें महि मांहि मिलाता हूं ॥
पर गलवानी का बल न चला, जब आय कंस से टकराया ।
ऐसी कुछ उस पर मार पड़ी, फौरन शरणागत में आया ॥
तब वीर तृणावत को भेजा, झटपट भौमासुर ने रण में ।
आकाश मार्ग में युद्ध हुआ, तृण सम आगिरा एक क्षण में ॥
पुनि दुष्ट बकासुर पर्वत सम, बक रूप बना आया आगे ।
निज चोंच में कंस बीर को ले, झट चहा निगलना इतरा के ॥
पर कर न सका निज मनमाना, उल्टा मथुरेश-पुत्र कर से ।
इस तरह पिटा सब ऐंठ छोड़, भागा निज जान बचा करके ॥
फिर चला अघासुर अजगर बन, इसके शरीर से लिपट गया ।
पर रजक पछाड़े ज्यों कपड़ा, त्यों कंस भी इससे निपट गया ॥
बलवान अरिष्टासुर ने फिर, बन बैल चतुरता दिखलाई ।
पर विजय लक्ष्मी ने खुश हो, जयमाल कंस को पहिराई ॥
लख कंस का बल भौमासुर ने, घबराकर संधी कर डाली ।
जो दानव हारे थे रण में, उनको दे ये आफ़त टाली ॥
भौमासुर को दास कर, लौटा अपने देश ।
इसके आगे क्या हुआ, चितदे सुनहु नरेश ॥

आते हि पिता से कहन लगा, आयू क्यों व्यर्थ गंमाते हो ।
सब साधन होते हुये भि तुम, किसलिये न मौज़ उड़ाते हो ॥
फेंको कंठी माला आसन, तजदो ये त्यागवृत्ति सारी ।
करती है निकम्मा जो नर को, छोड़ो ऐसी भक्ती भारी ॥
तुड़वाकर देवस्थान सभी, आमोद भवन बनवाओ तुम ।
रैयत का पैसा खींच खींच, आनन्द की वंसि बजाओ तुम ॥
वचन श्रवण कर कंस के, करके आंखें लाल ।
बोले नृप बस मौन हो, रे दुर्बुद्धी बाल ॥
नालायक ! तुझको ज्ञान नहीं, क्या मूल्य है प्रभू की भक्ती का ।
अर्चन का, वंदन, पूजन का, माला जपने की शक्ती का ॥
जिसने नर तन पाकर जग में, भगवान भजन से मुख मोड़ा ।
उसने हीरे के बदले में, बस कांचों का समूह जोड़ा ॥
जब तक हैं प्राण मेरे तन में, मैं भजूंगा भव-भय-भंजन को ।
जन-मन-रंजन, खल-मद-गंजन, सुखदायक, असुर-निकंदन को ॥
फिर महा भयानक पातक है, रैयत के जी को कलपाना ।
तेने नृप का सुत होकर भी, नहिं धर्म भूप का पहिचाना ॥
जा चला जा मुझको मुंह न दिखा, मैं बिना पुत्र रह जाऊंगा ।
लेकिन जीते जी कभी नहीं, अन्याय मार्ग पर धाऊंगा ॥

❀ गाना ❀

बिन प्रभू की भक्ति नर की ज़िन्दगी बेकार है ।
बस उसी का नाम करता इस जगत से पार है ॥
काम अरु मोह आदि के चक्कर में नित रहता है जो ।
उसको दर्शन मोक्ष का मिलना महा दुष्वार है ॥
कह गये है वृद्ध बतलाते हैं वेद अरु शास्त्र भी ।
पाप है पर पीड़ना अरु पुन्य पर उपकार है ॥
मूर्ख नर तन को वृथा मत खो जरा तो कद्र कर ।
ऐसा अवसर हाथ मे आता न बारम्बार है ।

आतु जबतक श्वास है विश्व'स से उस विश्व के।
ईश को सुमरो ये सब सारों का एक हि सार है॥

भला दुर्मती कंस में, थी कहां इतनो ताब।
अस्तु क्रोध कर जोर से, बोला हो बेताब॥
बस ज्यादा नहीं सुना जाता, अपनी जबान को बंद करो।
अब कंस करेगा राज्य यहां, तुम कारागृह में पांव धरो॥
इस तरह पिता का राज छीन, जा बैठा झट सिंहासन पर।
एक पापी दुष्ट दुराचारी, उस प्रजा-पोष्य धर्मासन पर॥
नृप बनते ही मन्त्री मंडल, जो पिछला था सब दूर किया।
गउ ब्राह्मण हिंसक दुष्टों को, उसकी ऐवज़ में थान दिया॥
निकली फिर राजाज्ञा ऐसी, हरि नाम न जपने पाय कोई।
तप यज्ञ आदि सब बंद होयँ, तीरथ करने न जाय कोई॥
यदि भूल से भी कोई मनुष्य, ये करता पकड़ा जावेगा।
तत्काल शिरच्छेदन होगा, जिन्दा न लौट घर आवेगा॥
इस किस्म का हुक्म निकलते ही, पुरवासी सारे दंग हुये।
कुम्हलाय गये चहरे पल में, सब रंग तुरत बदरंग हुये॥
पड़गये मंदिरों में ताले, यज्ञशालायें बरबाद हुईं।
भक्तों का नाम निशान मिटा, राक्षक कृतियां आबाद हुईं॥
करदिये गुप्तचर नियत कई, राजाज्ञा के मन वाने को।
रक्खा इनाम कई लाखों का, संतों का पता लगाने को॥
आते थे जो भक्त जन, गुप्तचरों के संग।
हंसकर करता कंस था, नष्ट सभी के अंग॥
सबसे भीषण इस पापी ने, एक वधिकालय बनवाया था।
था ऐसा भयदायक जिसने नरकों का मान घटाया था॥
अति तेज दुधारी छुरियों की खल ने चर्खिग्रांसी बनवाकर।
एक यन्त्र रचा और रखा उसे, उस हत्यागृह में लेजा कर॥

जब कोई अपराधी आता, इस यन्त्र पै डाला जाता था।
जिससे उसका तन पल भर में, टुकड़े टुकड़े हो जाता था॥
कहिं प्रलय काल सदृश अग्नी, हर समय धधकती रहती थी।
हवनादिक करने वालों का, ये चट आलिंगन करती थी॥
जिस तरह जंतियां होती हैं, तारों को पतला करने को।
त्यों ही यहां भी थी बनी हुई, संतों का जीवन हरने को॥
योगियों के हाथ पांव इनके, छेदों में डाले जाते थे।
जल्लादों द्वारा खिचकर वे, अति दुख से प्राण गमाते थे॥
हरि गुण गाने वालों के लिये, डसने को भीषण तत्त्क थे।
और सिंह जो पाले गये थे वे, दानियों के जीवन भक्षक थे॥
गिरवा कर तेल कढ़ाहों में, जो गर्म दृष्टि में आते थे।
संध्यावंदन करने वाले, तत्काल तल दिये जाते थे॥

सिज्जादानी के लिये, थी कीलों की खाट।
लिटा उसे झट प्राण को, करते बारा बाट॥

तरु आदि लगाने वाले सब, उल्टे कर लटकाये जाते।
जलती थी नीचे आग सदां, यों यमपुर पहुंचाये जाते॥
जिसने उन दिनों धर्मशाला, बनवाई सत्यानाश किया।
दुष्टों द्वारा चौमंजिल से, गिरकर प्राणों का ह्रास किया॥
फिर कूप बनाने वाले भी, सूखे नहिं बचने पाते थे।
बधिकालय वाले कुये को वे, अन्तिम स्थान बनाते थे॥
जिसने भूले से पुन्य हेतु, जो कहीं जलाशय बनवाया।
उसको मथुरा नगरी में फिर, जिन्दा न किसी ने लख पाया॥
कहने का तात्पर्य यह है, बधिकालय का कर नाम श्रवन।
भय को भय लगता वीरों के, होजाते अंग शिथिल फौरन॥
फिर एक और दारुण दुख था, जब जब दोषी मारे जाते।
तब तब यहां पर महाराज कंस, सारी रैयत को बुलवाते॥

दिखलाते उनको अन्त तलक, अपनी संहार क्रिया सारी ।
यों जमाये रखना चाहते थे, अपना प्रभाव उन पर भारी ॥
बाजारों में मथुरापति को, जिस समय सवारी जाती थी ।
सारी रैयत कर नम्र कंध, सिर झुका खड़ी होजाती थी ॥
घोड़ों की एवज में पापी, भक्तों से रथ खिचवाता था ।
उनके थक जाने पर भी ये, कोड़ों की मार लगाता था ॥

इस प्रकार इस राज्य में, सज्जन पाते क्लेश ।
पापी, हिंसक, निर्दयी, करते चैन विशेष ॥

इन रात दिनों के ज़ुल्मों को, सहते सहते रैयत सारी ।
एकत्रित हो यदि परामर्श, करने की करती तैयारी ॥
तो फौरन ही ये दुष्ट राज, दलबल समेत तहां जाता था ।
कर देता छिन्न भिन्न सब को, सरदारों को घर लाता था ॥
देता फिर उनको सूली ये, रजधानी के चौराहे पर ।
रह जाते थे सब मन मसोस, बस घूंट खून का सा पीकर ॥
कुछ इने गिने लोगों को तज, नहिं किसी का था विश्वास इसे ।
केवल अपनी ही भुजाओं की, शक्ती की थी बस आस इसे ॥
जो अपना धर्म कर्म तजकर, इसके दल में आना चाहता ।
उसको ये अद्भुत रीती से, कई तरह परीक्षा करवाता ॥
मरवाता उसका इष्ट मित्र, अथवा प्रिय रिश्तेदार कोई ।
या इष्टदेव की मूरत का, करवाता था अपकार कोई ॥
इसमें उत्तीर्ण होने वाला, राजा का प्रिय बन जाता था ।
उसके ऐशो आराम में फिर, घाटा न ज़रा भी आता था ॥

राजाज्ञा भी पूर्णतः, कहती थी ये साफ़ ।
स्याह सुफेद कुछ भी करे, है सब इसको माफ़ ॥

इस आज्ञा से उत्साहित हो, कई दुष्ट दुराचारी पापी ।
बनकर महाराजा के प्यारे, होगये धर्म के संतापी ॥

इनमें शंकटासुर, त्रणावर्त, केशी, व्योमासुर, भटमानी ।
वत्सासुर, आंधी, वकासुर अरु, धेनुक प्रलम्ब अघकी खानी ॥
थे ऐसे भयदायक जिनसे, भय भी मनमें भय पाता था ।
लख इन्हें, मधपुरी वालों को डर के मारे गश आता था ॥
इनके सिवाय एक और बला इस पुर में निवास करती थी ।
माता काली को तज जग में, नहिं ध्यान किसी का धरती थी ॥
था रौब कंस पर भी इनका अनएव कोष से धन लेकर ।
एक विशाल मन्दिर शक्ती का बनवाया था यमुना तट पर ॥
उस कराल काली सूरत को जो लखता दहला जाता था ।
लेकिन इस विकट पुजारिन पर कुछ भी न असर हो पाता था ॥
इस बला का नाम "पूतना" था काली सम थी यह भी काली ।
स्थूलकाय आकृती कुटिल मदिरा में रहती मतवाली ॥
ये नीच असम्भव बातों को, सम्भव कर दिखला देती थी ।
माया से रूप बदलने में, अति अद्भुत शक्ती रखती थी ॥
पापी असुरों को मदद और, भय रहित पूतना के द्वारा ।
मथुराधिपती ने दूर तलक, करलिया विजय भूतल सारा ॥

"कर" प्रद बने नरेश सब, हार युद्ध में मान ।
अनुचर सम रहने लगे, कंसहि अधिपति जान ॥

मथुरेश की आज्ञा का प्रभाव आतंक बुरे व्यवहारों का ।
कुछ ऐसा छाया छूट गया, सब नेम भक्त परिवारों का ॥
जिससे मथुरा को छोड़ सभी, आंखों से अश्रु गिराते हुये ।
जा छिपे गुफाओं में गिरि की, नृप के डर से दहलाते हुये ॥
होगया देश आचार भ्रष्ट, जप तप का नाम निशां न रहा ।
मन्दिर बनगये प्रमाद भवन, करने का यज्ञ मकां न रहा ॥
हर जगह चीख चिल्लाहट का देता था दृश्य बस दिखलाई ।
बाजार मौत का गर्म सदा, रहना सब पुर में दुखदाई ॥

इनमें शकटासुर, तृणावर्त, केशी, व्योमासुर, भटमानी।
वत्सासुर, आघा, बकासुर अरु, धेनुक प्रलम्ब अघकी खानी॥
थे ऐसे भयदायक जिनसे, भय भी मनमें भय पाता था।
लख इन्हें, मधपुरी वालों को डर के मारे गश आता था॥
इनके सिवाय एक और बला इस पुर में निवास करती थी।
माता काली को तज जग में, नहिं ध्यान किसी का धरती थी॥
था रौब कंस पर भी इनका अनएव कोष से धन लेकर।
एक विशाल मन्दिर शक्ती का बनवाया था यमुना तट पर॥
उस कराल काली मूरत को जो लखता दहला जाता था।
लेकिन इस विकट पुजारिन पर कुछ भी न असर हो पाता था॥
इस बला का नाम "पूतना" था काली सम थी यह भी काली।
स्थूलकाय आकृती कुटिल मदिरा में रहती मतवाली॥
ये नीच असम्भव बातों को, सम्भव कर दिखला देती थी।
माया से रूप बदलने में, अति अद्भुत शक्ती रखती थी॥
पापी असुरों को मदद और, भय रहित पूतना के द्वारा।
मथुराधिपती ने दूर तलक, करलिया विजय भूतल सारा॥

"कर" प्रद बने नरेश सब, हार युद्ध में मान।
अनुचर सम रहने लगे, कंसहि अधिपति जान॥

मथुरेश को आज्ञा का प्रभाव आतंक बुरे व्यवहारों का।
कुछ ऐसा छाया छूट गया, सब नेम भक्त परिवारों का॥
जिससे मथुरा का छोड़ सभा, आंखों से अश्रु गिराते हुये।
जा छिपे गुफाओं में गिरि की, नृप के डर से दहलाते हुये॥
होगया देश आचार भ्रष्ट, जप तप का नाम निशां न रहा।
मन्दिर बनगये प्रमाद भवन, करने का यज्ञ मकां न रहा॥
हर जगह चीख चिल्लाहट का देता था दृश्य बना दिखलाई।
बाजार मौत का गर्म सदा, रहना सब पुर में दुखदाई॥

ऐसा दिखता था मनहु, मथुरापुरी मंझार।
कंसरूप में काल ने लीन्हा है अवतार॥
थी हिम्मत नहीं किसी में भी जो कहता कुछ नृप से जाकर।
सब शिष्ट पुरुष लख धर्म हानि रोते थे बस दिल के अन्दर॥
यों ही कुछ दिवस बीतने पर आखिर एक वक्त ऐसा आया।
कई मास तलक नृप दूतों ने कोई दोषी न पकड़ पाया॥
ये देख कंस ने हृदय में ऐसा अंदाज, लगा डाला।
होगया ध्येय पूरा मेरा जो सोचा था वो कर डाला॥
अब शीघ्र अमरपुर में चलकर, देवों से भिड़ जाना चहिये।
करके उनको परास्त रण में निज सिक्का बैठाना चहिये॥
यज्ञादिक से किसी को, मिल न सके बलभोग।
अस्तु सभी को होयगा दुर्बलता का रोग॥
ऐसा विचार कर राजा ने मंत्री मंडल को बुलवाया।
और जो कुछ सोचा था दिल में, वो सारा किस्सा समझाया॥
होगये असुर खुश हो तयार, इतने में हरिगुण गाते हुए।
आपहुँचे देवऋषी नारद बीणा अतिमधुर बजाते हुए॥
अभिप्राय कंस का सुन करके, बोले क्या करते हो राजन।
मानवी शक्ति से बाहर है, पाना सुरपुर का सिंहासन॥
बिना तपस्या के नहीं, सिद्ध होय ये काम।
हठ वश यदी गये वहां, दुख होगा परिणाम॥
हो जाते हैं तत्काल नष्ट जैसे ओले नभ से गिरकर।
त्योंही तुम भी नस जाओगे यदि करी चढ़ाई सुरपुर पर॥
फिर आयेगी क्या काम तेरे यहां एकत्रित दौलत सारी।
अतएव वचन मेरे सुनकर मत करो स्वर्ग की तैयारी॥
इतना कह नारद मुनी होगये अन्तरध्यान।
तज विचार नृप चुप हुआ, कहना ऋषिका मान॥

निर्दयी कंस के जुल्मों को सहते सहते व्याकुल होकर।
बेचारी भूमी घबराई, और लगी सोचने हे ईश्वर ॥
क्या करूं कहां जाऊं किसको, अपनी फ़र्याद सुनाऊं मैं।
हे हृदय ! बता तूही कैसे, इस घावको औषधि पाऊं मैं ॥
जब कुछ न हुआ तब एक रोज़, गौ का स्वरूप करके धरती।
अति दुखित हृदय से रोती हुई, पहुँची सुरपुर गिरती पड़ती ॥
जब गई इन्द्र की सभा में ये, देखा बैठे हैं सुरसारे।
यम, वरुण, कुबेर, यक्ष, किन्नर, गंधर्व आदि सब मन मारे ॥
और मध्य में रत्न सिंहासन पर, आसनासीन हैं सुरराई।
लेकिन इनके चहरे पर भी, छा रही अमित व्याकुलताई ॥

लख सबकी अस दुर्दशा, भूमी शीश झुकाय।
नतमुख कर ठाड़ी रही, तब बोले सुरराय ॥

भूमी इस दीन अवस्था में, किसलिये यहां तू आई है।
कहदे झटपट संकोच छोड़ कैसा संदेशा लाई है ॥
तेरी नाजुक हालत लखकर, आता है अतिशय तर्श मुझे।
अतएव कहो कारन क्या है, क्यों दिया है तूने दर्श मुझे ॥

भूमी बोली आपसे, कहूँगी सारा हाल।
पर पहले यह तो कहो, तुम क्यों हो बेहाल ॥

किसलिये रंग बदरंग हुये, क्यों तनकी द्युति कुम्हलाई है।
चहरे का तेज गया कितको, किसलिये उदासी छाई है ॥
मैं तो दुख पाकर आई थी, अपनी दुख कथा सुनाने को।
पर यहां भी दुख का राज देख, तैयार हुई हूँ जाने को ॥

लेकिन सुरपति कर कृपा, दीजे मोहि बताय।
क्या कारन है आपका, रहा वदन मुरझाय ॥

बोले सुरेश जबसे कि शुरू, खल कंस के अत्याचार हुये।
तबसे बस मत पूछो जो कुछ, हम लोगों के आसार हुये ॥

बन गया है मधुपुर नरकालय, पापी मनमानी करते हैं।
फिरते हैं अद्भुत भेष बना, नहिं ज़रा किसी से डरते हैं॥
मच रहा है हाहाकार वहां, दैवी लीला सब भंग हुई।
प्रारम्भ हुए दानवी कृत्य, ये लखकर बुद्धी दंग हुई॥
प्राणों के डर से भक्तों ने, कर दिये हैं बंद हवन सारे।
होगई इतिश्री जप तप की, मिट गये पित्र तर्पन सारे॥
जा छिपे हैं सब गिरि खोहों में, बलि भोग न हम कुछ पाते हैं।
बस इसी से हम गत तेज हुये, दिन दिन होते ही जाते हैं॥
अतएव हुये एकत्र यहां, कुछ परामर्श करने के लिये।
अरु सोच रहे हैं जायँ वहां, कहें किसे दुःख हरने के लिये॥

अब तू भी कह, हो रहे, अश्रुपूर्ण क्यों नैन।
लक्ष बनी किस दुःख की, खोकर सारा चैन॥
कहा भूमि ने बात जो, तुम्हें दे रही कष्ट।
उसी ने हे स्वर्गाधिपति, करी बुद्धि मम नष्ट॥

उस दुष्ट नारकी मूरत के, हाथों से अतिशय दुख पाकर।
आई हूँ शरण तुम्हारी में, इस दीन वेष में घबराकर॥
पर यहां आने से ज्ञात हुआ, तुम सबको भी है मर्ज़ वही।
अस्तू जिससे अब रोग मिटे, अख्त्यार करो बस तर्ज़ वही॥
फिर ये भी तुम निश्चय मानो, यदि शीघ्र न कोई यतन हुआ।
तो तुम लोगों का भी सचमुच, बस स्वर्गलोक से पतन हुआ॥
कारण कुछ भोग न मिलने से, तुम दुर्बल होते जाते हो।
इस तरह चलेगा कितने दिन, क्या अटकल कभी लगाते हो॥
रिपुओं को मालुम होते ही, यहांवालों की दुर्बलताई।
वे फौरन धावा कर देंगे, सब कुछ ले लेंगे बरियाई॥
अस्तू जितना भय मुझको है, उससे कम तुमको भी है नहीं।
इसलिये जल्द चेतो व यत्न, इस दुख का करने चलो कहीं॥

निर्दयी कंस के जुल्मों को सहते सहते व्याकुल होकर।
बेचारी भूमी घबराई, और लगी सोचने हे ईश्वर॥
क्या करूं कहां जाऊं किसको, अपनी फ़र्याद सुनाऊं मैं।
हे हृदय! बता तूही कैसे, इस घावको औषधि पाऊं मैं॥
जब कुछ न हुआ तब एक रोज, गौ का स्वरूप करके धरती।
अति दुखित हृदय से रोती हुई, पहुँची सुरपुर गिरती पड़ती॥
जब गई इन्द्र की सभा में ये, देखा बैठे हैं सुरसारे।
यम, वरुण, कुबेर, यक्ष, किन्नर, गंधर्व आदि सब मन मारे॥
और मध्य में रत्न सिंहासन पर, आसनासीन हैं सुरराई।
लेकिन इनके चहरे पर भी, छा रही अमित व्याकुलताई॥

लख सबकी अस दुर्दशा, भूमी शीश झुकाय।
नतमुख कर ठाढ़ी रही, तब बोले सुरराय॥

भूमी इस दीन अवस्था में, किसलिये यहां तू आई है।
कहदे झटपट संकोच छोड़ कैसा संदेशा लाई है॥
तेरी नाजुक हालत लखकर, आता है अतिशय तर्श मुझे।
अतएव कहो कारन क्या है, क्यों दिया है तूने दर्श मुझे॥

भूमी बोली आपसे, कहूँगी सारा हाल।
पर पहले यह तो कहो, तुम क्यों हो बेहाल॥

किसलिये रंग बदरंग हुये, क्यों तनकी द्युति कुम्हलाई है।
चहरे का तेज गया कितको, किसलिये उदासी छाई है॥
मैं तो दुख पाकर आई थी, अपनी दुख कथा सुनाने को।
पर यहां भी दुख का राज देख, तैयार हुई हूँ जाने को॥

लेकिन सुरपति कर कृपा, दीजे मोहि बताय।
क्या कारन है आपका, रहा बदन मुरझाय॥

बोले सुरेश जबसे कि शुरू, खल कंस के अत्याचार हुये।
तबसे बस मत पूछो जो कुछ, हम लोगों के आसार हुये॥

बन गया है मधुपुर नरकालय, पापी मनमानी करते हैं।
फिरते हैं अद्भुत भेष बना, नहिं ज़रा किसी से डरते हैं॥
मच रहा है हाहाकार वहां, दैवी लीला सब भंग हुई।
प्रारम्भ हुए दानवी कृत्य, ये लखकर बुद्धी दंग हुई॥
प्राणों के डर से भक्तों ने, कर दिये हैं बंद हवन सारे।
होगई इतिश्री जप तप की, मिट गये पित्र तर्पन सारे॥
जा छिपे हैं सब गिरि खोहों में, बलि भोग न हम कुछ पाते हैं।
बस इसी से हम गत तेज हुये, दिन दिन होते ही जाते हैं॥
अतएव हुये एकत्र यहां, कुछ परामर्श करने के लिये।
अरु सोच रहे हैं जायँ वहां, कहें किसे दुःख हरने के लिये॥

अब तू भी कह, हो रहे, अश्रुपूर्ण क्यों नैन।
लच्च बनी किस दुःख की, खोकर सारा चैन॥
कहा भूमि ने बात जो, तुम्हें दे रही कष्ट।
उसी ने हे स्वर्गाधिपति, करी बुद्धि मम नष्ट॥

उस दुष्ट नारकी मूरत के, हाथों से अतिशय दुख पाकर।
आई हूँ शरण तुम्हारी में, इस दीन वेष में घबराकर॥
पर यहां आने से ज्ञात हुआ, तुम सबको भी है मर्ज़ वही।
अस्तू जिससे अब रोग मिटे, अख्त्यार करो बस तर्ज़ वही॥
फिर ये भी तुम निश्चय मानो, यदि शीघ्र न कोई यतन हुआ।
तो तुम लोगों का भी सचमुच, बस स्वर्गलोक से पतन हुआ॥
कारण कुछ भोग न मिलने से, तुम दुर्बल होते जाते हो।
इस तरह चलेगा कितने दिन, क्या अटकल कभी लगाते हो॥
रिपुओं को मालुम होते ही, यहांवालों की दुर्बलताई।
वे फ़ौरन धावा कर देंगे, सब कुछ ले लेंगे बरियाई॥
अस्तू जितना भय मुझको है, उससे कम तुमको भी है नहीं।
इसलिये जल्द चेतो व यत्न, इस दुख का करने चलो कहीं॥

*** गाना ***

हाय किसको सुनाऊँ कहानी, बन गई हूँ मैं दुख से दिवानी ।
निश्चर प्रबल भये जग भीतर करते हैं मनमानी ।
पापात्मा को मान मिलत है पाते संकट ज्ञानी ॥
वृक्षादिक के भार से मुझको होत नहीं हैरानी ।
पर इक हरिद्रोही से सुरपति होती है अति हानी ॥
शीघ्र उपाय करो, हों जिससे नष्ट सभी दुखदानी ।
वरना रसातल जाती हूँ मैं हे सुरेश गुणखानी ॥

———:o:———

देव सभा में छागया, सन्नाटा तत्काल ।
कुछ स्थिर नहिं हो सका, हुआ हाल वेहाल ॥
इतने में दैवयोग से तहां, श्री देव-ऋषि नारद आये ।
लख यहां का करुणाजनक दृश्य, आंखों में आंसू भर लाये ॥
रख एक तरफ अपनी वीणा, अति सहानुभूती दरसाते ।
बोले हे सुरों, सुरेश, भूमि, क्यों आप दुखित दृष्टी आते ॥
मालुम होता है भूमी पर, कर रहा कंस अनरथ भारी ।
बस इसीलिये बन गाय रूप, आई है पृथ्वी वेचारी ॥
अच्छा धर ध्यान सुनो तुम सब, मैं एक उपाय बताता हूँ ।
इससे छुटकारा पाने का, जो रस्ता है समझाता हूँ ॥
ब्रह्मदेव के पास चल, करो सभी फरियाद ।
आशा है उस लोक में, होगी पूर्ण मुराद ॥
ये सलाह पसंद हुई सबको, सब मिलकर साज सजाने लगे ।
चतुरानन को खुश करने को, कई तरह की वस्तु जुटाने लगे ॥
सबसे पहले सामान लिया, अर्चन, वंदन, अरु पूजन का ।
फिर किया इकट्ठा मनमोहक, सुखदायक साज सुगायन का ॥
विद्युत सम चंचल नृत्य चतुर, उर्वशी आदि लीं छवि राशी ।
चल दिये खुशामद करने को, यों खुशामदी सुरपुर वासी ॥

आगे आगे श्री नारद मुनि, नारायण नाम सुनाते हुये ।
चल रहे थे पुलकित हो मन में, मनमोहन बीन बजाते हुये ॥
पीछे सब देवों का समूह, भूमी युत दृष्टी आता था ।
त्रिभुवन पति का त्रयतापहरन, जग पावन नाम सुनाता था ॥
इस तरह ये सब चलते चलते, कुछ देर में ब्रह्म-लोक आये ।
वहां का अनुपम सौंदर्य देख, आनन्द मग्न हो पुलकाये ॥
देखा वह लोक मनोहर है, जहां जरा मृत्यु का नाम नहीं ।
मद, मोह, लोभ, क्रोधादिक का, है किसी जगह भी ठाम नहीं ॥
रवि के प्रकाश की एवज में, वहां ब्रह्म तेज दरसाता है ।
जिस तरफ हृदय जा लगता है, बस वहीं अटक रह जाता है ॥
फिर सभा भवन की सुन्दरता, अद्भुत है अचरजकारी है ।
जिसका वर्णन करने में विफल, होगई "गिरा" बेचारी है ॥
एक तरफ ऋषि मुनि टिके हुये, अध्यात्म तत्व चिन्तन में हैं ।
और तरफ दूसरी सिद्ध पुरुष, ईश्वर के आराधन में हैं ॥
दोनों के मध्य सुखासन पर, सुन्दर मृग चर्म बिछाये हुये ।
बैठे हैं सुख से ब्रह्मदेव, भगवान का ध्यान लगाये हुये ॥

देख सतोगुण तत्व का, यहां परिपूर्ण विकाश ।
हुई सुरों की भूमियुत, सुख मिलने की आस ॥

फिर ब्रह्म सभा में जा सबने, विधिवत विध का पूजन ठाना ।
हो हर्षित दंड प्रणाम किया, सारा दुख गया हुआ जाना ॥
इसके पीछे अपसराओं ने, मन हरन नृत्य को दिखलाया ।
किन्नरों ने भी अति कौशल से, बाजा बजाय सुख पहुंचाया ॥
फिर गाना गाने में सुदक्ष, गधर्वों की बारी आई ।
वो गाया, बुत बन गये सभी, ऐसी चतुराई दिखलाई ॥

श्रष्टा को इस भांति से, भक्ति भाव दिखलाय ।
करन लगे स्तुति सकल, सुरगण शीश झुकाय ॥

हे सत्य लोक पति, पितामहा, हे विधी, विधाता, चतुरानन ।
हे कमल पुत्र, हे गिराजनक, हे वरदायक, हे कमलासन ॥
हे सातद्वीप नव खंड आदि, त्रिलोकी उपजाने वाले ।
हे यजुर्वेद, ऋग, श्याम, अथर्व, के ज्ञान को फैलाने वाले ॥
हम सकल देवता भूमि सहित, प्रभु शरण तुम्हारी आये हैं ।
हो रहे हमारे हृदय भग्न, खल कंस ने बहुत सताये हैं ॥

"विध" बोले कुछ तो कहो, कैसे अत्याचार ।
किये कंस ने लख जिसे, हुये आप लाचार ॥
ये सुन सुर तो चुप रहे, पृथ्वी शीश झुकाय ।
बोली भगवन् क्या कहूं, कुछ वरना नहिं जाय ॥

उन दुखदायक बातों का दृश्य, जिस समय ध्यान में आता है ।
कंपायमान होता है हृदय, सब ज्ञान लुप्त हो जाता है ॥
भारत के कोने कोने में, सब वर्ण धर्म से हीन हुये ।
आश्रमों का नाम निशान मिटा, पाखंडी परम प्रवीन हुये ॥
श्रुति वंचक सारे बिप्र बने, नृप रैयत को कलपाने लगे ।
व्यापार में झूंठ हुई पैदा, सेवक साहबी जताने लगे ॥
वेदादि ग्रन्थ होगये लुप्त, सब कल्पित धर्म निभाते हैं ।
क्षण भंगुर जीवन पर मानव, गरमाते हैं इतराते हैं ॥

यश पाने की चाह से, करते दानी दान ।
गौ द्विज सेवा हट गई, मिटा बड़ों का मान ॥
उल्टी वायू चल रही, है सब की मति भ्रष्ट ।
परमारथ पर होगई, सारी श्रद्धा नष्ट ॥

होगये हवन यज्ञादि बंद, तर्पण जप तप शुभ काम सभी ।
इस कारण पितृ व देवों का, होगया नष्ट आराम सभी ॥
बरषा पर भी अति असर पड़ा, एक बूंद गिरी नहिं भूतल में ।
जरखेज़ जमीन हुई ऊसर, उपवन परिणित है जंगल में ॥

जितने भी खोटे काम प्रभू, जग में सुनने में आते हैं।
वे पूर्णतया व्रजमण्डल में, एकत्रित देखे जाते हैं॥
मसलन नर हत्या, बाल हत्या, हत्या स्त्री, गउ माई की।
विप्रों की, हरि के भक्तों की, योगियों की, ऋषि मुनिराई की॥
करते हैं निश दिन दुष्ट लोग, विश्वासघात भी चालू है।
चोरी अन्याई झूंठ छई, सत का न कोई भी पालू है॥
होगई वेद मर्याद भंग, शास्त्रोक्त कथायें गल्प हुईं।
वर्णाश्रम धर्म पताल गया, भक्ती में इच्छा स्वल्प हुई॥
सन्मान पिता माताओं का, पुत्रों ने चित से भुला दिया।
शिष्यों ने निज गुरुओं को भी, आदर देना सब बंद किया॥

छुटा अतिथि सत्कार सब, छाया गर्व अपार।
आडम्बर का है वहां, गर्मागर्म बज़ार॥

मैं तुम्हें गिनाऊं कहां तलक, बेहद्द पाप का ज़ोर बढ़ा।
सहने में जब असमर्थ हुई, तब घबरा कर यहां पांव धरा॥
अस्तू अब शीघ्र उपाय करो, दुःखों से मुझे छुड़ाने का।
बरना दो हुक्म हे वेद-जनक, तत्काल रसातल जाने का॥
उद्‌गार श्रवण कर भूमी के, अति दुख पाया चतुरानन ने।
करके कुछ देर विचार फेर, यों फरमाया कमलासन ने॥
पुत्री! है काम सुपुर्द मेरे, केवल दुनियां पैदा करना।
इसको तज तीनों काल में भी, नहिं और काम में चित धरना॥
संहार कार्य का समावेश, तब कारज में हो जाता है।
ये है मम शक्ती से बाहिर, अस्तू लाचार विधाता है॥
इसलिये चलो सब संग मेरे, जग के संहार अधीश्वर पे।
देवादि देव, कैलाशपती, त्रिपुरारि, त्रिलोचन, शंकर पे॥
आशा है हमको दुखी देख, वे विमुख नहीं लौटावेंगे।
या तो मारेंगे दुष्टों को, वा और उपाय बतावेंगे॥

वे आशुतोष कहलाते हैं, जल्दी प्रसन्न होने वाले ।
अतएव उन्हीं की शरण चलो, हे भूमी हे सुरपुर वाले ॥
यों कह सबको संग लेकर विधि, श्री ईश का ध्यान हृदय में धर ।
चल सत्य लोक से जा पहुंचे, कुछ ही देरी में हिमालय पर ॥
कैलाश धाम अवलोकन कर, अक्षय वट के नीचे आये ।
लेकिन भगवान भूतपति के, दर्शन न इन्हें होने पाये ॥
ये लख ब्रह्मा ने सुरों सहित, गिरजापति की स्तुति ठानी ।
हो मस्त बजाने लगे वीन, श्रीदेव-ऋषी नारद ज्ञानी ॥

गूंज उठी गिरिराज पर, वीणा की झन्कार ।
नवजीवन सा आगया, जिससे विनय मंझार ॥

कुछ ऐसा अद्भुत समां बंधा, इस प्रकार की मस्ती छाई ।
होगये मग्न अज, सुर, सुरेश, सुधि तनो वदन की विसराई ॥
वीणा पर कर मुनि नारद के, बस चलते दृष्टी आते थे ।
और सकल देवता विनय शब्द, केवल मुख द्वारा गाते थे ॥
क्योंके ये होते जाते थे, बस हन चेतन्न धीरे धीरे ।
होरहे थे प्रगट समाधी के, इनमें लक्षन धीरे धीरे ॥
झन्कार में नारद वीणा की, पहिले जितना अब ज़ोर न था ।
प्रार्थना ध्वनी भी हलकी थी, प्रारम्भ काल का शोर न था ॥
आख़िर कुछ देर बाद सारे, होगये असुध सुधि खोकर के ।
वीणा व प्रार्थना बंद हुई, रहगये सभी बुत होकर के ॥

जाने कितनी देर तक, ये रहते ख़ामोश ।
इतने में एक शब्द ने, किया इन्हें बा होश ॥

वो शब्द हुआ था "जय नटवर", जिसने कि होश था पहुंचाया ।
खुल गये नेत्र सहसा इनके, एक सुन्दर दृश्य नजर आया ॥
क्या लखा उसी वट के नीचे, मृग आसन सुभग बिछाये हुये ।
गिरजा-पति सुख से बैठे हैं, गिरराज-सुता उर लाये हुये ॥

हिमगिरि समान अति छवि निधान, है गौर वर्ण त्रिपुरारी का।
लख जिसे मदन-मद-मथित होय, ऐसा है रूप पुरारी का॥
मस्तक पर सुन्दर जटा जूट, गंगा के सहित सुहाता है।
उन्नत लिलाट पर कांतिवान, श्री बालचन्द्र दरसाता है॥
चपला सम चपल कुण्डलों की, आभा कानों में छाय रही।
लख शुभ्र नेत्र सरसिज शोभा, छविहीन दृष्टि में आय रही॥
विष पान का वह नीला निशान, श्री नील कंठ गल धारे हैं।
अंगों में अमित भुजंग लसें, और मुंड माल स्वीकारे हैं॥

राज रहा है हाथ में, शूलपाणि के शूल।
पल में तीनों ताप जो, करता नष्ट समूल॥

फिर तन पर भोले बाबा के, अनुपम भभूत है लगी हुई।
बज रही है डमरू मृदु स्वर से, हरि नाम में रसना पगी हुई॥
है तेज अनेक आदित्यों सम, दृष्टी न जहां ठहरती है।
मुसकान मनोहर आनन की, मन में अति मोह उपजाती है॥
भक्तों के प्यारे आशुतोष, सुर श्रेष्ट मदन दहने वाले।
जगदीश ईश की प्रति मूरत, सृष्टी का लय करने वाले॥
अस उमापती के दर्शन कर, सुरराज सहित सुर हरषाये।
अतिहित से दंड प्रणाम किया, उठ कर जय जयकारे गाये॥

प्रेमाश्रू मय नैन थे, पुलकित जिनकी देह।
ऐसे सुर करने लगे, विनती सहित सनेह॥

हे चिन्मय चेष्टा रहित देव, हे चिदानन्द चिद्रूप प्रभो।
चैतन्य चराचर के स्वामी, हे चन्द्र चूड़ जग भूप प्रभो॥
हे अविनाशी, हिमगिरि वासी, सुखराशी, काशी के ईश्वर।
हे मोक्ष रूप, आनंद स्वरूप, भव कूप हरन, भक्तन सुखकर॥
हैं आप काल के महाकाल, विकराल व शान्त कृपालु भी हैं।
इन्द्रियातीत सर्वेन्द्रि सहित, दुखियों पर नाथ दयालु भी हैं॥

हे संत सुखद त्रिपुरारि विभो, हम सादर शीष झुकाते हैं ।
हूजिये प्रसन्न दास गिन कर, आरत हो विनय सुनाते हैं ॥
इस दुनियां में जब लों मनुष्य, नहिं ध्यान तुम्हारा धरते हैं ।
तब लों क्या वे भवसागर से, हे शंकर पार उतरते हैं ॥
अस्तु शीघ्र किरपा करो, अपनाओ शशिभाल ।
असुरों के करसे हुआ, प्रभो हाल बेहाल ॥
हमको न ज्ञात है योग यज्ञ, नहिं बिधि मालुम आराधन की ।
कभि किया नहिं अर्चन वंदन, शिच्छा न मिली कुछ पूजन की ॥
यदि सीखा है कुछ हमने तो, ये सीखा शीश झुका देना ।
निज इष्टदेव के चरणों को, पावन रज भाल लगा लेना ॥
हे शूल पाणि नाशन समूल, तिहुं शूल जगत के भयदाई ।
हे शशि-शेखर के अजर अमर, आये हैं आपकी शरणाई ॥
दया दृष्टि कर देखिये, हरिय सकल संताप ।
करिय कृपा कर सोइ अब, धर्म न दाबहि पाप ॥

*** गाना ***

नमामी अमीशान शंकर नमामी, नमामी त्रिलोचन नमो गौरि स्वामी ।
चिदानंद आनंद रूपं निरीहं, नमस्ते गुणातीत जन पूर्ण कामी ॥
सताया है असुरों ने भूमी सुरों को, दुखित हो कई तुम शरण सौख्य धामी ।
कृपा कर कृपालं अभय दान दीजे, यही मांगते वर बिभो नंदिगामी ॥



पशुपति ने पुलकाय कर, दीन्हा आशीर्वाद ।
यथा योग्य सन्मास से, किया सभों को शाद ॥
फिर पिनाक-धर पूछने लगे, हे कमलज, सुरगण, सुरराई ।
हे भूमि किसलिये तुमने यहां, आने की मन में ठहराई ॥
वैभव सम्पन्न जगहों को तज, इस निर्जन हिमगिरि पर्वत पर ।
मुझ सम एकान्त वासि योगी, के समीप आये हो क्यों कर ॥

अच्छा बोलो संकोच छोड़, कौनसा तुम्हारा काम करूं।
कैसे हो तुम्हरा चित प्रसन्न, किस तरह तुम्हारा दुःख हरूं॥

ये सुन सृष्टा ने कही, इनको कथा तमाम।
जिमि हाथों से कंस के, हुआ नष्ट आराम॥

फिर बोले जब हम सह न सके, तब शरण आपकी आये हैं।
हे पंच बदन कर दुष्ट दमन, दुख हरो देव दुख पाये हैं॥
मेरा तो करतब है भगवन्, बस केवल सृष्टि बनाने का।
असुरों के निधन कार्य में प्रभु, मेरा बल काम न आने का॥
ये शक्ति आप में है स्वामी, सभयों को अभय बना देना।
वो दुष्ट कंस तो चीज़ है क्या, सारा ब्रह्मांड हिला देना॥
धारन कर चित में यही बात, मैं पास तुम्हारे आया हूं।
भयभीत भूमि सुरगण सुरेश, गंधर्वादिक संग लाया हूं॥

अति दुख पाकर शरण में, पड़े तुम्हारी नाथ।
दया दृष्टि से देख कर, करिये अनाथ सनाथ॥
हुये शिवायुत शिव दुखी, सुन देवों के बैन।
कुछ विचार करते रहे, मूंदे दोनों नैन॥

फिर नेत्र खोल संबोधन कर, कमलासन को कैलाशपती।
यों बोले बिपत तुम्हारी लख, नहिं रही हमारी धीरमती॥
हमने विचार कर देखा जो, बस यही समझ में आता है।
है वही ब्रह्म शिव का भी शिव, धाता का पूर्ण विधाता है॥
हाथों की कठ पुतली समान, हम तुम सब हैं उस नटवर की।
जिस तरह नचावे नाचते हैं, आज्ञा पाकर विश्वंभर की॥
अस्तु बिन उसकी शरण गये, दुख से होगा उद्धार नहीं।
जिस तरह आप असमर्थ हैं सब, मैं भी हूं बस साकार नहीं॥

अतएव मेरी तो राय है ये, अब क्षीर सिंधु चलना चहिये ।
लक्ष्मीयुत लक्ष्मी जीवन के, दर्शन सहर्ष करना चहिये ॥
उन विश्नू ने कई एक बार, अवतार धार खल मारे हैं ।
सत धर्म पुनः थापन करके, भूमी के दुःख निवारे हैं ॥
इस वक्त भी केवल उनको ही, अपना सच्चा सायक जानो ।
जा पड़ो चरण की शरण में सब, और दुख को गया हुआ मानो ॥

या तो वे अवतार धर, करें कंस संहार ।
अथवा और उपाय से, होय भूमि उद्धार ॥

यों कह गिरिवासी कैलाशी, भगवान शम्भु सबको लेकर ।
चलदिये क्षीर निधि की जानिब, हरि की प्रिय मूर्ति हृदय में धर ॥
इस देव मंडली में शिव के, मिलने से नवजीवन आया ।
होगये प्रसन्न हृदय सबके, रोमांच सकल तन में छाया ॥
मंगलमय नाम जगत्पति का, हो मग्न सभी सुर गाने लगे ।
जयकार का ऐसा शब्द किया, सारे भूधर थर्राने लगे ॥

बार बार जय घोष कर, सुमिर विश्नु गुणरास ।
चली मण्डली शीघ्र ही, पहुंची पयनिधि पास ॥

भीतर जाकर सबने देखा, मणिमय सुन्दर सिंहासन पर ।
कमलापति सुख से बैठे हैं, रत्नाभूषण तन धारन कर ॥
है रूप चतुर्भुज ईश्वर का, एक कर में चक्र सुदर्शन है ।
बाकी तीनों में शंख गदा, और पद्म का पुष्प सुहावन है ॥
मस्तक पर अनुपम क्रीट मुकुट, कानों में कुंडल दमक रहे ।
पीताम्बर से है बदन ढका, माला के मोती चमक रहे ॥
पंकज सम कोमल हाथों से, श्री लक्ष्मी चरन दबाती हैं ।
लख कोटि काम सम छवि तनकी, छवि भी मन में शरमाती है ॥

मन्द मन्द मुसका रहे, विश्नु सकल गुण धाम ।
लख अस शोभा हर्ष कर, सब ने किया प्रणाम ॥

हो गये खड़े कर नम्र कंध, अवलोक इन्हें त्रिभुवन स्वामी ।
कानों को प्रिय भय रहित गिरा, बोले मुसकाय गरुड़-गामी ॥
हे सुरों तुम्हारे आने का, सारा कारण है ज्ञात हमें ।
अब सुनो ध्यान धर कहता हूं, तुम्हरे हित की ही बात तुम्हें ॥
यदि केवल कंस निधन करना, होता तो मैं कर सकता था ।
पिछले अवतारों की भांती, एक नया और धर सकता था ॥
लेकिन इस समय भूमि पर कुछ, ऐसे कारन दृष्टी आते ।
जिससे अंशावतार ले हम, इस बार नहीं जाना चाते ॥

क्या हैं वे कारन सुनो, कहता हूं सब हाल ।
वर्ण सभी विवरण हुये, आश्रम हुये निढाल ॥

व्यभिचार दग़ा धोखा फरेब, फैला है वायू मंडल में ।
मिथ्या भाषण अविचार महा, आता है दृष्टि सभी थल में ॥
जो वेद पढ़ाते थे ब्राह्मण, शिक्षा देते बिन द्रव्य लिये ।
वे आज दिखाई देते हैं, भिक्षाहित झोली भव्य लिये ॥
जिन विप्र वरों के आदर को, नृप तज सिंहासन आते थे ।
वे घर घर मारे फिरते हैं, जो विश्व गुरू कहलाते थे ॥
निष्पक्ष राय देनी अपनी, जो परम धर्म जिय जानते थे ।
वे करें खुशामद लक्ष्मी हित, जो त्याग का गुण पहिचानते थे ॥
पितु मात के आदर को जिनके, शिर रहते थे नित नमे हुये ।
वे आज ठोकरें देते हैं, यौवन धन मद में रमे हुये ॥

श्रुति मार्ग में चलना जिनका था, कर्तव्य आज वे भूल गये ।
हो गया वृथा जप नेम, यज्ञ, शृंगार में सारे फूल गये ॥

देते थे जो मदद नित, पर स्वारथ के मांहि ।
बिन मतलब अब विप्र वे, मुख से बोलत नाहिं ॥

तीनों वर्णों को मूरख रख, अपना ही स्वार्थ बनाते हैं ।
अधिकार विहीन कहें सब को, निज को सुश्रेष्ट बतलाते हैं ॥
जो वर्ण कभी था सर्वोपरि, वरणाधम आज कहाता है ।
अस्तु ऐसों का नाश सुरों, अब शीघ्र द्रष्टि में आता है ॥
क्षत्रियों का भी क्या हाल कहूं, धन बल में सब मद होश हुये ।
तज राह महापुरुषों की वे, स्वेच्छाचारी मय नोश हुये ॥
छोटे छोटे महि खंडों के, मालिक हैं, पर अभिमान है ये ।
हम हैं सम्राट चक्रवर्ती, हम सदृष्य कौन गुमान है ये ॥
जो बल था निर्बल का रक्षक, भक्षक वो दीन प्रजा का हुआ ।
धन था जो शुभ कर्मों के लिये, वो साधन मौज मजा का हुआ ॥
इक तुच्छ स्वार्थ के कारण वे, आपस में लड़ कट मरते हैं ।
ज्यों गिद्ध लड़ें शव मांस हेतु, त्यों ये भी रण को करते हैं ॥
है विप्र वही गुरु इन सब का, जो देय व्यवस्था इन लायक ।
धन मान बड़ाई दें उसको, जो कहदे इनको जग-नायक ॥
नख से शिख तक अघ में डूबें, फिर कीरति को भी चाह करें ।
नित मृगया पशु हत्या का वे, 'क्षत्री कर्तव' ये नाम धरें ॥

यज्ञ हवन जो कुछ करें, करें नाम के हेत ।
अरु जिह्वा के स्वाद हित, है इनकी आखेट ॥

नजदीकी राजा पर इनकी, नित लार टपकती रहती है ।
इनकी वुद्धि प्रतिभा इनकी, वो नष्ट होय यह चहती है ॥
इनके सपूत सुकुमारों की, कुछ बात न तुम पूछो भाई ।
जो ऐब हों उनसे बचे हुए, समझो विधि की है निठुराई ॥
ये राजा राज्य नियम में नित, निज प्रजा को खूब जकड़ते हैं ।
जो ज़रा खिलाफ कहे इनके, तत्काल हि उसे पकड़ते हैं ॥
लेते उसका सर्वस्व लूट, अति कठिन यातना पहुंचाते ।
जिससे इनको ज्यादा भ्रम हो, उसको लोकान्तर भिजवाते ॥

जितने क्षत्री इस समय, कहलाते भूपाल ।
कोई कंस से कम नहीं, हे विधि हे शशिभाल ॥
यों तो नृप धर्मात्मा, भी हैं हे अमरेश ।
पर गिनती उनकी नहीं, ज्यादा और विशेष ॥

अब हाल कहूं क्या वैशों का, कहते जबान रुक जाती है ।
होगया पतन कितना इनका, जिह्वा वर्णत दुख जाती है ॥
अन्यायी दगा फरेबी में, इनका सानी न ज़माने में ।
रहती है बुद्धी दीनों का, धन ज्यों त्यों कर हथियाने में ॥
वैसे तो बने तिलकधारी, हरिनाम की रटन लगाते हैं ।
पर बगुले सरिस भक्त बनकर, जनता झष को गिट जाते हैं ॥
है इनका बस कर्तव्य एक, केवल धन एकत्रित करना ।
चाहे वो कैसे भी होवे, तेहि हित जीना तेहि हित मरना ॥
चाहे कितना हो नीच काम, गर पैसा कर में आता हो ।
कदाचित् वैश्य को पावोगे, भंडार भरा यदि जाता हो ॥

गो देते हैं ये दान भी नित, शुभ काम में भी व्यय करते हैं।
पर या तो नाम कमाने को, या होड़ वहस चित धरते हैं॥
पहिले भी थे कई वैश्य धनी, जनता के कोष अधिकारी थे।
पर ऐसे नीच खयालों के, वे कभी न आविष्कारी थे॥
करते सस्कार सद्गुनो का, थे गउ रक्षा करने वाले।
अब धन शोषण के पुतले हैं, अघ से न ज़रा डरने वाले॥

तीन वर्ण अघगर्त में, गिरे धर्म विसराय।
तब चौथे की क्या कहें, जो हैं दीन असाय॥
ब्रह्मचर्य आश्रम मिटा, गृहस्थ हुआ दुखधाम।
वानप्रस्त बस अस्त है, नहिं सन्यस्त अकाम॥

जो सन्यासी थे जगद्-गुरू, अब उनका हाल सुनाता हूं।
कितने ऐबों के धाम बने, सब गिन गिन कर बतलाता हूं॥
जो रहते थे बस्ती बाहिर, कर शान्त चित्त बन बनवासी।
वे बने मठाधिपति स्वामी, भोगी अशान्त अरु अघरासी॥
बन गये साधु 'स्वादू' जग में, तज राम 'रमा' के उपासी हुये।
निष्काम थे जो रत काम बने, जप योग से तुरत उदासी हुये॥
परपंच है इनका इष्ट देव, और राग द्वेष मुक्ती साधन।
हैं काम क्रोध दो निष्टायें, चंचलता है हरि आराधन॥
फिरते हैं भगवा वस्त्र धार, आडम्बर खूब सजाये हुये।
हैं पक्के बगुला भक्त सुरों, बस भेष की टेक निभाये हुये॥
स्त्री जाती भी लाज छोड़, मन माने कर्तव करती है।
निज पति की सेवा करना तज, गहने कपड़ों पर मरती हैं॥

सन्तान हेतु कुल बालायें, मठ मन्दिर आश्रम जायं सदां ।
पाखंड शिरोमणि संतों के, मनमाने भोग लगायं सदां ॥
घर घर कृत्याओं को सृष्टी होने से गृहस्थ रण भूमि बना ।
यस अत्याचार अनर्थ आदि, कितने हि विषम पापों में सना ॥

चारों आश्रम वर्ण सब, क्या नर अरु क्या नारि ।
चिता रहे हैं पाप मय, जीवन हे त्रिपुरारि ॥

इस कारण सब भारत प्रदेश, सुख शान्ति रहित दरसाता है ।
वायू मंडल में चहूं ओर, बस पाप हि पाप लखाता है ॥
अस्तू सम्पूर्ण कला वाले, अवतार की यहां जरूरत है ।
बिन इसके नहीं अन्य कोई, भारत रक्षा की सूरत है ॥
ये काम फक़त गोलोकनाथ, राधापति ही कर सकते हैं ।
है उनको सत्ता सर्व श्रेष्ठ, पल में जग हर सकते हैं ॥
इसलिये जाउ गोलोक सभी. दर्शन को कृष्ण विहारी के ।
जन हितकारी भव भय हारी, सच्चिदानन्द बनवारी के ॥
श्री राधे के दर्शन देवों, जो दुर्लभ हैं ज्ञानी जन को ।
वे भी तुमको हो जावेंगे, इसलिये जाव कर थिर मन को ॥

सबब एक फिर और है, है विध तुमको ज्ञात ।
पूर्व जन्म में कंस ने, मांगी है क्या बात ॥
इस कारन भी हम नहीं, करेंगे उनका नाश ।
बिना गये गोलोक के, होय न पूरी आस ॥

❀ गाना ❀

तज फिक्र आप इस समय धीरज धरें सभी ।
जो कुछ कहा है मैंने उसी को करें सभी ॥

हद पापियों के पाप की देखो है हो चुकी ।
अब वो समय निकट है के जल्दी मरें सभी ॥
रण से हटा के वेद के कर्ता विधी तलक ।
अच्छे व बुरे कर्म के फल को भरें सभी ॥
भारत का दुःख मेटने खुद कृष्ण आयेंगे ।
आदेश उनका मानकर जग अवतरें सभी ॥



यों कह विश्नू चुप हुये, शिव सब को ले साथ ।
"श्रीलाल" गोलोक को, तरफ चले हरषात ॥
श्रोताओं छल कपट को, कभी न लावो अंग ।
भजो कृष्ण सब काम तज, करो सदा सत्संग ॥

॥ श्रीकृष्णार्पणमस्तु ॥





श्रीकृष्ण चरित्र अथवा श्रीमद्भागवत

तीसरा भाग

गोलोक-दर्शन

रचयिता—

श्रीलाल खत्री

प्रकाशक—महाभारत पुस्तकालय, अजमेर

मुद्रक—के. हमीरमल लूनिया, दि डायमण्ड जुबिली प्रेस, अजमेर.

प्रथम वार ३,०००	सम्वत १९९१ विक्रमी सन् १९३५ ईस्वी	मूल्य ।) आने

नहीं जानते हम जरा, इन बातों का मर्म ।
जान पड़ा हरि ने तजा, जन वत्सल का धर्म ॥
चतुरानन ने भी एक शब्द, नहिं कहा असुर संहारी को ।
आशा ही आशा में रक्खा, हमको और भूमि विचारी को ॥
सच है जिनकी सुख ही सुख में, बीती हों घड़ियां जीवन की ।
किस तरह समझ सकते हैं वे, कुल व्यथा दूसरों के मन की ॥
कारण अब तक नहिं सत्य लोक, निशचरों का क्रीड़ा थान बना ।
बस इसीलिये ब्रह्माजी का, अब तलक रहा सब ज्ञान बना ॥
यदि एक रोज़ भी दुष्टों का, उस लोक में धावा हो जाता ।
तो फिर स्रष्टा का हृदय भी, बस सहानुभूती दिखलाता ॥
बिरथा ही हम सब लोगों को, धीरज बंधवा यहां ले आये ।
जब समय बोलने का आया, तब ख़ामोशी का रंग लाये ॥
फिर विधि से ज्यादा देखो तो, इन उमापति कैलाशी को ।
जग के संहार अधीश्वर को, देवादिदेव अविनाशी को ॥
दृग इन्हें तीसरा मिला है जो, उससे जग लय हो सकता है ।
है उसमें महा प्रचंड अग्नि, चर अचर जीव खो सकता है ॥
लेकिन अब तक इन्होंने, दुष्ट संहारन काज ।
लिया काम नहिं नेत्र से, इससे हुआ अकाज ॥
यदि लिया भी तो उस मौके पर, जब हम पर विपता आई थी ।
तारकसुर के कर्तव्य देख, सुर सेना सब घबड़ाई थी ॥
थी आवश्यकता सेनप की, वो भी औरस से शंकर के ।
इसलिये विनय की थी हमने, रति नायक मदन पंच शर से ॥
भस्म कर दियालख उसे, तीसर नेत्र उघार ।
उसी रोज से जग में, हुआ नाम कामारि ॥
अस्तू सीधे भोले जन ही, दृग के शिकार हो जाते हैं ।
अन्यायी पापी निश्चर तो, बेखटके मौज़ उड़ाते हैं ॥

इसलिये हमें यह जान पड़ा, ये मददगार निश्चरों के हैं ।
जाहिर में हम से मिले हुये, वातिन में शत्रु सुरों के हैं ॥
बस तभी तो भस्मासुर खल को, नहिं भस्म किया दृग के द्वारा ।
दुखिया बन, वन में फिरने का, अति कठिन परिश्रम स्वीकारा ॥
हम तो लख इनकी भक्ति और, करुणा मिश्रत बातें सुन कर ।
फंस गये फेर में सुधि न रही, आ पहुंचे त्तीर सिंधु तट पर ॥
यदि ये लक्ष्मी-पति के सन्मुख, थोड़ा सा ज़ोर लगा देते ।
तो निश्चय था वे दयानिधे, हम सब का कष्ट भगा देते ॥
पर ये तो गोलोक का, और कृष्ण का नाम ।
सुन कर ऐसे खुश हुये, मिला सुधा का जाम ॥
और अब भी टुक देखो तो सही, रोमांच दृष्टि में आता है ।
गोलोक. कृष्ण के नाम में क्या, जादू है नहीं लखाता है ॥
हे परमात्मा क्या अब आगे, यगवली न मिलने पावेगी ।
हम लोगों की शरणागत महिं, क्या सत्य रसातल जावेगी ॥
सारा प्रभुत्व और वैभव क्या, निश्चर द्वारा नस जायेगा ।
हे भाग्य! देवतापन में भी, क्या कोई धब्बा आयेगा ॥
पर्वत कन्दराओं में क्या फिर, हम लोगों का रहना होगा ।
गउ, ब्राह्मण घाती दुष्टों के, दुष्कर्मों को सहना होगा ॥
क्या हम से हो जायेंगे, पृथक स्वर्ग के यान ।
मिलेगा सुनने का न क्या, दिव्य वाद्य अरुगान ॥
इस तरह मलीन हृदय वाले, सब सुर अन्दाज लगाने लगे ।
शिव अज विश्नु के कामों की, यों समालोचना गाने लगे ॥
नहिं उनके हीन विचारों में, विधि का असमर्थ पना आया ।
श्रीकृष्ण-हृदय-शंकर को भी, सब ने मिल तुच्छहि ठहराया ॥
फिर लक्ष्मी-पति की बातों का, वे रहस्य भेद नहीं सके जरा ।
अस्तु घबराये सब दिल में, सोचा सारा श्रम व्यर्थ करा ॥

यों ही धीरे धीरे ये सब, पय सागर के तट पर आये ।
और बैठ गये सिर को झुकाय, आंखों के आंसू भरलाये ॥
देवों को ऐसी सोचनीय, हालत लख भूमी चकित हुई ।
फिर गया नीर आशाओं पर, दुख से विह्वल हो थकित हुई ॥
और लगी अपार रुदन करने, सुरगण का तन अवलोकन कर ।
लख निज शरणागत भूमी की, विपता घबराये सब सुर वर ॥
किंकर्तव्य विमूढ़ हो, पाकर संकट घोर ।
लगे देखने देव सब, वज्रपाणि की ओर ।
ले दीर्घ श्वास विधि की जानिब, तब लगे देखने सुरराई ।
पर देख कमलभू की हालत, इनकी सब बुद्धी चकराई ॥
क्या लखा स्वयंभू निर्निमेष, नेत्रों से श्री त्रिपुरारी को ।
बस देख रहे हैं प्रेम सहित, खोकर तन की सुधि सारी को ॥
मानो शिव को समर्थ गिन कर, सारा संकट हरने के लिये ।
कर रहे मनोमय विनती ये, भूमी को खुश करने के लिये ॥
अतएव इन्द्र ने भी शिव के, चरणों में चित को लगा दिया ।
ये देख सुरों ने भूमि सहित, मजबूरन वो ही काम किया ॥
सब को अपनी ओर ही, तकते देख महेश ।
मुस्काकर कहने लगे, सुनो देव, देवेश ॥
किसलिये आप सब लोगों के, चहरे ज़र्दी दरसाते हैं ।
उत्साह भंग हो गया है क्यों, क्यों लोचन अश्रु बहाते हैं ॥
है धन्य भाग तुम लोगों का, जिससे ये धन्य दिवस आया ।
पर पता नहीं कैसे तुमने, इसके विरुद्ध मत ठहराया ॥
लो सुनो जो इच्छा मात्र से ही, क्षण में ब्रह्मांड उपजाते हैं ।
अति हित से पालन पोषण कर, फिर अंत में नष्ट बनाते हैं ॥
करते निवास सब के दिल में, जो साक्षि भूत आत्मा होकर ।
अंतिम आश्रय हैं जो सब के, रहते हैं भक्त जिन पर निर्भर ॥

फिर जिनसे परे तत्व कोई, है नहीं ये वेद बताते हैं ।
हम उन्हीं कृष्ण के दर्शन हित, गोलोक सिधाना चाहते हैं ॥
क्या ये आज्ञा कमलापति की, हे सुरों सराने योग नहीं ।
क्या विश्नु भार हरने के लिये, गिनते हैं निज का जोग नहीं ॥
क्या हंसी में हमको सूखा ही देकर जवाब टरकाया है ।
या और खुशामद चाहते हैं, जो ये आदेश सुनाया है ॥
देवों ! हरि इच्छा में अवश्य, रहता रहस्य कुछ छिपा हुआ ।
ये वही जानते हैं जिनका, मन भजन में होता पगा हुआ ॥
यदि जरा भी अपनी बुद्धी से, तुम लेते काम धीर धर कर ।
तो कुल रहस्य लक्ष्मीपति की, बातों का गुन लेते सत्वर ॥

पर जिनको रहता सदा, स्वारथ का ही ध्यान ।
उनका सात्विक ज्ञान बस, करता शीघ्र पयान ॥

हो इसी स्वार्थ के वशीभूत, तुमने वैकुंठ-विहारी पर ।
जो दोषारोपण किया अभी, धिक है उस बुद्धि तुम्हारी पर ॥
फिर वृथा हि ब्रह्मदेव को भी, दूषण का पात्र बनाया है ।
इस कुतर्कना का ही फल है, जो अब तक दुःख उठाया है ॥
अच्छा अब बीती बातों को, दिल से निकाल बाहिर धरदो ।
और कृष्णचन्द्र के चरणों में, अर्पण सारे कर्तव करदो ॥
उनका हि मनोमय ध्यान धरो, अर्चन वंदन भी उन्हीं का हो ।
हो उन्हीं प्रभू के पद सेवन, पूजन सुमिरन भी उन्हीं का हो ॥
यदि करो कीर्तन तो तुम सब, गुण कीर्तन करो विहारी के ।
कानों द्वारा नित श्रवण करो, उपदेश भक्त भयहारी के ॥
समझो उनको ही मात पिता, दासत्व उन्हीं का स्वीकारो ।
रक्षक बंधु बांधव आदिक, एक उन्हीं प्रभू को चित धारो ॥

इष्ट मित्र की यदि तुम्हें, आवश्यकता होय ।
उन्हीं कृष्ण को जानलो, सारे भ्रम को खोय ॥

पर हमने तो अब तक उनका, कभि ज़िक्र सुना नहिं कानों से ।
कैसे हैं वे, कैसा है लोक, जाना नहिं शास्त्र पुरानों से ॥
इसलिये कृपा कर कृपायतन, हमको सब हाल सुना दीजे ।
हम शरण आपकी आये हैं, बन सतगुरु राह दिखा दीजे ॥
हो शम्भु आप अन्तरयामी, सबके मन की पहिचानते हो ।
हम दुखी हैं चित में चेत नहीं, ये भी दिल में प्रभु जानते हो ॥

ईश खिलखिला कर हंसे, बोले हे देवेश ।
गोलोकी का पूर्णतः, कहा न जाये वेश ॥

अधिकारी बिन उसको कहना, नहिं उचित बताया जाता है ।
जिसको सुनने का शोक नहीं, उससे भि दुराया जाता है ॥
लेकिन ये दोष नहीं तुम में, तुम शरण कृष्ण की आये हो ।
हो गये मुक्त पापों से तुम, जब से हरि आश लगाये हो ॥
इसलिये हाल सुनने से प्रथम, बतलाऊं जैसा कार्य करो ।
बैठो सब जने सुखासन से, ज्योती स्वरूप का ध्यान धरो ॥
हृदय में कोटि दिवाकर सम, तेजोमय बिंब निहारो तुम ।
तेहि मध्य में प्रस्फुट सहस दलों, वाला एक कमल विचारो तुम ॥
उस पंकज में एक दिव्य भूमि, देखो तुम मन की दृष्टी से ।
जो सुभग निराली अनुपम है, है विचित्र सारी सृष्टी से ॥
इस भूमीवाला हरा घास, मखमल से भी अति कोमल है ।
बह रही है एक सरिता उसमें, जिसका जल हरता अघमल है ॥
उस नदी के दोनों तीरों पर, है सघन वृक्ष अति छाये हुये ।
सूरज की गरमी से मानों, ऋतुराज सयत्न छिपाये हुये ॥

उन वृक्षों में सघनघन, है इक रम्य कदंब ।
क्या है उसकी छांय में, सुनो सभी अविलंब ॥

मध्यान्ह समय का ध्यान धरो, चित्त में लावो वो अमराई ।
तहां श्याम जलद सम रंगवाला, एक बालक देगा दिखलाई ॥

फिर निज हृदय के सब विचार, उनके हि विचारों को जानो ।
जो करो, लखो, खाओ, पीओ, उनका ही कर्तव पहिचानो ॥
निज तलो वदन का सारा बल, दुनियां की सारी आशायें ।
सारा वैभव आनन्द सकल, हृदय की सारी शंकायें ॥
उन श्रीकृष्ण के अर्पण कर, जा पड़ो चरण में सिरनाई ।
फिर देखो भक्तों के हित वे, क्या करते हैं त्रिभुवन साई ॥
क्षण भर में हो जायंगी, सब चिन्तायें दूर ।
देखोगे आनन्द से, चिदानन्द का नूर ॥
अस्तु हृदय में धार कर, बालकृष्ण का रूप ।
नखशिख का दर्शन करो, सुरों सहित सुर भूप ॥

※ गाना ※

सर्वेश्वर सुखकारी, श्रीकृष्ण की महिमा भारी ।
आदि पुरुष अविकार अनामा, परिपूरनतम जन सुख धामा ॥
जाऊं चरन बलिहारी ॥ श्रीकृष्ण ॥
उससे परे न तत्व कोई है, सर्व श्रेष्ट बस एक वोही है ।
आगम निगम पुकारी ॥ श्रीकृष्ण ॥
तर्क सकल मन से बिसराओ, शुद्ध हृदय से ध्यान लगाओ ।
पूरेगी चाह तुम्हारी ॥ श्रीकृष्ण ॥
सांवरिसुघड़ मूरती उरधर, बोलो जय प्रभु की सब मिलकर ।
मिटेगी चिन्ता सारी ॥ श्रीकृष्ण ॥

सुन कर शंकर के बचन, कहि जय कृष्ण मुरारि ।
इन्द्र दोऊ कर जोड़ कर, बोले हे कामारि ॥
जो कहा आपने हे भगवन, श्री बालकृष्ण का ध्यान धरो ।
नख से शिख तक उस शोभा का, मन ही मन में आह्वान करो ॥

फिर निज हृदय के सब विचार, उनके हि विचारों को जानो ।
जो करो, लखो, खाओ, पीओ, उनका ही कर्तव्य पहिचानो ॥
निज तनो वदन का सारा बल, दुनियां की सारी आशायें ।
सारा वैभव आनन्द सकल, हृदय की सारी शंकायें ॥
उन श्रीकृष्ण के अर्पण कर, जा पड़ो चरण में सिरनाई ।
फिर देखो भक्तों के हित वे, क्या करते हैं त्रिभुवन साईं ॥
क्षण भर में हो जायंगी, सब चिन्तायें दूर ।
देखोगे आनन्द से, चिदानन्द का नूर ॥
अस्तु हृदय में धार कर, बालकृष्ण का रूप ।
नखशिख का दर्शन करो, सुरों सहित सुर भूप ॥

* गाना *

सर्वेश्वर सुखकारी, श्रीकृष्ण की महिमा भारी ।
आदि पुरुष अविकार अनामा, परिपूरनतम जन सुख धामा ॥
जाऊं चरन बलिहारी ॥ श्रीकृष्ण ॥
इससे परे न तत्व कोई है, सर्व श्रेष्ठ बस एक वोही है ।
आगम निगम पुकारी ॥ श्रीकृष्ण ॥
तर्क सकल मन से बिसराओ, शुद्ध हृदय से ध्यान लगाओ ।
पूरेगी चाह तुम्हारी ॥ श्रीकृष्ण ॥
सांवरिसुघड़ मूरती उरधर, बोलो जय प्रभु की सब मिलकर ।
मिटेगी चिन्ता सारी ॥ श्रीकृष्ण ॥

सुन कर शंकर के वचन, कहि जय कृष्ण मुरारि ।
इन्द्र दोऊ कर जोड़ कर, बोले हे कामारि ॥
जो कहा आपने हे भगवन, श्री बालकृष्ण का ध्यान धरो ।
नख से शिख तक उस शोभा का, मन ही मन में आह्वान करो ॥

पर हमने तो अब तक उनका, कभि ज़िक्र सुना नहिं कानों से ।
कैसे हैं वे, कैसा है लोक, जाना नहिं शास्त्र पुरानों से ॥
इसलिये कृपा कर कृपायतन, हमको सब हाल सुना दीजे ।
हम शरण आपकी आये हैं, बन सतगुरु राह दिखा दीजे ॥
हो शम्भु आप अन्तरयामी, सबके मन की पहिचानते हो ।
हम दुखी हैं चित में चेत नहीं, ये भी दिल में प्रभु जानते हो ॥
ईश खिलखिला कर हंसे, बोले हे देवेश ।
गोलोकी का पूर्णतः, कहा न जाये वेश ॥
अधिकारी बिन उसको कहना, नहिं उचित बताया जाता है ।
जिसको सुनने का शोक नहीं, उससे भि दुराया जाता है ॥
लेकिन ये दोष नहीं तुम में, तुम शरण कृष्ण की आये हो ।
हो गये मुक्त पापों से तुम, जब से हरि आश लगाये हो ॥
इसलिये हाल सुनने से प्रथम, बतलाऊं जैसा कार्य करो ।
बैठो सब जने सुखासन से, ज्योती स्वरूप का ध्यान धरो ॥
हृदय में कोटि दिवाकर सम, तेजोमय बिंब निहारो तुम ।
तेहि मध्य में प्रस्फुट सहस दलों, वाला एक कमल बिचारो तुम ॥
उस पंकज में एक दिव्य भूमि, देखो तुम मन की दृष्टी से ।
जो सुभग निराली अनुपम है, है विचित्र सारी सृष्टी से ॥
इस भूमीवाला हरा घास, मखमल से भी अति कोमल है ।
बह रही है एक सरिता उसमें, जिसका जल हरता अघमल है ॥
उस नदी के दोनों तीरों पर, है सघन वृक्ष अति छाये हुये ।
सूरज की गरमी से मानों, ऋतुराज सयत्न छिपाये हुये ॥
उन वृक्षों में सघनघन, है इक रम्य कदंब ।
क्या है उसकी छांय में, सुनो सभी अविलंब ॥
मध्यान्ह समय का ध्यान धरो, चित्त में लावो वो अमराई ।
तहां शाम जलद सम रंगवाला, एक बालक देगा दिखलाई ॥

जिसके चरणों वाली नूपर, है मणि माणिक से जड़ी हुई ।
कटि में पीताम्बर, सोने की, करधनी एक है पड़ी हुई ॥
गज सूंड समान भुजाओं की, शोभा लख नैन थकाते हैं ।
जहां पर पड़ते हैं नेत्र सुरों, बस वहीं ठिठक रह जाते हैं ॥
बाजू बंद मोती लड़ी सहित, धारे हैं अद्भुत छविवाले ।
सुन्दर कमनीय अंगुलियों में, मुद्रिका मनोहर हैं डाले ॥
गल में बैजन्ती माला की, छवि हृदय हरन कर लेती है ।
कौस्तुभ मणि की शोभा शशि की, सब सुन्दरता हर लेती है ॥
फिर शंख समान उच्च ग्रीवा, ठोड़ी पतली कुछ उठी हुई ।
लख अधरन छवि बिंबा फल सम, रहती है बुद्धी लुटी हुई ॥
आनन की शोभा का वर्णन, करना मुश्किल है, दुष्कर है ।
अनुपम है अद्भुत मोहक है, छवि का, सुन्दरता का घर है ॥

उज्वल दांतों की प्रभा, दाड़िम बीज लजाय ।
जनु सहस्र मन मथन मिलि, दीन्हा वदन सजाय ॥

पक्षेन्द्र सरिस नासिका बनी, कुछ तीखी लम्बी सुखदायक ।
सुन्दर अनियारे पंकज सम, हैं नयन युगल दर्शन लायक ॥
फिर चाप समान तनी भोहें, केसर का तिलक ललाट दिये ॥
जिसके बिच कस्तूरी बिन्दी, रतिराज लजाय रहे हैं हिये ।
पुनि घुंघरवाले बालों की, लट लटकी पहुंची गालों पर ।
लहराती हुई पवन द्वारा, आती है नज़र सुन्दर मनहर ॥
है मोर पंख युत मुकुट दिव्य, प्रभु के मांथे पर राज रहा ।
मोती लड़ियों के गुच्छों से, है सजा हुआ सिर ताज महा ॥
मुख पर मृदु मुरली की शोभा, तिरभंगी छवि क्या बयां करूं ।
मन ही मन में दर्शन करलो, निज मुँह से मैं क्या अयां करूँ ॥

मुरली की सुनि मधुर ध्वनि, बस में होय त्रिलोक ।
भरे हिये आनन्द अति, मिटे दीनता शोक ॥

उस बालक के रूप का, किंचित किया बयान ।
आगे क्या कर्तव्य है, सुनो लगा कर कान ॥
इस मंजुल मंगल मूरति का, मन ही मन में तुम ध्यान धरो ।
मनमय हो आसन अर्घ पाद्य, स्नानादिक का सामान करो ॥
कस्तूरी, केशर युत चंदन, प्रभु के चरणों पर चर्चित कर ।
आकंठ पदाम्बुज तक लम्बी, कमलों की माला अर्पित कर ॥
ले उत्तम धूप मनोमय ही, फिर दीप मानसिक सुखदाई ।
नैवेद्य थाल भर आगे धर, तुम करो मनोमय पहुनाई ॥
फिर मनमय दीपक के द्वारा, आरती करो इस बालक की ।
इक टक नयनों से जी भरकर, देखो शोभा जगपालक की ॥
नख से सिख पुनि सिख से नख तक, कई बार हृदय में दोहरावो ।
पुनि हाथ जोड़ सिर को नवाय, प्रार्थना प्रभू की यों गावो ॥
हे जगनायक जगपते, जगव्यापक जगदीश ।
जगदात्मा जगकारनं, जय जय त्रिभुवन ईश ॥
सर्वात्मा हे सर्वप्रिय, सर्वेश्वर साकार ।
सर्वलोक आश्रय विभो, सतचित सर्वाधार ॥
हे परब्रह्म, हे परमात्मा, हे पतिराखन, हे परमेश्वर ।
हे परमतत्व, हे प्रणपालक, हे पतित उधारन परते पर
हे अखिल लोकपति अद्वितीय, आनन्दकन्द, हे अघहारी ।
हे अजर अमर, हे अनुपम छवि, अव्यक्त अनंतरु असुरारी ॥
हे सत स्वरूप चिद्रूपनूप, भवकूप हरन जग भूप प्रभो ।
सिर झुका नमन करते हैं तुम्हें, दो भक्ति हमें सत रूप प्रभो ॥
हो आप काल के महाकाल, भय के भयदाई अविनासी ।
जग के जीवों की अंतिम गति, गोलोक निवासी सुखरासी ॥
हे कृष्ण कृपाल किसी ने भी, नहिं पार आपका पाया है ।
जो आकर मिला तुम्हारे में, वो जग में फेर न आया है ॥

गोपाल गदाधर नटवर हे, सारी वसुधा के मन रंजन ।
कारन कर्ता भर्ता हरता, हे भक्त जनों के जीवन धन ॥
तुम निर्गुण हो आकार रहित, नहिं ध्यान में ऋषियों के आते ।
पर भक्त पुकार करें जिस क्षण, नंगे पांवों दौड़े जाते ॥
साकार आपका रूप नहीं, संकल्प है केवल दासों का ।
जो कुछ भी है बस वो यह है, फल भक्तों के विश्वासों का ॥
इस तरह प्रार्थना कर प्रभु की, निश्चल हो ध्यान हृदय धारो ।
सब कुछ अर्पण कर दो उनके, चरणों में प्रेम सहित प्यारो ॥
श्रीकृष्ण परे कोई तत्व नहीं, निश्चय जानो विश्वास करो ।
श्रद्धा भक्ती से जो ध्यावो, तो सदा पास में वास करो ॥
श्रुति शास्त्र विशेषण जो देते, वे तो थोड़े हैं अधूरे हैं ।
जो एक शब्द में सुनते हो, तो बस श्रीकृष्ण हि पूरे हैं ॥
ये गुप्त भेद था छिपा हुआ, वो मैंने आज बताया है ।
गूंगे के गुड़ की तरह सुनो, नहिं प्रकाश में ये आया है ॥

यों कहते कहते हुये, शिव समाधि में लीन ।
देवों ने भी ताहि क्षण, तुरत अनुसरन कीन ॥

जिस समय समाधि लगी इनकी, देखा चहुं ओर उजाला है ।
श्री शंकर के कथनानुसार, सब दृष्य अनोखा आला है ॥
अनुपम तेजोमय दिव्य भूमि, प्रत्यक्ष दिखाई देती है ।
है आकर्षण शक्ती उसमें, दर्शक का मन हर लेती है ॥
फिर जो प्रकाश उस भूमी को, परकाशित करने हारा है ।
उसका वर्णन बाणी को भी, बाणी से अगम है, न्यारा है ॥
एक सहस्र नहीं, लाख भी नहीं, यदि करोड़ सूरज उग आवें ।
तो भी उस प्रकाश की समता, वे कभी नहीं करने पावें ॥
होता है उष्ण स्वभाव से ही, फिर सूर्य आदि का तेज निरा ।
पर वो प्रकाश अगणित शशि सम, था शीतल सुखद अनन्द भरा ॥

तेहि मध्य में एक कदंब तले, श्री बालकृष्ण दरसाते हैं।
मंजुल हाथों में मुरली ले, धर अधर पै मधुर बजाते हैं॥
यानी जो शोभा जो स्वरूप, था उमापति ने बतलाया।
बस वही हृदय में ज्यों का त्यों, सब देवों को दृष्टी आया॥
मग्न हो गये सुर सभी, छबि निधि की छबि देख।
सराहना करने लगे, निज भाग्यहिं शुभ पेख॥
कुछ देर बाद जब देवों ने, आंखें खोली समाधि तजकर।
तो देखा दृष्टि नहीं आता, इस समय कहीं भि क्षीर सागर॥
और न उसके चहुंदिशि वाला, वो दृष्य दिखाई देता है।
उसकी एवज़ में जो कुछ है, तत्काल हृदय हर लेता है॥
वो क्या है वही हृदयवाली, जो लीला अभी निहारी थी।
उसने अपनी प्रत्यक्ष सूरत, इनके सन्मुख विस्तारी थी॥
था वही अतुल अद्भुत प्रकाश, मखमल सम वही हरी धरती।
वैसी हि स्वच्छ जल की सरिता, बहती कलकल निनाद करती॥
उसी तरह के वृक्ष थे, था वहि कदम विशाल।
पर उसकी छाया तले, था न वो सुन्दर बाल॥
उसकी एवज़ में ये देखा, गायें आती हृष्ट पुष्ट सुन्दर।
अपने प्यारे बछड़ों समेत, चर रहीं हरित तृण पुलकाकर॥
इस दृष्य से कुछ दूरी पर हट, गोपाल बाल पट पीत धरे।
सिर मोर मुकुट माला पहिरे, फिरते थे अति आनन्द भरे॥
लग रही थी मुरली होटों से, जिसको वे मधुर बजाते थे।
हो मस्त उसी की ध्वनि में सब, श्री कृष्ण के गुणगन गाते थे॥
विस्मित सा सब देवों को लख, ये ग्वाल बाल मन मुसकाये।
मस्तानी चाल से चलते हुये, सब सुर समूह के ढिंग आये॥
और प्यारी बोली में पूछा, तुम कौन कहां से आते हो।
किसकी तलाश कर रहे यहां, बोलो आगे कहां जाते हो॥

कमलासन कहने लगे, हे गोपों के बाल ।
कहो, मिलेंगे किस जगह, श्रीकृष्ण गोपाल ॥
ये सुनते ही हंस पड़े सभी, बोले हे भोले भक्त सुनो ।
उन सर्व व्यापक जगदीश्वर को, हरगिज न एक देशीय गिनो ॥
हैं यहां वहां हम में तुम में, सब में वो कृष्ण मुरारी है ।
उनकी सत्ता से हीन वस्तु, आती नहिं दृष्टि हमारी है ॥
फिर भी यदि उनके मन्दिर के, दर्शन करने की इच्छा है ।
तो फेर यहां देरी न करो, आगे बढ़ना ही अच्छा है ॥
लेकिन पहिले हम लोगों का, आतिथ्य ग्रहण करना होगा ।
उसके उपरान्त प्रसन्नता से, आगे को पग धरना होगा ॥
इतना कह उन बच्चों में से, एक बालक ने हर्षित होकर ।
एक मधुर राग आरम्भ करी, निज मुरली को अधरों पर धर ॥
लेते ही आलाप के, हुआ तमाशा एक ।
व्यंजन संयुत थाल तहं, दृष्टी पड़े अनेक ॥
आगया हरएक देवता के, आगे एक पात्र सुगमता से ।
आबिछे स्वयम आसन भी तब, बच्चों ने कहा दीनता से ॥
हे कृष्ण भक्त प्रिय महमानों, इस तुच्छ भेंट पर ध्यान धरो ।
कर कृपा आसनों पर बैठो, इच्छा माफिक जल पान करो ॥
कर श्रवण श्रवण-प्रिय मधुर वचन, लख अद्भुत चमत्कार भारी ।
प्रभु के अर्पण कर भोजन की, सुरकरन लगे जब तैयारी ॥
इतने में एक और आश्चर्य, देवों की नज़रों में आया ।
सब भूल गये खाना पीना, हृदय में अति आनन्द छाया ॥
क्या लखा हर एक थाल के ढिंग, बालक का रूप किये धारन ।
कर रहे हैं भोजन अति हित से, श्रीकृष्ण कन्हैया जगतारन ॥
भूतनाथ तो होगये, ये अवलोक निहाल ।
इष्टदेव को गोद में, उठालिया तत्काल ॥

फिर अपने हाथों से प्रभु को, खुश हो मिष्ठान्न खिलाने लगे ।
कुछ देर बाद हो गये खड़े, और तांडव नृत्य दिखाने लगे ॥
नारद ने भी वीणा लेकर, कैलाशनाथ का साथ दिया ।
बाकी के सुर समूह ने भी, हरिगुण गाना आरम्भ किया ॥
हो गये ध्यान में लीन सभी, सामग्री यों ही पड़ी रही ।
भर गये पेट बिन ही खाये, सुखमई डकारें शुरू हुई ॥

ध्यान मुक्त जब सब हुये, देखा आंख पसार ।
जान पड़ा क्षण में सकल, बदल गये आसार ॥

भोजन की चीजें गुप्त हुई, गायब थे वहां के थाल सभी ।
आसनों का भी कुछ पता न था, नहिं दिखते थे गोपाल सभी ॥
केवल एक द्वार सामने था, जहां से मग आगे जाता था ।
इसमें होकर चलदिये देव, आनन्द न हृदय समाता था ॥
कुछ देर अगाड़ी जाने पर, एक नई भूमि दृष्टी आई ।
पहिले वाली से कहीं श्रेष्ठ, मन हरन सुशोभित सुखदाई ॥
यहां के जड़ अरु चैतन्य सभी, अति तेजोमय दरसाते थे ।
जिससे लखने वालों के दृग, पा चकाचौंध झप जाते थे ॥
फिर अचरज एक और भी था, यहां का ज़र्रा ज़र्रा सारा ।
कर रहा अखंड कीर्तन था, श्रीकृष्ण का होकर मतवारा ॥

मगन हो गये सुर सभी, देख कीर्तन रीति ।
हुई चरन में कृष्ण के, इनकी अतिशय प्रीति ॥
छोड़ इसे आगे चले, जब सुर सहित महेश ।
पहिले से भी मन हरन, देखा दृश्य विशेष ॥

यहां के सचराचर प्राणिमात्र, जप रहे थे कृष्ण नाम माला ।
चहरे इतने तेजस्वी थे, हो रहा तहां पर उजियाला ॥
कहिं देखे अगणित ग्वाल बाल, सब थे दिव्याभूषण पहिरे ।
कर रहे पाद, सेवन प्रभु का, सुख सहित मनोमय ध्यान धरे ॥

कमलासन कहने लगे, हे गोपों के बाल ।
कहो, मिलेंगे किस जगह, श्रीकृष्ण गोपाल ॥
ये सुनते ही हंस पड़े सभी, बोले हे भोले भक्त सुनो ।
उन सर्व व्यापक जगदीश्वर को, हरगिज न एक देशीय गिनो ॥
हैं यहां वहां हम में तुम में, सब में वो कृष्ण मुरारी है ।
उनकी सत्ता से हीन वस्तु, आती नहिं दृष्टि हमारी है ॥
फिर भी यदि उनके मन्दिर के, दर्शन करने की इच्छा है ।
तो फेर यहां देरी न करो, आगे बढ़ना ही अच्छा है ॥
लेकिन पहिले हम लोगों का, आतिथ्य ग्रहण करना होगा ।
उसके उपरान्त प्रसन्नता से, आगे को पग धरना होगा ॥
इतना कह उन बच्चों में से, एक बालक ने हर्पित होकर ।
एक मधुर राग आरम्भ करी, निज मुरली को अधरों पर धर ॥
लेते ही आलाप के, हुआ तमाशा एक ।
व्यंजन संयुत थाल तहं, दृष्टी पड़े अनेक ॥
आगया हरएक देवता के, आगे एक पात्र सुगमता से ।
आबिछे स्वयम आसन भी तब, बच्चों ने कहा दीनता से ॥
हे कृष्ण भक्त प्रिय महमानों, इस तुच्छ भेंट पर ध्यान धरो ।
कर कृपा आसनों पर बैठो, इच्छा माफिक जल पान करो ॥
कर श्रवण श्रवण-प्रिय मधुर वचन, लख अद्भुत चमत्कार भारी ।
प्रभु के अर्पण कर भोजन की, सुरकरन लगे जब तैयारी ॥
इतने में एक और आश्चर्य, देवों की नज़रों में आया ।
सब भूल गये खाना पीना, हृदय में अति आनन्द छाया ॥
क्या लखा हर एक थाल के ढिंग, बालक का रूप किये धारन ।
कर रहे हैं भोजन अति हित से, श्रीकृष्ण कन्हैया जगतारन ॥
भूतनाथ तो होगये, ये अवलोक निहाल ।
इष्टदेव को गोद में, उठालिया तत्काल ॥

बोला, देवों आनन्द सहित, तुम अन्दर को जा सकते हो ।
अपने प्रिय इष्टदेव को लख, जीवन का फल पा सकते हो ॥
ये सुन पहुँचे देव सब, प्रभु सिंहासन पास ।
कोटि भानु से भी अधिक, देखा तेज प्रकास ॥
आदि अन्त उस तेज का, देता था न दिखाइ ।
चकित होय सुर मंडली, बोली शीश झुकाइ ॥

हे गुणातीत परते पर प्रभु, हे तेज रूप त्रिभुवन साईं ।
हे सर्व सनातन सर्व ईश, करते हैं नमन हम हर्षाईं ॥
हे वर, वरदानी श्रेष्ठवरं, कारण वरदानों के स्वामी ।
अव्यक्त सगुन निर्गुण निर्मम, आतम-स्वरूप अंतरयामी ॥
परम मंगलों के मंगल, ज्योतीस्वरूप हे अविनाशी ।
...ार और आकार रहित, हे तर्क परे हे सुखरासी ॥
...न अजन्मा अच्युत पद, चैतन्य सत्य आधार प्रभो ।
... रूप सर्वज्ञ सुभग, करते प्रणाम करतार प्रभो ॥
...भाज्य हे सतस्वरूप, उत्पादक सारी सृष्टी के ।
...ज बीजों के बीज वर्णन असक्य पर दृष्टी के ॥
...नेरेन्द्रिय, सर्वेन्द्रिय, हे परम विचक्षण करुणाकर ।
... सर्वेष सकल, सुर प्रणाम करते सिर ना कर ॥
... अखिल नायक, हे निगमागम सत्ताधारी ।
...जन गुणआगर, निर्भय निरीह जन सुखकारी ॥
...र्णन निशदिन, पर पार नहीं पा सकते हैं ।
...भि अगम, उनको किम बतला सकते हैं ॥
...सृष्टि भूप, बस फक़त आप पहिचानते हैं ।
...ादि तुम्हें, निज शीश झुकाना जानते हैं ॥
...ा तुम्हरी, ब्रह्मा बन जगत रचाती है ।
...लन कर, हो रुद्र तुरन्त मिटाती है ॥

तज इन्हें मंडली हर्षित हो, जब आगे की जानिब धाई ।
हो गये चकित अवलोकन कर, इस जगह की अति सुन्दरताई ॥
कारण यहां की दिव्यात्मायें, षोड़ष प्रकार की चीजें ले ।
कर रहीं थी पूजन श्री हरिका, मंगलमय चरणों में चित दे ॥
बज रहे थे मंज़ुल दिव्य वाद्य, ध्वनि दसों दिशा में छाई थी ।
जयकार की आवाज़ें प्रतिक्षण, आती सुन्दर सुखदाई थी ॥

हृदय लुभावन मनहरन, देख जगह सुखमूल ।
ठिठक गई सुर मंडली, आगे जाना भूल ॥

लेकिन धरती के दुःखों की, इन लोगों को जब सुधि आई ।
तब ये सुन्दर स्थान छोड़, सुर बढ़े अगाड़ी सकुचाई ॥
आगे जाकर फिर नया दृष्य, इन लोगों को दृष्टी आया ।
हो रही थी प्रभु लीला अद्भुत, अवलोकन कर आनन्द छाया ॥
गोपियां राधिका रूप में थी, और गोप बने गिरधरधारी ।
अतिहित से तहां विचरते थे, कर रहे थे लीला सुखकारी ॥

आखिर प्रभु के द्वार पर, पहुँचे सुर सानन्द ।
मग्न हो गये लख उसे, सर्व श्रेष्ठ सुखकन्द ॥

जिन सात्विक पुरुषों ने निशदिन, श्रीकृष्ण का नाम उचारा था ।
खाते, पीते, सोते, जगते, उनका हि भरोसा धारा था ॥
माता व पिता भ्राता नारी, सब तज प्रभु में लौ लाये थे ।
वे इस द्वारे पर द्वार पाल, के रूप में दृष्टी आये थे ॥
सुर इन लोगों के निकट आय, बोले अति कोमल बानी से ।
कर दया बंधुओं भीतर जा, कहदो यों शारंगपानी से ॥
आये हैं देवता दर्श हेतु, कर दया दर्श दिखला दीजे ।
चरणारबिंद के निकट बुला, उत्कंठा सकल मिटा दीजे ॥
ये सुनते ही इक द्वारपाल, विस्मित सा हो भीतर धाया ।
ले आज्ञा जन-मन-रंजन की, अति शीघ्र लौट बाहिर आया ॥

बोला, देवों आनन्द सहित, तुम अन्दर को जा सकते हो ।
अपने प्रिय इष्टदेव को लख, जीवन का फल पा सकते हो ॥

ये सुन पहुँचे देव सब, प्रभु सिंहासन पास ।
कोटि भानु से भी अधिक, देखा तेज प्रकास ॥
आदि अन्त उस तेज का, देता था न दिखाइ ।
चकित होय सुर मंडली, बोली शीश झुकाइ ॥

हे गुणातीत परते पर प्रभु, हे तेज रूप त्रिभुवन साईं ।
हे सर्व सनातन सर्व ईश, करते हैं नमन हम हर्षाई ॥
हे वर, वरदानी श्रेष्ठवरं, कारण वरदानों के स्वामी ।
अव्यक्त सगुन निर्गुण निर्मम, आतम-स्वरूप अंतरयामी ॥
हे परम मंगलों के मंगल, ज्योतीस्वरूप हे अविनाशी ।
साकार और आकार रहित, हे तर्क परे हे सुखरासी ॥
हे ब्रह्म अजन्मा अच्युत पद, चैतन्य सत्य आधार प्रभो ।
हे तेज रूप सर्वज्ञ सुभग, करते प्रणाम करतार प्रभो ॥
त्रयगुण विभाज्य हे सत्स्वरूप, उत्पादक सारी सृष्टी के ।
हे सर्व बीज बीजों के बीज वर्णन असक्य पर दृष्टी के ॥
अशरीर, निरेन्द्रिय, सर्वेन्द्रिय, हे परम विचक्षण करुणाकर ।
हे वेद-जनक सर्वेष सकल, सुर प्रणाम करते सिर ना कर ॥
हे एकाकार अखिल नायक, हे निगमागम सत्ताधारी ।
स्वेच्छा निर्मित जन गुणआगर, निर्भय निरीह जन सुखकारी ॥
श्रुति शास्त्र करें वर्णन निशदिन, पर पार नहीं पा सकते हैं ।
हैं जो मन बुद्धी से भि अगम, उनको किम बतला सकते हैं ॥
अपने स्वरूप को सृष्टि भूप, बस फक़त आप पहिचानते हैं ।
हमतो हे आदि अनादि तुम्हें, निज शीश झुकाना जानते हैं ॥
जगव्यापक है सत्ता तुम्हरी, ब्रह्मा बन जगत रचाती है ।
विश्नू स्वरूप में पालन कर, हो रुद्र तुरन्त मिटाती है ॥

तुम यंत्री हम यंत्र हैं, तुम नर हम सब खेल ।
क्षण में माया मय रहो, क्षण में रहो अकेल ॥
रोम रोम में रम रहे, हैं ब्रह्मांड अनेक ।
तत्व दृष्टि से जो लखो, तो सब में तुम एक ॥
जो जिस प्रकार भजता है तुम्हें, वैसे ही तुम हो जाते हो ।
ज्ञानियों को निर्गुण तेज रूप, भक्तों को सगुण दिखाते हो ॥
हे नाथ तुम्हारी महिमा का, सारा वर्णन तो कहीं रहा ।
किंचित भी किया नहीं जाता, पर एक आसरा आन गहा ॥
हम सच्चे दिल से जब तुमको, टेरेंगे शरणागत वत्सल ।
तब तुम्हें दरश देना होगा, भक्ती देनी होगी अविचल ॥

*** गाना ***

दिखादो दर्श दया करके दयामय भगवन् ।
तुम्हीं हो दीन व दुखियों के आश्रय भगवन् ॥
गही है हमने तो बस शरण आपकी स्वामी ।
हुआ है तव कृपा विन किसका अभ्युदय भगवन ॥
पुकारा जब जहां जिसने तुम्हें दयासिन्धो ।
बचाई लाज तुरत दौड़ के निश्चय भगवन् ॥
हुये हैं तंग प्रभो निश्चरों के हाथों से ।
विनय है कीजिये दुष्टों का शीघ्र क्षय भगवन् ॥



ब्रह्मादिक ने जय करी, स्तुति तेजस्वरूप ।
तब उनको आया नज़र, नूतन दृष्य अनूप ॥
क्या देखा वो ज्वाजल्य तेज, है शान्त सुधारस बरसावन ।
तेहि मध्य विराजत अद्भुत छवि, एक बालरूप जन-मन-भावन ॥

सिंहासन पर आसनासीन, कमनीय देह प्रभु धारे हैं।
जिसको उपमा मिलती हि नहीं, हर चंद खोज कवि हारे हैं॥
जल सहित जलद समवरण सुभग, मुस्कान मंद मन हरन धनी।
मुख आकृति विश्व विमोहन है, कर रहे प्रकाश त्रिलोकधनी॥
है मोर मुकट सिर पर सुन्दर, घनश्याम कृष्ण नटनागर के।
लख आनन लाजे शरदचंद्र, कर में मुरली गुण सागर के॥
सुन्दर बनमाला गल शोभित, कंठा मणि, माणिक, हीरों का।
अनुपम पीताम्बर कटि काछे, लख तजे धीर मन धीरों का॥
नूपुर चरणों में रम्य देख, भक्तों का चित तल्लीन हुआ।
सारे शरीर का मोह छोड़, प्रभु पायन में लवलीन हुआ॥
नख से सिख तक की शोभा को, किमि वरणे बुद्धी हीन कवी।
थक गये शेष शारद गणेश, खामोश हुये मुनि लजे रवी॥
फिर क्या अवलोका जीवन धन, मुरली मुख पर धारन करके।
एक ऐसी तान अलाप रहे, मोह गये देवता सुरपुर के॥

ऐसा प्रभु का रूप था, ऐसा था सब साज।
सुन्दरता जनु देह धर, आई सहित समाज॥
अलख अगोचर ईश की, मंजुल मूर्ति निहार।
गिरे चरण में जाय कर, सुर अज सहित पुरार॥

चरणाम्बुज प्रेमाश्रुओं से धो, कुछ देर में सब चेतन्य हुये।
तब हाथ जोड़ कर गिरजापति, बोले हे प्रभु हम धन्य हुये॥
हे इष्टदेव मम चंचल चित, भवनिधि में गोते खाता है।
भ्रमता है सदा मीन सदृष्य, पलभर थिरता नहिं पाता है॥
फिर रत रहता है अष्ट पहर, स्वामी संसार संहारन में।
होतो नहिं तुम्हरी भक्ति तनिक, दिन बीतत व्यर्थ विचारन में॥
अतएव कृपा कर हे भगवन, ऐसा वरदान दिला दीजे।
होवे मन थिर तुम चरणों में, सब बुद्धी विषम मिटा दीजे॥

पुनि ब्रह्मा ने प्रेम से, करी विनय कर जोर ।
चरण कमल तव में रहे, चंचरीक मन मोर ॥
इस जग में आने जाने की, बीमारी कठिन करारी है ।
उसको हरने की हे भगवन, औषधि पद भक्ति तुम्हारी है ॥
कर दया वही दीजे नटवर, जीवन कृतार्थ यह हो जावे ।
तव भक्ति बिना वर ऐसा है, जनु प्राण हीन तन दरसावे ॥
इसके उपरांत शचीपति ने, श्री कृष्णचन्द्र को शिरनाया ।
कर जोड़ प्रेम से गद्गद् हो, अति नम्र भाव से फरमाया ॥
हे नाथ सृष्टि के विषय आदि, बंधन रूपी तरु काटन को ।
चरणाम्बुज भक्ति कुल्हाड़ा है, निश्चय मम शंका पाटन को ॥
सब तरह सताया जाकर मैं, प्रभु शरण आपकी आया हूं ।
हो अटल प्रेम तव चरणों में, वर दो ये ही दुख पाया हूँ ॥
सुनकर देवन की विनय, प्रेम भक्ति की खान ।
मुस्काकर कर कहने लगे, दीनबन्धु भगवान ॥
हे अमरावति के निवासियों, जब शंकर साथ तुम्हारे हैं ।
अगुआ हैं जब ये ही सब के, तब तुम्हरे अब पौबारे हैं ॥
अच्छा हि हुआ जो गुरू किया, इन आशुतोष त्रिपुरारी को ।
मम हृदय, मेरे जीवन धन को, अज्ञान, तिमिर के हारी को ॥
इनकी ही किरपा से तुमने, गोलोक का रस्ता पाया है ।
यह ही एक मूरत ऐसी है, जिनपर हरदम मम साया है ॥
है मुझे ज्ञात सब पहिले से, जो कुछ विपता तुम पर आई ।
पृथ्वी को जो कुछ कष्ट हुआ, निश्चरों ने जो आफत ढाई ॥
लेकिन मेरे समीप देवों, दुख शोक क्लेश का काम नहीं ।
सूरज जिस जगह प्रकाशित हो, वहां अन्धकार का नाम नहीं ॥
पर जो कुछ दुनियां में होता, वो कालाधीन कहाता है ।
होगया जो होगा आगे को, सब का उस ही से नाता है ॥

छोटा या बड़ा कैसा भि काम, सब काल के बस में आया है ।
ब्रह्मा से लेकर चींटी तक, सब ही को नाच नचाया है ॥
काल पाय फूले फले, वृक्ष सघन हो जाय ।
काल पाय नस जाय पुनि, सुनहु देव चित लाय ॥
सुख दुख विपता सम्पदा, अरु संयोग वियोग ।
प्रिय अप्रिय जग काम सब, उसी काल के भोग ॥
राजा सम्राट दैत्य दानव, ऋषि मुनि रवि शशि अरु तारागन ।
यानी सारा ब्रह्मांड सुरों, है काल के बस मय कमलासन ॥
करता है काल उत्पन्न इन्हें, फिर काल हि नष्ट बनाता है ।
ये काल चक्र निशदिन यौं ही, भ्रमता थिरता नहिं पाता है ॥
इस समय निशाचर पृथ्वी पर, जो अत्याचार मचाय रहे ।
ये उसी काल की महिमा है, जो निज प्रभाव दरसाय रहे ॥
उत्थान रूप ये काल उनका, जब पतन की शक्ल बनावेगा ।
क्षण भर में होंगे नष्ट भ्रष्ट, नामो निशान नहिं पावेगा ॥
काल चक्र से अभय हैं, केवल मेरे भक्त ।
कारण वे रहते सदा, मेरे में अनुरक्त ॥
मेरा असली रूप है, दुनिया में कोई नाहिं ।
निराकार हूँ सर्वदा, सके न वेद बताइ ॥
पर भक्तों के कारन देवों, मैं रूप अनेक बनाता हूं ।
जिस रूप में ध्यान धरे कोई, मैं तुरत वही बनजाता हूं ॥
मेरो नवधा भक्ती में रत, रहते जो मेरे दास सदा ।
मैं भी निशदिन आठों पहर, रहता बस उनके पास सदा ॥
सारा संसार जन्म मृत्यू, पुनि मृत्यु जन्म में फंसा हुआ ।
कर्मों के बंधन में जकड़ा, है भव कीचड़ में धंसा हुआ ॥
केवल निष्काम भक्त ही बस, इस बंधन से बचजाते हैं ।
मेरे निर्भय अच्युत पद के, आखिर बासी बन जाते हैं ॥

नर जग के भोग भोगने में, या स्वर्ग के लालच में आकर ।
जप, तप, व्रत, पूजन, यज्ञ करें, निशदिन स्वारथ में रति पाकर ॥
इन सब सकाम कर्मों का फल, थोड़ा और नाशवान जानो ।
पर जो निष्काम भक्ति करते, उनका अविनाशी सुखमानो ॥
ऐसे हि भक्त हैं प्राण मेरे, मैं उनका प्राण कहाता हूँ ।
वे रटते हैं हरदम मुझको, मैं उनका ध्यान लगाता हूँ ॥
चक्र सुदर्शन है सदा, रक्षा हित तिन केर ।
तो भी मैं निश्चित नहिं, धाऊँ करूं न देर ॥
मम बास पयोनिधि में न गिनो, ना स्वर्ग धेनुपुर में जानो ।
समझो मत राधा के संग भी, नहिं योगी के मन में मानो ॥
पर जहां भक्त सच्चे दिल से, निशदिन मेरे गुण गाते हैं ।
बस वहीं उन्हीं के हृदय में, ज्ञानी जन मुझको पाते हैं ॥
भक्ती से अर्पण करी हुई, एक तुच्छ वस्तु भी सुरराई ।
लगती है मुझको सच जानो, अमृत से बढ़कर सुखदाई ॥
बिन भक्ति सुधा सम भोजन भी, मुझको न तृप्ति पहुँचाता है ।
जो लोग-दिखाऊ करते हैं, उनका श्रम योंही जाता है ॥
जो दुष्ट मेरे आश्रित जन को, पीड़ा पहुँचाते हैं जग में ।
वे मंद बुद्धि वाले पापो, कांटे उपजाते निज मग में ॥
मेरी सत्ता उन लोगों को, हो काल रूप ग्रस जाती है ।
जैसे अग्नी सूखे तृण को, पल भर में भस्म बनाती है ॥
मम सत्ता वश विधि स्रष्टा है, शंकर संहारी कहलाते ।
विश्नू पालक सृष्टी के भी, मेरी सत्ता से नज़र आते ॥
अग्नी उष्णता, रवि प्रकाश, घन पानी जो बरसाते हैं ।
भूमी सुगंध, जल शीतलता, मम सत्ता से ही पाते हैं ॥
कहने का मतलब यही, मैं व्यापक सर्वत्र ।
सब में थिर सब से परे, अत्र और अन्यत्र ॥

देवों तुम मुझको भय का भय, और काल का महाकाल जानो ।
ब्रह्मा का ब्रह्मा शिव का शिव, विश्नू का विश्नू पहिचानो ॥
मेरे भय से यमराज सदा, दुष्टों को दंड दिया करते ।
बन धर्म राज शिष्टों के लिये, बस सुख एकत्र किया करते ।
जीवों के कर्म फलों को मैं, भुगतानेवाला ईश्वर हूँ ।
यदि चहूँ कर्म फल नष्ट करूँ, ऐसा सर्वेश अधीश्वर हूँ ॥
हे देवराज मैं बन जाऊँ, जिसकी रक्षा करनेवाला ।
फिर नहीं त्रिलोकी में कोई, उसका जीवन हरनेवाला ॥
और जो मेरी कोपानल का, दुनियाँ में आन शिकार बना ।
उसकी जां रक्षा में अगुआ, नहिं कोई भी सरदार बना ॥
पल भर में सारी सृष्टी को, चाहूँ तो बाराबाट करूँ ।
पुनि द्वितियः क्षण रचना नवीन, कर उसका पूरा ठाठ करूँ ॥
मैं छिपा हुआ ही रहता हूँ, मेरा सब ढंग अनोखा है ।
लेकिन भक्तों के बस में हूँ, इसमें न ज़रा भी धोखा है ॥

*** गाना ***

भक्त मम प्राणों का बस आधार है ।
भक्त हित होता सदा अवतार है ॥
जो मनुज देता है दुःख मम भक्त को ।
उसको दर्शन स्वर्ग का दुष्वार है ॥
जिसने की सेवा हमारे भक्त की ।
बिन भजन ही उसका बेड़ा पार है ॥
देवताओं सोच तजकर शान्त हो ।
अब हरा जायेगा भू का भार है ॥

ये सुनकर कहने लगे, गिरजापति गिरिजेश ।
श्री राधा के दर्श की, इच्छा हमें विशेश ॥

जब मैं देवों को संग लेकर, विश्नू के धाम सिधाया था।
वहां मिलेंगे राधाकृष्ण तुम्हें, ये उन्होंने हाल बताया था॥
पर प्रभू कहां है श्री राधे, हमको तो नज़र नहीं आतीं।
हैं आप अकेले हे नटवर, क्यों नहीं दरश वे दिखलातीं॥
मुस्काकर बोले कृष्णचन्द्र, हे शंकर तुम्हें बताता हूँ।
राधा का असली तत्व है क्या, वो सबका सब समझाता हूँ॥

मेरा असली रूप है, निर्गुण निरआकार।
शक्ति सहित मैं दीखता तुम सबको साकार॥

हैं उस शक्ती के रूप बहुत, पर पांच मुख्य माने जाते।
आल्हादिनी, संधनि, ज्ञान, क्रिया, इच्छा, ये वेद हैं बतलाते॥
इन सब में आल्हादिनि शक्ती, बस सर्व श्रेष्ठ कहलाती है।
सच्चिदानन्द मैं इससे हूं, ये ही नित सुख पहुँचाती है॥
शक्तियों की इस पटरानी को, श्री राधा ही समझो शंकर।
मम आराधन नित करने से, 'राधा' ये नाम हुआ सुखकर॥
मेरा प्रसार ये दुनियां है, वो दुनियां के घेरे में हैं
मैं विश्व बना वो विश्वात्मा, मैं उसमें वो मेरे में है॥
दुख दमन सदा सुख पहुँचावन, आनन्द रूप है राधा का।
मुरली द्वारा आकर्षित है, तारक है सब भव बाधा का॥
राधा से ही लक्ष्मी उपजी, गोपियां उसी की छाया हैं।
सोलह सहस्त्र अष्टोत्तर सत, रानियां उसी की काया हैं॥

यद्यपि मुझ में राधिका, में नहिं भेद विशेश।
पर भक्तों के दरस को दो हैं सुनो महेश॥

अब तक न किसी ने लखपाया, उसका असली स्वरूप शंकर।
पर तुम से नहिं दुराव है कुछ, तुम भक्तहोअस्तु लखोजीभर॥
इतना कह कृष्णचन्द्र ने झट, तहां चमत्कार इक दिखलाया।
जिससे वामांग में देवों को, एक अनुपम तेज दृष्टि आया॥

उत्पन्न हुई उस तेज में से, 'राधा' सुन्दरता की खानी ।
आरक्त कमल सम वस्त्र धार, निशिनाथ लजावन हरिरानी ॥
नख से सिख तक कमनीय छटा, रति कोटि लजावन हारी थी ।
जो शोभा थी महारानी की, सब शोभाओं से न्यारी थी ॥

देख रूप अद्भुत परम सुखद सुहावन रम्य ।
शीश झुका चरनन गिरे, सुर, कहि जयति अगम्य ॥
स्तुति कर हर सहित सुर, खड़े रहे सिरनाय ।
तब मोहन कहने लगे, सुनो देव चितलाय ॥

अब समय आन पहुँचा है वो, जब हो अवतार भार हरने ।
दुष्टों का सत्यानाश और, सत धर्म को पुनि थापन करने ॥
अस्तू अब है आदेश यही, सब सुर अंशावतार लेकर ।
जन्में मथुरा नगरी में जा, यदुवंशों के घर पर सत्वर ॥
फिर गोप गोपिकायें जावें, भूतल में जाकर जन्म धरें ।
श्री गोकुल नन्दगांव में जा, आनन्द सहित निशदिन विचरें ॥
जिसको जो काम बताऊं मैं, वो वहां जाय आरम्भ करे ।
मेरे आने के पहिले ही, अपना कर्तव प्रारम्भ करे ॥
हे राधे मम आराधे तुम, बरसाने में नव वपु धारो ।
वृषभानु कलावति के घर पर, अपनी शिशु लीला विस्तारो ॥
मैं भी श्री नंद यशोदा के, घर पितु द्वारा पहुँचाया जा ।
आनन्द सहित तुम संग प्रिये, लीला धारूँ वृन्दावन आ ॥
हो प्राण मेरा तुम श्री राधे, तुम मुझको प्राण समझती हो ।
हम में तुम में कुछ भेद नहीं, हैं एक प्राण तसवीरें दो ॥
इसलिये तुम्हारे बंधन से, मैं अलग नहीं हो सकता हूं ।
आऊँगा निश्चय तुम ढिंग मैं, ये सत्य पूर्वक कहता हूं ॥
सुन वचन कृष्ण के कृष्ण प्रिया, अकुलाय गई, घबराय गई ।
मानो तुषार के पड़ने से, पंकज शोभा मुरझाय गई ॥

प्रभु मुख पर इमि दोउ नेत्र गड़ा, प्रेमाश्रु भरी दृष्टी डारी ।
ज्यों तके चकोरी चन्दा को, होने से प्रात दुख की मारी ॥
चाहा कुछ बोलें इतने में, ये सुना कि विश्नू आते हैं ।
संग में लक्ष्मी अरु वाणी को, रथ में बिठलाये लाते हैं ॥

चतुभुज में धारन किये, सुन्दर आयुध चार ।
आये सन्मुख कृष्ण के, लक्ष्मी के भरतार ॥

आते हि प्रेम से गद्गद् हो, आनन्द कन्द को सिरनाया ।
हो गये लीन प्रभु के तन में, ये लख सुर मंडल चकराया ॥
लक्ष्मी व सरस्वती बैठ गईं, श्री राधेश्वरि के ढिंग आईं ।
सत चित आनन्द देनेवाली, थी तीनों मूरति छवि छाई ॥
इतने में सहस बदन तहां पर, आये अति आतुरताई से ।
करजोड़ चरन में शीश झुका, बहु विनय करी जगसाई से ॥
फिर बोले हे प्रभु नट नागर, मुझको आदेश सुनाओ ना ।
मैं जन्म लेउँ अब जाय कहां, किसके घर में समझाओ ना ॥
कुछ कहते थे प्रभु इतने में, एक और सुहावन रथ आया ।
जिसमें थी सहस भुजा वाली, श्रीकृष्णचन्द्र की महामाया ॥
फिर स्वामिकार्तिक, गणनायक, सावित्री, पार्वती देवी ।
यम, वरुण, धर्म, राकेश, सूर्य, वायू, लक्ष्मी प्रभु पद सेवी ॥
श्री सूर सुता, रोहिणि, मनमथ, अश्वनी कुँवर दोनों भाई ।
जो रहे थे बाकी वे भी सब, आ पहुँचे तहँ अति हरषाई ॥
कर प्रणाम राधा जीवन को, सब तुरत आसनासीन हुये ।
आदेश की राह लगे लखने, प्रभु चरणों में लवलीन हुये ॥

तब मोहन चहुँ ओर लख, बोले बचन रसाल ।
सुनो देव, देवी सकल, कहूँ करो तत्काल ॥

हे महामाय मम आदि शक्ति, धर ध्यान सुनो आदेश मेरा ।
अब शीघ्र यहां से विदा होय, मथुरा में जाय करो डेरा ॥

जब कंस के द्वारा छः बालक, वसुदेव के मारे जावेंगे ।
और गर्भ सातवें में बलिष्ठ, श्री सहस बदन जब आवेंगे ॥
तब उदर में इनको रोहिणि के, पहुँचाना होगा हे माया ।
इसके उपरान्त नन्द के घर, तुम होना पैदा जग काया ॥
मैं जन्मूंगा मथुरापुर में, मम पिता मोहि तहां लावेंगे ।
और मेरी एवज़ में तुमको, वे मथुरा में ले जावेंगे ॥
तब कंस करेगा यत्न तुम्हें, बधने का तब उससे छुटकर ।
नभ में जा उसे संदेश सुना, बैरी का, तुम आना सत्वर ॥

बस इतना ही काम वहां, करना होगा जाय ।
इसी से तुम्हरी जगत में, खूब कीर्ती छाय ॥

दुर्गा, चंडी, शक्ती, काली, कह कर त्रिलोकी गायेगी ।
कई तरह की पूजा भेट बली, अर्पण कर शीश झुकायेगी ॥
कहलावे कहीं मंगला तू, चामुंडा हो पूजी जावे ।
जो भक्ति करेगा तन मन से, इच्छा माफिक वो फलपावे ॥
फिर कहा शेष से हे अनन्त, आदेश मेरा चितमांहि धरो ।
तुम सब से पहिले गर्भ मांहि, देवकी के जाकर वास करो ॥
फिर मम माया द्वारा खिंचकर, रोहिणी उदर में जाओगे ।
इस कारन सारी दुनियां में, तुम संकर्षण कहलाओगे ॥
यकता फिर बल में होने से, "बलराम" नाम जग जानेगा ।
यम सदन की राह तुरत लेगा, जो खल तुम से रण ठानेगा ॥
हम और तुम दोनों मिल कर, भूमी का भार हटायेंगे ।
सत धर्म करेंगे थापन पुनि, दुष्टों का नाम मिटायेंगे ॥

देख रमा की ओर फिर, बोले प्रभु मुस्काय ।
प्रिया होउ तुम रुक्मनी, भीष्मक के घर जाय ॥

हो भूमि अंश से सतभामा, तुलसी लक्ष्मणा कहावेगी ।
श्री पार्वती जाम्बवती बने, भद्रा वाणी हो जावेगी ॥

रोहिणी मित्र-विन्दा जन्में, नागिनजित सावित्री जानो ।
और सूरसुता कालिंदी हो, ये सब मम पटरानी मानो ॥
बाकी जितनी रानी होंगी, वो सब कमला का अंश रहें ।
निशिदिन मेरे संग में रह कर, यश कीरति सुख आनन्द लहें ॥
कामदेव जग जन्म ले, रुक्मनि पुत्र कहाय ।
तासु सुवनविधि तुम बनो, अनिरुध नाम हि पाय ॥

हो जाउ जाम्बंती के सुत, हे वत्स षड़ानन गुणखानी ।
तहां नाम शांब तुम्हरा होगा, मम पुत्र मात पितु सुखदानी ॥
पुनि धर्म युधिष्ठिर राज बने, वायू से भीम गदाधारी ।
सुरईश इन्द्र के अंश रूप, हो अर्जुन समर भयंकारी ॥
सुरवैद्य युगल सहदेव, नकुल, यों पांचों पांडव कहलावें ।
श्री विदुर बने यमराज स्वयं, भीषम वसु अंश कहे जावें ॥
हो कर्ण सूर्य अंशी भूपर, मम भक्त, बली, ज्ञानी, दानी ।
वसु नंद, यशोदा वसु पत्नी, गोकुल में जन्मे अघहानी ॥
शशि अंश वीर अभिमन्यू हो, कश्यप वसुदेव कहावेंगे ।
हो अदिति देवकी यों ये मम, पितु माता माने जावेंगे ॥
बाकी देवों को महामाया, मम आज्ञा से जन्मावेगी ।
जो जहां ठीक होगा उसको, बस तुरत वहीं पहुँचावेगी ॥
समझो मुझको तुम विश्वम्भर, विश्वात्मा सब में व्यापक हूँ ।
जब भीर पड़े अवतार धरूँ, सतधर्म का मैं संस्थापक हूं ॥
सुर, नर, मुनि, असुर, चराचर सब, मम एक अंश से बना हुआ ।
सब में हूँ सबसे जुदाभि हूं, हूं ओत प्रोत अरु सना हुआ ॥
इसलिये छोड़ शंका सारी, मम आज्ञा का अनुसरन करो ।
पृथ्वी का भार हटा समझो, अब निज २ घर को गमन करो ॥
ये सुन ब्रह्माजो सहित, विदा हुये सुर वृन्द ।
शंकर तहां ठिठके रहे, लख बोले सुखकंद ॥

तुम में मुझ में कुछ भेद नहीं, जो लखेगा अति दुख पावेगा ।
जब लग रवि शशि हैं भूतल पर, जड़ योनी में जन्मावेगा ॥
अतएव त्याग शंका सारी, हे शिव कैलाश सिधारो तुम ।
हर समय, हरएक अवस्था में, मुझको निज निकट निहारो तुम ॥
ब्रज भूमि बनेगा गऊलोक, गोलोकपती तहां जायेगा ।
आशा है शैशव काल में ये, शुभ दर्श तुम्हारा पायेगा ॥
फिर बाणासुर के पुर में जब, उषाहित रण होगा भारी ।
तब निश्चय धनुष पिनाक सहित, हम करंगे दर्शन त्रिपुरारी ॥
तुम मेरे इष्ट भक्त होकर, हरदम मुझको ही ध्याओगे ।
मेरा अस्तित्व कहीं तुम बिन, हे शिव भूपर नहिं पावोगे ॥
जहाँ भक्त मेरा मन्दिर धारे, शिव पिंड तहाँ थापन होगा ।
राधापति का जहाँ भजन होय. शिव का भी आराधन होगा ॥

ये सुन दंड प्रणाम कर, शंकर चले सहर्ष ।
श्रोताओं चित दे सुनों, हरि राधा संघर्ष ॥
शिव के जाते ही तुरत, राधा अवसर पाय ।
शीश झुका कहने लगी, सुनहु नाथ चितलाय ॥

आदेश आपका सुन करके, ये प्राण बहुत अकुलाते हैं ।
मैं धीर बंधाती हूँ तो भी, पल पल में बिखरे जाते हैं ॥
तुम्हरा बिछोह हे प्राणनाथ, इस तन से सहा न जावेगा ॥
एक एक पलक मेरा भगवन, सतयुग समान बन जावेगा ।
छाया शरीर से अलग रहे, तो इसका कहां ठिकाना है ।
फिर कैसे मुझे विलग करना, हे नाथ आपने ठाना है ॥
मुझको आल्हादिन शक्ती को, क्षण भर न छोड़ना चाहते थे ।
आकर्षण मुरली से करके, नित रहते मुझे बुलाते थे ।
मुझको हिय वासिन कह कहकर, हे दीनानाथ जगतधारी ।
हृद मन्दिर में ही रखते थे, अब क्यों बनते हो प्रणहारी ॥

मैं शरीर हूँ, तुम आत्मा हो, मैं जीव हूँ तुम परमात्मा हो ।
मैं प्रकृती हूँ, तुम पुरुष प्रभो, मैं विश्व हूँ तुम विश्वात्मा हो ॥
प्रभु की आज्ञा पालन करना, है धर्म मेरा निश्चय होगा ।
करुणा कर वर संयोग का दो, तव चित मेरा निर्भय होगा ॥
भूल न जाना प्रण कहीं, किया है जो प्राणेश ।
शीघ्र दर्श देना मुझे, गिनकर दुखी विशेष ॥
यों कह बेचैन विकल होकर, राधा हरिचरनन मांहि गिरी ।
और लगी बहाने अश्रुधार, तब बोले कृष्ण कृपाल हरी ॥
बस भूल गई हे आल्हादिन, अपने स्वरूप को भूल गई ।
सच्चिदानन्द मूरति होकर, किस भ्रम में फँसकर विकल भई ॥
जो जग को आनन्दायिनी है, है शोक जो वो यों दुख पावे ।
ग्रस लिया अंधेरे ने रवि को, ये किस प्रकार माना जावे ॥
तेरा मेरा इस सृष्टी में, बस है अभेदपन प्रानप्रिया ।
कर दिया भेद पैदा उसमें, अध्यात्म तत्व को भुला दिया ॥
अच्छा धर ध्यान सुनो फिर से, जो तुमको ज्ञान बताता हूँ ।
जिससे सारे भ्रम दूर होयं, ऐसाहि तत्व समझाता हूं ॥
इस सारे ब्रह्मांड में, हैं दो बातें सार ।
जिनमें इक आधेय है, दूसर है आधार ॥
आधार बिना आधेय नहीं, आधेय मूल आधार का है ।
इन पर है सब कुछ टिका हुआ, ये तत्व अति गहन विचार का है ॥
है पुष्प अधार फलों का अरु, पल्लव पुष्पों का कहलाता ।
स्कंध अधार पल्लवों का, उसका खुद वृक्ष कहा जाता ॥
अंकुर आधार वृक्ष का है, अंकुर है बीज से बना हुआ ।
पृथ्वी आधार बीज की है, ये शेष पै सारा तना हुआ ॥
हैं टिके सहस मुख कच्छप पर, अरु कमठाधार वायु जानो ।
वो वायू है मेरे अधार, हे वरानने तुम सच मानो ॥

मुझ सर्वधार सर्वेश्वर का, अंतिम आधार तुम्हीं राधे ।
तुमही हो शक्ति, प्रकृति तुम्ही, गति, चेष्टा, सार तुम्ही राधे ॥
त्रिगुणात्मक तन मेरा तुम हो, मैं तिहि आत्मा हूँ अविनाशी ।
सच्चिदानन्द आनन्द-कन्द, मैं तुम्ही से हूँ हे सुखराशी ॥
मैं बिन तुम्हरे हूँ निराकार, निर ईश जगत से रहित हूँ मैं ।
तुमको धारन करते हि प्रिया, साकार विश्व के सहित हूँ मैं ॥
बिन राधा के है कृष्ण नहीं, अरु कृष्ण बिना राधा है कहां ।
जहां चांद तहां चांदनी रहे, जहँ पुरुष बसे प्रकृती तहां ॥
जल में तारल्य, तेज रवि में, ज्यों शीतलता शशि में राजे ।
पुष्पों में गंध आकाश शब्द, त्यों मेरे हिय राधे आजे ॥

ज्यों अभाव में स्वर्ण के, क्या कर सके सुनार ।
त्यों तुम बिन प्राणाधिके, बन्द सृष्टि का कार ॥
मैं कुम्हार, तुम मृत्तिका, मैं आत्मा, तुम देह ।
तुम से मम मुझ तेरा, जीवन निःसन्देह ॥

ये ज्ञान हृदय में धारन कर, राधे ब्रज मांहि चली आओ ।
ले जन्म अयोनि कलावति के, घर जा शिशु लीला दिखलाओ ॥
मैं भी स्वेच्छा से देह धार, आता हूँ तुम्हरे पास प्रिया ।
मम वचन सत्य गिन जाहु वेग, नित करूँगा तुम ढिंग वास प्रिया ॥
सुन वचन कृष्ण के रासेश्वरि, हृदय में अतिशय हरषाई ।
बोली मैं धन्य हुई भगवन, तव कृपा से फिर बुद्धी आई ॥
होती है प्रकृति स्वभाव से जड़, 'चेतन' तव अक्स बनाता है ।
मैं समझ गई सब भांति प्रभु, मुझ में तुम में क्या नाता है ॥
अच्छा प्रणाम स्वीकार करो, राधा अब ब्रज में जाती है ।
मिलना प्राणेश शीघ्र आकर, येही अरदास सुनाती है ॥

*** गाना ***

नाथ का हुक्म सिर पे लाऊं मैं ।
धर के नर देह बृज को जाऊं मैं ॥
टाल सकती है नहीं दासी आज्ञा ।
कन्या वृषभानु की कहाऊं मैं ॥
भूल जाना न कहीं मुझको स्वामी ।
करना ऐसा जो दर्श पाऊं मैं ॥
फिक्र रखना प्रभो शीघ्र आने का ।
जोड़ कर प्रार्थना सुनाऊं मैं ॥

दे प्रदक्षिणा कृष्ण की, बहु विधि विनय सुनाय ।
जन्म लीन्ह वृषभानु ग्रह, श्री राधे सुखदाय ॥
हो गई विदा राधा भी जब, राधेश सोचने लगे तभी ।
भूपर मम आदेशानुसार, देवता जन्म ले चुके सभी ।
अब प्रण के माफिक मुझको भी, ब्रज मंडल में चलना चहिये ।
कर दुष्ट दमन, भक्त न रंजन, पुनि धरा भार हरना चहिये ॥
यों कर विचार गोलोकनाथ, तैयार होगये चलने को ।
नर लीला द्वारा भूमी पर, एक अद्भुत अभिनय करने को ॥
श्रोताओं गउलोक दर्शन, कर लिया आपने सुखदाई ।
'श्रीलाल' चलो अब ब्रज में सब, हरि जन्म लखें अति हरषाई ॥
जय नटवर जय जन सुखद, जय भक्तन सुखकंद ।
जयति सच्चिदानन्द प्रभु, काटन भव भय फंद ॥

॥ श्रीकृष्णार्पणमस्तु ॥



श्रीकृष्ण चरित्र अथवा श्रीमद्भागवत

चतुर्थ भाग

श्रीकृष्ण जन्म

रचयिता—

श्रीलाल खत्री

प्रकाशक—महाभारत पुस्तकालय, अजमेर

मुद्रक—के. हमीरमल लूनिया, दि डायमण्ड जुबिली प्रेस, अजमेर.

प्रथम बार २,०००	सम्वत १९९१ विक्रमी सन् १९३५ ईस्वी	मूल्य ।) आने

कृष्णस्तु भगवान् स्वयम्

स्तुति

(१)

हे शक्ति युत मायापते हे भक्त के भगवान हे ।
मीमांसकों के कर्म हे ज्ञानी जनों के ज्ञान हे ॥
हे शम्भु, शैवों के सुखद हे जन के जीवन प्रान हे ।
दीनों के दीनानाथ हे गुणियों के गुण की खान हे ॥
पड़ती है जब जब आपदा रक्षा तुम्हीं करते सदां ।
शरणागतों को दे शरण संकट सभी हरते सदां ॥
मुझको भी लख आरत दयामय दयादृष्टि दिखाइये ।
अब देर करना व्यर्थ है हे कृष्ण बस आजाइये ॥

मंगलाचरण

(२)

पीताम्बर धर पाप हर, गोकलेश गोपाल ।
ताप हरन जन सुख करन, जय जय दीन दयाल ॥
जय जलशायी जलदसम, सुभग सुहावन रूप ।
सृष्टि रचन, पालन, हरन, शिव अज विष्णु स्वरूप ॥
तुम गुरु गणपति शारदा, सहस बदन तुम शेष ।
विघन हरो मंगल करो, जग व्यापक अखिलेश ॥
बंदहुं वेदव्यास सुत, श्री शुकदेव सुजान ।
गायो कलिमल हरन जिन, "कृष्ण चरित" गुणखान ॥

❋ श्लोक ❋

वंशीविभूषितकरान्नवनीरदाभात्पीतांबरादरुणबिंबफलाधरोष्ठात् ।
पूर्णेन्दुसुन्दरमुखादरविन्दनेत्रात्कृष्णात्परं किमपितत्वमहं न जाने ॥

❀ कथा प्रारम्भ ❀

व्यास पुत्र गोलोक की, कहकर कथा तमाम ।
बोले हे नृप अब सुनो, 'कृष्ण जन्म' सुखधाम ॥
जो नर सात्विक बुद्धी रखकर, निष्काम कर्म नित करता है ।
शक्तीनुसार अनधन देकर, दुखियाओं का दुख हरता है ॥
रहता है जिसका मन हरदम, सतसंग करन में हे भाई ।
बस प्राप्त उसे ही होती है, श्रीकृष्ण कथा अति सुखदाई ॥
प्रभु चरित को जो आनन्दित हो, गाते हैं सुनते सुनाते हैं ।
वे पतित पावनी गंगा के, जल सम पवित्र हो जाते हैं ॥
गउ – पुर के आदेशानुसार, ले चुके जन्म जब सुर सारे ।
राधे ने भी सखियों समेत, व्रज मंडल में शिशु तन धारे ॥
इसके आगे क्या हुआ भूप, वो सब तुमको समझाता हूँ ।
लेकिन पहले प्रसंग वस में, कुछ पूर्व कथा बतलाता हूँ ॥
उग्रसेन का भ्रात था, देवक नाम सुजान ।
उसकी कन्या देवकी, थी सब गुण की खान ॥
जिस समय ये व्याहन योग्य हुई, तब देवक कंस भवन आया ।
बातों ही बातों में उसको, प्रस्ताव हृदय का बतलाया ॥
फिर बोला तुम अपनी भगिनी, किसको व्याहोगे फ़रमाओ ।
किस वंश के भूषण से इसका, नाता जोड़ोगे कह जाओ ॥
हम भोजवंशि यादव कुल में, अति उत्तम माने जाते हैं ।
बस वृष्णि वंशवाले केवल, हम सम समानता पाते हैं ॥
हर्षित होकर कंस ने, कहा सुनो चितलाय ।
सूरसेन के पुत्र को, दो देवकि सुखपाय ॥

ज्यों बहिन देवकी दुनियाँ में, है रूप शील गुण की खानी ।
त्योंही वसुदेव भी हे चाचा, हैं धीर वीर पंडित ज्ञानी ॥
पहिली बहिनों की भी उनके, घर पर ही करी सगाई है ।
अस्तू दो वहीं इसे भी तुम, बस यही समझ में आई है ॥
यह सुन घर आकर देवक ने, ब्याह का सारा सामान किया ।
देकर टीका वसुदेव के घर, प्रोहित को फौरन भेज दिया ॥
हो गई सगाई हँसी खुशी, फिर जय ब्याह के दिन नियराये ।
तब सूरसेनजी ले बरात, मथुरा में ब्याहने को आये ॥
निर्विघ्न काम सम्पूर्ण हुआ, दुहुं कुल में प्रसन्नता छाई ।
फिर देवक ने रथ अश्व द्रव्य, दासी आदिक दीं हरषाई ॥
बचपन से ही अति प्यारी थी, देवकी कंस को प्रानों सम ।
लेकिन विवाह के होते ही, बनगई वही महमानों सम ॥
अस्तू जब हुई बरात विदा, तब कंस बहिन के ढिंग आया ।
अति प्रेम से सिर पर हाथ धरा, कुछ कहन सका जी भर लाया ॥

आखिर चढ़ खुद यान पर, वर वधु को बैठार ।
लगा हांकने प्रेम से, रथ को, रास सम्भार ॥

जिस समय सवारी मथुरा से, बाहिर कुछ दूरी पर आई ।
उस समय मेघ गरजन सम इक, आवाज गगन ने फरमाई ॥
"हे दुष्ट कंस! हुशियार हो अब, जग से तव पूर्ण हुआ नाता ।
तू चला है जिसको पहुँचाने, वो तेरे काल की है माता ॥
इसका जो अष्टम सुत होगा, यम सदन तुझे भिजवायेगा ।
ये होनहार तिहुँ काल में भी, मिथ्या नाहिं होने पायेगा" ॥
सुन वचन भोजकुल का कलंक, दुख रूप, पातकी अन्यायी ।
वो कंस प्रथम तो दुखी हुआ, फिर आँखों में लाली छायी ॥
उसका सब प्रेम बहिन के प्रति, जो था पल मांहि बिलाय गया ।
चढ़ गई धनुष सदृष्य भृकुटी, कर में झट खड्ग उठाय लिया ॥

कच पकड़ देवकी के कसकर, फ़ौरन रथ से नीचे लाया ।
धक्का दे गिरा दिया भू पर, कर अरुण नेत्र यों फ़रमाया ॥
ये कंस फ़लक की वाणी को, दम भर में वृथा बनाता है ।
मृत्यू की जड़ जो भगनी है, यमपुर उसको पहुँचाता है ॥
जब बीज नहीं होगा फिर किम, तरु बनेगा पल्लव आवेंगे ।
इसका जब किस्सा पाक होय, तब सुत कैसे जन्मावेंगे ॥

यों कह बधने के लिये, जब ये हुआ तयार ।
उसी समय बसुदेवजी, बोले बचन बिचार ॥

तुम वीर हो अति बलशाली हो, विद्वान शास्त्र के ज्ञाता हो ।
हो शरणागत वत्सल नृपवर, निज जन के तुम सुखदाता हो ॥
हे महावीर तुम्हरे गुण को, वीरों ने बहु विधि गाया है ।
ले जन्म भोज कुल में तुमने, इसका यश मान बढ़ाया है ॥
तुम ऐसे शूर शिरोमणि बन, भगनी बध करना चाहते हो ।
ये काम तुम्हारे योग्य नहीं, क्यों पाप का बोझ बढ़ाते हो ॥
टुक सोचो इक तो स्त्री जाति, दूसरे बहिन फिर शरणागत ।
ऐसी अबलाओं का चहिये, हे भूप तुम्हें करना स्वागत ॥
हे नृप यदि तुम ये कहो कि मैं, ले प्रान देवकी के इस छन ।
बस मृत्यु टाल दूँगा अपनी, होवेगा अजर अमर ये तन ॥
तो याद रखो है दवा नहीं, इस 'काल' की सकल जमाने में ।
हो मौत भी पैदा जन्म के संग, क्या रक्खा मन समझाने में ॥
इस जग में पैदा हुआ है जो, निश्चय वो तन का छोड़ेगा ।
और जिसने तन त्यागा वो फिर, नये तन से नाता जोड़ेगा ॥

जब निश्चित है मृत्यु अरु, नया जन्म गुणखान ।
तथा कर्म फल भोगना, भी अनिवार्य सुजान ॥

तो फिर निज मंगल की इच्छा, रखने वाले ज्ञानी नर को ।
ये चहिये कभी भूल से भी, साने न पाप में निज कर को ॥

इसलिये मेरी विनती सुनकर, इस काम से हाथ हटालो तुम ।
दो छोड़ शरणगत भगनी को, तलवार म्यान में डालो तुम ॥

इस प्रकार बसुदेव ने, कहे कंस प्रति बैन ।
पर न एक भाई उसे, रहे लाल ही नैन ॥
पापी की जिद देखकर, कर कुछ देर विचार ।
सूरसेन सुत ने कहा, आखिर हो लाचार ॥

हे महाराज निर्भय रहिये, भय गगन गिरा का तजदीजे ।
मैं शपथ पूर्वक कहता हूं, चित देकर नृपवर सुनलीजे ॥
इसका अष्टम लड़का हि नहीं, जितने भी सुत जन्मावेंगे ।
उन सब को बारी बारी से, हम तेरे ढिग ले आवंगे ॥
फिर चहे उन्हें जिन्दा रखना, या मौत की गोद सुलाना तुम ।
प्रभु को साक्षी कर कहता हूँ, समझो इसमें न बहाना तुम ॥
देवकी नहीं मृत्यू तेरी, डर तो केवल संतान का है ।
इसको बध करने से राजन, पातक कलंक अज्ञानता है ॥
सुनकर प्रण निज भगनी पति का, सब क्रोध कंस ने तज दीन्हा ।
बोला बसुदेव धन्य हो तुम, महापाप से मुझे बचा लीन्हा ॥
विश्वास है मुझे प्रतिज्ञा का, इसको मिथ्या न बना देना ।
जो जन्मे पुत्र तुम्हारे घर, उसको मुझ तक पहुँचा देना ॥
अब चलो तुम्हें घर पहुँचादूं, सम्बन्ध सदा सुखदाई हो ।
तुमसा बहनोई पाकर मैं, कृतकृत्य हुआ सब संशय खो ॥
यों कह डेरे तक करके इन्हें, अपनी रजधानी को आया ।
कुछ दिनों बाद पहिले सुत ने, ले जन्म इन्हें मुख दिखलाया ॥

प्रण ही प्यारा है जिन्हें, नहीं पुत्र धन धाम ।
वे बसुदेव चले तुरत, सुत ले तज सब काम ॥

दरबार में जा कंसासुर के, बोले ये पुत्र ले आया हूँ ।
लख इन्हें कंस बोला मुस्का, मैं तुम पर अति हरषाया हूँ ॥

सच्चे सज्जन प्रण के आगे, तिय सुत धन मोह दुराते हैं।
प्राणों की भी परवाह न कर, बस अपना वाक्य निभाते हैं॥
बस इसीलिये ले जाओ इसे, मुझको इसका है लोभ नहीं।
ले आना अष्टम बाल तुरत, बाकी से कोई क्षोभ नहीं॥
इतना कह बिदा किया इनको, इतने में द्वारपाल आया।
बोला देवर्षी नारद का, आगमन हुआ हे नरराया॥
आज्ञा दी भूपाल ने, मान सहित ले आउ।
सिंहासन के पास ही, ऋषि आसन बिछवाउ॥
हो गया प्रबंध बात कहते, इतने में मुनी चले आये।
लख इन्हें सभा वालों ने झट, आदर सूचक मस्तक नाये॥
फ़िर देखा मंजु मृदुल स्वर से, बीणा की तार खटकती है।
रट रही है जिह्वा कृष्ण नाम, घुटनों तक जटा लटकती है॥
सन्मान सहित नृप ने इनको, सुन्दर आसन पर बिठलाया।
और कहा हुक्म है क्या मुझको, किस हेतु पधारे ऋषिराया॥
तब बोले नारद मुनी, भल न कीन्ह ये बात।
सुत समेत वसुदेव को, लौटाया क्यों तात॥
तुमको क्या मालुम कौन पुत्र, बन जावे काल समय आये।
नभ बाणी के हैं अर्थ कई, क्या जाने कब क्या रंग लाये॥
यों कह एक चक्र खींच भू पर, फिर आठ लकीरें कर दीनी।
गिनवाई आई आठ आठ, इसने नृप की सब मति छीनी॥
इसके उपरान्त मुनी ने निज, चहरा गम्भीर बना करके।
यों कहा कंस से नेह सहित, सुनले तू ध्यान लगा करके॥
तेरा जीवन हरने के लिये, षडयंत्र एक देवों ने किया।
अपने अपने अंशों द्वारा, वृज मंडल में अवतार लिया॥
फिर वो भी इस यदुवंश में ही, अथवा गोकुल बरसाने में।
इसलिये भूप हो जाउ सजग, कुछ धरा नहीं गम खाने में॥

यदि तू जीना चाहता, जग में कुछ दिन और।
सावधान होजा तुरत, कर प्रबन्ध वा गौर॥
यों कह नारद मुनि चले गये, भगवान के गुण गण गाते हुये।
सुन सुरों की साजिश का वृतांत, बोला यों कंस रिसाते हुये॥
यादव गण सारे देवता हैं, प्रभु मम भगनी के सुत होंगे।
इनके हाथों सब निश्चर गण, मुझ सहित शीघ्र ही हत होंगे॥
है धन्यवाद ऋषि नारद को, जिसने ये भेद बताया है।
मैं शीघ्र नष्ट कर डालूंगा, उस जाल को जो फैलाया है॥
जाओ जाओ वीरों जाओ, यादव वंशों में घुस जाओ।
सब से पहिले वसुदेव के जा, उसके लड़के को ले आओ॥
मैं इसे ठिकाने लगाता हूँ, तुम यदुकुल सत्यानाश करो।
उनके बच्चों के पकड़ पकड़, मारो पीटो सिर काट धरो॥
इतना कह बसुदेव के, सुत को लिया मंगाय।
पकड़ हाथ में शीघ्र ही, दीन्हा गला दबाय॥
इस तरफ नाश यादव कुल का, सब तरह निशाचर करने लगे।
दारुण अत्याचारों से हो, पीड़ित सब इत उत भगने लगे॥
हो गया शून्य सा मथुरापुर, सब ने गिरि कंदर को ताका।
दुष्टों की नजरों से छिपाय, ज्यों त्यों निज बच्चों को राखा॥
श्रोताओं कंस के हाथों से, नारद ने जो कुछ करवाया।
था इसमें एक अति गूढ़ रहस्य, जिसके वश ये प्रसंग आया॥
अत्याचारी के हृदय दया, होना नहिं ठीक सुहाता है।
इससे प्रभु के अवतरने में, कुछ अधिक समय लगजाता है॥
जब तक न दुष्ट निज पापों का, घट पूर्ण लबालब भरते हैं।
तब तक न प्रभू उनको बधने, अवतार भूमि पर धरते हैं॥
अल किस्सा क्रमशः छः लड़के, देवक की कन्या ने जाये।
और दुष्ट कंस ने ले लेकर, सब को बध यमपुर पहुँचाये॥

तब हर्ष शोक देनेवाला, देवकि के सप्तम गर्भ रहा।
थे इसमें विश्नू के अंशी, "श्रीसहसबदन" बलधाममहा ॥
गउपुर के आदेश को, धार हिये महामाय।
गर्भखींच रोहणी जठर, पहुँचाया हरषाय ॥
फिर स्वप्न में सूरसेन सुत को, ये सकल माजरा दिया सुना।
आखिर बोली उस पत्नी को, दो नंदराय के यहां पठा ॥
माया के कहने के माफिक, रोहणि नन्दधाम पधार गई।
निज कोख को फलदाता लखकर, खुश हो व्रज ओर सिधार गई।
तहां गर्भ दिवस जब पूर्ण हुये, सुखदायक भादों मास आया।
शुभ शुक्ल पक्ष तिथि षष्ठी को, मध्यान्ह काल जब आ छाया ॥
हो गये प्रगट रोहिणी पुत्र, संकर्षण श्री बलराम धनी।
दुष्टों के घालक हरि अग्रज, सारे वीरों के शिरोमनी ॥
लख इन्हें देवतागण धाये, आकर गुणगान किया भारी।
फिर नन्दराय ने हर्षित हो, उत्सव को करदी तैयारी ॥
कुल के अनुसार संस्कृत कर, याचकों को दीन्हा दान महा।
ऐसा आनन्द हुआ व्रज में, जिसका वर्णन नहिं जाय कहा ॥
इधर अधूरे गर्भ का, सुनकर सब संवाद।
अति घबरा कर कंस ने, छोड़ा तुरत प्रमाद ॥
बुलवाकर मंत्री मंडल को, दरबार गुप्त इक लगवाया।
है गर्भ अष्टम अबके असुरों, क्या करना चहिये फ़रमाया ॥
तब मुँह देखी कहने वाले, मंत्री बोले क्या शंका की।
चुटकी से मसल डालियेगा, उस कीड़े की क्या चिन्ता की ॥
सुत के मोहवस वसुदेव यदी, इस बार करें कुछ चालाकी।
तो उन्हें क़ैद कर दीजियेगा, केवल प्रबन्ध ये है बाकी ॥
ये सुनते ही मथुरा पति ने फौरन ही बन्दोवस्त किया।
वसुदेव देवकी के घर पर, कई सिपाहियों को भेज दिया ॥

इनके सिवाय कई योधा भी, नंगी तलवारें लिये हुये ।
पहरा देते मुस्तैदी से, उस महल का घेरा दिये हुये ॥
अंतःपुर भी नहि खाली था, था पहरा सख्त जनानों का ।
उस दुष्ट कंस के हाथों से, सत्कार था ये गुणवानों का ॥
कर इन्तजाम पहरे का खूब, दे प्रति दरवाजों में ताला ।
हथकड़ी व बेड़ी पहिना कर, दंपति को कैद बना डाला ॥

कंसराज ये काम कर, हुआ कछुक बेफिक्र ।
सुनहु परीक्षित ध्यान धर, अब आगे का ज़िक्र ॥
समय आठवें गर्भ का, आया निकट विशेष ।
प्रभू तेज वसुदेव के, उर में हुआ प्रवेश ॥

इस कारण सूरसेन के सुत, रवि सम दिखलाई देते थे ।
सन्मुख न कोई लख सकता था, सब नीचे दृग कर लेते थे ॥
निशिनाथ को जैसे पूर्व दिशा, धारन करती है सुखपाई ।
तैसे हि देवकी गर्भ धार, हृदय में अतिशय हर्षाई ॥
करता है बास जिनमें सब जग, उनका उर में आवास हुआ ।
जिससे वसुदेव प्रिया के उर, सुख का परिपूर्ण विकास हुआ ॥
उसका वह मुरझाया चहरा, अब खिला हुआ दिखलाता था ।
था मुख पर ऐसा तेज व्याप्त, सब घर द्युतिमान लखाता था ॥
उत्साह और उल्लास भरी, हरि मातु दृष्टि आती ऐसे ।
प्रफुलित होती है तपस्विनी, तप फल मिल जाने से जैसे ॥
एक रोज कंस ने घर में आ, अपनी भगनी का मुख देखा ।
लखते हि दुष्ट हैरान हुआ, निज मृत्यू को सन्मुख देखा ॥
सोचा अस तेज देवकी के, मुंह पर न कभी पहिले छाया ।
बस आज पूर्ण विश्वास हुआ, इस गर्भ में मम शत्रू आया ॥

बध तो डालूं बहिन को, लेकिन पाप डराय ।
खैर हनूंगा पुत्र ही, सारी दया बिहाय ॥

भगवान कृष्ण का जन्म दिवस, ज्यों २ नजदीक अति आने लगा।
त्यों त्यों उस दुष्ट बुद्धि धर का, मन व्याकुलता दरसाने लगा ॥
सोते उठते खाते पीते, हरि ध्यान हृदय में रहता था ।
चिन्ता न घड़ी भर हटती थी, मन ही मन में वो दहता था ॥
स्वप्नावस्था सम हालत थी, वामांग फड़कते थे सारे ।
जितने भी लक्षण दिखते थे, थे अब अनिष्ट सूचक भारे ॥
थोड़े दिन और निकलने पर, भगवान का इतना ध्यान बढ़ा ।
जड़ में, चेतन में, जल, थल में, बस वही रूप दिखलाइ पड़ा ॥
उधर कंस के हो रहा, था चित में बौरान ।
इधर देवता कृष्ण का, जन्म समय पहिचान ॥
अपने अपने वाहन सजाय, मथुरापुर के ऊपर आये ।
और अंतरिक्ष में खड़े हुये, मंगलमय बाजे बजवाये ॥
फिर करन लगे आनन्दित हो, प्रार्थना प्रभू की सुखदाई ।
हे सत्यरूप, सच्चिदानन्द, आये हैं आपकी शरणाई ॥
हे भगवन आप सत्यव्रत हैं, सत ही संकल्प तुम्हारा है ।
तुम से मिलने का मार्ग प्रभू, सत है वेदों ने उचारा है ॥
हो आप प्रवर्तक सत्य के अरु, सत में ही अवस्थित रहते हो ।
कारण भी सत के आप हि हो, फिर सत्य प्रेम को गहते हो ॥
हे ईश सत्वगुण सम अनेक, अवतार आप जग धारते हैं ।
करते कल्याण सज्जनों का, दुर्जनों का गर्व उतारते हैं ॥
हैं आप सत्वगुण धाम विभो, फिर सत्वनिष्ठ परिपूरन हैं ।
आनन्दायक दर्शन तुम्हरे, करते समस्त अघ चूरन हैं ॥
तुम्हरा न निरूपण हो सकता, गुण नाम रूप जन्मों द्वारा ।
क्योंकि हैं आप इन सब के परे, जेहि वेद नेति कह कर हारा ॥
जन्म मरण से रहित हो, लेत जन्म जग आय ।
क्रीड़ा कौतुक के सिवा, कुछ न बखाना जाय ॥

संत धेनु जन सुख करन, हरन भूमि का भार ।
निराकार नर देह को, करो नाथ स्वीकार ॥
शुष्क ज्ञान कर्मठ करम, काम न आवे एक ।
केवल भक्ती ही रखे, तुव दर्शन की टेक ॥

॥ गाना ॥

आवो आवो हे जन मन रंजन हरन भूमि कर भार ।
निराकार निर्लिप्त निरीहं नित अव्यक्त अनामा ।
जग कर्ता भर्ता अरु हरता अशरण शरण मुरार ॥ आवो ॥
कब से टेर रहे हैं तुमको हे संतन हितकारी ।
आवो देर करो मत स्वामी सुनलो विनय हमार ॥ आवो ॥
जब जब पाप बढ़े भूमी पर तब तब हे असुरारी ।
निर्गुण निर्मम होने पर भी आते नर तन धार ॥ आवो ॥



यों कर हरि आराधन सुरगन, हरषाते निज निज धाम गये ।
इस तरफ भूमि पर तेहि क्षण में आनन्द हुये कई नये नये ॥
जिससे वर्षा तो गुप्त हुई, पृथ्वी पर ऋतुपति आय गये ।
तरु पल्लव पुष्पलता द्रुम से, व्रज के निकुंज सब छाय गये ॥
शोभित हो गये सरोवर सब, बहुभांति कमल खिल जाने से ।
मनभावन ध्वनी हुई पैदा, भौंरों के शोर मचाने से ॥
शीतल सुगंध अरु मंद पवन, चलरही सुःख देने वाली ।
कई प्रकार के शुभ सगुन देख, छाई सब के उर खुशियाली ॥
तरु डालों पर सुन्दर सुखकर, कई तरह के पत्ती कूज रहे ।
मानो प्रभु जन्म समय को वे, अपनी भाषा में बूज रहे ॥
कोकिल अपनी मृदुवानी से, प्रभु का संवाद सुनाय रही ।
रटता जो पपैया पीउ पीउ, उसको धीरज बंधवाय रही ॥

सारे व्रज के गोवत्स आज, फूले नहिं अंग समाते हैं ।
चर अचर के मुख से सुनते हैं, हरि आते हैं हरि आते हैं ॥
था सुखद महीना भादों का, वर्षा की युवा अवस्था थी ।
पर कछुक समय के लिये हरी, इच्छा ने और व्यवस्था की ॥

असशोभा ऋतुपतिदिखा, भये अलच्छ तुरन्त ।
पावस प्रगटी देख फिर, जन्म समय भगवन्त ॥

छा गये मेघ नभ मण्डल में, धीमा धीमा जल पड़ने लगा ।
फिर कृष्णपच्छ की रजनी थी, यों अंधकार भी बढ़ने लगा ॥
थी तिथी अष्टमी वार था बुध, नच्छत्र रोहिणी आया था ।
था हर्ष योग वृष लग्न और, चांदी का चौथा पाया था ॥
थी मध्य निशा, प्राची दिशि में, धुंधला प्रकाश दरसाता था ।
हो रहा था आधा चन्द्र उदय, लख दृश्य हृदय हरषाता था ॥

सूर्य आदि ग्रह शुभअशुभ, सब शुभ भे तिहि काल ।
अखिल लोक आश्रय विभो, प्रगटे कृष्ण कृपाल ॥
अजर अमर निर्मम निर्गुण, अगम निगम सुरराज ।
सगुण भये स्वेच्छा सहित, केवल भक्तन काज ॥

उस अद्भुत अनुपम मूरत का, किम प्राकृत ज़बां बयान करे ।
किन शब्दों को किन बचनों को, किन भावों को हिय मांहि धरे ॥
जहं बुद्धि पंगु हो जाती है, मन का मनत्व मारा जाता ।
चिंतन कर जिसका चिन्तन भी, हो थकित शांत दृष्टी आता ॥
योगी वर्षों आसन लगाय, मम नियम का साधन करते हैं ।
कर प्राणायाम समाधि लगा, उर ध्यान तेज का धरते हैं ॥
तब कहीं उन्हें आभास मात्र, देता हृदय में दिखलाई ।
बस उसी से वे कृत कृत्त होय, पाते हैं मुक्ती सुखदाई ॥
ऐसे अचिन्त्य राधावर का, वर्णन करना कुछ सहज नहीं ।
न पहिले हुआ न अब होना, आगे की आस भी महज नहीं ॥

पर महा भाग वसुदेवजी ने, उस रात सूतिका गृह भीतर ।
जो कुछ देखा था वह ये था, श्रोताओं सुनों ध्यान देकर ॥
सूरसेन सुत ने लखा, बालक अति कमनीय ।
नेत्र हैं जिसके कमलसम, छवि रतिपति दमनीय ॥
मुखपर सुन्दर मुरली शोभित, श्रीवत्स चिन्ह हिय में राजे ।
गल में कौस्तुभ मणि कान्तिवान, नवनीरद सम तन द्युति भ्राजे ॥
उन्नत ललाट आजानु बाहु, पीताम्बर धारन किये हुये ।
मकराकृत कुण्डल क्रीट मुकट, त्रिभुवन की शोभा लिये हुये ॥
द्युतिहीन हो द्युति लख दंत प्रभा, नूपर पायन छवि छाई है ।
तन लख कोटिन मन्मथ लाजे, सुघराई ही सुघराई है ॥
आनन पर मृदु मुसकान लसे, बंसीधर वन्सि बजाते हैं ।
मानहु निर्भय करने जग को, प्रभु मीठी तान सुनाते हैं ॥
हो चकित दम्पती उठ बैठे, रोमांच वदन में हो आया ।
आनन्द की कुछ सीमा न रही, परते पर का दर्शन पाया ।
वो भी सुत के रूप में, फिर दुख का क्या काम ।
अस्तु कहा वसुदेव से, हे नटवर सुख धाम ॥
आहा मैंने अब पहिचाना, हो आप प्रकृति पर पुरुषोत्तम ।
है धन्य भाग्य मेरा स्वामिन, जो पाया तुव दर्शन उत्तम ॥
हो आप एक पर माया से, अनगिनती रूप बनाते हो ।
दिखते हो लिप्त पर असल में तुम, निर्लिप्त हि माने जाते हो ॥
ज्यों अग्नि रहे ईंधन में अरु, आकाश रहे बादल भीतर ।
त्यों सब में हो सब से हो पृथक, हे गुणतीत सब गुण आगर ॥
पृथ्वी सम सर्वाधार हो तुम, व्यापक सर्वत्र पवन सम हो ।
हो सर्व साक्षी विश्वात्मा, सर्वेश सनातन निर्भय हो ॥
हे जगदीश्वर इस समय आप, भू भार हटाने आये हैं ।
दुष्टों का नाश भक्तों की आस पूरन करने प्रभु धाये हैं ॥

इस घर में आप प्रगट होंगे, ये सुधि उस दुष्ट कंस ने पा ।
मेरे छः बच्चों के भगवन्, हो दया विहीन दिया मरवा ॥
मैं शरण हूँ मम दुख दूर करो, यों कह वसुदेव ने सिरनाया ।
तब देवि देवकी ने उठकर, अति आतुरता से फ़रमाया ॥
ईश अखिल ब्रह्मांडपति, आदि देव परमेश ।
गोलोकी परिपूर्णतम, परते परे परेश ॥
हे दया सिंधु अंतरयामी, हे माया के मोहनेवाले ।
हे आरत जन के ताप हरन, दर्शन से अघ खोनेवाले ॥
हैं आप क्षोभ अरु अभय रूप, मैं शरण आपकी आई हूँ ।
उस अधम कंस से अभय करो, जीवन भर अति दुख पाई हूँ ॥
मम एक प्रार्थना और भी है, इस दिव्य रूप को गुप्त करो ।
और चर्म चक्षुओं के लायक, नट नागर लौकिक रूप धरो ॥
फिर कंस ये जानन पाय नहीं, प्रभु हमरे यहाँ जन्माये हैं ।
ऐसा कुछ उचित प्रबंध करो, हम भय से अति घबराये हैं ॥
सुनकर दंपति की कथा, बोले विश्व नरेश ।
सोच फिकर सब छोड़दो, होंगे दुःख निशेष ॥
फिर कहा कि पूर्व जन्म में तुम, सुतपा नामी थे प्रजापती ।
थी देवकि पृश्नी पतिव्रता, तुव चरनन में रखती थी रती ॥
सुत हेतु विपिन में जा तुमने, तन मन से मुझको ध्याया था ।
जिससे प्रसन्न हो तुम्हरे ढिंग, मैं वर देने को आया था ॥
'हम तुम समान सुत चाहते हैं', जब तुमने मुझसे ये मांगा ।
मुक्ति तक की परवाह न की, तब मेरे हिय भा अनुरागा ॥
मैंने तिहुँ लोक खोज देखा, मुझसम न दिया कोई दिखलाई ।
तब तप का फल देने के लिये, मैं हुआ तुम्हारा सुत आई ॥
तब पृश्नि गर्भ नामक सुत हो, जन्मा था तुम्हरे यहाँ प्रथम ।
द्वितिय बामन अवतार धरा, जब कश्यप अरु अदितीथेतुम ॥

अबके वसुदेव देवकी हो, तुम यदुकुल में उपजाये हो ।
मम भक्ती के कारन अब फिर, सुत रूप में मुझको पाये हो ॥
मुझको अब शीघ्र हि गोकुल में, नंदराय के घर पहुँचाना तुम ।
मेरी माया तहां सुता बनी, उसको यहाँ पर ले आना तुम ॥
"मेरा जैसा लड़का होवे, और उसका लाड़ लड़ावें हम" ।
वर माँगा नंद यशोदा ने, यहि कारन गोकुल जावें हम ॥

तहाँ बाल लीला करूँ, कछुक दिवस तिन पास ।
पुनि मथुरा में आन कर, करूँ कंस का नास ॥
ऐसे कहि गोलोकपति, कर निज रूप दुरंत ।
दंपति के सन्मुख हुये, बालक रूप तुरंत ॥

घनश्याम रूप बालक लखकर, वसुदेव ने हिय में धार लिया ।
फिर भगवान की आज्ञानुसार, गोकुल जाने का विचार किया ॥
ये सोचते ही प्रभु माया से, बेड़ी हथकड़ी से मुक्त हुये ।
द्वारों के ताले खुले तुरत, प्रहरी निद्रा से युक्त हुये ॥
लख चमत्कार बसुदेव ने झट, एक सूप में सुत पौढ़ाय लिया ।
रख सिर पर अगम रात्रि में, गोकल कीजानिब गमन किया ॥
ठंडी ठंडी चल रही पवन, नभ था मेघों से घिरा हुआ ।
पल पल में चमकती थी बिजली, गर्जन का शब्द था भरा हुआ ॥
गिर रहा था जल फिर दृढ़ता से, बसुदेव चले ही जाते थे ।
ऊपर अनंत हो अलख रूप, हरि पर निज फन फहराते थे ॥

चलते चलते अंत में, पहुँचे यमुना तीर ।
वर्षा ऋतु की वजह से, था अपार तंह नीर ॥

कर ध्यान कृष्ण का ज्योंही ये, यमुना में पांव बढ़ाते हैं ।
त्योंही कालिंदी के जल को, निज तन पर चढ़ता पाते हैं ॥
कारन रवितनया ने सोचा, जाने फिर कब अवसर आवे ।
भगवान के चरन चूमने का, किस तरह लाभ छोड़ा जावे ॥

ये सोच बढ़ी घुटनों से हो कटि छोड़ कंठ में लहराई ।
देवकीनाथ ने ये लखकर, सोचा अब बुरी घड़ी आई ॥
अंतरयामी ने जब जाना, पितुदेव बहुत घबराते हैं ।
तब अपने चरनों का स्पर्श, रविनंदनि को करवाते हैं ॥
प्रभु पद छूकर यमुना रानी, रस्ते से अलग बही जाकर ।
हो पार नंद के द्वारे पर, सुत सूरसेन पहुँचे आकर ॥
जीने से चढ़ अंतःपुर में, बसुदेव ने झट प्रस्थान किया ।
पुनि शयनागार यशोदा के, जाने का चित में ध्यान किया ॥
वहाँ देखा सब माया के वश हो मग्न नींद में सोते हैं ।
लख अपने मन के लायक ही, हरि पिता हृदय खुश होते हैं ॥
माया कन्या के रूप में थी, नंदरानी थी खुर्राटे में ।
नंदराय नींद में गाफिल थे, अनुचर गण थे सन्नाटे में ॥
मुख चूम पुत्र को लिटा दिया, कन्या ले अपनी राह गही ।
होगया फिक्र सब दूर तुरत, मिलगई मुराद हृदय में चही ॥
जल्दी रस्ता पार कर, निज गृह पहुँचे आय ।
लड़की पत्नी को दई, फिर बोले हरषाय ॥
प्यारी फिलहाल पुत्र अपना, रिपु के फंदे से निकल गया ।
जो होगा देखा जावेगा, प्रवन्ध दुष्ट का विफल भया ॥
देवकि बोली परवाह नहीं, गर मुझे मार डाले भाई ।
सुत तो बच गया अगर मृत्यू, आवेगी होगी सुखदाई ॥
बेड़ी हथकड़ी पहन दोनों निश्चंत होय कर बैठ गये ।
मुंद गये द्वार खुद ताले भी, कुन्डों में आपहि पैठ गये ॥
रो उठी बालिका तब फौरन, पहिरेवाले भड़ भड़ा उठे ।
चैतन्य होगये योधा भी, हथियार बांध फड़फड़ा उठे ॥
दौड़ाया एक सिपाही को, वो कंस राज से जा बोला ।
"बालक जन्मा" यह सुन करके, नृप के हिय का आसन डोला ॥

घबराकर शैया छोड़ तुरत, हथियार उठा तैयार हुआ।
वसुदेव सदन जाने के लिये, आतुर हो घर से बाहर हुआ॥
जा रहा था गिरता पड़ता वो, वस्त्रों का भी कुछ ध्यान न था।
खुल गये थे बाल पसीने से, तन तर था पर कुछ भान न था॥
ऐसे विव्हल भाव से, सौतिक गृह में जाय।
मांगा बालक को तुरत, आंखें लाल बनाय॥
निष्ठुरता की प्रति मूर्ति रूप, अवलोकन कर अपना भाई।
कंपायमान देवकी हुई, वसुदेव ने भी सुधि बिसराई॥
कन्या को आंचल में छिपाय, कन्या की माता कहती है।
हे भैया ये तव भानजी है, मत वध कर छाती दहती है॥
मारे मेरे छः सुत तैंने, इसको तो छोड़ दे हत्यारे।
अंतिम संतान ये है मेरी, कर दया इसे मत ना मारे॥
मैं तेरे पावों पड़ती हूँ, जी इससे बहलाऊंगी मैं।
होगी ये मम मन का रंजन, "मां" इससे कहलाऊंगी मैं॥
तू कोटि सिंह सम बलवाला, हो क्यों घबराया जाता है।
क्यों स्त्रि जाति का बध कर के, अपने सिर पाप चढ़ाता है॥

*** गाना ***

प्रभो सुनाऊं व्यथा मैं किसको सितम का दरिया उमड़ रहा है।
अनाथ दीनों की गर्दनो पर जुल्म पापियों का बढ़ रहा है॥
हने हमारे जिगर के टुकड़े हा याद आते है प्यारे मुखड़े।
पलक में घर बार सारे उजड़े परन्तु खल अब भी अड़ रहा है॥
बची है नन्ही सी बालिका ये मगर उसे दिखती कालिका ये।
है सारा परताप काल का ये जो सिंह मच्छर से डर रहा है॥
बचा दे हे भ्रात इस कली को खिलादे मेरी हृदय कली को।
होगा धरम तुझसे महाबली को रे मानजा क्यों बिगड़ रहा है॥

कहा कंस ने बहिन तू, है बिलकुल नादान ।
हरि इच्छा के भेद को, तिहूं लोक नहिं जान ॥
हरि की माया से काठ तुरत, भूधर को नष्ट भ्रष्ट कर दे ।
मामूली कीड़ा शेरों को, बिन श्रम पाये बधकर धरदे ॥
मच्छर हाथी से फ़तह पाय, मूषा बिलाव को ग्रास जावे ।
मैंडक भुजंग का नास करे, त्रण अग्नी पर काविज़ आवे ॥
अस्तू विचित्र है ईश गती, कुछ भी नहिं आवे कहने में ।
क्या खबर मौत बन जाय मेरी, ये कन्या जीवित रहने में ॥
इसीलिये न एक सुनूंगा अब, यों कह बच्ची को छीन लिया ।
देवकि रोई बहु विनय करी, पर कंस ने तनिक न ध्यान दिया ॥
दोनों हाथों से पैर पकड़, चाहा पत्थर पर दे मारे ।
करदे उस का अंग चूरचूर, दिल से दुशमन का भय टारे ॥
इतने में माया हाथ से छुट, फौरन नभ मंडल को धाई ।
कर रूप प्रगट निज, कंस के प्रति, यों बोली बानी भयदाई ॥
रे मदान्ध निश्चर अधम, यदुकुलकमल तुषार ।
कमर बांध यम सदन हित, हरि लीन्हेउ अवतार ॥
अष्ट भुजा के वाक्य सुन, हुआ कंस को रोष ।
पर अपना चारा न लख, करन लगा अफ़सोस ॥
हा वृथा मूर्खता के वश हो, मैंने कस अत्याचार किया ।
अपनी हि वहन के पुत्रों का, जीवन हर दुर्व्यवहार किया ॥
अब जाना सुरपुरवासी भी, धोखा देने में चढ़े हुये ।
नर लोक निवासी लोगों को, ठगने छलने में बढ़े हुये ॥
नभ वानी सत्य नहीं होगी, यदि पहिले से मालुम होता ।
तो कभी नहीं इन हाथों से, मैं बच्चों का जीवन खोता ॥
पर अब पछताने से क्या हो, जो गुजर गया वो गुजर गया ।
पीटो लकीर चाहे जितनी, रस्ते से सर्प तो निकल गया ॥

हे सूरसेन सुत हे देवकि, मैं दोषी आज तुम्हारा हूँ।
जो चाहो दंड मुझे दो तुम, मैं पापी हूं हत्यारा हूं ॥
विलखा कर तब दंपती, बोले सुनो नरेश।
होनी के वश रहत हैं, विधि, हर, सर्व सुरेश ॥
हम किस पर क्रोध करें राजन, किरपा किसपर दिखलावें हम।
दें सजा किसे परितोषक भी, किसको जग में दिलवावें हम ॥
है कौन किसी का यहां स्वामी, अरु कौन किसी का नौकर है।
जो कुछ है सब कर्मानुसार, अच्छा व बुरा, बद, बेहतर है ॥
सब अपने कर्म भोगने को, एकत्रित होते नरराई।
होते हि प्रथम भुगतान पूर्ण, रस्ता ले लेते वरियाई ॥
हे भूप हमें कुछ ग्लानि नहीं, जो तुम द्वारा यह कर्म हुआ।
ऐसा ही होना निश्चित था, केवल ये काल का धर्म हुआ ॥
तब हर्षित होकर कंसराज, बोला दोनों अवतारी हो।
सात्विक बुद्धी सज्जन स्वभाव, ज्ञानी अरु पर उपकारी हो ॥
मैं अति शरमिंदा हूं तुम ढिंग, अवचित सेमाफि दिलादो तुम।
अज्ञान जनित मम दोष भुला, निर्मल निज हृदय बनालो तुम ॥
यों कह बंधन मुक्त कर, कर सत्कार विशेष।
अपने महलों को गया, सुख पा कंस नरेश ॥
दरबार में आ मंत्री बुलाय, कन्या का हाल कहा सारा।
फिर वोभि कहा नभ में जाकर, जो था माया ने उच्चारा ॥
फिर बोला अब क्या करें कहो, जिससे शत्रू मारा जावे।
निष्कंटक अपना राज्य होय, सब विघ्नो को टारा जावे ॥
नभ गिरा निरी मिथ्या निकली, मेरा सारा श्रम व्यर्थ गया।
पर कसक न दिल की दूर हुई, बालक बधने का पाप भया ॥
तब प्रधान मन्त्री उठा, बोला शीश नवाय।
जैसी आज्ञा हो प्रभू, वो दीजे फरमाय ॥

यदि मुझसे राय पूछते हो, तो व्रज में निश्चर भिजवादो ।
नव जात बालकों को मंगवा, जल्लादों द्वारा मरवादो ॥
इन बच्चों में तव बैरी भी, निश्चय ही मारा जावेगा ।
इस तरह ये आया हुया कष्ट, सहज हि में टारा जावेगा ॥

ये सुन नृप तो होगया, इन्तजाम मशगूल ।
गोकुल की गाथा सुनो, श्रोताओं सुखमूल ॥
उधर गये वसुदेव घर, इधर उठी नंदतीय ।
बाल शिशू लेटा हुआ, देखा अति कमनीय ॥

उस बालक की सुन्दरता का, वर्णन करना है कठिन महा ।
सुन्दर घनश्याम सुधानिधि का, कोमल मंजुल था वदन अहा ॥
लख निरख हिये लिपटाय लिया, रोमांचित तन पुलकित मन था ।
उस प्रोढ़ा यसुदा सुखदा का, सुत क्या था बस जीवनधन था ॥
मनकी मुराद होगई पूर्ण, फूली नहिं अंग समाती थी ।
थी भूल रही सारी सुधिबुधि, मुख चूमती थी चिपटाती थी ॥
इतने में जगे नंद बाबा, तुरत हि प्रसूतिग्रह आय गये ।
लख पुत्र अनोखा मन भावन, हरषाय गये पुलकाय गये ॥
पुनि अल्प समय में अनुचरगण, तज नींद तहां पर चलि आये ।
सुन पुत्र जन्म निज मालिक ग्रह, प्रमुदित हो जहां तहां धाये ॥
बिजली की तरह खबर फैली, सारा गोकुल चैतन्य हुआ ।
चर, अचर, वृक्ष, थावर, जगंम, कह उठा आज मैं धन्य हुआ ॥

जिसने जब जिस जां सुना, नंद सुवन का हाल ।
आ पहुँचा तत्काल ही, खुश होकर "श्रीलाल" ॥

नंदराय के घर के बाहिर थी, एक बड़ी कुशादा मंजु स्थली ।
चौपाल जिसे सब कहते थे, नितप्रति जुड़ती थी सभा भली ॥
वहां पर तुरत हि छिड़काव हुआ, बिछगई बिछायत सुखदाई ।
चंदवे ताने फौरन उसपर, बहुरंग पताका फहराई ॥

इतने में नौबत खाना भी, नक्कारे खूब बजाने लगा।
बज उठे ढोल शहनाई आदि, मृदंग जोश फैलाने लगा॥
सारा गोकुल खलबला उठा, वृज वनितायें तज धाम चली।
आ जुड़े बाल गोपाल सभी, ले लेकर भेटें भली भली॥
जितने थे मंगल द्रव्य तहां, आवश्यक बिन मांगे आये।
उनको तहां गोप कुमारों ने, जाबजा उठाकर रखवाये॥
तोरण अरु बंधन बार उधर, फुरती से बांधी जाती थी।
इस तरफ गोप कुल कामिनियां, मंगलमय गीत सुनाती थी॥

नंद महर ने तब तुरत, दूत दिये पठवाय।
वे विप्रन को संग ले, आ पहुँचे हरषाय॥

आते ही उन भूदेवों ने, करवाया जात करम सत्वर।
शिशु को निज माता सहित निल्हा, पौढ़ाया उत्तम शैया पर॥
उस अनुपम बालक को जिसने, इस समय वहां देखा आकर।
इकटक रहगया चकोर हुआ, शशि सम सुन्दर आनन पाकर॥
श्री नंदराय भी क्षण क्षण में, निज घर के भीतर जाते थे।
लखते थे शिशु को बार बार, पर नेत्र न तृप्ती पाते थे॥
गोपाल गोप नंदन सारे, गउ बछड़ों को थे सजा रहे।
जो सजा चुके थे पहिले ही, वे लाकर द्वारे जमा रहे॥
सोने के सींग, रजत के खुर, मखमली झूल गउ को पहना।
विप्रों को दान दे रहे थे, फिर था जिनपर अमुल्य गहना॥
इस तरह लक्ष गउ दान करीं, ब्रजनायक ने हरषा करके।
याचक होगये अयाचक सब, अतुलित अपार धन पा करके॥

विप्र वृन्द संतोष पा, प्रमुदित देहिं अशीश।
चिरंजीव हो पुत्र ये, ब्रज मंडल का ईश॥

उस समय तो बस ये हालत थी, जो कुछ नंदसुत के हित लाया।
झोली भरदी मणि माणिक से, मुंह मांगा अन्न वस्त्र पाया॥

केवल व्रजराज न थे दानी, व्रजवासी भी हो प्रसन्न बदन ।
श्रद्धा माफिक थे लुटा रहे, गहने कपड़े व अन्न गोधन ॥
त्रैलोक्यनाथ जहँ आजावें. वहां के वैभव का वर्णन हो ।
यह कठिन हि नहीं असम्भव है, जो कुछ भी उसका प्रवचन हो ॥
पुनि जहं गोधन उत्तमधन है, जीवन गौ सेवा पगा हुआ ।
आश्चर्य नहीं वह व्रजमंडल, था रत्नादिक से जगा हुआ ॥
कुछ गोप सुवन मंडली बना, बंशी पर तान लगाते थे ।
आनन्दित रहे यशोदा सुत, उत्साहित हो यह गाते थे ॥
कहिं ग्वालबाल ले दही दूध, आपस में तहां उछालते थे ।
कई गुप्तरूप से दूसरे के, मुंहपर मक्खन मल डालते थे ॥

व्रजमंडल था उस समय, सुन्दरता की खान ।
जगनायक पैदा हुये, आनन्द बरसा आन

व्रज की अनुपम अद्भुत शोभा, अवलोक देवतागण सारे ।
थिर रह न सके आये फौरन, श्री नंदरायजी के द्वारे ॥
जंगल में ही निज भेष दुरा, झटपट गउओं के ग्वाल बने ।
आ मिले गोप वृन्दों में सब, हरिगुण गाते खुशहाल बने ॥
लख इनका तेज प्रभाव महा, सारे व्रजवाले चकराये ।
सोचा ऐसे सुन्दर ग्वाले, क्या जाने किस पुर से आये ॥
लेकिन श्रीकृष्ण महोत्सव में, किस नर को इतनी फुरसत थी ।
जो पूछता इनका नामो निशां, सब लगन में थे विश्वम्भर की ॥

अस्तु देवता बिन रुके, जच्चा गृह में जाय ।
प्रभु दर्शनकर मुदित हो, बोले यों सिरनाय ॥

बस आज सफल ये जन्म हुआ, जिससे प्रभु के दर्शन पाये ।
होगया उदय कुछ महा पुन्य, जिसने ये दिन हैं दिखलाये ॥
हे शत्रुदमन, सर्वेश प्रभू, हे आरत दुख टारन स्वामी ।
हे करुणा निधि, जग के जीवन, आनन्द कंद अंतरयामी ॥

खल गंजनहित, नर देह धार, सच्चिदानन्द यहां आय गये।
हम धन्य हुये व्रज धन्य हुआ, संसार के कष्ट विलाय गये॥
अब देखेंगे इन नयनों से, कुल लीला तुम्हरी हे भगवन।
यसुदा, नन्दादिक के प्यारे, श्रीराधाजी के जीवनधन॥
पहिले धारे थे कई रूप हम तव भि दर्शहित धाये थे।
पर ऐसे सुख ऐसे आनन्द, ऐसे प्रमोद नहिं पाये थे॥
हे गउद्विज धरा संत रक्षक, हे कलिमल हरन कृपासिंधो।
हे अशरण शरण विना कारण, बनते हो आप दीनबंधो॥
इतने में श्री त्रिपुरारी ने, तांडवनृत का आरम्भ किया।
अवलोक अपर देवों ने भी, श्री उमानाथ का साथ दिया।
ये देख और भी कई गोप, इस दल में मिले अनन्दित हो।
एक ऐसा समा बंधा अनुपम, हो गये मग्न तन की सुधि खो॥
ऐसा मालुम होता था जनु, चर अचर सृष्टि सब नाच रही।
दो अनपायनि भक्ती पद की, ये त्रिभुवन पति से याच रही॥

❋ गाना ❋

जशन घर नन्द के छाया मुबारिक बादियां गावो।
बधाई है बधाई है हृदय आनन्द उपजाओ॥
सगुण वपु धार त्रिभुवन धन पधारे आज गोकुल में।
कटेंगे कष्ट भक्तों के हृदय में आश ये लावो॥
निशाचर रैन इति करने गऊलोकी दिवाकर ने।
अयोनी जन्म धारा है विनय अति प्रेम से गावो॥
हमें तो हद्द दरजे का हुआ आनन्द हृदय में।
चिरंजीवो ये व्रजभूषण अनेकों खेल दिखलाओ॥

अपना आपा भूल कर, प्रेम मगन थे लोग।
ज्ञान कर्म कुंठित हुये, गया सुतल को योग॥

आख़िर प्रभु पद शीश ना, शिवयुत देव समाज ।
चले सकल गृह आपने, समझ हुआ सुर काज ॥
इस प्रकार हरि जन्म का, उत्सव हुआ समाप्त ।
नित प्रति व्रजवासीन को, होता नव सुख प्राप्त ॥
कछुक दिवस बीते जभी, प्रात समय इकबार ।
दिव्य रूप एक विप्रवर, आये नन्द दुवार ॥

थे विप्र तपस्वी तेजस्वी, सारी विद्या पारंगत थे ।
थे जटा जूट धारी उज्ज्वल, अंबर तन में परिवेष्टित थे ॥
उन्नत ललाट में तिलक दिये, गल में पहने तुलसी माला ।
लग रही भभूति सकल तन में, दब रही बगल में मृगछाला ॥
था गौर वर्ण सुन्दर आनन, कर मांहि कमण्डल राज रहा ।
जप रही थी जिव्हा कृष्ण नाम, संग में शिष मंडल साज रहा ॥
लख शान्त भव्य तेजस्वी अरु, अनुपम सुखदाई आनन को ।
उठधाई यशुमति तुरत तभी, ऋषि के स्वागत आवाहन को ॥
दे अर्घपाद्य इनको विधिवत, पुनि शिष्यों का सत्कार किया ।
फिर हाथ जोड़ सिर को झुकाय, श्रद्धा से इन्हें जुहार किया ॥
और कहा हैं धन्य भाग्य मेरे, हे देव जो आप पधारे हैं ।
कृपया मुझको बतलाइयेगा, किस कुल के आप उजारे हैं ॥

वाल्मीक, कश्यप हो तुम, या हो विश्वामित्र ।
श्रंगी, सौरभ, पंचसिख अत्रि मरीच पवित्र ॥

या अष्टावक्र, अंगिरा हो, मुनि याज्ञवल्क, वैशम्पायन ।
वा दुर्वासा, कर्दम, पुलस्त्य, या वामदेव, नर नारायन ॥
अथवा हो च्यवन, जैमिनि ऋषि, या पाराशर मुनि, शुक ज्ञानी ।
वा गिनूं मारकंडे, लोमश, देवल, वशिष्ट मुनि, अघहानी ॥
हो किधों अश्वनी कुंवर आप, श्री गर्ग, व्यास, भारद्वाजा ।
या समझूं तुम्हें कपिल, गौतम, अथवा प्रचेत, भृगु ऋषिराजा ॥

श्री शेष, महेश, सुरेश किधौं, मुनि रूप बना यहां आये हैं ।
वा स्वयम् कमलभू ब्रह्मा के, इन दृगों ने दर्शन पाये हैं ॥
होती है तिरिया योनि अधम, मूरख अभिमानिन अज्ञानी ।
कर कृपा क्षमा कर दीजियेगा, यदि हुई कोई हो तव हानी ॥
नंदरानी के श्रवणकर, सुन्दर वाक्य विनीत ।
पुलकाकर श्रीगर्ग मुनि, बोले वचन सप्रीन ॥
मैं प्रोहित यदुवंशियों का हूँ, जग मांहि गर्ग कहलाया हूँ ।
रोहिणि सुत नाम करन करने, वसुदेव का भेजा आया हूँ ॥
तुमने जो हमसे वचन कहे, सुन हृदय मेरा हरषाता है ।
जिस घर में तुमसी नारी हो, वो धाम स्वर्ग बन जाता है ॥
इतने ही में चौपाल से उठ, नंदराय भि तहां चले आये ।
श्रीगर्ग मुनी को कर प्रणाम, पुनि वचन प्रेम से फरमाये ॥
हो गया आज मैं कृत्य कृत्त, तुमसे मुनि के दर्शन पाकर ।
कर दिया पवित्र भवन मेरा, तव चरणों की रज ने आकर ॥
यदपि आप इच्छा रहित, स्वार्थ रहित हैं नाथ ।
स्वयम् विचरते भूमि पर, करत अनाथ सनाथ ॥
तदपि दोजिये हुक्म कुछ, करूँ आपकी सेव ।
धर्म ग्रहस्थ का है यही, विलग न मानहु देव ॥
सुन बचन गर्ग मुनि कहन लगे, बच्चे का नामकरन करने ।
आया हुँ भवन हे नन्द तेरे, तेरी सारी चिन्ता हरने ॥
है कंस महा अत्याचारी, यदुवंश का कट्टर दुशमन है ।
तुम मित्र हो श्रीवसुदेव के यों, तुमसे रखता मैला मन है ॥
हो गया प्रगट मेरा आना, वो निश्चय आफत ढाएगा ।
इसलिये चलो एकान्त जगह, वहिं नामकरण हो जायेगा ॥
ऋषिराई के कथनानुसार, जब इन्तजाम होगया वहां ।
रोहिणी यशोदा नन्द महर, आगये सुतों को लेके वहां ॥

कहा नन्द ने सिर झुका, हिय में अति हरषाय ।
नामकरन मम पुत्र का, भी करिये मुनिराय ॥
लग्न, वार, ग्रह, तिथि निरख, ज्योतिष के अनुसार ।
कहन लगे तव गर्ग मुनि, सुनहु नन्द चितधार ॥

पहिले रोहिणि सुत नाम सुनो, लघु सुत के फेर बताऊंगा ।
है धन्य भाग ये धन्य घड़ी, जो इनके गुणगन गाऊंगा ॥
है महाबली पहिला लड़का, अस्तू बलराम कहायेगा ।
इसका न नाश होगा कबहूँ, यों अनन्त माना जायेगा ॥
माया ने खेंचा गर्भ से था, संकर्षण भी जग बतलावे ।
रक्खेगा आयुध हल मूसल, हलधर भी कहने में आवे ॥
रेवत नृप की प्रिय कन्या से, व्याह होगा इसका सुखदाई ।
रेवती रमण भी कहलावे, भू भार हरेगा व्रजराई ॥

अब इस छोटे पुत्र का, सुनो हाल धर ध्यान ।
जैसी मेरी बुद्धि है, तैसा करूँ बखान ॥

चतुवेद, पुराण, शास्त्र सारे, इसकी महिमा नहिं कथ पाते ।
शिव, शेष, शारदा, ब्रह्मा भी, गुण कहते कहते थक जाते ॥
इसके अवतार व नामों का, कोई न पार पा सकता है ।
सारे जग का कारन है ये, नहि वर्णन में आ सकता है ॥
ये बाल रूप प्रति युग में प्रति, रंग का अवतार धरा करता ।
सतयुग में श्वेत रक्त त्रेता, द्वापर में पीत बना करता ॥
अब कलियुग में धर कृष्ण रूप, व्रजराज तेरे घर आया है ।
अस्तू ये 'कृष्ण' कहावेगा, इस नाम की सारी माया है ॥

कृष्ण नाम का अर्थ अब, सुन व्रजपति चितलाय ।
जाहि भजे नर पाव हो, सहज मुक्ति सुखदाय ॥

'क' अक्षर वाचक 'ब्रह्म' का है, 'र' से 'अनन्त' तुम पहिचानो ।
'ष' से शिव' 'न' से 'धर्मरूप' अ' से 'श्रीपति विश्नू' मानो ॥
गिनलो विसर्ग 'नर नारायण', यों बना 'कृष्ण' पूरा भाई ।
है सर्वाधार सर्व सुखकर, अरु सर्व बीज ये ब्रजराई ॥
फिर कृष' निर्वाण वाचकी है, 'न' वर्ण मोक्ष का दायक है ।
अरि नाशन गिनो, 'अ'कार को तुम, यों कृष्ण नाम सब लायक है ॥
फिर और सुनो इस नाम के गुण, 'कृप' सर्व कर्म निर्मूलन है ।
मिलती है दास पदवी 'न' से, 'अ' तीनताप उन्मूलन है ॥
क्या और बताऊं खैर सुनो, क' से यमदूत कांप जाते ।
'र' के उच्चारण करते ही, सब दुख नसते दृष्टी आते ॥
फिर 'स' का गुण है पाप नास, 'न' से हो नष्ट आना जाना ।
इस कृष्ण नाम के गुण की हे, नन्दराय कठिन है थाह पाना ॥
कई नाम प्रभू के जपने से, नर जितना लाभ उठाता है ।
उससे कहिं अधिक ये कृष्ण नाम, इकला ही फल दिखलाता है ॥

तेरे सुत के नाम हैं, अमित अपार न पार ।
पर तुमसे कुछ कहत हूँ, अपनी मति अनुसार ॥

अव्यक्त, अजन्मा, अजर, अमर, अच्युत, अवगुणहर, अविनासी ।
अनुपम छबि, असुरारी, अनंत, अंतरयामी, आनन्दरासी ।
श्रीकुंजबिहारि, कंसध्वंसी, करुणालय, काली-मद्-मर्दन ।
केशव, कमलापति, कमलनयन, करतार, कष्टहर, कीर्तिसदन ॥
गोकुलाधीश, गोपति, गुपाल, गिरधारी, गऊलोक स्वामी ।
गोविंद, गदाधर, गोपिईश, गोपेश्वरनाथ, गरुड़गामी ॥
जगदीश, जगत्पति, जगदात्मा, जोतीस्वरूप, जसुदानन्दन ।
जगरूप, जनार्दन, जगन्नाथ, जग के जीवन, जनमनरंजन ॥

दाता, दीनेश, दीनबंधू, दुखदमन, दयानिधि, दामोदर ।
दुर्जनअरि, दानवदर्पदलन, देवादिदेव, देवकी कुंवर ॥
धरणीधर, धैर्यवान, धनुवी, ध्रुवसत्य, धरापति, धनुधारी ।
धर्मेश, धर्मपालक, धनुहर, धाता, धीमान, धेनुचारी ॥
नटवर, नंदनन्दन, नारायन, नवनीतचोर, नर दुखटारं ।
निर्गुण, नरउत्तम, निरामयं, निर्द्वन्द, नृसिंह, निराकारं ॥
पीताम्बरधर, पद्मास्वामी, पुंडरीकाक्ष, प्रभु, परतेपर ।
परमेश, पद्महग, पुरुषोत्तम, परमात्मा, पूरनब्रह्म, प्रवर ॥
सर्वेश, सनातन, श्याम वरन, सच्चिदानन्द, शारंगपानी ।
सर्वव्यापक, शास्वत, सगुण रूप, सर्वात्मा, सब सुख की खानी ॥

भयनाशक, भक्तनसुखद, भव भंजन, भगवान ।
भ्रमहारी, भू नायकं, भूपति, भक्तन प्रान ॥

मधुसूदन, मायापती, यदुकुल कमलज भान ।
वासुदेव, ये नाम सब, अष्टोत्तर शत जान ॥

इन नामों का प्रेम से, करें तो नित प्रति जाप ।
उनके कृष्ण कृपाल प्रभु, हरें सकल संताप ॥

यों तो भगवन हैं निराकार, निरइन्द्रिय देहरहित दुष्कर ।
लेकिन भक्तों के लिये सदा, सर्वेन्द्रिय देह सहित सुखकर ॥
तप पूर्व जन्म में करने से, हे नन्दराय हे नंदरानी ।
होगये प्राप्त आकर तुमको, ये जगवन्दन शारंगपानी ॥
भूमीं का भार उतारन हित, जगनायक जग में आये हैं ।
आल्हादिन संधिनि आदि कई, शक्तियां भी संग में लाये हैं ॥
वृषभानु भवन श्रीराशेश्वरि, राधा होकर जन्माई है ।
परिपूरन तम श्रीकृष्ण हेतु, आल्हादिन शक्ती आई है ॥

इसकी माया है कठिन महा, मोह लेत चराचर सृष्टी को।
केवल भक्ती आश्रित जन ही, पाते हैं करुणा दृष्टी को॥
इस कारन तुम निश्चिंत होय, इनका पालन पोषण करना।
तज सोच फिकर सारा दिल से, इनका जप आराधन करना॥
श्रीकृष्ण जन्म अष्टमी के दिन, जो मानव व्रत धारी होगा।
अरु अष्टोत्तर शत पाठ करे, वो गोपुर अधिकारी होगा॥

उठकर ब्रह्म महूर्त में, निवृत हो फिर न्हाय।
विधिवत दिन भर ध्यानमें, प्रेम सहित मन लाय॥
मध्य निशा के होत ही, जन्म करावे जोय।
केवल पंचामृत गहे, पुनर जन्म नहिं होय॥

फिर नन्द ने अति हर्षित होकर, ऋषिराई की पूजा कीन्ही।
कई थाल स्वर्ण के द्रव्य भरे, गउएं बछड़ों समेत दीन्ही॥
पर निर अभिलाषी मुनि को था, इन चीज़ों से कुछ काम नहीं।
वो जो कुछ चाहते थे उसको, बिन पाये था आराम नहीं॥
थी उन्हें चाह प्रभु भक्ती की, इसलिये कृष्ण से करी विनय।
सुनकर श्रीगोलोकेश्वर ने, दी इच्छित वस्तु किया निर्भय॥

हो प्रसन्न तब गर्ग मुनि, कहि जय कृपानिकेत।
बरसाने पहुँचे तुरत, राधा दर्शन हेत॥
जब वृषभानू ने सुना, आये गर्ग दुवार।
झट उठकर स्वागत किया, लाये भवन मंझार॥

शीतल जल से कर पद धुलाय, सुन्दर आसन पर बिठलाया।
अगणित हीरे माणिक मोती, ले भेट ऋषी के ढिंग आया॥

बोला है धन्य भाग मेरे, जो महामुनी घर आये हैं ।
कई जन्मों के पातक सारे, निश्चय ही आज पलाये हैं ॥
इतने में श्रीराधा को ले, तहं कलावती भी आय गई ।
करके प्रणाम लड़की को भी, उनके चरणों में डालदई ॥
हर्षित हो गर्ग मुनी ने झट, राधा को गोद बिठाल लिया ।
फिर बोले हे वृषभानु सुनो, निज जीवन आज कृतार्थ किया ॥
तेरी ये कन्या हरी प्रिया, गोलोकनाथ अर्धांगिनी है ।
और है सारे जग की जननी, श्रीकृष्ण की सदा संगिनी है ॥
ये लक्ष्मी, उमा अरु सरस्वती, माया, शक्ती, सर्वेश्वरी है ।
है आदि प्रकृति, विजया, काली, मंगला, जया, भुवनेश्वरी है ॥
परिपूरन तम भगवान संग, ये भी भूलोक पधारी है ।
है शरीर की छाया समान, श्री कृष्ण को परम पियारी है ॥

हाथ जोड़ कर पत्नि पति, बोले सुनहु कृपाल ।
कृपया ये बतलाइये, हे मुनि दीनदयाल ॥

है कौन भागशाली जग में, जिस संग ये व्याही जावेगी ।
गोलोकनाथ कहां पर जन्मे, उनको ये किस विधि पावेगी ॥
तब मुस्काकर बोले यदुगुरु, नन्दराय सुवन हो जन्म लिया ।
श्रीकृष्णचन्द्र परमात्मा ने, महि भार हटावन कृत्त किया ॥
उनके ही संग तब कन्या का, गठजोड़ा बांधा जावेगा ।
होगा ये कालिंदी के तट, ब्रह्मा सम्पन्न करावेगा ॥
तुमको कुछ करना पड़े नहीं सब काम यथा विधि होना है ।
जहां राधा तहां श्रीकृष्ण रहें, बिन कृष्ण राधिका खोना है ॥
जग में श्रीराधा कृष्ण को रट, नर भवसागर तर जावेंगे ।
जो खल व्यभिचार बुद्धि रक्खें, वे जग में गोते खावेंगे ॥

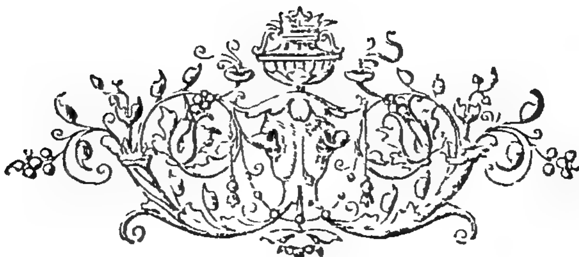
* गाना *

कहूं भाग्य की कवन बड़ाई वृषभानु सुनो चितलाई ।
जिसके दर्शन हित सुर सारे, करते हैं जप तप कई भारे
फिर भी न देत दिखाई ॥ वृषभानु ॥
बोही किस्मत से घर आकर, प्रगट हुई तव सुता कहा कर ।
होगई सुफल कमाई ॥ वृषभानु ॥
इसके मिस त्रिभुवन स्वामी को, देखोगे जन सुखधामी को ।
पावोगे गति मन चाही ॥ वृषभानु ॥
पुष्प सुरभ सम राधेश्यामा, पुरुष और प्रकृति छविधामा ।
सुर नर मुनि सुखदाई ॥ वृषभानु ॥



अस कहि राधा चरण धरि, निज मस्तक मुनिराय ।
गर्ग गये निज धाम को, श्रीकृष्ण गुण गाय ॥
बालचरित भगवान के, हरन द्वंद दुख शूल ।
अगले हिस्से में पढ़ो, "श्रीलाल" सुखमूल ॥

॥ इति ॥





श्रीकृष्ण चरित्र अथवा श्रीमद्भागवत

पांचवां भाग

बालकृष्ण

रचयिता—

श्रीलाल खत्री

प्रकाशक—महाभारत पुस्तकालय, अजमेर

मुद्रक—के. हमीरमल लूनिया, दि डायमण्ड जुबिली प्रेस, अजमेर.

प्रथम बार २,०००	सम्वत १९९१ विक्रमी सन् १९३५ ईस्वी	मूल्य ।) आने

कृष्णस्तु भगवान् स्वयम्

स्तुति

(१)

जिसने जनम के साथ ही आरंभ खल गंजन किया ।
भक्तों के सारे कष्ट हर पितु मात का रंजन किया ॥
अव्यक्त होने पर भी जो हो व्यक्त प्रगटा जगत में ।
अरु जिसने सहज स्वभाव ही व्रज में शकट भंजन किया ॥
फिर जिसके दर्शन कर हुये, कृतकृत्त्य मृत्युंजय प्रभो ।
धिक है उसे जिसने न ऐसे ईश का वंदन किया ॥
है रहस्य मय लीला सकल बिन भक्ति समझी जाय ना ।
जो उसके हाथों बिक चुका उसने सफल जीवन किया ॥
कर ध्यान उस ही कृष्ण का "श्रीलाल" दृढ़ता धार कर ।
उस बाल वपु के पद पकड़ जिसने तुझे नर तन किया ॥

मंगलाचरण

(२)

पीताम्बर धर पाप हर, गोकलेश गोपाल ।
ताप हरन जन सुख करन, जय जय दीन दयाल ॥
जय जलशायी जलदसम, सुभग सुहावन रूप ।
सृष्टि रचन, पालन, हरन, शिव अज विष्णु स्वरूप ॥
तुम गुरु गणपति शारदा, सहस बदन तुम शेष ।
विघन हरो मंगल करो, जग व्यापक अखिलेश ॥
बंदहुं वेदव्यास सुत, श्री शुकदेव सुजान ।
गायो कलिमल हरन जिन, "कृष्ण चरित" गुणखान ॥

*** श्लोक ***

वंशीविभूषितकरान्नवनीरदाभात्पीताम्बरादरुणबिंबफलाधरोष्ठात् ।
पूर्णेन्दुसुन्दरमुखादरविन्दनेत्रात्कृष्णात्परं किमपितत्वमहं न जाने ॥

❀ कथा प्रारम्भ ❀

गोकुल में जब से प्रगट, हुये कृष्ण सुखकंद ।
तब से यहां रहने लगा, नित नूतन आनन्द ॥

होगये ठाठ रिधि सिद्धि के, मानो सारे जग को तजकर ।
जगनायक को सेवा करने, आ पहुँची नन्दराय के घर ॥
बन गया विरज सुख का सागर, दर्शन कर सुख के सागर का ।
चर अचर में नव जीवन छाया, आनन विलोक नटनागर का ॥
सौभाग्य नन्द की रानी का, वर्णन करना है कठिन महा ।
जिसकी गोदी में निगुण ब्रह्म, भक्ती वश सगुण हो राज रहा ॥
हर्षित हो कभी यशोदा मां, सुत को पलने पौढ़ाती है ।
कभि लेती है उर से लगाय, अति हित से दूध पिलाती है ॥
श्रीनन्द महर भी प्रमुदित हो, दम दम में पुत्र निहारते हैं ।
उस कोटि काम छवि चहरे को, बिन देखे धीर न धारते हैं ॥
गोपी व गोपगण प्रति दिन उठ, आते हैं यसुदा के द्वारे ।
दर्शन कर कृष्ण कन्हैया का, पाते हैं उर आनन्द सारे ॥

प्रेम मग्न नर नारि सब, निस दिन जातन जान ।
करहिं परस्पर जहं तहं, बालकृष्ण गुणगान ॥

एक दिन ब्रजपति ने गोपों को, चौपाल में अपने बुलवाया ।
सब चलें मधुपुरी राजा को, वार्षिक "कर" दें यों फरमाया ॥
ये सुन सबने "कर" भरने का, फौरन आयोजन कर डाला ।
कुछ विश्वासी गोपालों को, गोकुल का कीन्हा रखवाला ॥
पुनि छकड़े गाड़ी कर तयार, सबने मथुरा प्रस्थान किया ।
ये लख एक असुर ने हर्षित हो, प्रभु खोज में गोकुल पांव दिया ॥

वो धूर्त बना ज्योतिषी तुरत, कुरता धोती पगड़ी पहरी ।
और बगल में एक पंचांग दबा, श्रीनन्द के घर पहुँचा जहरी ॥
वहां पर एक गोपी खड़ी देख, उंगलियों पै गिनना शुरू किया ।
लख इसको पंडित सौम्यरूप, यशुमति के आंगन जान दिया ॥
अवलोक इसे नन्दरानी ने, सुन्दर आसन पर बिठलाया ।
अतिथी के माफिक मान किया, कर जोड़ नम्र हो फरमाया ॥
हे पंडित राज कहां के हो, शुभ नाम आपका क्या भगवन् ।
किसलिये यहां आगमन हुआ, क्या इच्छा है कहिये ब्रह्मन ॥
तब बना हुआ जोतिषि बोला, मैं काशीजी से आता हूँ ।
है नाम महाबल भट्ट मेरा, जोतिष ज्ञाता कहलाता हूँ ॥
तेरे लड़के का भविष जान, हे यशुमति मैं घबराया हूँ ।
अतएव हाल कहने के लिये, मैं दौड़ यहां पर आया हूं ।

ऐसा कह कुछ देर तक, मीन मेष कर दुष्ट ।
हो उदास करने लगा, अपनी बातें पुष्ट ॥

हे नन्दरानी ये सुत तेरा, उस बुरे योग में जाया है ।
जिसमें है सत्यानाश सदा, और गोल योग कहलाया है ॥
फिर है नक्षत्र मूल अस्तू, गोधन समस्त न सजायेगा ।
गोपालों की भी खैर नहीं, व्रज पर भी आफत ढायेगा ॥
इस योग का यही प्राश्चित है, ज्योतिष विद्वान बताते हैं ।
ऐसे सुत को बन में लेजा, वधकर भूमी में दबाते हैं ॥
इसकी बातें दुष्टता भरी, सुन यशुदा को गुस्सा आया ।
बोली तू धूर्त कुचक्री है, पाखंडी कुल्टा का जाया ॥
रोहिणी भी अतिशय गरमाकर, कर अरुण नयन यों उठ बोली ।
इस दुष्ट निशाचर को मारो, हड्डी पसली कर दो पोली ॥
अवलोक दुष्टता राक्षस की, जननियोंको अतिक्रोधित लखकर
सोचा मोहन ने शिक्षा कुछ, इस धूर्त राज को दूं सत्वर ॥

हो तंग यहां से कंस पै जा, ये अपनी बीती गायेगा ।
सुन जिसे क्रोध कर असुरपती, कई असुर यहां भिजवायेगा ॥
मार उन्हें हम भूमि का, करेंगे हलका भार ।
ये विचार उरधार कर, मुसकाये करतार ॥
जिस जगह दुष्ट ये बैठा था, एक छींका था उसके ऊपर ।
उसमें यशुमति ने रक्खा था, एक पात्र दही का अति सुंदर ॥
प्रभु के हंसते ही छींका वो, टूटा खल का सिर फोड़ दिया ।
मूसल ने अपनी जगह छोड़, जोतिषि का सीना तोड़ दिया ॥
बेलन ने भी कुछ कसर न की, जाते हि दांत बत्तीस हरे ।
उछला चिमटा भी पीठ पै जा, आतुर हो वार अनेक करे ॥
लख जड़ चीज़ों का चमत्कार, ये दुष्ट हृदय में घबराया ।
फौरन पोथी पत्रा समेट, भागा पर भाग नहीं पाया ॥
होगया भ्रमित हरि माया वश, सब होश हवास गमा बैठा ।
जल्दी में द्वार के धोखे में, दीवार से जा टकरा बैठा ॥
ज्यों त्यों कर द्वारे पर पहुँचा, तब गोपों ने आ घेर लिया ।
डंडों, पथरों से मार मार, मथुरा जानिब मुंह फेर दिया ॥
गिरता पड़ता हांफता, कंस महल में जाय ।
हाथ जोड़ चरनन गिरा, बोला यों घबराय ॥
हे महाराज किम बतलाऊं, जो कुछ मेरा बेहाल हुआ ।
तेरा रिपु गोकुल में जन्मा, विरथा मेरा सब जाल हुआ ॥
ज्योंही मैंने उसके खिलाफ, कुछ जबां हिलाई हे नृपवर ।
चेतन तो क्या जड़ चीज़ों ने, करदी हड्डी पसली बदतर ॥
मैंने तो इतनी उमर पाय, नहिं ऐसी मार कभी खाई ।
अब तक दुखता है बदन मेरा, ओह कैसी थी आफत आई ॥
वो बालक बड़ा सुहावन है, जो नन्दरानी ने जाया है ।
है श्याम वर्ण सरसिज लोचन, तिहि तेज चहूँ दिशि छाया है ॥

किलकार मारता खेलता था, सोने के पलने झूल रहा।
ऐसा कुछ था उसका स्वरूप, मैं अपना आपा भूल रहा॥
मुझको तो गहरा सबक मिला, अब गोकुल कभी न जाऊंगा।
जो गया तो निश्चय अबके मैं, जिन्दा न लौट कर आऊंगा॥

दूत बचन सुन कंस नृप, हुआ बहुत बेचैन।
बुलवा कर सरदार सब, कहन लगा यों बैन॥

हे अघा, बका, शकटा, धेनुक, बतलाओ क्या करना चाहिये।
लग गई खबर मुझको रिपु की, कैसे उसको बधना चहिये॥
मैंने तो हाल दूत द्वारा, सुनकर सब धीरज खोया है।
क्या जाने कैसे दिन आये, चिन्ता में चित्त डुबोया है॥
इतने में शक्ति पुजारिन भी, त्रिशूल लिये तहां आय गई।
दे आशीर्वाद कंस नृप को, निज आसन पर छितराय गई॥
इसने जब सारा हाल सुना, हंस पड़ी और यों फरमाया।
इस तुच्छ काम को करने का, दो हुक्म मुझे हे नरराया॥
मेरे छल बल और कौशल को, नहिं कोइ पूर्णत: जानता है।
जिसके बध को मैं कमर कसूं, वो फौरन लम्बी तानता है॥
कल प्रातकाल शैया तज कर, राजन जब बाहिर आवेंगे।
नन्द के लड़के की मृत्यु खबर, मुझ द्वारा पा हरषावेंगे॥

नाम मेरा है पूतना, सुनहु कंस नरपाल।
जहं पहुँचू तहं पूत ना, माता हो वे लाल॥
यों कह दुष्टा बन गई, अति अनुपम वर नार।
विष लगाय दोउ कुचन में, निकली घर के बार॥

मनसूबों का रचती पहाड़, रंडा गोकुल में आय गई।
लावण्यमई अति होने से, परवेश नन्द ग्रह पाय गई॥
लख इसे गोपियां बोल उठीं, बस धन्य धन्य नन्दरानी है।
जिसके सुत के दर्शन के लिये, आई यहां खुद इन्द्रानी है॥

कोई बोली इन्द्रानि नहीं, शिव प्रिय गिरिराज कुमारी है ।
और कहा किसी ने लक्ष्मी है, सुत दर्शन हेतु पधारी है ॥
हमने ऐसी सुंदर स्वरूप, कामिनी न अब तक देखी है ।
इस भामिन में दामिन से भी, चंचलता कहीं विशेखी है ॥
नन्द तिया भी लख इसे, समझ उच्च कुछ बाल ।
गृह कारज करती रही, किया नहीं कुछ ख्याल ॥
अतएव भाग्य पर खुश होती, ये तुरत पालने ढिंग आई ।
सो रहे थे सुख पूर्वक जहां पर, असुरारी प्रभु त्रिभुवन साईं ॥
इसने नहि सोचा काल है ये, बालक का रूप बनाये हुये ।
ज्यों अग्नि राख में गुस रहे, त्यों पड़ा है तेज छुपाये हुये ॥
अस्तू जैसे भ्रम से मनुष्य, ले उठा सर्प रस्सी गिनकर ।
तैसे हि पूतना ने प्रभु को, गोदी में उठा लिया सत्वर ॥
मायापति ने कर लिये, नेत्र उस समय बन्द ।
अवसर लखकर निश्चरी, रचन लगी छल छन्द ॥
प्रिय बातों में सबको रिझाय, दिये कुच प्रभुमुख में ज़हर भरे ।
लाला ने हंसकर फौरन ही, दोनों हाथों से थन पकरे ॥
और लगे चूसने प्राण सहित, तब तो मायाविन घबराई ।
चाहा छुड़वाले पर न छुटी, गोया जंती के बिच आई ॥
तडफड़ा गई फड़फड़ा उठी, रोई चिल्लाई पग पटके ।
पर मायापति ने उमंग उमंग, थन चूसे खूब दिये झटके ॥
छलबल कौशल घमंड सारा, पल भर में तुरत बिलाय गया ।
अति दुख बढ़ने से जीवात्मा, चल दिया बदन मुरझाय गया ॥
शक्ती की विकट पुजारिन का, श्रोताओं यों तन नाश हुआ ।
था अभय कंस जिसके बल पर, श्रीगणेशहि से विनाश हुआ ॥
बज उठे गगन में नक्कारे, एक सुन्दर यान उतर आया ।
दुष्टा की आत्मा को बिठला, सीधा गोलोक ओर धाया ॥

है कौन दयानिधि कृष्ण सरिस, पापिन को भी निज धाम दिया ।
वे मूढ़ हैं जिन नर देह धार, ऐसे प्रभु का नहिं भजन किया ॥
सुन चिल्लाहट नन्द तिय, आई तहं तत्काल ।
स्थंभित सी रह गई, देख भयानक हाल ॥
गोपी गोपाल रोहिणी भी, सुन शब्द तुरत आये घबरा ।
रह गये ठगे से चित्र लिखे, भय अचरज कारक दृष्य लखा ॥
एक महा भयावन निशाचरी, मुर्दा लेटी पद फैला कर ।
पी रहे हैं दूध कन्हैयाजी, खुश हो बैठे वक्षस्थल पर ॥
लेलिया झपट कर गोदी में, मन मोहन को नन्दरानी ने ।
भय भंजन को भयभीत देख, कुछ मंत्र पढ़ा व्रजरानी ने ॥
सब बोले कैसी घटना है, यह रांड यहां कैसे आई ।
हमने तो आते लखा नहीं, कैसे ये घर में घुस पाई ॥
तब बोली यसुमति मैंने तो, अपने पुरकी बाला जानी ।
इस कारण मना किया न इसे, करने दी इसकी मन मानी ॥
आई जब तो अति सुंदर थी, नख से सिख तक थी सजी हुई ।
था रूप परम लावण्य भरा, यौवन सौरभ से लदी हुई ॥
अब तो ये विकटानन रंडा, होगई भयानक मरने पर ।
अच्छा हि हुआ जो प्राण तजे, आई सुत बधने को चित धर ॥
बालक कुछ डरा हुआ सा है, आओ रक्षा का यत्न करें ।
जिससे निर्भय हो आगे को, यदि कोई घटना आन परे ॥
यों कह करके आचमन, हरि अस्नान कराय ।
जग रक्षक की रक्ष हित, कवच पढ़ा हरषाय ॥
"अज" रक्ष करे दोनों पदकी, जानू मणिमान बचा लेवे ।
उरकी रक्षा हित यज्ञदेव, कटि को अच्युत अपना लेवे ॥
हयग्रीव उदर की रक्षाहित, केशव हृदय के हित आवें ।
वक्षस्थल ईश कंठ भानू, भुज युगल विश्नु शरण पावें ॥

मुख रत्तक होयँ मुरारि प्रभू मस्तक परमेश निरीत्तन में ।
सुधि लेयँ चक्रधर आगे को, पीछे हों गदाधर हरत्तन में ॥
दाँये मधुसूदन धनुधारी, वायें अजन्म रत्ता धारें ।
ऊपर उपेन्द्र. नीचे अनन्त चहूँ दिशा में हलधर स्वीकारें ॥
क्रीडा गोविंद शयन माधव वैकुंठनाथ चलने फिरते ।
वैठो तो श्रीपति रक्षक हों यज्ञ पुरुष मदा भोजन करते ॥
इन्द्रियों की रत्ता हृषीकेश, दश प्राणों की श्रीनारायन ।
चित की रत्ता में चारभुजा, मन योगेश्वर जन सुख दायन ॥
वुद्धी रत्ता में प्रश्निगर्भ, आत्मा परमात्मा शरण गहे ।
सुखदायक हो ये कवच तुम्हें, सब विश्व तुम्हारी रत्त रहे ॥

डाकिनि, चंडि, चुड़ैलनी, भूत प्रेत समुदाय ।
कर्णपिशाचिनि यत्तनी, कवच पढ़े से जाय ॥
वाल वृद्ध ग्रव रोग सब, अरु जो विघ्न अनेक ।
कभी तुम्हें व्यापे नहीं, भगवत रक्खे टेक ॥

इस कवच को यदि श्रद्धा से कोई, भयभीत बाल पर पाठ करें ।
लिखकर गल में पहिरादें तो, भगवान तुरत सब विघ्न हरें ॥
यों रत्ता कर अपने सुत की, नन्दरानी भीतर भवन गई ।
अति प्रेम सहित पय पान करा, कर नींद मग्न निश्चिंत भई ॥
इस तरफ पूतना के शव को, अगणित गोपाल उठाते हैं ।
उत नन्दराय क्या करते थे, अब वो सब हाल सुनाते हैं ॥
'कर' चुका कंस को गोकुलपति, झटपट आये वसुदेव भवन ।
लख मित्र प्राण सहृदय प्यारा, सुत सूरसेन धाये फौरन ॥
छाती से इनको लगा लिया, फिर कहा, हूँ तुम्हरा आभारी ।
विपता में मेरा साथ दिया, तन मन,धन,सब तुम पर वारी ॥
तुम्हरी सज्जनता से हि मित्र, जीता रोहणि का लाल रहा ।
यहां तो मेरे सब पुत्रों का, कन्या तक का नृप काल हुआ ॥

तब हंस कर बोले नन्दराय, वसुदेव ये क्या कह डाला है।
हम तुम सब हैं बस निमित मात्र, कर्ता तो कोई निराला है॥
मेरा तो ऐसा निश्चय है, तव सुत से मंगलाचार हुआ।
मेरी वृद्धावस्था में मित्र, पालना बंधा जयकार हुआ॥

मुस्काकर वसुदेवजी बोले वचन रसाल।
मित्र यहां अति ठहरना भला नहीं इस काल॥

उस दुष्ट कंस के दूत कई, धर गुप्त वेष फिरते भाई।
कोई गोकुल नहिं जा पहुँचे, अस्तू घर जावो व्रजराई॥
सुन बचन चल दिये नन्दमहर, कालिन्दी पार जभी आये।
एक चीख़ सुनी अति भयदायक, प्रस्वेद सकल तन में छाये॥
जल्दी से गाड़ी हकवा कर, पहुँचे अपने घर के द्वारे।
देखो एक भीड़ गवालों की, अति हल्ला करते हैं सारे॥
फिर अवलोका वहिं भूमी पर, एक विशाल तन दानवी पड़ी।
जिसको लख भय भी भय खावे, ऐसी विकटा की ल्हाश अड़ी॥
कर रहे बहस गोपाल सभी, था जिक्र ल्हाश के बारे में।
थी राय किसी की दग्ध करो, कोइ कहता बूरो गारे में॥
चंचल बालक यों कहते थे, लाला को मारन आई थी।
खुद मरी रांड यहां आकर के, इसकी शामत यहां लाई थी॥

इतने में पहुँचे यहां, गोकलेश नन्दराय।
बचन इन्हों के कर श्रवण कहा सुनो चितलाय।

जीवन में ही नर से रिश्ता, अच्छा व बुरा रक्खा जाता।
मरने पर ल्हाश बिगाड़ी यदि, सब सुकृत नाश दृष्टी आता॥
इसलिये इकट्ठा ईंधन कर, कालिन्दी तट दो इसे जला।
जिन्दों का है कर्तव्य यही, मृत नर संग, अस्तू होगा भला॥
हां इतना तो कर सकते हो, इसके लघु हिस्से करवादो।
रख चिता पै दग्ध करा इसको, भस्मी यमुना में डलवादो॥

इतना कह व्रजपति घर पहुँचे, जाते हि पुत्र को गोद लिया ।
मुख चूँम लाल का प्रेम सहित, फिर ईश विनय में चित्त दिया ॥

※ गाना ※

जय हो प्रभु दीन दयाल हरी शरणागत के सुखदाई हो ।
है जिन्हें सहारा आपहि का उनके हर समय सहाई हो ॥
तुम्हरे गुण शेष महेश, और श्रुति शास्त्र बखान बखान थके ।
फिर मुझ समान मूरख नर से तुम्हरी किस तरह बड़ाई हो ॥
हो ज्ञान रूप ज्ञानियों को तुम कर्मियों के कर्म स्वरूप प्रभो ।
भक्तों के बंधु,सखा, हितु, हो दुष्टों को अति भयदाई हो ॥
रखना बस दया दृष्टि हम पर हे असुर निकंदन भयहारी ।
हूँ चरण शरण करना वो ही जिससे मम पुत्र भलाई हो ॥

इस तरफ गोप गण मिल जुलकर, लकड़ी का पहाड़ लगाते थे ।
कुछ लोग कुल्हाड़ा लेकर के, तन के लघु भाग बनाते थे ॥
यों थोड़े से अरसे में ही, पूतना का नाम निशान मिटा ।
मृग मद की सी खुशबू तन से, निकली सब व्रज पुलकाय उठा ॥
हो जिसे अंत में प्रभु दर्शन, जिसका पय जगपावन पीले ।
आश्चर्य नहीं इसमें कुछ भी, यदि बदन से यों खुशबू निकले ॥
जीवों के कर्मों के फल को, भगवन अवश्य भुगवाते हैं ।
पर जो इनकी आजाय शरन, उसको फौरन अपनाते हैं ॥
पूतना थी वलि नृप की बेटी, था नाम रतनमाला इसका ।
वामन जब वलि छलने आये, लख सुन्दरतन अनुपम जिसका ॥
दिल में ये चाहा था इसने, ऐसे वालक को पय प्याऊं ।
खुश होकर प्यार करूं इसका, सुख सहित गोद में बैठाऊं ॥

जन-मन-रंजन ने तभी, लिये भाव पहिचान ।
करी चाह इस जन्म में, पूरी सुनहु सुजान ॥
पर कुभाव अवलोक कर, मारा इसे तुरंत ।
दीन जान गति मातुसम, दीन्ही राधा कंत ॥

जिस समय पूतना के वध की, मथुरा नायक ने सुधि पाई ।
आगया अंधेरा दृग सन्मुख, गिर गया भूमि पर अकुलाई ॥
कुछ देर बाद सुधि आते ही, बुलवा असुरों को फ़रमाया ।
बोलो अब क्या करना चहिये, भारी विपता का दिन आया ॥
थी बल में जिसके कमी नहीं, छल में तुम सब की नानी थी ।
कौशल का जिसके पार न था, बालक वध में लासानी थी ॥
वो शक्ति पुजारिन क्षण भर में, कुत्ते की मौत मरी जाकर ।
किस तरह हृदय को समझाऊं, फिर गया नीर आशाओं पर ॥
तब शकटासुर दानव बोला, मैं उस बच्चे को मारूंगा ।
यदि रक्षक हों यम, इन्द्र, विधी, तो भी निश्चय संहारूंगा ॥
मुझ पर रखकर विश्वास प्रभो, जाने की अनुमति दे दीजे ।
होगया तुम्हारा शत्रु नष्ट, ये कल कानों से सुन लीजे ॥
इतना कह दुष्ट निशाचर ने, गोकुल की ओर पयान किया ।
अपशगुन हुये कई रस्ते में, इसने न कालवश ध्यान दिया ॥

दैवयोग से आज था, जन्म दिवस भगवान ।
गोकुल में घर घर प्रती होते थे शुभ गान ॥

नन्दराय के घर में जलसा था, चौपाल भरा था ग्वालों से ।
अंतःपुर भी संयुक्त तहां, था गोपी, गोपी-वालों से ॥
लग रही थी यसुमति ख़ातिर में, महमानों की हिय हरषा कर ।
कुछ ग्वाल बालकों के संग में, थे खेल रहे शोभा-सागर ॥
इस जगह के बिल्कुल ही समीप, बस शकट एक था धरा हुआ ।
उसमें कई बासन थे जिनमें, मक्खन, पय, दधि था भरा हुआ ॥

शकटासुर लघु रूप धर, छिपा शकट ढिंग आन ।
घात लगा बैठा तहां, भेद न काहू जान ॥
बस केवल अंतरयामी ने, निश्चर का कौशल जान लिया ।
वधने के लिये तुरत उसको, घुटनों के बल प्रस्थान किया ॥
दानव तो सोच रहा ही था, किस भांति बाल का काल बने ।
पर मनमोहन ने आते ही, एक लात में उसके प्रान हने ॥
कर काम ये खुद तो खिसक गये, दानव छकड़ा भू पर आये ।
हो गये चूर्ण बासन सारे, सुन रव घरवाले घबराये ॥
देख असुर की लहाश को, अरु छकड़े का हाल ।
नन्द यशोदा के सहित, लगे ढूंढने लाल ॥
क्या देखा मुख माखन लिपटा, और हाथ पैर में सना हुआ ।
बैठा है सुत एक लकड़े पर, अति अद्भुत मूरत बना हुआ ॥
धाई झपटी अरु उठा लिया, माता ने बालक को सत्वर ।
पूछा जब छकड़े का वृतान्त, बच्चों ने फरमाया हंसकर ॥
किस भांति मरा ये असुर नीच, ये भेद न हमने पाया है ।
पर छकड़े को तो लात मार, इस कृष्ण ने भूमि गिराया है ॥
हंसपड़े सभी सुनकर ये बैन, निश्चर को यमुना पहुँचाया ।
कई रोज तलक सब लोगों के, हृदय में अति अचरज छाया ॥
खल को दीन दयाल ने, दीन्हा पद निर्वान ।
को कृपालु भगवान सम, भजमन तज सबमान ॥
श्रोताओं पूर्व जन्म में ये, दानव था हिरनाकुश बालक ।
था "उत्कच" नाम बड़ा पापी, उत्पाती ऋषियों का घालक ॥
नित प्रति लोमश के आश्रम जा, ये वृक्षों को तोड़ा करता ।
छोटे पौदों बेलों को भी, मय गमलों के फोड़ा करता ॥
एक दिन मुनि बोले क्रोधित हो, निकृष्ट योनि निश्चर होजा ।
श्रीकृष्ण आयँ जब भूमी पर, उनके द्वारा निज प्राण गंमा ॥

गोलोक धाम पायेगा तू, मिट जायगा यहां आना जाना ।
लेकिन कुछ दिनों तलक तुझको, सहने होंगे संकट नाना ॥
पाय मुनी के शाप को, उत्कच देह बिसार ।
शकटासुर दानव हुआ, रहा कंस दरबार ॥
पहुँची जब मथुरा खबर, मरा शकट सुर वीर ।
तृणावर्त बोला तुरत, क्रोध से होय अधीर ॥
महाराज आप निश्चिंत रहें, अब मैं रिपु के घर जाता हूँ ।
कर प्राणहीन उस बालक को, शीघ्र हि तुम्हरे ढिंग लाता हूँ ॥
शकटासुर तो था निरा मूर्ख, मैं ऐसा जाल बिछाऊंगा ।
जिसका न विधाता भेद पाय, यों तुम्हरा शत्रु नसाऊंगा ॥
हाथ मूंछ पर फेर कर, चला धूर्त तेहि वार ।
आया गोकुल में तुरत, ज्योंकेहरि पर स्यार ॥
इस तरफ यशोदा मैया ने, मोहन को आज निल्हाया था ।
बालों में कंघी फेर फार, वस्त्रा भूषण पहिराया था ॥
आंखों में काजल डाल तुरत, अति प्रेम से दूध पिलाती थी ।
गा गा कर सुन्दर गानों को, काना को वो दुलराती थी ॥
इतने में कृष्णचन्द्र ने निज, तन को अस भारी कर डाला ।
सह सकी न बोझा तब घबरा, सुत को आंगन में बैठाला ॥
ज्योंही नन्दरानी ने हट कर, सुख पा थोड़ा सा स्वांस लिया ।
त्योंही एक प्रबल बवंडर ने, ब्रज को घेरा अंधियार किया ॥
हो गई तुरत दिन की रजनी, तरु टूट टूट कर गिरते थे ।
उड़ गये मकानों के छप्पर, ब्रजवासी व्याकुल फिरते थे ।
इस तरह जाल निज फैला कर, हरि को ले असुर नभ में धाया ।
हो गया प्रसन्न हृदय, नृप का, कारज बनता दृष्टो आया ॥
देख दुष्टता दैत्य की, कंठ पकड़ भगवान ।
इक हलका झटका दिया, गिरा मही पर आन ॥

टकराया चट्टान से, टुकड़े हुये अनेक ।
उधर हटी आंधी तुरत, सब को हुआ विवेक ।
तम मिटते ही यसुमति धाई, और लगी ढूंढने लाला को ।
पर छोड़ा था जहां मिला नहीं, तब सह न सकी दुखज्वाला को ॥
और लगी रुदन करने मैया, सुन रोहणि आदि तहाँ आई ।
नंदलाल के गुम हो जाने की, सुधि पा सब की सब घबराई ॥
मच गया शोर सा गोकुल में, गोपाल तुरत इत उत धाये ।
आगे जा एक जगह इनको, खूं के छींटे दृष्टी आये ॥
इसके समीप ही क्या देखा, एक राक्षस चूर चूर होकर ।
गत प्राण पड़ा है और कृष्ण, हँस खेल रहे हैं सीने पर ॥
ले कुमार आये तुरत, नंद गेह सब ग्वाल ।
नंदरानी हर्षित हुई, मिटा दुःख जंजाल ॥
पूर्व जन्म में असुर था, सहस्त्राक्ष नरपाल ।
अधिपति पांडू देश का, बली यशी खुश हाल ॥
इक दिवस नारियां संग लेकर, रेवा सरिता के तट आकर ।
ये नृप जल क्रीड़ा करता था, आनन्द मग्न मन हरषाकर ॥
ऋषि दुर्वासा वहाँ आ निकले, इसने उनको न प्रणाम किया ।
लख गर्व भूप का क्रोधित हो, फौरन ही उसको शाप दिया ॥
बोले रे अधम राज वंशी, तेरा सब गर्व मिटाता हूं ।
जा होजा दानव पृथ्वी पर तुझ पर ये शाप गिराता हूं ॥
ये सुन राजा चरणों में गिरा, बोला अपराध हुआ मुनिवर ।
कर कृपा बतादो ये तो प्रभु, होवेगी मेरी मुक्ती क्यों कर ॥
बोले तब महामुनि दुर्वासा, कलियुग के लगते ही तेरा ।
भगवान दर्श पाकर होगा, आसुरी योनि से निबटेरा ॥
मुनि का शाप अमोघ था, मानव तन को त्याग ।
त्रणावर्त के रूप में, जन्मा था महाभाग ॥

प्रभु के कर द्वारा मरने से, निश्चर ने उत्तम गति पाई।
हो गया प्राप्त गोलोक धाम, सारी भव बाधा बिसराई॥
इस मौत के पंजे से सुत को, निर्विघ्न रूप से बच जाते।
लखकर व्रजराज अनन्द हुये, मुख चूम पुत्र का हरषाते॥
नन्दरानी भी धोखा खाकर, उस दिन से कुछ ऐसी सम्हली॥
हरि को न छोड़ती थी एक पल, हर दम रहती थी साथ लगी॥
हलराती गाती रहती थी, नित नव श्रृंगार कराती थी।
तुतली तुतली बातें सुनकर, हरषाती थी सुख पाती थी॥

कभी सेज कभि पालने, कभी कृष्ण ले गोद।
कभी खिलाती खेल कइ, यशुमति सहित विनोद॥
जो सुख सुरमुनि को अगम, सुगम हुआ यसुदाहि।
भक्ति प्रताप प्रत्यक्ष है, ब्रह्म हुये वश ताहि॥

एक रोज सवेरे ही उठ कर, यसुमतिने हरि श्रंगार किया।
अस्नान करा शुभ वस्त्र पिन्हा, बालों को ठीक संभार दिया॥
अंजन लगाय दोउ नैनों में, पलने में था बस पौढाया।
"दे भीख भला हो मातु तेरा", इतने में शब्द ये सुन पाया॥
सुनते हि नन्द गेहनी उठी, थाली भोजन से भरवाई।
और दूजी में मणि माणिक रख, अतिथी के स्वागत को धाई॥
पर बाहिर आते ही बिलोक, भिक्षुक का रूप नन्दरानी।
डर कर झट सहमगई ठिठकी, छाई हृदय में हैरानी॥
क्या देखा सांप जटा में हैं, गल में भी सांप विराजरहा।
कंगन भी सांप का पहिरे हैं, है कमरमें भी एक सांपमहा॥
है हाथ में डमरू गौर वर्ण, सब तन पर भस्म लगाये हैं।
माला मुंडों की कंठ पड़ी, कर में तिरशूल उठाये हैं॥
चढ़ रहीं हैं आंखें ऊपर को मानोसमाधि लगना चाहती।
रट रही है जिव्हा कृष्ण नाम, आनन छबि सुंदर दरसाती॥

साहस करके यसुमति बोली, करती हूं प्रणाम तुम्हें बाबा ।
लो भीख इधर लाओ झोली दो आशीर्वाद हमें बाबा ॥
जिससे मेरे लाल के, होयँ अमंगल दूर ।
आयु बढ़े सुख से रहे, नाश पाय ग्रह क्रूर ॥
बोले मुस्काकर योगिराज, ये भीख न चहिये मातु मुझे ।
अपने प्रिय सुत के एक बार, करवादे बस दर्शन तु मुझे ॥
मैं उसको क्या आशिष दूंगा, आशिष लेने खुद आया हूं ।
वो तो नित मंगल रूपहि हैं, मम मंगल करने धाया हूँ ॥
तेरा लड़का है अजर अमर, फिर आयू की चिन्ता क्यों है ।
ग्रह क्या ब्रह्मांड इकट्ठा हो, तो भी नहिं डर सचतो यों है ॥
सुन बचन यशोदा कहन लगी, मम कृष्ण निरा बच्चा सा है ।
डर जायगा तुम्हरा भेष देख, उसका हृदय कच्चा सा है ॥
इसलिये उसे बाहिर लाकर, मैं हरगिज नहीं दिखाऊंगी ।
लगगई नज़र जो बाबाजी, तो फिर तुमको कहां पाऊंगी ॥
हरि कृपा से प्रौढ़ावस्था में, मैंने एक बालक पाया है ।
आफत आती है रोज नई, क्या जाने किसका साया है ॥
यदि ये सामान लगे थोड़ा, तो बोलो ज्यादा मंगवाऊं ।
पर हों सुत के संकट विनष्ट, ये आशीर्वाद प्रभू चाऊं ॥
भूतनाथ कहने लगे, अरी मातु सुन बात ।
समझ न छोटा तू उसे, आदि पुरुष तव तात ॥
जिसके भय से भय भाग जाय, हे मैया किसका डर उसको ।
जो एक दृष्टि में प्रलय करे, बतला किमलगे नजर उसको ॥
सारी सृष्टी में आज एक, है धन्य धन्य मां भाग तेरा ।
उस जग पालक की मात, बनी, जिसका है सब जग में डेरा ॥
नहिं मुझे भीख चहिये कोई तव सुत की मनमोहन सूरत ।
मतवालि, निरालि, छबीली भली, दिखलादे कर किरपा सूरत ।

❋ गाना ❋

ब्रह्म है कुंवर कन्हाई, सुत मातु यशोदा ।
निज सुत को तू मत गिन बालक, वो है सब सृष्टी का पालक ।
सुरनर मुनि सुखदाई ॥ सुन मात ॥
भूमि सुरों की विनय श्रवणकर प्रगटे है प्रभु नर का तन धर ॥
मारेंगे सब दुखदाई ॥ सुन मातु ॥
जिसके डर से काल डरावे, जो क्षण में जग प्रलय करावे ।
मुझ से किम भयपाई ॥ सुन मातु ॥
देर करे मत मैया मेरी, कृष्णा दर्शन दिलवा देरी ॥
हृदय कली खिल जाई ॥ सुन मातु ॥
जो तू हठ को छोड़ नाहीं, ये जोगी मुख मोड़े नाहीं ।
ले मृगछाल बिछाई ॥ सुन मातु ॥

नहीं नहीं हे नाथजी सुत नहिं बाहिर आय ।
यत्न करो कितनाहि तुम बोली यसुमति माय ॥
मच रहे यहां उत्पात कई, सुर असुर न जाने जाते हैं ।
जिसको सज्जन गिनती हूँ मैं, वो दुर्जनपना दिखाते हैं ॥
उस रोज मोहनी मूरत बन, पूतना यहां घुस आई थी ।
प्रभु ने रक्षा की वरना यहां, गहरी आफत आ छाई थी ॥
मैं अभी बाल उसके संवार, श्रृंगार करा यहां आय रही ।
उसको अब भूख लगी होगी, लो भीख नाथ मैं जाय रही ॥
मन ही मन करने लगे, भोलेनाथ विचार ।
सुश्क ज्ञान में क्या धरा, भक्ती ही है सार ॥
ये ही करने से व्रजरानी, प्रभु को गोदी में खिलाती है ।
श्रृंगार के सागर का सिंगार, करती है मन हरषाती है ॥

फिर कहा प्रकाश में हे माता, मैं तेरे पांव पकड़ता हूँ ।
करवादे मम जीवनधन के, दर्शन ये विनती करता हूँ ॥
हो अष्ट पहर तेरा मंगल, ये आशिष जा देता हूँ तुझे ।
मम मंगल हित, मंगलमय मे, मंगलबानी सुनवादे मुझे ॥
वरना ये निश्चय जानले तू, मैं धरना दे बैठूंगा यहीं ।
जब तक न दर्श मुझको होगा, हरगिज यहांसे जाऊंगा नहीं ॥
यों कह वाघम्बर बिछा तुरत, त्रिपुरारि आसनासीन हुये ।
उर धार कृष्ण की मूरत को, फौरन समाधि में लीन हुये ॥

धर्म भीरु नन्द गेहनी, हट योगेश्वर देख ।
सुत हित अंदर को गई समझ विधाता लेख ॥

रोहणि से जाकर हाल कहा, सुन पहिले तो वो चकराई ।
पर वर्णन सुना भेष का जब, शिव समझ हृदय में हरषाई ।
मुस्काकर यसुदा से बोली, बहना वो योगी शंकर हैं ।
सुजनों को है कल्यान रूप, दुष्टों के लिये भयंकर हैं ॥
क्या गर्ग मुनी का भविष कथन, तू एक बारगी भूल गई ।
तेरे ये दोनों ही बालक, जगदीश्वर हैं क्या सुधि न रही ।
तब ही तो इस छोटे द्वारा निश्चर नित प्रान गमाते हैं ।
हम लोगों के हैं भाग्य प्रबल, जो इनके दर्शन पाते हैं ॥
तू बेफिक्री से बालक को शिवके समीप लेजा बहना ।
गर रुष्ट हुये तो भला न हो, मैं भी चलती हूं मान कहना ॥

नन्दरानी बोली तभी, सुनो ध्यान धर बात ।
मेरे तो ये लाल दोउ निशिदिन हृदय बसात ।

गर ये परमेश्वर हैं, होंगे कहते थे गर्ग तो कहने दो ।
मेरे तो दोनों लड़के हैं आंखों के तारे रहने दो ॥
मुझको तो सोते जगते में, रहता है इनका ध्यान सदा ।
मैं माता हूँ ये बेटे हैं, रखती हूं ये अरमान सदा ॥

ज्ञानी योगी चाहे सो कहे मेरी बुद्धी से बाहिर है।
वात्सल्य भाव के सिवा बहन, नहिंमुझे और कुछ ज़ाहिर है॥
जिसने प्रौढावस्था में मुझे, माता का पद दिलवाया है।
वो ही इनको नित करे रक्ष बसयही ध्यान जिय आया है॥
यदि तेरा भी मन है तो चल, बाबा का दर्शन करवादें।
घर आये अतिथी की इच्छा पूरी कर भिक्षा दिलवादें॥
यों कह दोनों ने लिये निज निज गोदी लाल।
बाहिर आ शिव से कहा, दर्शन करो दयाल।
कानों में शब्द पहुँचते ही शिवने निज नयन उघारलिये।
लख त्रिभुवन मोहन बाल छवी, होगये मुग्ध हरषाये हिये॥
टकटकी लगाकर तकने लगे, बोले माता मैं धन्य हुआ।
है धन्य अहा व्रजकी भूमी भू नायकका जहांजन्म हुआ॥
मैं कर दीदार युगल प्रभु के, फूला नहिं अंग समाता हूँ।
गोलोकनाथ जगरमनराम, दोनों को शीष झुकाता हूं॥
यों कह अति पुलकायकर, धर दोनों का ध्यान।
हाथ जोड़ कहने लगे, जयतियुगलभगवान॥
हे कृष्ण कृपाल दयासिन्धो, हे हलधर संकर्षण स्वामी।
हे पीताम्बर धर शकटारी, बलरामअनंतहरिअनुगामी॥
हे मोहन माया पति माधव हे राम रेवतीरमण प्रभो।
हे करुणानिधि जग के कारन, बलभद्रअसुर मदहरन प्रभो॥
हे नन्दलाल यसुदा नन्दन, हे रोहणेय हे द्विविहारी।
हे त्रणावर्त जीवनहर्ता हे रुक्मी और प्रलंबारी॥
गो, द्विज, दीनों की रक्षा हित, भूमी का भार हटाने को।
हे कृष्ण कृपाल हे शेष विभो, प्रगटे हो धर्म फैलाने को॥
जय जय जय करुणानिधे, जन वत्सल अखिलेश।
युगल चरन में रत रहूँ, यह वर दो अखिलेश॥

शंकर के स्तुति करते ही, एक दिव्य तेज तहां पर छाया ।
हो चका चौंध माताओं के, दृग मिचे नहीं कुछ लख पाया ॥
हो गई चित्रवत दौनों ही, मायेश की माया में फँसकर ।
भूली तन की सुधि सकल तुरत, तब मुस्काये प्रभु लीलाधर ॥
उस समय शंभु ने क्या देखा, दोउ भाइन का तन एक हुआ ।
बन गई मूर्ति गोलोकी की, सारा भ्रम पल में छेक हुआ ॥

तब बोले श्री कृष्ण प्रभु, हे शिव हे शशिभाल ।
मेरा प्रण गोलोक का, पूर्ण हुआ इहिकाल ॥
अब पुनि हम तुम मिलेंगे, रास रचा जब जाय ।
हो प्रसन्न कैलाश को, गवन करो हरषाय ॥

शंकर बोले हो गया आज, जीवन और जन्म सकल सारा ।
देखा निर्गुण निरीह प्रभु का, गुणसहितव्यक्ततन द्युतिकारा ॥
जो प्रभू अगोचर अलख आदि, नामों से पुकारे जाते हैं ।
वे भक्ती वश साकार होय, शिशु रूप में दृष्टी आते हैं ॥
हैं धन से व्रज के गोपी व गोप, बछड़ों समेत गायें सारी ।
धर सगुण रूप जिनमें रहते, सत चित आनन्द निराकारी ॥
फिर अंत में शिव यों कहन लगे, माता जो है भिक्षा लाई ।
झूंठन दो मुझको इष्ट देव, गौरी युत पाऊं सुखपाई ॥
तब माखन थोड़ासा लेकर, प्रभु ने निज मुख में डाल लिया ।
बन गये तुरत फिर रामकृष्ण, मांओं ने चेतन लाभ किया ॥
माया के चक्कर में आकर, सारी घटना वे भूल गईं ।
भिक्षा ले शंकर विदा हुये, गृह काम में ये मशगूल हुईं ॥

प्रात दूसरा होत ही, तज प्रभु शयन मंझार ।
लगी बिलोवन मातु दहि, जगे उधर जगधार ॥

जब नहीं निहारा माता को, तुतलाकर लगे पुकारने ये ।
मैया थी दही मथन में रत, नहीं सुना कोप कर धारन ये ॥

जननी के निकट चले आये, आते ही रोदन ठान दिया।
मथनी पकड़ी तब माता ने, मुख चूम गोद में बिठा लिया॥
और लगी पिलाने दूध तुरत, इतने में पय चूल्हे वाला।
उफना, ये लख तज सुत अतृप्त, उस ओर चली यसुमति बाला॥
इधर रोष कर श्याम ने, दइ मटकिया फोड़।
माखन ले चम्पत हुये, आई माता दौड़॥
देखा सारा दधि फैल रहा, मटकी के टूक नज़र आते।
बालक भी वहाँ से गायब है, हो गये नैन रिस से राते॥
ले छड़ी हाथ में मात चली, देखा दरवाजे बाहिर आ।
नव नीत चोर तहाँ बैठा है, कर अपने शिशु मंडल को जमा॥
उड़ रही गोठ तहाँ मक्खन की हँस हँस प्रभु सबको खिला रहे।
तुतली और बाल सुलभ भाषा, को बोल बात कई बना रहे॥
इतने में माता आ पहुँची, लख उसे ये तुरत बिहारि हुये।
होगई भंग सारी जमात, बच्चे भि अगारि पिछारि हुये॥
दौड़ी यशुमति भी क्रोध सहित, "रे खड़ा रह" बोली चिल्लाकर।
आगई आज शामत तेरी, सब कसर निकालूँगी जी भर॥
श्रोताओं बड़े बड़े योगी, कर मन एकाग्र तप के द्वारा।
जिसकी गति को नहि जान सकें, कह नेति वेद मन में हारा॥
उस ही पूरन ब्रह्म के, पीछे दौड़ी मात।
लेकिन पकड़ सकी नहीं, थका शीघ्र सब गात॥
दम फूल गया हांपने लगी, श्रम बूँद वदन से बह निकली।
लख अपनी भक्त जननि व्याकुल, आगये हाथ खुद अपर बली॥
कर दूना क्रोध यशोदा ने, लाला के दोनों हाथ पकर।
झिड़कियाँ दई और कान मले, ले चली भवन को आगे कर॥
हे भक्ति धन्य तू तव महिमा, भी धन्य बखानी जाती है।
मुक्ती से कई गुनी ज्यादा, तू अधिक श्रेष्ट कहलाती है॥

जग में वे चतुर शिरोमणि हैं, जो यत्न तेरे हित करते हैं।
बसती है जिनके हृदय में तू, उनके दुख पल में टरते हैं॥
रहते हैं आनन्द मग्न सदां, षट रिपु न पास आने पाते।
तुझको धारन करने वाले, निरुपम, निरुपाधी बन जाते॥
फिर रखते दीन दयाल सदाँ, निज कृपा दृष्टि नित भक्तन पर।
बल्की बस में ही हो जाते, रहते हैं पास अनुचर बनकर॥
ये बात मोक्ष में धरी नहीं, भक्ती की सब प्रभुताई है।
ये ही कारण है जसुमति से, झिड़की तक प्रभु ने खाई है॥

मात यशोदा भक्त थी, ओत प्रोत था प्रेम।
था प्रभु में सुत भावसत, रहा सदा से नेम॥
इसीलिये बस में हुये, परिपूरन भगवान।
जे न भक्ति में मन धरें, उन सम मूर्ख न आन॥
सेवक सेव्य कृपा बिना छिन न लहें सुख चैन।
अस विचार श्रीकृष्ण की, भक्ति करो दिन रैन॥
पल में रंकहि नृप करे, पल में नृपहि अवित्त।
धन्य जीव वे जो धरें, ऐसे प्रभु में चित्त॥

अल किस्सा घर ला माता ने, झिझका देकर के बिठलाया।
पुनि कर बाँधन के लिये रज्जु, लाने गोपी को दौड़ाया॥
लेकर रस्सी चाहा बाँधे, आश्चर्य हुआ छोटी निकली।
जो उसमें जोड़ी एक और, फिर भी वो रही कम दो उंगली॥
ज्यों ज्यों माँ रज्जु जोड़ती थी, छोटी ही पड़ती जाती थी।
नन्ही सी बाल मूर्ति फिर भी, किस भाँति न बंधने पाती थी॥
बतलाओ जो जग बंधन से, पल में निज जन छुड़वा सकता।
फिर बाँधे अखिल प्रकृती को, वो किम बंधन में आ सकता॥
होगईं रस्सियाँ सकल खतम, माँ के कर जब बलहीन हुये।
उस समय दयासागर खुद ही, बंध गये भक्त आधीन हुये॥

है स्वतंत्र तिहुँकाल में, नटवर नंद किशोर ।
तदपि 'भक्त वश हूँ सदा', दिखलाया इस ठौर ॥
अस्तु बाँध निज लाल को, ऊखल से नंदरानि ।
काम काज में लग गई, मिटी हृदय की ग्लानि ॥
कुछ देर बाद गोपियां कई, व्रजरानी के घर पर आईं ।
अभिलाषा कृष्ण दरस की थी, लख हाल कुंवर का चकराईं ॥
बोली यसुदा से दुखित होय, बलिहारी तेरी बुद्धी पर ।
बाँधा सुकुमार सांवरे को, असहृदय कठोर हुआ क्योंकर ॥
एक कोटि गऊ की मालिक हो, थोड़े मक्खन पर लोभ करे ।
बस छोड़ हो गई मनमानी, अन्यायिन विरथा चोभ करे ॥
जो वस्तु देव मुनि को दुर्लभ, सपने में दृष्टि नहीं आती ।
वो तुझे मिली घर पर बैठे, क्या इसी से इतनी इतराती ॥
झट दौड़ अंक धर लेती थी, तू गैर का सुत रोते लखकर ।
अब अपने ही लड़के को रही, तू रुला, गया वो भाव किधर ॥
इतने में बलदाऊ आये, लख इन्हें कृष्ण अति रोने लगे ।
लख अपने भाई पर संकट, हलधर भी वस्त्र भिगोने लगे ॥
फिर आकर माता से बोले, तज इसे मात मुझको बंधवा ।
मेरा भ्राता सुकुमार महा, दे छोड़ वृथा न इसे रुलवा ॥
इतनी सी तेरी हानि हुई, जिससे ये जुल्म किया तैंने ।
तू पहिले ऐसी निठुर न थी, अब क्यों अनर्थ सिर लिया तैंने ॥
माखन तो हुआ तुझे प्यारा, व्रज का प्यारा, प्यारा न हुआ ।
सद् प्रेम मूर्ति को पाकर भी, दुनियवी प्रेम न्यारा न हुआ ॥
इधर राम माता प्रती, उलझ रहे रिसियाय ।
उधर कृष्ण बाहिर हुये, ऊखल को खिसकाय ॥
आ पहुँचे तनिक देर में ये, यमलार्जुन के जहँ पेड़ थे दो ।
वे दोनों ही तरु जुडवां थे, इसलिये दीखते थे एक हो ॥

ऊखल इनके मध्य में फंसा, एक हलकासा झटका दीन्हा ।
गिर पड़े पेड़ दोउ भूमी पर, अति शब्द हुआ सबने चीन्हा ॥
उसमें से दो सुन्दर व्यक्ती, निकले प्रभु पद में सिर नाया ।
बोले हम धन्य हुये भगवन्, जो तुम्हरा शुभ दर्शन पाया ॥
हे दामोदर असुरारि प्रभो, हे विघ्न हरन अंतरयामी ।
हे परिपूरनतम जगत ईश, हे सर्वेश्वर पूरन कामी ॥
हम हैं कुबेर सुत नल कूवर, मणिग्रीव नाम हमरा भगवन ।
एक दिवस अप्सराओं के साथ, बन में बिहार करते खुशमन ॥
कर सुरापान चंचल चित हो, फिरते योवन मदमस्त हुये ।
इतने में देवल मुनि आये, लख हमें नैन आरक्त हुये ॥
और शाप दिया हे मूढमतों, तुम जड़ सम कर व्यौहार रहे ।
हो जाओ तरु जा गोकुल में, सौ वर्ष तलक ये भार रहे ॥
गोलोकनाथ अवतार धार, जब नन्द भवन में आवेंगे ।
तब तुमको जड़ योनी से वे, असली स्वरूप में लावेंगे ॥
हे नाथ उसी दिन से दोनों, तकते थे राह आपकी हम ।
बस आज जन्म ये सफल हुआ, आज्ञा दो घर को रखें कदम ॥

* गाना *

हे बाल रूप भगवन् तुम ही ने दी रिहाई, वर्षों से वृक्ष थे हम इक शाप वश गुसाईं।
नारद मुनि ने हम पर कीन्हा अती अनुग्रह, दर्शन दिखा दिया है परिपूर्णतम का आई ॥
कारण बिना जगत में होता नहीं करम कुछ, इस शाप ने हमारा संशय दिया मिटाई।
निःस्वार्थ प्रेम भक्ती तव पद कमल की दीजे, तुम्हरे पदाश्रितों की सेवा करें सदाई।

हुक्म दिया भगवान ने, तब दोउ शीश नवाय ।
हर्षित हो घर को चले, कहि जय श्रीब्रजराय ॥

इत तरु गिरने का रव सुन कर, आतुर हो व्रजवासी धाये ।
यसुदा, रोहणि, नन्द, हलधर भी, घबराकर वहां चले आये ॥
देखा नभ चुम्बित अर्जुन तरु, जड़सहित उखड़ कर भूमिगिरे ।
और मदन गुपाल बंधे बैठे, ऊखल के साथ एक ओर डटे ॥

नन्दबाबा ने झट अंक लिया, कर बंधन मुक्त कृपाला को ।
पुचकार प्रेम से हृदय लगा, पुनि डाटा यसुमति बाला को ॥
बोले आश्चर्य चकित हूं मैं, बुद्धी तेरी क्यों भृष्ट हुई ।
थोड़े से माखन कारन तू, इकलौते सुत से रुष्ट हुई ॥
क्या भुला दिये वे दिन तेने, सुत के हित जप तप नेम किये ।
जब सुनी ईश ने पुत्र दिया, तो अब तू है इतराति हिये ॥
तुतला कर हलधर भी बोले, बाबा यह मा अन्याइन है ।
दो दंड पिताजी इसे आज, सारे दुख की यह कारन है ॥

सुनकर दाऊ के बचन, मुस्काये व्रजराज ।
मात यशोदा को दिया, पुत्र, लगे निज काज ॥
नये उपद्रव देख नित, अकुला कर नन्दराय ।
एकत्रित कर गोप सब, बोले बचन सुनाय ॥

उपनन्द, सुनन्द, वृषभानु आदि, सुनलो सब गोकुलवालों तुम ।
नित घटना होती नई नई, क्या करें उपाय निकालो तुम ॥
होता जाता है कठिन महा, यहां का रहना दुष्कर भारी ।
बोलो कित चलें मुकाम करें, किस थल की करदें तैयारी ॥
यह सुन सुनन्द पदवीवाले, एक वृद्ध गोप ने फ़रमाया ।
हम तो आश्रित हैं नित तुम्हरे, तो भी सुनलो हे नन्दराया ॥
यहां से कुछ दूर जगह सुंदर, इक मेरे ध्यान में आई है ।
है वहां से यमुना भी समीप, गोवरधन गिरि नियराई है ॥
कहते हैं उसको वृन्दावन, सब बनो का प्रभु सिरताज है वो ।
त्रण घास की वहां पर कमी नहीं, है काफी थल गौ चरने को ॥
है लिखा शास्त्रों में ऐसा, गोलोक से ये वन आया है ।
आल्हादिन शक्ति हेतु हरि ने, क्रीड़ा स्थल बनवाया है ॥

वृन्दा देवी का तहाँ, मंदिर परम अनूप ।
रक्षा भक्तों की करें, माता हे व्रजभूप ॥

वृन्दावन की प्रत्येक कुंज, नन्दन कानन से आला है ।
वहां की हरएक क्षुद्र झाड़ी, सुरतरु से पद में वाला है ॥
गो तीरथ राज प्रयाग जो है, सब तीरथ के नृप कहलाते ।
पर वृन्दावन की शान देख, उनके सारे मद गल जाते ॥
बात सुनन्दा गोप की, सबको हुई पसंद ।
मजदूरों से व्रजपती, बोले यों सानन्द ॥
जाओ सब वृन्दावन जाकर, एक नगर सरिस ढांचा डालो ।
गउओं के खिड़क सुभग चौड़े, गोपों हित मंदिर बनवालो ॥
यों कह सब सामिग्री दिलवा, शिल्पियों को नंद ने पठा दिया ।
और इधर ज्योतिषी को फौरन, महुरत बतलाने बुला लिया ॥
लग गये काम में लोग सभी, जो श्रमजीवो थे गोकुल में ।
कुछ दिनों में सब तैयार किया, घंटों का काम हुआ पल में ॥
महुरत के माफिक तुरत, बैल गाडियां जोड़ ।
बाल वृद्ध सब चल दिये, क्षण में गोकुल छोड़ ॥
उत्तम घर आंगन परकोटे, दरवाजे सुन्दर मन भावन ।
लख भूलगये सब गोकुल को, बसगये सुमिर सब जगपावन ॥
पुनि सब मिलकर पूजा करने, वृन्दा के मंदिर में आये ।
बिधि सहित किया अर्चन वंदन, बहु दान याचकों ने पाये ॥
कर ग्रह प्रवेश शास्त्रानुसार, निज निज कारज संलग्न हुये ।
इत कृष्णचन्द्र बलराम सहित, मिल खेल कूद में मग्न हुये ॥
एक रोज खेलते खेलते ही, मिट्टी मुख धरी कन्हैया ने ।
जा करी शिकायत मैया से, फौरन बलदाऊ भैया ने ॥
पीछे से मोहन भी पहुँचे, बोली माता यों रिसियाई ।
क्यों रे, दाऊ क्या कहता है, किसलिये तैंने मिट्टी खाई ॥
बालकृष्ण कहने लगे, मातु झूंठ ये बात ।
बहकाये में आगई, वृथा मुझे धमकात ॥

यदि तुझे नहीं विश्वास मेरा, तो देख मैं मुंह को खोलता हूँ ।
होगा यकीन तब मैं झूठा, या सदा सच ही बोलता हूँ ॥
यों कह मुख खोला श्री हरि ने, चकराय गई लख नंदरानी ।
अगणित शिव चतुरानन देखे, अनगिनती ऋषि योगी ज्ञानी ॥
बन उपवन नदी पहाड़ लखे, देखे कई रवि शशि तारागन ।
बहु बिधि जग की रचना देखी, देखे अनेक चर अचर मगन ॥
अर्थात कई ब्रह्मांडों को, सुत के मुख में अवलोकन कर ।
भ्रम फौरन पैदा हुआ हृदय, सोचा क्या है ये जगदीश्वर ॥
बेशक हैं गर्ग बचन सच्चे, हा ! मैं मतिमंद गवारी हूं ।
त्रिभुवन के नायक को अपना, लड़का कह कर स्वीकारी हूँ ॥
होते हि ज्ञान सिर झुका दिया, बोली है नमस्कार तुझको ।
छमना अपराध मेरा भगवन, डाटा है कई बार तुमको ॥

जब देखा प्रभु ने हुआ, माता को सद्ज्ञान ।
मुस्काये लय होगया, सारा दृष्य निदान ॥

उपजी फिर बाल बुद्धि मा उर, ईश्वर बुद्धी झट दूर हुई ।
छाती से लगा लिया सुत को, चित आनन्दित भर पूर हुई ॥
नित नव लीला करते करते, कुछ बड़े हुये लीलाधारी ।
तब इक दिन बाल सखाओं को, बुलवाकर बोले शकटारी ॥
मित्रो चाहो भर पेट मिले, माखन तो सलाह विचारें हम ।
गर तुम सब हामी भर लो तो, एक गुप्त काम कर डारें हम ॥
उन गोपालों के बालों ने, प्रभु से पूछा क्या करना है ।
तब मन मोहन यों बोल उठे, मक्खन हित आज विचरना है ॥
जहाँ पावो कोई भवन सूना, घुस पड़ो चोर माखन लाओ ।
बाँटो आपस में प्रेम सहित, होकर प्रसन्न उसको खाओ ॥
यदि मक्खन पूरी तरह मिले, तगड़े तयार हो जावेंगे ।
कुश्ती में दूने को मित्रो, फौरन ज़मीन दिखलावेंगे ॥

यों कर सलाह बच्चों का दल, चल पड़ा तुरत माखन हरने ।
एक घर को देखा बिना मनुष्य, घुस पड़े सभी चोरी करने ॥
देखा कोठे में छीके पर, हंडिया भर माखन धरा हुआ ।
लखते ही चपल बालकों का, सूखा मुख फौरन हरा हुआ ॥
पर छींका था कुछ ऊँचे पर, थे सब बालक सुकुमार महा ।
कोई उपाय नहिं सूझ पड़ा, मुस्काकर तब श्री हरि ने कहा ॥
पीढे को उल्टा करके तुम, दोनों हाथों बल खड़े रहो ।
तुम पर चढ़कर जब तक न कोई, ले माखन तब तक अड़े रहो ॥
काना की बतलाई सलाह, सारे लड़कों को भाय गई ।
बस इस प्रकार बिन कुछ श्रम के, नवनीत की हंडिया आय गई ॥
पीढ़े पर डटकर नंदलाल, खुद खाते और बाँटते थे ।
कुछ कपि भी तहाँ इकत्रित हो, भूमि पै गिरे को चाटते थे ॥

इस प्रकार सब खारहे, थे माखन हरषाय ।
जल भर यमुना कूल से, गई गोपिका आय ॥

नूपुर ध्वनि श्रवनन पड़ते ही, भागे झट गोपकुमार सभी ।
कुछ दूर जाय एकत्र हुये, और हंसे ठहाका मार सभी ॥
फिर तो यह लीला शुरू हुई, चोरी घर घर में होने लगी ।
सुन नित्य प्रती के उलाहने, माता एक दिन यों कहने लगी ॥
ग्वालिनो मेरा नन्हा बच्चा, हो चोर मुझे विश्वास नहीं ।
छींके पर धरी हुई हांडी, लेवे उतार ये आस नहीं ॥
क्या इस घर माखन थोड़ा है, पर ये यहाँ भी नहिं खाता है ।
फिर कैसे मानूँ ये तुम्हरे, घर चोरी करने जाता है ॥

ग्वालिन बोली ठीक है, यही कहोगी मात ।
हम सारी झूंठी सही, सच्चा तुम्हरा तात ॥

यसुमति इसको छोटा न गिनो, ये अभी से पूरा नटखट है ।
थी हमको आश न्याय की यहां, पर यहाँ मैदान सफाचट है ॥

तुम पच्छ लाल का लेति रहो, हम तज वृन्दावन जायेंगी।
पृथ्वी पर गाँव अनेकों हैं, यहाँ से तो सुख ही पायंगी॥
सह सकी न ये बातें यसुदा, फौरन काना का कान पकर।
बोली क्रोधित हो सच बतला, क्या तू चोरी करता घर घर॥
ये उलाहने कहाँ तलक सुनूँ, सच बोल नहीं तो मारूँगी।
कर दूँगी गाल लाल तेरे, घर से तत्काल निकारूँगी॥

कहा कृष्ण ने मातु मम, मैं नहिं करता चोरि।
ये ग्वालिन बदज़ात है, वृथाहि देती खोरि॥

मैं तो इन वृज बालाओं से, अति त्रासित हो दुख पाता हूं।
मुझको तत्काल घेरती हैं, यदि मैं कहिं बाहिर जाता हूं॥
माखन मिश्री का लालच दे, मुझको घर पर ले जाती हैं।
खुद गैया दुहने बैठ जायं, बछिया मुझको पकड़ाती हैं॥
कोई बाला कस पकड़ मुझे, उर से लगाय कर प्यार करे।
घुंघुरू पहनाय नचाय कोई, मन माना वो व्योहार करे॥
फिर उत्पाती बच्चों से मैं, खुद ही नहि रखता हूँ नाता।
ये सारी झूंठ बोलती हैं, इसमें न सत्य रत्ती माता॥
खुद तुही सोच मैं छोटा सा, इन छोटे से हाथों द्वारा।
कैसे छींके तक पहुँचूंगा, किम खाऊंगा मक्खन सारा॥

देख कृष्ण की चतुरता, मुसकाई व्रजबाल।
नंदरानी कहने लगी, लगा हिये से लाल॥

आइन्द ऐसा उलाहना, नहि सुनूंगी गर इकली आई।
पूरा दूंगी मैं दंड इसे, यदि चोर रूप में यहां लाई॥
होगईं बिदा ग्वालिनं सभी, नित बैठें ताक लगाये हुये।
एक दिन चोरों का दल आया, चुपचाप पैर चिपकाये हुये॥
बस उसी तरह हंडिया उतरी, माखन निकला अरु बांटागया।
कुछ गया उदर में बाकी का, मुख हाथों पर लिपटाया गया॥

पीछे से आ इक गोपी ने, मनमोहन का कर पकड़ लिया ।
और बोली अब क्या कहते हो, मौके से तुम को जकड़ लिया ॥
गुलछर्रे रोज उड़ाते थे, अब यसुमति ढिंग ले जाऊंगी ।
निकलेगी कसर सभी दिन की, माता से तुम्हें पिटाऊंगी ॥
हरि रोये और गिड़ गिड़ाये, की बहुत खुशामद चरन गहे ।
मन में मुस्काय रही गोपी, लाला के कर दृढ़ता से लहे ॥
ले चली नन्द के यहां इन्हें, हरषाति हुई व्रज की बाला
मायामय माया मय तन धर, सुत बने उसी के नन्दलाला ॥

पहुँची यसुदा के निकट, कहा सुनो नन्दतीय ।
आज पकड़ तव सुत लिया, हाज़िर ये कमनीय ॥
हंसकर यसुमति ने कहा, अपने होश संभाल ।
मदमाती टुक देख तो, तव सुत या मम लाल ॥

लख मोहन की एवज निज सुत ग्वालिन के छक्के छूट गये ।
और आगे कुछ कह सकने के, सारे हि इरादे टूट गये ।
झिझका दे लड़के से बोली, क्योंरे कैसे तू आय गया ।
मैंने था मोहन को पकड़ा, तेरा कर को पकड़ाय गया ॥
पुनि हंसती हुई गोप तरुणी, अपने घर फौरन चली गई ।
मग में ठाड़े थे सुखसागर, हंसकर यों बोले भली भई ॥
सुनले गोपालिन यदि आगे, मुझसे यों चाल लगावेगी ।
तो आइन्दा तेरे पति को, मेरी ऐवज में पावेगी ॥
इस तरह की लीलायें श्रीहरि, वृन्दावन रोज दिखाते थे ।
व्रजवासी गोप गुवालों को, अद्भुत आनन्द पहुँचाते थे ॥
वृषभानु लली राधाजी भी, हरि संग खेलन को नित आतीं ।
और कभी कृष्ण को खेलन हित, अपने घर पर वे ले जातीं ॥
श्रोताओं ग्वालिनें मोहन को, प्राणों से ज्यादा चाहती थी ।
छिन भर यदि नहीं देखती थी, पागलों सरिस हो जाती थी ॥

आतीं थी यशुदा के घर पर, ऊपरी उलाहना देने को।
असलियत में था इनका आना, मोहन के दर्शन लेने को॥
फिर ये सारी व्रजबालायें, गोलोक धाम से आई थीं।
मय श्रीराधा के भगवत ने, पहिले ही यहां पठाई थीं॥
था इनका निश्चल शुद्ध प्रेम, इसलिये प्रभू वहाँ जाते थे।
थी कमी न घर में मक्खन की, पर तोभि वहीं पर खाते थे॥
हे भक्तजनो धर ध्यान सुनो, भगवान भाव के भूखे हैं।
उनकी छाया तक छुये नहीं, जो प्रभू भक्ती में सूखे हैं॥
बतलाते हैं ये बात शास्त्र, भक्ती का थल ये हृदय है।
तरकी की यहाँ पर गुज़र नहीं, प्रभु में जो रखता संशय है॥
जो चाहे सहज तरे भवनिधि, तो हो निशंक हरिपद ध्यावे।
जिसके हिय संशय छाय रहा, वो अधोगती निश्चय पावे॥
अस्तू करलो श्रीकृष्ण याद, सब कुछ उनके अर्पण करदो।
प्रत्येक समय फुरसत के में श्रीकृष्ण कृष्णकी ध्वनि भरदो॥

*** गाना ***

नित लेते मजे सब दीदार के रे, हरि आये थे जब से पधारके रे ॥ टेर ॥
प्रभु दर्शन को ग्वालिनें आती सदा, शिशु लीलायें मोहन की गाती सदा।
व्रज में आये है दिन अब बहारके रे ॥ नित लेते ॥
कहीं माखन की चोरी करी श्याम ने, दही लुढ़कादिया आन की आन में।
आते मा पै उलहने उजाड़के रे ॥ नित लेते ॥
देखा मा को तो फौरन बिहारी हुये, कर पकड़ा तो बिल्कुल अनाड़ी हुये।
मुस्काये है मुंह को बिगाड़के रे ॥ नित लेते ॥
होती निर्दोष लीलाएँ हरि की तहां, रहतीं बच्चों की टोली वे जाते जहां।
व्रज वालों के प्राण अधार थे रे ॥ नित लेते ॥

प्रभुपद पंकज सुमिर नित, जो काल हु के काल।
'बाल कृष्ण' लिखकर चलो, आगे को "श्रीलाल" ॥



श्रीकृष्ण चरित्र अथवा श्रीमद्भागवत

छठा भाग

गोपालकृष्ण

रचयिता—

श्रीलाल खत्री

प्रकाशक—महाभारत पुस्तकालय, अजमेर

मुद्रक—के. हमीरमल लूनिया, दि डायमण्ड जुबिली प्रेस, अजमेर.

प्रथम वार २,०००	सम्वत् १९९१ विक्रमी सन् १९३५ ईस्वी	मूल्य ।) आने

कृष्णस्तु भगवान्स्वयम्

स्तुति

(१)

व्रजपति सब व्रज के रखवाल हे, गोपाल शरण हूँ तेरी ॥
गो की करने से प्रतिपाल, जग में नाम हुआ गोपाल ।
अब भी गाते घर घर ग्वाल, व्रज में निशि दिन करते फेरी ॥
करके किरपा कृपा निधान, दीजे प्रेम भक्ति का दान ।
जिससे होवे मम कल्यान, माया कभी न आवे नेरी ॥
जब से जन्म लिया जग मांहि, कीन्हा भजन तुम्हारा नाहिं ।
बीती सारी उमर वृथाहि, कटि है किमि करमन की बेरी ॥
अब लौ लगी तुम्हीं से नाथ, कृप्या करिये मोंहि सनाथ ।
रखिये मम सिर पर निज हाथ, ताके होय मुक्ति बस मेरी ॥

मंगलाचरण

(२)

पीताम्बर धर पाप हर, गोकलेश गोपाल ।
ताप हरन जन सुख करन, जय जय दीन दयाल ॥
जय जलशायी जलदसम, सुभग सुहावन रूप ।
सृष्टि रचन, पालन, हरन, शिव अज विष्णु स्वरूप ॥
तुम गुरु गणपति शारदा, सहस वदन तुम शेष ।
विघन हरो मंगल करो, जग व्यापक अखिलेश ॥
बंदहुं वेदव्यास सुत, श्री शुकदेव सुजान ।
गायो कलिमल हरन जिन, "कृष्ण चरित" गुणखान ॥

*** श्लोक ***

वंशीविभूषितकराभ्नवनीरदाभात्पीतांबरादरुणबिंबफलाधरोष्ठात् ।
पूर्णेन्दुसुन्दरमुखादरविन्दनेत्रात्कृष्णात्परं किमपितत्वमहं न जाने ॥

❀ कथा प्रारम्भ ❀

कृष्ण चरित अति गूढ़ है, सज्जन सुनि हरषाय ।
संशय आत्मा हरी विमुख, थिरता कभी न पाय ॥
वृन्दावन में नित करें, नव लीला घनश्याम ।
पावें सुख माता पिता, गोपी गोप ललाम ॥

मोहन कभि कूदें किलकारें, मचलें, नाचें, गाना गावें ।
भागें, दौडें, ज़िद्करें, हँसें, निज छाया लख आनन्द पावें ॥
यसुमती रोहिणी दोनों मिल, इनका नित नव शृंगार करें ।
शोभा-निधान की शोभा लख, हृदय में अति आनन्द भरें ॥
ले जायँ अखाड़े नंदराय, लड़के को दांव सिखाने को ।
संसार के शिक्षक को गुरु को, उत्तम शिक्षा दिलवाने को ॥
यों आँख मिचौनी से लेकर, कुश्ती लड़ना अरु बाँक पटा ।
चिन्नोट के दांव पेच सारे, सीखे प्रभु ने नहिं जाय कथा ॥
सीखा बंसीधर ने फिर झट, बंसी का मधुर बजाना भी ।
छः राग छत्तीस रागिनी को, अति उत्तमता से गाना भी ॥
विद्याओं के निर्माता ने, ये सब विद्यायें पढ़ डाली ।
लख बुद्धि अगोचर की बुद्धी, पितु मातु को छाई खुशियाली ॥
इस तरह पांचवी साल गिरह, आई जब हरि की सुखदाई ।
ग्रह शान्ति यज्ञ हवनादिक कर, बहु दान दिये श्री नन्दराई ॥
इच्छा भोजन विप्रों को मिला, भिक्षुकों ने अन्न वस्त्र पाया ।
चहुँ दिशि में जय जयकार हुआ, सारे व्रज ने खाना खाया ॥

इसी रोज नित मातु से, बोले दीनानाथ ।
वत्स चराने का हुकम, दो जाऊँ "बल" साथ ॥

माता बोली व्रजपति नंदन, होकर मत वत्स चराओ तुम ।
तुम तो खाओ खेलो कूदो, अनुचरों से ये करवाओ तुम ॥
घर में मम सन्मुख रहते भी, कई विघ्न तेरे पर आते हैं ।
अस्तू वन में भिजवाने को, हौंसले मेरे भय खाते हैं ॥
सुन अम्बा की बातें मोहन, मचले रूठे अरु सुस्त हुये ।
नहिं किया कलेवा तक उस दिन, तब दाऊ इनकी पुश्त हुये ॥
बोले माता भय रहित रहो बलराम है रखवाला जिसका ।
श्रीदाम सुबल आदिक भी हैं, रक्षक फिर उसको डर किसका ॥
आखिर माता ने वत्सपाल, विधि सहित पुत्र को बना दिया ।
पर ज्यादा दूर चराने को, सारे बच्चों को मना किया ॥
और कहा याद मम आते ही, फौरन इसको घर ले आना ।
रखना हरदम तुम साथ इसे, कहिं छोड़ अकेला मत जाना ॥
तब से नित उठ दोनों भाई, बछड़ों संग वन में जाने लगे ।
गोपाल कुमारों के चित में, लीला कर सुख पहुँचाने लगे ॥

इधर पूतना, शकट अरु, त्रणावर्त बलवान ।
मरे कंस तब से सदा, रहा दुखी महान ॥
एक रोज़ दरबार में, मंत्री सकल बुलाय ।
भग्न हृदय से भूप ने, कहा सुनो चितलाय ॥

मेरे योधाओं की मृत्यू, इक बालक से सम्पन्न हुई ।
सुरगण जिनसे थर्राते थे, उनकी काया यों छिन्न हुई ॥
होगया असंभव भी संभव, त्रण ने अग्नी को बुझा दिया ।
बध किया सिंह अजशावक ने, चूहे ने सर्प को उदर लिया ॥
क्या समय आन पहुँचा मेरा, हे विधि कैसी कठिनाई है ।
जिनके बल पर मैं निर्भय था, उनकी यों हुई सफाई है ॥
तब वत्सासुर निश्चर ने उठ, यों कहा आप घबराये क्यों ।
जब तक मैं जिन्दा हूं जग में, तब आंच आपतक आये क्यों ॥

इन दिनों आपका शत्रु कृष्ण, वन वत्स चराने आता है ।
बछड़े का वपुधर उसे बधूं, देखूं बचकर कहां जाता है ॥
इकबाल आपका है बुलन्द, हम हैं आज्ञाकारी अनुचर ।
तव गिरे पसीना एक बूंद, निज खून गिरादें तहं घट भर ॥

यों कह वत्सासुर अधम, धर बछड़े का रूप ।
हरि वत्सों में जा मिला, मूरत परम अनूप ॥

लख इसको सुबल सखा प्रभु से, बोला ये वत्स कौन का है ।
अंगारे सम हैं दृग इसके, है छलवा और मौन सा है ॥
कर इसे सैन से चुप हरि ने, पीछे से खल की टांग पकड़ ।
बहु भ्रमा शिला पर दे मारा, सिर से होगया पृथक झट धड़ ॥
मरते मरते उस निश्चर ने, असली स्वरूप निज प्रगट किया ।
श्रीकृष्ण कृष्ण की धुनि लगाय, नाता दुनिया से छोड़ दिया ॥
होगई दिव्य सूरत उसकी, प्रभु को सिर बारंबार झुका ।
चल दिया तुरत गोलोक असुर, चढ़कर विमान में हिय हरषा ॥
ये मुर दानव का लड़का था, था नाम प्रमील बड़ा बलधर ।
यकता था रूप बदलने में, एक दिवस भेष ब्राह्मण का कर ॥

मुनि वशिष्ट के पास जा, मांगी नंदिनि गाय ।
मौन रहे ऋषि तो मगर, बोली गउ गरमाय ॥

रे दुष्ट निशाचर पाखंडी, छल से आया लेने तु मुझे ।
जा हो जा वत्सानन दानव, ये घोर शाप देती हुँ तुझे ॥
सुरधेनु सुता के कहते ही, खलका मुखबछड़े सरिस हुआ ।
कह त्राहि त्राहि मा रक्ष करो, आपड़ा चरन में दुखित हुआ ॥
बोला छल का फल मिला मुझे, पर यह तो मां बतला दीजे ।
बदलेगी जून किस समय मेरी, इतनी किरपा मुझ पर कीजे ॥
तब दयाधार नंदिनि बोली, श्रीकृष्ण यहां जब आवेंगे ।
हो वत्सपाल वृन्दावन में, बन वत्स चराने जावेंगे ॥

उस समय कंस का हुक्म मान, उनको बध करने जायेगा।
तब असुरारी के हाथों से, तू अपने प्राण गंमावेगा॥
प्रभु के दर्श प्रताप से, मिले शुभ गती तोय।
बंद होय आवागमन, बास धेनुपुर होय॥
इस प्रकार वत्सा हना, बन में नन्द कुमार।
सखा सभी अतिखुशहुये, नभ ने की जयकार॥
प्रात दूसरा होत ही, बाल सखा ले संग।
चले चराने वत्स फिर, जगनायक श्रीरंग॥
हँसते खुश होते किलकाते, बछड़ों को यमुना तट लाये।
और पिला नीर कालिंदी का, वृक्षों की छाया बैठाये॥
वहाँ पर एक जीव विशाल काय, बगुले का रूप बनाये हुये।
बैठा था जिसको देख तुरत, भागे सब अति घबराये हुये॥
आकर यों कहा कन्हैया से, भैया ये कौन पड़ा यहाँ पर।
समझें इसको गिरि का टुकड़ा, या द्वीप कोई निकला आकर॥
केवल श्वासों की हरकत से, हम इसको चेतन मानते हैं।
है कोई बिकट निशाचर ये, भगने की हम तो ठानते हैं॥
ये नीच बकासुर दानव था, यहाँ कंस का भेजा आया था।
सुनकर मृत्यू वत्सासुर की, उसही ने इसे पठाया था॥
बच्चों को धीरज बँधवा कर, श्री कृष्ण असुर के ढिंग आये।
ये देख चोंच में ले बक ने, प्रभु को निज मुख में सरकाये॥
अवलोक ये सब गोपालों के, झट होश हवास बिहारि हुये।
सब किंकर्तव्य विमूढ़ हुये, जीवन इन सब के भारी हुये॥
नभ मंडल में भी फौरन ही, अति शोर व हाहाकार मचा।
जिसके न दुःख व्यापा मन में, ऐसा न कोई तहाँ जीव बचा॥
उधर प्रभू ने प्रबिशिमुख, कीना गर्म शरीर।
दानव का मुख जल गया, उगला होय अधीर॥

पर देखा निश्चर ने प्रभु को, अक्षत शरीर बिन थके हुये ।
क्रोधित हो झपटा चोंच उठा, जगजीवन पर कई वार किये ॥
पर गज पर पुष्पों का प्रहार, सा प्रभु को मालुम होता था ।
लेकिन सुर अरु सब बच्चों का, चित चंचल हो सुधि खोता था ॥
आखिर प्रभु ने लख इन्हें दुखी, मुस्काकर दोनों हाथों में ।
बक रजनीचर को चोंच पकड़, दो टूक कर दिये बातों में ॥
ये कौतुक देख देवतों ने, हरषाय सुमन झट बरषाये ।
और इधर ग्वाल बालों ने आ, हरि को हृदय से लिपटाये ॥

पूर्व जन्म में बक असुर, था हयग्रीव कुमार ।
उत्कल नामक अति बली, दुष्ट और खूंखार ॥

एक रोज घूमता फिरता ये, गंगासागर तट पर आया ।
जाजली ऋषी आश्रम समीप, बस जाल मीन हित फैलाया ॥
इस समय कर रहे थे तर्पण, मुनि खड़े हुये जल के भीतर ।
निश्चर की अस दुष्टता देख यों शाप दे दिया गरमा कर ॥
जा होजा बगुलानन सत्वर, सुनते हि वचन खल घबराया ।
मुनिराज कृपा कर क्षमा करो, फल मिला दुखित हो फरमाया ॥
सुख कोप दया उर थी जिनके, तपधारी ऐसे मुनिवर थे ।
लख दीन अवस्था दानव को, बोले मानो देते वर थे ॥
द्वापर बीते गोलोकनाथ, अवतार भूमि पर धारेंगे ।
तब कालिंदी के तट पर वे, तुझको निज कर से मारेंगे ॥

गति तेरी हो जायगी, हरि दर्शन परताप ।
जा घर फ़िक्र करे मती, शुभ फल देगा शाप ॥
इस प्रकार बक दैत्य की, गाथा हुई तमाम ।
कर ये लीला घर चले, श्याम देखकर शाम ।

नित प्रति की बातें सुन सुनकर, विश्वास नंद को पूर्ण हुआ ।
कह गये थे जो कुछ गर्ग मुनी, कई अंशों में सम्पूर्ण हुआ ॥

उस तरफ बकासुर की मृत्यू, सुनकर कंसासुर घबराया।
बह चली दृगों से अश्रुधार, प्रस्वेद सकल तन में छाया॥
देख भूप को दुखित अति दैत्य अघासुर आय।
बोला राजन शान्त हो, करूँगा एक उपाय॥
मेरी हिम्मत और ताक़त का, इस समय भूप क्या बयाँ करूँ।
होवेगा विदित स्वयम् तुमको, जब तुम्हरे रिपु का प्रान हरूँ॥
पी सुधा अमर होने वाले, सुरपुर वासी भी शंकित हैं।
जीवन की पूरी आशा नहीं, जब तलक अघासुर जीवित है॥
मम बहिन पूतना अरु भाई, बलवीर बकासुर को वधकर।
रह जाय नन्द का सुत जीवित, धिक्कार है मेरे भुज बल पर॥
बदला लूँ भ्राता भगिनी का, हे भूपति यही विचारा है।
अब या तो जग में कृष्ण नहीं, और या मेरा उद्धारा है॥
यों कहकर ग्रास काल का वह, फौरन वृन्दावन में आया।
इस तरफ ग्वाल बछड़ों को ले, बन चले मुदित हो जगराया॥
इच्छा थी सबकी यही, कालिन्दी के तीर।
करें कलेवा आज हम, पीवें ठंडा नीर॥
कर ये सलाह सब चले तुरत, धक्का मुक्की करते जाते।
लेते छींका पहिले से छीन, दूजे के कर में पहुँचाते॥
पुनि दूजे से तीजे पर हो, चौथे के हाथों आजाता।
इस तरह से अदल बदल होते, वापिस पहिले के ढिंग आता॥
यों यमुनाजी के तट पहुँचे, छींके को तरु में टेर दिया।
छोड़ा बछड़ों को चरने हित, पुनि राम कृष्ण को घेरलिया॥
और लगे खेलने खेल कई, फिर दौड़ लगाने की ठहरी।
जो पकड़े प्रभु को पहिले आ, उसको शाबाशी दें गहरी॥
यद्यपि मणि मुक्ता सोने के, ब्रजबालक थे पहिने गहने।
तो भी बन पुष्पों के गजरे, और हार आदि सबने पहने॥

फिर लगे बजाने बंसि कई, कई सींग पै राग सुनाते थे।
कई भ्रमर समान करें भन भन, कई कोकिल के संग गाते थे॥
लख मोर कई नाचें खुश हो, कई लगे फुदकने मेंढक संग।
कई खेल कर रहे कपियों से, छारहा था एक अनोखा रंग॥
ब्रह्म ज्ञानियों के लिये, जो प्रभु ब्रह्म स्वरूप।
है दासों के वास्ते, मालिक परम अनूप॥
उनको माया वश हुये जीव, जाने नर का बालक कहकर।
होती है भावना जिसकी जस, उसको वैसे ही हैं नटवर॥
योगी समाधि में भी जिनको, नहिं पूर्णतया लख पाते हैं।
उन संग नित ग्वाल बाल खुशहो, मन माने खेल रचाते हैं॥
हैं इनके कितने प्रबल भाग्य, ना जाने किस तप का फल है।
अपने विचार में तो आता, ये सख्य भाव का ही बल है॥
ग्वाल बाल संग में लिये, फिरते थे नंदलाल।
लखा इन्होंने एक तहं, अजगर महा विशाल॥
देखा एक वृहत पहाड़ सरिस, दानव मुख फैलाये बैठा।
उसको गिरि गुहा समझ चित में, ग्वालों का दल उसमें पैठा॥
हरि ने सोचा मेरे साथी, मेरा विश्वास हृदय में धर।
घुस गये हैं मृत्यू के मुख में वे खौफ़सकल भयको तजकर॥
यदि सर्प के मुंह में से इनको, नहिं बचासका तो दुष्कृत है।
शरणागत रक्षक कहला कर, चुपरहा तो नाम कलंकित है॥
कर ये विचार करुणानिधि भी, अजगर आनन में चले गये।
बलदाऊ भी घुसगये तुरत, ये देख देवता विकल भये॥
मन की मुराद को सफल जान, बलवान अघासुर हरषाया।
कर लिया बंद मुंह को फौरन, सोचा नृप ने जीवन पाया॥
ज्योंही निश्चर ने चहा, करें काम सम्पूर्ण।
त्यों ही हरि ने तन बढ़ा, किया इरादा चूर्ण॥

दानव के तन के दसों द्वार, तन बढ़ा प्रभू ने रोक दिये।
होगया श्वास प्रस्वास बंद, मानो वहां ताले ठोक दिये॥
तब तो निश्चर अति घबराया, छट पटा रहा पर कुछ न चली।
ब्रह्मांड फोड़ चल दिये प्राण, बाहिर निकले श्रीकृष्णबली॥
इसकी विषमय श्वासों द्वारा, सब गोप बाल मुरझाये थे।
प्रभु ने अमृत दृष्टी से लख, उन सबके प्राण बचाये थे॥
इन सब के बाहिर आते ही, देवों में अति आनन्द हुआ।
बज उठे गगन में नक्कारे, हर जगह जयति सुखकंद हुआ॥
धर सूक्ष्म रूप सकल सुरगण, प्रभु की अस्तुति करने आये।
करती थी नृत्य अप्सरायें, किन्नरों ने हित से यश गाये॥
उस यातुधान के तन में से, एक महा तेज बाहिर आया।
भगवान के चरणों तक आकर, फिर गउलोक जानिब धाया॥
था वैर भाव से ओत प्रोत, फिर भी कर्मों की थाह मिली।
ये है प्रभु दर्शन का प्रभाव, खिल गई हृदय की कली कली॥

*** गाना ***

ईश के प्रति रिपु सरिस भी भाव दरसाते है जो।
पा समय आवागमन से सहज तर जाते हैं वो॥
मित्र सम रखते हैं जो फिर प्रेम आनन्दकंद में।
स्वप्न में भी क्या कभी खोटी गती पाते है वो॥
प्रण है प्रभु का जो भजें उनको, वे भजते है उसे।
टेर सुनते ही तुरत इमदाद को आते है वो॥
ऐसे दीन दयाल का नित प्रेम से सुमिरन करें।
दुख, द्वन्द, क्लेश आदिक से दुनिया मे बचत चाहते है जो॥

शंखासुर का पुत्र था, बली अघासुर नाम।
युवा अवस्था में रहा, अति सुन्दर जनु काम॥

अष्टावक्र मुनिहि लख, हँसा अवज्ञा कीन ।
तब मुनि ने अति कोपकर, शाप तुरत तेहि दीन ॥
बोले हे निन्दक नालायक, क्या मेरी हंसी उड़ाता है ।
अपने तन की सुंदरता पर, करता है गर्व इतराता है ॥
ले देख शक्ति इस टेढ़े की, जा अहि आनन होजा पापी ।
जब कृष्णचन्द्र व्रज में आवें, तब हो उद्धार तेरा पापी ॥
सुनते हि शाप तन की शोभा, हो गई नष्ट अति घबराया ।
होकर लाचार कंस के यहां, इस निश्चर ने आश्रय पाया ॥
ये लीला वर्ष पांचवें में, मोहन ने व्रज में धारी थी ।
पर छटे वर्ष में ग्वालों ने, यों कहा आज कर डारी थी ।
मायेश की माया का रहस्य, नहिं समझ किसी के आया है ।
जिसके द्वारा अघ दुष्ट ने भी, सारूप्य मोक्ष पद पाया है ॥
कहा परिक्षित ने तुरत हे मुनि ज्ञान निधान ।
संशय एक मिटाइये, कृष्ण भक्त सुखखान ॥
लीला की पंचम बरस, छटे वर्ष सम्वाद ।
ये कैसे संभव हुआ, एक साल के बाद ॥
व्यास पुत्र कहने लगे, सुनो भक्त नरपाल ।
हरि की कथा सुहावनी, मेटन भव भय जाल ॥
जिस तरह से कामी नर को सब, जग कामिनिमय दिखलाता है ।
त्यों ही तुझ सम हरि रत सबजा, लख इष्ट देव सुख पाता है ॥
करता है बारम्बार श्रवण, प्रभु के चरित्र त्रिभुवन पावन ।
कई तरह के प्रश्न पूछ गुरु से, धर लेता सार तत्व निज मन ॥
अस्तू कर गति अघ दानव को, प्रभु लौटे जब यमुना तट पर ।
तब बोले बाल सखाओं से, नभ में अति चढ़िआये दिनकर ॥
बछड़ों को तो त्रण चरने दो, हम सब भोजन करलें आओ ।
फिर खेलेंगे कई खेल नये, लगरही भूख सब डट जाओ ॥

ये सुन जुड़ आये सखा सभी, हरि के चहुँओर विराजे आ ।
थे मध्य में नँदनंदन बैठे, उडुगण में शशि सम शोभा पा ॥
लीं सबने निज छाकें उतार, बन पत्र के थाल बनाय लिये ।
माखन मिश्री पकवान सभी पत्रों में झट फैलाय लिये ॥
फिर लगे सभी भोजन करने, आनन्दकंद के संग सुख पा ।
निज निज रुचि के अनुसार करें, वर्णन भोजन सामिग्री का ॥
बोला कोई पकवान मेरा कैसा है मधुर चखना मोहन ।
और कहा किसी ने दही हेतु, खाया न कभी होगा लालन ॥
यों कह अपनी झूँठी चीजें, निज कर से प्रभु मुख में मेलें ।
सच्चिदानंद भी हँस हँस कर, अति प्रेम सहित मुख में लेलें ॥
फिर खुद भी मक्खन को उठाय ले ग्रास अर्ध ही खाते थे ॥
और आधी महा प्रसादी को, सब के मुँह में पहुँचाते थे ॥
नित रहें लालियत कैलाशी, जिस झूठन को पाने के लिये ।
सुर अज सनकादिक भी तरसें, जो महा प्रसाद खाने के लिये ॥

वो प्रसादि अघनासनी मेटन भव भय जाल ।
बिन प्रयास पाते सदा, व्रजगोपी के बाल ॥

ये था तन्मयता का प्रताप, होगये अनन्य भक्त ग्वाले ।
निशिदिन धरते उर सख्य भाव, प्रभु प्रेम में होकर मतवाले ॥
सच है भक्तों के दास हरी, ये हरि के दास कहाते हैं ।
नहिं फरक हरी हरि भक्तों में, श्रुति शास्त्र हमेशा गाते हैं ॥
यग भाग से तृप्त जो होंय नहीं, वे तुच्छ ग्वाल संग खाय रहे ।
हम तो बस ये ही कहते हैं, भक्तों के बस प्रभु आय रहे ॥

इस प्रकार भोजन करें, ग्वालों संग नन्दलाल ।
जगकारन जगदात्मा, जगरक्षक, जगपाल ॥
भोजन लीला सुर सभी, देख रहे अति चाव ।
पर ब्रह्माजी पर पड़ा, इसका अधिक प्रभाव ॥

मन में सोचा ये बात है क्या, क्या सचमुच ये भगवान नहीं ।
ग्वालों की झूठन खाते हैं, कुछ ऊंच नीच का ध्यान नहीं ॥
गर ये जगनायक हैं तो मैं, बछड़े लेजाय छिपाता हूँ ।
होजाय परिच्छा पल भर में, इनको विधिपना दिखाता हूं ॥
शंका करते ही ज्ञान मिटा, माया व्यापी कमलासन को ।
होगया भ्रमित चित कमर कसी चल दिये कृष्ण को जांचन को ॥
प्रभु प्रेम मगन सब बाल यहां, भोजन कर रहे दिवाने हुये ।
उस तरफ वत्स चरते चरते वहां से अति दूर रवाने हुये ॥
इससे बन पड़ी स्वयंभू की, बछड़े ले सत्य लोक धाये ।
माया से वेसुध बना उन्हें, वापिस उसही वन में आये ॥
फिर लगे फिक्र में बच्चों की, सोचा यदि मोहन हट जावें ।
तो फिर हम इनको भी लेकर, झट अपने लोक चले जावें ॥
इतने में एक सखा बोला हे प्रभु बछड़े न नजर आते ।
पल भर में सब चल दिये किधर, उनका स्वर तक नहिं सुन पाते ॥
मुस्काकर बोले दामोदर, मैं उन्हें ढूंढने जाता हूँ ।
तुम जितने भोजन करो तात, मत घबराओ अभि लाता हूँ ॥

यों कह कर मोहन उठे, चले विपिन की ओर ।
एक कोर कर में लिये, लिये एक मुँह कोर ॥

खुस रही थी मुरली कटिपट में, वांये कर वत्स हाकन लकुटी ।
चल रहा था मुख नवनीत भरा, अलकें लटकी गालों पै लुटी ॥
इस ठाठ से मोर मुकट धारी जगदीश चले बछड़े खोजन ।
ये अवलोकन कर देवों के, होगये हृदय वस प्रेम मगन ॥
ये मौका पाकर चतुरानन बच्चों को भी लेगया उठा ।
और उसी तरह माया द्वारा, करके वेसुध झट दिया लिटा ॥

इत वन पर्वत कंदरा, अन्य अगम स्थान ।
हरि बछड़े ढूंढत फिरत बीहड़ अरु मैदान ॥

जब एक वत्स भी मिला नहीं, तो लौटे प्रभु कालिन्दी तट ।
यहां ग्वाले भी नहिं नज़र पड़े, अंतरयामी समझे झट पट ॥
सोचा यदि मैं ब्रह्मापुर से, सबको लौटाये लाता हूँ ।
सृष्टाका मोह न जावेगा, एक लीला नई रचाता हूँ ॥
तब वत्स व ग्वाल बालकों की, मांताओं का संकट हरने ।
और कमलज को करतूतों की, शिक्षा देने झंझट हरने ॥
गोलोकपती जनसुखदायक, जगदात्मा जगरचनेवाले ।
बन गये स्वयम् उतने ही खुद, जितने थे वत्स और ग्वाले ॥
उनके अनुसार ही रूप रंग, आकृती प्रकृति शरीर गठन ।
वस्त्रा भूषण बोली चाली, घरवालों के संग रहन सहन ॥
सब ज्यों की त्यों निर्माण करी, हलधर तक ने नहिं पहिचाना ।
फिर और व्यक्ति की क्या गिनती यहां तक देवों ने नहिं जाना ॥
पुनि शाम पड़े मोहन घर को, वत्सों ग्वालों के साथ गये ।
खुद ही थे कृष्ण वत्स ग्वाले, खुद ही खुद द्वारा चलत भये ॥
इस तरह प्रभू ने बता दिया, सारा संसार कृष्णमय है ।
जो मस्त हुआ ये तत्व समझ, उसको जग में किसका भय है ॥

हरि माया अतिशय प्रबल, विधि तक गोते खायँ ।
बचें फकत वे ही कि जो, चरण शरण चितलायँ ॥

अलकिस्सा संध्या समय आय, जिस वत्सबाल का घर था जो ।
उसमें ही प्रभू प्रविशे फौरन, और किया वही जो करते वो ॥
वैसे हि कृष्ण ब्रज लाडले थे, पर जब से पुत्र बने आकर ।
तब से माताओं गउओं का, गोपों का प्रेम बढ़ा सत्वर ॥
था असल भेद तो ज्ञात नहीं, पर सुत सनेह व्याकुल रहते ।
भगवान भी माता पिता समझ, नित प्रति उनकी सेवा करते ॥

जगनायक गृह गृह भये, हरन द्वंद दुखमूल ।
आनन्दित सब होगये, दुःख हुआ निर्मूल ॥

यों वत्सपाल भी कृष्णचन्द्र, खुद वत्स व ग्वालबाल बनकर ।
खुद का पालन खुद करते हुये, बस लगे बिचरने उस थल पर ॥
बस इसी तरह करते करते, एक साल पूर्ण होने आया ।
कुछ दिन बाकी थे तब यहां पर, अचरज इक और नया छाया ॥
इक दिवस कूल कालिंदी पर, पानी पी वत्स रंभाने लगे ।
वायू द्वारा इनके ये शब्द, गउओं के कान में जाने लगे ॥
तब पूंछ पीठ पर धर फौरन, गायें सारी वहां से धाईं ।
गोपालों ने रोका तो बहुत, पर चली नहीं कुछ चतुराई ॥
ऊबड़ खाबड़ भूमी को लांघ, गौ मातायें वहां आय गईं ।
बछड़ों को दूध पिलाने लगी, सुत प्रेम में पूरन छाय गईं ॥
गोपाल कुपित होआये पर, आते ही क्रोध बिलाय गया ।
पुत्रों पर दृष्टी पड़ते ही, मुख चूमा जी हुलसाय गया ॥
मुस्काने लगे कृष्ण मन में, ये लख बलदाऊ चकराये ।
जो देखा दिल में ध्यान लगा, सब जगह कृष्ण दृष्टी आये ॥
बोले हे भाई मैंने तो, समझा था देव अंश ग्वाले ।
पर यहां तुम्हारे सिवा प्रभू, मुझको न और दीखे भाले ॥
सारे बछड़े और वत्सपाल, बस कृष्ण दिखाई देते हैं ।
ये कैसी लीला है तुम्हरी, क्यों आप भेद नहिं कहते हैं ॥

हंसकर मोहन ने कहा, ब्रह्मा का सब हाल ।
हलधारी भी हंस पड़े, बोले जय नन्दलाल ॥
उधर वर्ष पूरा हुआ, विधि के पलक समान ।
पद्मयोनि ब्रज को चले, मन में भरे गुमान ॥

आकर नभ मंडल में ठहरे, ब्रज की लीला निरखन लागे ।
लख वत्स ग्वाल संग क्रीडितहरि, घबरा कर निज पुर को भागे ॥
वहां ग्वाल बाल अरु बछड़ों को, बेहोश नींद ही में पाया ।
पुनि देखे ब्रज में सब के सब, ब्रह्माजी को चक्कर आया ॥

विधि मोहित करने आये थे, खुद मोह के जाल फसे आकर।
आँतें उल्टी आ गले पड़ीं, श्री विश्वम्भर से टकरा कर॥
जैसे कोहरे का अंधकार, होता विलीन तममय निशि में।
जुगनू निज चमक गमा देता, ज्यों दिन के समय चहूँ दिशि में॥
त्यों ही धाता निज माया का, करके प्रयोग मायापति पर।
सब होश गमा होगया भ्रमित, मायेश की माया को लखकर॥
इतने ही को देखकर स्रष्टा थे हैरान।
इतने में फिर और इक, कौतुक लखा महान॥
क्या देखा उनके ही सन्मुख, सब वत्स ग्वाल हरिरूप हुये।
नव नीरदसम द्युति धारन कर, घनश्याम स्वरूप अनूप हुये॥
है सबके तन पर पीताम्बर, हाथों में है मुरली प्यारी।
कुंडल किरीट शोभायमान, कौस्तुभमणि की छवि है न्यारी॥
झनकार कर रहे हैं नूपुर, सब बंसी मधुर बजाते हैं।
जड़ चेतन सब मूरति धरकर, भगवान की स्तुति गाते हैं॥
फिर देखा ऋद्धि सिद्धि ऋषिमुनि, पार्षद द्वारा प्रभु सेवित हैं।
अगणित शिव, अगणित चतुरानन, हरिपद सिर टेक निवेदित हैं॥
आगे देखा फल पत्तों में, श्रीकृष्ण अकेले छाय रहे।
पुनि लखा अखिल जग में मोहन, नटनागर दृष्टी आय रहे॥
आख़िर देखा वो विराट रूप, सब विश्व उदर धर लीन्हा है।
प्रति रोम कई ब्रह्मांड लसें, शिव, अज विश्नू भरदीना है॥
होरहा प्रकाशित विश्व सभी, जिसका अनुपम प्रकाश पाकर।
उस झूठन खानेवाले का, ऐसा अद्भुत प्रभाव लखकर॥
ब्रह्माजो का सब ब्रह्मापन, अभिमान मोह झट अस्त हुआ।
वेहोश से हो वाहन पर वो, बस लुढ़क गये मन सुस्त हुआ॥
अज का ऐसा हाल लख, मुस्काकर भगवान।
सारी माया हरि लई, हुआ बिधिहि तब ज्ञान॥

चेतन हो ब्रह्मा ने देखा, बछड़ों की खोज में प्रभुरत हैं ।
माखन का कौर हाथ में है, चंचल दृष्टी चहुँ दिशिगत है ॥
ये लखते ही निज बाहन तज, कमलज आतुर होकर धाये ।
और कनकदंड सम गिरे तुरत, प्रभु के चरणों पर पुलकाये ॥
पुनि अति विनीत हो वेदजनक, कर जोड़ कृष्ण से यों बोले ।
तुम्हरे गुण तो हैं अति अपार, मैं किम बरणों हे अनमोले ॥
तो भी हे स्तुति के लायक, स्तुती आपकी करता हूँ ।
होना प्रसन्न जगजीवन प्रभु ये आश हृदय में धरता हूँ ॥
नीले बादल सम सुभग वरण, पीताम्बर बिजली सा चमके ।
कानों में कुंडल अति शोभित, सिर मोर मुकुट आभा दमके ॥
गल में बनमाला दीसिमान, मुखमंडल शोभा धाम बना ।
भोजन का ग्रास और मुरली, कर में बत्स हांकन बेंत तना ॥
ये सारे चिन्ह नाथ तुम्हरी, शोभा से छबिघर बने हुये ।
हे महा छबी के उत्पादक, सारे गुण तुम में सने हुये ॥

भक्त भावना से धरा, सगुण रूप सुखरास ।
सबहिं सुलभ सबकाल में, भवभय करे विनास ॥

लेकिन फिर भी हैं अयोनि आप, नहिं पंच तत्त्व से बने हुये ।
शुद्धात्मा शुद्ध सत्त्व मय अरु, हैं अचिंत्य अनुपम भने हुये ॥
मनको बस करनेवाले भी, नहिं महत्व आपकाजान सकें ।
दिन रात ध्यान धर कर सोचें, परथाह आपकी पा न सकें ॥
हे ईश बुद्धि से परे है जब, इस सगुणरूप की प्रभुताई ।
तब निर्गुण महिमा कहने में, पड़ती है कितनी कठिनाई ॥
पहिले की कोशिश ऋषियों ने, ज्ञानी हो मुक्ती पावें हम ।
पर लगे थपेड़े माया के, होगया ज्ञान अभिमान खतम ॥
आखिर ली शरण आपकी जब, हृदय में शीतलता छाई ।
निर्गुण प्रयत्न बेकार हुआ, तब भक्ती की बारी आई ॥

जो नर कल्यान कारणी इस, भक्ती को अपनाते हैं नहीं ।
केवल श्रम करें ज्ञान के हित, वे कभी चैन पाते हैं नहीं ॥
चाहे कोशिश करके कोई, रविशशि की थाह लगा लेवे ।
पृथ्वी के रज कण तक गिनले विज्ञान की धूम मचादेवे ॥
अधिभौतिक सकल समस्यायें, करके प्रयत्न सुलझा डाले ।
मन से चाहे जगजीत बने, बेहद लक्ष्मी को पाले ॥
लेकिन जो असली जीवन है, जिसमें है सत्य सुख भरा हुआ ।
वो उसे कभी मिल सके नहीं, जो सुश्क ज्ञान में परा हुआ ॥
दुनियां की टक्कर खाकर के, जब नाथ शरण में आवेगा ।
तब ही होगा वो कृत्य कृत्य, सच्चिदानंद को पावेगा ॥

यों स्तुति कर कृष्ण की, निज अपराध विचार ।
ब्रह्मा फिर कहने लगे, त्राहि त्राहि करतार ॥

मेरा नालायकपन देखो, मायापति पै मोह डाल रहा ।
जो ठगे विश्व पल में उसको, ठगने का रचा इक जाल महा ॥
कितने थे नीच खयाल मेरे, सोचा कैसे अवतारी हैं ।
लूं इनकी जाय परिच्छा मैं ईश्वर हैं या संसारी हैं ॥
गोलोक में क्या आदेश मिला, उसको बिल्कुल ही भूल गया ।
हो करके रजोगुणी हे प्रभु, अपने वैभव में फूल गया ॥
अग्नी से निकली चिंगारी अग्नी की किस समता पावे ।
ये किस प्रकार से संभव हो जल बूंद जलधि से बढ़जावे ॥
हूँ अंश आपके अंश का मैं हैसियत मेरी कितनी सी है ।
हे सहज प्रसन्न क्षमा करना, है ज्ञात शक्ति जितनी सी है ॥

※ गाना ※

मेरे गरव ने मुझ को बेकार कर दिया है ।
लज्जा ने मुझे भगवन लाचार कर दिया है ॥

मायापती को मैने माया झलक दिखाई ।
लंका का मुद्रिका सम आकार कर दिया है ॥
पद पाके तुम से तुम पर बल आजमाना चाहा ।
कैसा अनर्थ मैने करतार कर दिया है ॥
मारो बचाओ कर दो सृष्टी के पद से खारिज ।
मस्तक मैने तुम्हारे चरणों पै धर दिया है ॥
इतना है मुझे निश्चय अपराध क्षमा होगा ।
शरणागतो का तुमने सब कष्ट हर लिया है ॥

लात हने यदि गर्भ में, स्थित बाल अबोध ।
दयावान माता नहीं, करे कभी भी क्रोध ॥

यों अखिल विश्व के नायक के, वृहतोदर में सब वास करें ।
मेरे जैसे अगणित ब्रह्मा, हर रोम में तहां निवास करें ॥
हे माया नाशन महाप्रभो, ऐश्वर्यवान जनसुखदायक ।
करदो मेरा अपराध क्षमा, करुणानिधान सबकुछ लायक ॥
जितनी सी मेरी गुदड़ी है, वो अभी आपने दरसाई ।
प्रत्येक ग्वाल और वत्स पास, इक ब्रह्मा दीन्हा दिखलाई ॥
मैं स्वयम् आपसे अलग होय, जगदीश्वर बना फिरा करता ।
वो सकल गर्व निर्मूल हुआ, जिसके बल पर अकड़ा रहता ॥
यों तो बाहिर देदीप्यमान, सारा ही विश्व अलोकित है ।
पर माता को मुख में दिखला, बतलाया माया वेष्टित है ॥
हो आप विधाता के धाता, फिर जन्म रहित आकाररहित ।
केवल दुष्टों के दलने को, वन जाते हो आकार सहित ॥
जब जब भू भार ग्रसित होवे, दुष्टों का अत्याचार बढ़े ।
उस समय वचन सत करने को, तुम्हरा पावन अवतार कढ़े ॥

हे भगवन तुम योगेश्वर हो, ऐश्वर्य शील परमात्मा हो ।
अपनी माया में छिप करके, क्रीड़ा कर्ता जगदात्मा हो ॥
ये अखिल विश्व है तव शरीर, तुम बीज रूप से व्यापक हो ।
सब कुछ हो और नहीं भी हो, शिव,अज,विश्नू संस्थापक हो ॥
ज्यों रवि में दिनरात का, होय न कुछ भी काम ।
बंध मोक्ष का कामक्या, त्यों तुम में सुखधाम ॥

सबके हृदय में वास करो, विरथा नर बाहिर खोज करें ।
है नाम पतित पावन तुम्हरा, जप सुमरण सब दुखद्वंद हरें ॥
ये है मेरी इच्छा भगवन, दासानुदास तव बन जाऊं ।
या व्रज भूमी की रेत बनू प्रभु को हृदय पर रमवाऊं ॥
है धन व्रज गोकुल वृंदावन, धन धन यहां के बसनेवाले ।
जिनकी नजरों के आगे तुम, रहते हो नित डेरे डाले ॥
है धन्य नंदरानी माता, धन धन्य नन्द अरु गोप सकल ।
गो, पशु, पक्षी, तरु, बेल, लता, सबका जीवन हो रहा सफल ॥
जो यज्ञ भाग से तृप्त न हों, उसकी तृप्तो पय से करदें ।
नहिं भरे उदर महा प्रलय में, उसको ये भोजन से भरदें ।
द्वादस आदित्य रुद्र ग्यारह, और आठ वसू सुरपुरवाले ॥
लख अमित गुणों का सगुणरूप, दर्शन कर रहते मतवाले ॥
कर घोर तपस्या कई जन्म, जो तव पद निरख न पावें हैं ।
उन चरणों को बन में ग्वाले, हर्षित हो नित्य दबावें हैं ॥
इनके सुभाग का वर्णन क्या, सुरनर मुनितक कर पाते हैं ।
जो क्रीड़ा में तुमसे जीतें, हारें खेलें हर्षाते हैं ॥
तरे पूतना बक अधम, वत्सा अघा तमाम ।
केवल दर्शन मात्र से, पाया गोपुरधाम ॥

उन दुष्ट प्रकृतीवालो को, जब तुमने ऐसी गति दीन्हीं ।
बतलाइये नंदयशोदा हित, कौनसी व्यवस्था प्रभु कीन्हीं ।

तुमही जानो प्रभु तुम्हरी गति, मैं तो बिस्मित हूं जगधारी ।
माया व्यापे नहिं फिर मुझको, ऐसा वर दो हे बनवारी ॥
अपराध क्षमा करदो मेरा, हे नटनागर सब गुण आगर ।
चरणों की भक्ति मिले मुझको, करुणानिधान किरपासागर ॥
गोपल बाल यमुना तट पर, मैंने पहुँचाय दिये स्वामी ।
ये बछड़े भी हाज़िर यहां पर, ले जाओ इन्हें अंतरयामी ॥

यों कह ब्रह्मा सिर नवा, चले गये निजधाम ।
प्रभु प्रताप उर धार कर गाकर गुण अभिराम ॥
विधि के जाते ही उधर, वत्सों युत गोपाल ।
कालिंदी तट आगये, जहं थे सारे ग्वाल ॥

हरि की माया वस गोप बाल, ये रहस्य नहीं जानन पाये ।
पूरा एक वर्ष गया लेकिन, ये समझे कृष्ण अभी धाये ॥
क्योंके भोजन ज्यों का त्यों था, थे पात उसी विधि जमे हुये ।
हंस रहे थे आपस में त्योंही, इतने में प्रभु तहं आय गये ॥
लख इन्हें ये बोले हे कान्हा, तुमतो अति शीघ्र चले आये ।
जो रहे हैं बाट तुम्हारी हम, दो चार भी ग्रास नहीं खाये ॥
लो आ बैठो भोजन करलो, इसके समाप्त हो जाने पर ।
हमने कई खेल विचारे हैं, वो खेलेंगे बाकी दिनभर ॥
मनमोहन हंस कर बैठ गये, था पहिले सम ही आयोजन ।
यानी ग्वाले चहुँ ओर रहे, बिच में था जग जीवन आसन ॥
इस भांति बहुत आनन्द सहित, दोपहर का भोज समाप्त हुआ ।
फिर लगे खेलने खेल कई, सबके चित्त आनन्द व्याप्त हुआ ॥
फिर निर्मल जल कालिंदी का, पीकर वे वत्स चराने लगे ।
मुख पर बंसी रख श्रीकृष्ण, मन मोहन राग बजाने लगे ॥
जब सांझ हुई बछड़ों को ले, सब ग्वाल बाल घर पर आये ।
यों एक वर्ष के बाद भूप, ये सब लीला कहने पाये ॥

छटा वर्ष लगते हि प्रभू, नन्दराय पै जाय ।
बोले आज्ञा दीजिये, लाऊँ गाय चराय ॥
प्रस्ताव सुवन का सुन करके, व्रजराज हृदय में हरषाये ।
मुख चूम पुत्र का प्यार किया, सुख से गोदी में बैठाये ॥
बोले बेटा गौ प्रेम तेरा, आनन्दित मुझे बनाता है ।
जिस घर हो तुझ जैसा बालक, वह सुख निधान हो जाता है ॥
इतना कह तुरत व्रजेश्वर ने, कुल प्रोहित को तहँ बुलवाया ।
सुत को गोपाल बनाने का, एक सुघड़ महूरत दिखलाया ॥
उस रोज नन्द ने आनन्द से, सारी तय्यारी करवाई ।
भाई बाँधव बुलवाय लिये, एक गउ को सुन्दर सजवाई ॥
शीतल जल से स्नान करा, गोपाल सरिस शुभ भेष बना ।
लाये व्रजेश सुत को तहं पर, था तहाँ एक चौपाल तना ॥
प्रोहित ने हवन कुन्ड बनवा, आहूती प्रभु से दिलवाई ।
फिर विधि पूर्वक गउ माता की, हर्षित हो पूजा करवाई ॥
ये सब होने पर ब्राह्मण ने, यों कहा कृष्ण आगे आओ ।
अग्नी सन्मुख गो पर कर रख, गोपालन हित सोगंद खाओ ॥
वाक्य श्रवण कर आगये, अग्नी ढिंग नन्दलाल ।
हाथ गाय की पीठ धर, कहन लगे तत्काल ॥
'कर साक्षि तुम्हें हे अग्निदेव, मैं आज प्रतिज्ञा करता हूं ।
आजन्म करूंगा गउपालन, ये व्रत हृदय में धरता हूँ ॥
उद्देश्य सदा मम जीवन का, गो रक्षा ही चित धारूँगा ।
गोधन सम और न धन समझूँ, इस हित सब सुःख विसारूँगा ॥
गौ रक्षक ने गौ रक्षा का प्रण कर जग को ये बतलाया ।
दुनियाँ के सकल प्राणियों में, गउ ने ऊँचा दरजा पाया ॥
ये सुन लकुटी गउमुखी, दी द्विज ने तत्काल ।
और दई एक कमलिया नाम धरा "गोपाल" ॥

फेर पूर्ण आहुति दिला, गउ को शीश नवाय ।
प्रोहित यों बोला सुनो, हे गुपाल चितलाय ॥
गोधन सम और न द्रव्य कोई, है आर्यजाति के पास नहीं ।
जब तक इसकी सेवा होगी, होवेगा हरगिज़ हास नहीं ॥
जिस रोज गऊ सेवा का व्रत, आर्यों के मन से जायेगा ।
मेरा तो है विश्वास यही, उनका न पता फिर पायेगा ॥
अस्तू निज जन्म दात्री से, बढ़ कर इसका आदर करना ।
वो दूध पिलाती है कुछ दिन, इससे सारी आयू भरना ॥
"गोमाता" इसीलिये इसको, सब वेद शास्त्र मिल कहते हैं ।
जो जन इसकी सेवा रत हैं वे नित आनन्द में रहते हैं ॥
प्रत्येक रोम में गैया के, बासा है शिव, अज, विश्नू का ।
अस्तू किन्नर गंधर्व तलक, धरते हैं ध्यान नित धेनू का ॥
इसके अमृत सब पय का गुण, कहने में कभी न आता है ।
इसके गोबर अरु मूत्र से ही, अपवित्र पवित्र बन जाता है ॥
फिर देखो कई तरह का अन्न, हम लोग रात दिन खाते हैं ।
वो करामात है बैलों की, जो इसके सुत कहलाते हैं ॥
है इतनी अनुपम वस्तू ये, फिर भी अति सीधी साधी है ।
जिस घर मैं ये पाली जाती, उसकी हरती सब व्याधी है ॥
ब्राह्मण का ब्राह्मणपन इससे क्षत्री इसही के बल राजा ।
है वैश्यपना गौ सेवा से, गोधन से सरता सब काजा ॥
अस्तू इसकी रक्षा में तुम, अपना सब ध्यान लगा देना ।
बाकी कैसे गउपालन हो, ये शिक्षा निज पितु से लेना ॥
प्रोहित के सारे वचन, सुने नवा कर शीश ।
कहा करूंगा मैं यही दो हे विप्र अशीश ॥
ब्राह्मण को करके विदा, ले निज सुत को साथ ।
गउशाला की ओर को चले तुरत व्रजनाथ ॥

करवा दिग्दर्शन गायों का, गोपालन विधि सब सिखलाई।
चरती थीं जहं पर ये सब नित वो चराहगाह भी बतलाई॥
सारे जग को रचनेवाले, गोशाला की रचना लखकर।
आश्चर्य चकित से हुये तुरत, गउ प्रेम उमड़ आया सत्वर॥
ओतिओं कोस चौरासी को, लंबाई चौड़ाई सारी।
थी चरागाह से घिरी हुई, जहं चरतीं थी गायें प्यारी॥
जमना के वहां पर बहने से, हरियाली चहुँदिशि छाई थी।
नृप कंस ने मासूली कर पर, श्री व्रजपति को दिलवाई थी॥
थी पांच लक्ष गायें जिसके, वो तो उपनंद कहाता था।
रखता था जो पूरी नौ लख, पदवी सुनंद की पाता था॥
बृषभानु उसे सब गिनते थे, दस लक्ष गऊ जिसने पाली।
बृषभानूवर जो अर्ध क्रोड़, गायों की करता रखवाली॥
थी एक क्रोड़ गायें जिसके, गोपों का नृप माना जाता।
पद नंद का उसको मिलता था, सारे व्रज का था अधिष्ठाता॥
थे नौ उपनंद सुनंद थे नौ, अरु छ. बृषभानु गऊवाले।
बृषभानूवर थे एक तहां, और एक नंद थे रखवाले॥

थे श्रीराधा के पिता, बृषभानूवर राय।
व्रजाधीश प्रभु के जनक, नंदराय सुखदाय॥

सब भारत में नवनीत फकत, व्रज का उत्तम कहलाता था।
बस इसीलिये छकड़े भर भर, बाहिर पहुँचाया जाता था॥
सारे व्रजवासी नित माखन, श्री नंदराय को दे आते।
उनके द्वारा चतुराई से, हांडियों में बंद किये जाते॥
अगणित व्यौपारी रैन दिवस, व्रज में आया जाया करते।
व्यौपार करोड़ों रुपयों का, गोपालों से वे किया करते॥
मणि माणिक मोती जवाहरात, उत्तम से उत्तम लाते थे।
मक्खन की एवज में उनको, व्रज में विक्रय कर जाते थे॥

साधू संतो द्विज मुनियों को, पय दधि नवनीत मुफ्त देते ।
अरु गोपालों के लालों को, माखन भर पेट खिलालेते थे ॥
मलविद्या का था मुख्य काम, नन्दराय प्रसिद्ध लड़ैया थे ।
उनके द्वारा शिक्षा पाकर, श्रीकृष्ण और बल भैया थे ॥
थे अनुचर कई नन्द के यहां, गोपालन करना जानते थे ।
गो हित जीना गो हित मरना, वे परम धर्म पहिचानते थे ॥
जिस तरह मिले गो माता को, सुख वोही काम किया करते ।
प्रत्येक गाय के नीचे वे, मिट्टी अति स्वच्छ रखा करते ॥
गोवर गोमूत्र साफ होकर, नित नई रेत तहं बिछती थी ।
जिस समय दूध दोहा जाता, बंसिकी मधुरध्वनि बजती थी ॥
थीं बंधी इशारे पर गायें, दुहने के वक्त ,आजाती थीं ।
बछडों को थोड़ा दूध पिला, अति प्रेम सहित दुववाती थीं ॥
नन्दराय के यहां सौ गायों पर, गोपाल था इक प्रबंध करता ।
थे उसके नीचे दस ग्वाले, दस गायों पर था एक भरता ॥
इस तरह से लाखों गौ सेवक, निजकुटंब सहित वहां रहते थे ।
पाते थे तनख्वाह व्रजपति से, नित गाय चराया करते थे ॥
थे हृष्ट पुष्ट गोपाल सभी, बीमारी का कुछ काम न था ।
लंपटता अरु लुच्चेपन का, वहांपर कहिं नामनिशान न था ॥
कारन गउ दूध निरोग बड़ा, और बलका निधि कहलाता है ।
मिलता है गौ की सेवा से, बिन सेवा हाथ न आता है ॥
जब से भारत ने गउ सेवा, होकर प्रमाद वस बिसराई ।
हो गये तभी से वीर्यहीन, घर घर आकर विपता छाई ॥

इन्तजाम था अति सुघड़, सुन्दर था सब काम ।
गोपालों की चतुरता, कमा रही थी नाम ॥
इस प्रकार गउयें सकल, दिखलाकर नन्दराय ।
निज सुत से कहने लगे, सुनो लाल चितलाय ॥

बेटा इस घर में गौ पालन, पीढ़ियों से चलता आता है ।
है ठाठ बाट सारा इससे, दुख कभी न शक्ल दिखाता है ॥
अस्तू यदि चित्त लगा करके, गोपालन में जुट जाओगे ।
जीवोगे जब तक सुखी रहो, फिर अंत शुभगती पावोगे ॥
यों कह व्रजपति ने घर पर आ, हित से फिर गउ पूजा कीन्ही ।
श्रीकृष्ण ने पितु की आज्ञा को, हर्षित हो चित में धर लीन्ही ॥
इस दिन से नित प्रति सखासंग, गउएं ले बन को जाने लगे ।
सुखदायक नई नई लीला, कर सांझ को घर पर आने लगे ॥
घर आ अपने ही हाथों से, प्रभु गायों को भोजन देते ।
दोहते थे स्वयम् और निज कर, गउ पीठन पर फेरा करते ॥
गायें भी प्रेम मूरती को, लखकर हर्षित हो जाती थीं ।
नंदलाल के आगे पीछे नित, रहती थीं आनन्द पाती थीं ॥
गर चरते चरते बन में वे, कुछ दूर निकल प्रभु से जातीं ।
तब बंसि बजाते थे मोहन, सुनतेहि तुरत वापिस आतीं ॥
भगवान को सारे नामों में, "गोपाल" नाम अति प्यारा है ।
भक्तों ने भी आरत होकर, इसको हि विशेष उचारा है ॥

※ गाना ※

सेवा गऊ की जिसने की उसका जनम सुधर गया ।
पापी हो कितना भी कोई पल में जहां से तर गया ॥
सुन के पुकार गौ की ही आये थे गोलोकेश यहां ।
पाली गऊ गुपाल का नाम सभी जा भर गया ॥
गोधन सरिस न धन कोई पास है आर्य जाति के ।
जिस दिन गया ये, जानलो, देश सभी बिगर गया ॥
अस्तु कुतर्क छोड़ कर मित्रो बनो गुपाल तुम ।
जिसने हृदय में धर्म ये धारा वो पार उतर गया ॥

अस्तू अपने राम तो, कहें उन्हें "गोपाल"।
धेनु चरैया गोप सुत, व्रजवासी नंदलाल ॥
इस भांति बने गोपाल हरी, जननी को हर्ष अपार हुआ।
अब सुनो एक तुम गुप्त कथा, भक्तों हित सिर्फ प्रचार हुआ ॥
एक दिवस सवेरे राधाजी, श्री नंदराय के घर आईं।
और लगी खेलने कृष्ण संग, लख जोड़ी यसुमति हरषाईं ॥
अति प्रेम सहित ले गोदी में, नंदरानी ने तेहि प्यार किया।
वेणी बनाय, बिन्दी लगाय, एक सुघड़ दुपट्टा उढ़ा दिया ॥
मणि माणिक से फिर गोदी भर, कर रस्म सगाई सुखरासी।
राधा को उसके घर भेजा, कर संग में एक चतुर दासी ॥
माता ढिंग जा रासेश्वरि ने, यसुमति का हाल कहा सारा।
सुनकर बिगड़ी वृषभानु तिया, बोली ये क्या चित में धारा ॥
बिन मेरी मरजी यसुमति ने, दस्तूर किस तरह कर डाला।
मैं अपनी पुत्रि नहिं दूंगी, है माखन चोर नंदलाला ॥
तब वृषभानूवर बोल उठे, श्री गर्गमुनि कह गये हैं क्या।
राधा अर्धाङ्गिन कृष्ण की है, लीन्हा है जन्म अपने घर आ ॥
ये उन्हें हि ब्याही जावेगी, स्रष्टा प्रोहित बन आवेंगे।
यमुना के तीर किसी वन में, एकान्त में ब्याह करावेंगे ॥
ब्याह तो है ब्रह्मा के अधीन, इसलिये न देखो भालो तुम।
बस फकत सगाई ही करके, मनकी सबहबिस निकालोतुम ॥
फिर नंदराय व्रज के नृप हैं, घर भी उनका अति उत्तम है।
इसलिये रस्म तुम भी करदो, ये काम श्रेष्ट है अनुपम है ॥
तब कलावती ने भी खुश हो, कई गोपों को झट बुलवाया।
कई छकड़े भर मणि माणिक के, टीका श्रीकृष्ण को भिजवाया ॥
वृषभानू घर से ये समूह, जब नंद को पौरी पर आया।
लख इसे व्रजेश हुये विस्मित, नंदरानी को आनन्द छाया।

दंपति ने सोचा तुरत, अब क्या करें उपाय ।
पुत्र वधू के वास्ते, क्या क्या भेजा जाय ॥

वृषभानू ने तो जी भर कर, यह संपति यहां भिजवाई है ।
जो हमने उचित न भेजा तो, होगी सब जगह हंसाई है ॥
इसके समान सामान प्रिया, कई महिनों में जुट पावेगा ।
जो देर हुई तो यह समझो, सब भरम शीघ्र मिट जावेगा ॥
हम यहां के नृप कहलाते हैं, आदर है सब ब्रज मंडल में ।
क्या करें कहो किस युक्ती से, जय पावें अब इस दंगल में ॥
ये सोच रहे थे इतने में, श्रीकृष्णचन्द्र तहां पर आये ।
था ज्ञात इन्हें सब फिर भी लख, सामान बहुत अचरज पाये ॥
बोले हे जननी जनक कहो, ये वस्तु कहां से आई है ।
तुम सोच रहे हो क्या दोनो, किसलिये शकल कुम्हलाई है ॥
माता ने सारा हाल कहा, तब बोले यों अंतरयामी ।
अपने घर में कुछ कमी नहीं, हम हैं गउओं के अनुगामी ॥
कर ध्यान गऊ का हृदय में, माताजी तुम भीतर जाओ ।
हैं जवाहरात जितने वहां पर, उनको झट बाहिर ले आओ ॥
देखो तो सही वे कितने हैं, यदि काम नहीं चल पायेगा ।
तो फिर कुछ इन्तजाम इसका, हे जननी सोचा जायेगा ॥

सुत का कहना मानकर, धर गउओं का ध्यान ।
यसुमति घर भीतर गई, कौतुक लखा महान ॥

मोती मणि माणिक हीरों से, चमचमा रहा है घर सारा ।
होगई प्रसन्न देख वैभव, सब सोचफिकर झट तजडारा ॥
लाई उठाय कर बाहिर कुछ, बोली अतुलित दौलत पाई ।
ये तो प्रभाव गउका है नहीं, 'गोपाल' का देना दिखलाई ॥
आगया याद मुनि गर्ग कथन, सोचा ये तो अवतारी है ।
राधा है इसकी प्राणप्रिया, इसके ही लिये पधारी है ॥

अति पुलकित हो दिल में चाहा, हम विनय करें प्रभु पकड़ चरन ।
ये लख माया पति मुस्काये, होगई पुत्रवत मति फौरन ॥
हर्षित हो दूना धन भेजा, श्री कलावती अति पुलकाई ।
जोड़ी हो चिरंजीव जग मे, ये दोन्हीं आशिष सुखपाई ॥

इस प्रकार घनश्याम की, हुई सगाई आन ।
बहु प्रकार को भेंट दे, मिले नंद वृषभान ॥

ये होने के कुछ दिवस बाद, इकदिन प्रभु शोभित थे वन में ।
इतने में तहां पर विधि आये, कर स्तुति पुलकाये मन में ॥
फिर बोले हे जगकेजीवन, मैं विवाह कराने आया हूँ ।
श्री राधा भी है आज यहां, ये सुखद संदेशा लाया हूँ ॥
तुमको देखे कई दिवस हुये. इसलिये हृदय घबराई है ।
गायों के साथ आज वन में, तुम्हरे दर्शन हित आई है ॥
यदि आज्ञा हो तो बुलवाऊं, य पवित्र काम सम्पन्न करूं ।
प्रभु का आल्हादिन शक्ती से, करवा मिलाप आनन्द भरूं ॥

हुक्म दिया गोपाल ने, जाते थे विधि दौर ।
इतने में राधा स्वयम्, आपहुँची उस ठौर ॥

हरि इच्छा से एक पल भर में, मंडप विशाल दृष्टी आया ।
जिसके नीचे सब शादी का, सामान विधाता को पाया ॥
विधि ने विधि से शास्त्रानुसार, हरि राधा का जोड़ा जोड़ा ।
दुनियावालों का सब संशय, इस संस्कार द्वारा तोड़ा ॥

* गाना *

कृष्ण राधा के सग ब्याहे मुबारिक हो मुबारिक हो ।
सुरों ने गीत शुभ गाये मुबारिक हो मुबारिक हो ॥
सदा फूले फले जोड़ी दरस कर भक्त सुखपावें ।
कुदिन जाकर सुदिन आये मुबारिक हो मुबारिक हो ॥

विप्र सुर धेनु संतों की अरज सुन कर अजन्मा प्रभु ।
सगुण वपु सबको दिखलाये मुबारिक हो मुबारिक हो ॥
मैं वर्णों अल्प मति क्यों कर तुम्हारी पूर्ण महिमा हो ।
भक्तिवर जन को दिखलाये मुबारिक हो मुबारिक हो ॥

इस प्रकार आनन्द से, हुआ ब्याह सुख मूल ।
गये विधाता लोक निज, पा आशिष तन फूल ॥

एक दिवस कृष्ण बलदाऊ संग, सब सखा मंडली साथ लिये ।
फिरते थे गाय चराते हुये, यमुना तट पर अति हर्ष हिये ॥
कुछ देर बाद फिरते फिरते, नजदीक ताल वन के आये ।
यहां के स्वादिष्ट फलों को लख, सब ग्वाल बाल अति ललचाये ॥
इतने में सुबल सखा बोला, दाऊ दिल में यह आता है ।
फल खावें आज ताल बन के, चित कई दिनों से चाहता है ॥
पर है यहां एक विघ्न भारी, उससे हृदय कंपाय रहा ।
रहता है गर्दभ आनन इक, निश्चर इसमें बलवान महा ॥
रखता है साथ बहु विकट असुर, पशु पच्छी तक का गुज़र नहीं ।
देवों तक को दुख देने में रक्खी इसने कुछ कसर नहीं ॥
हम तुम्हरे आश्रित हैं भैया, चाहो तो सैर करादो तुम ।
सोचो तो निश्चर अंत करो, फल से ये उदर भरादो तुम ॥

बचन सखा के श्रवनकर, मुस्काये बलराम ।
बोले चलो रहे वहीं, हम सबका विश्राम ॥

इतना कह गायें संग लेकर, श्रीराम कृष्ण बन में आये ।
वृक्षों को फलों सहित लखकर, आनन्द मग्न मन हरषाये ॥
आतेहि रोहिणी के नन्दन, तरुओं को पकड़ हिलाने लगे ।
भूमी पर अगणित फल गिराय, बच्चों को खूब खिलाने लगे ॥

होगये प्रसन्न सखा सारे, फल नाच नाच कर खाते थे ।
वर्णन करते थे स्वाद का सब, ताली दे शोर मचाते थे ॥
सुन घोर शब्द अपने बन में, निश्चर धेनुक अति गरमाया ।
एक महा भयंकर शब्द किया, सब बन हिलता दृष्टी आया ।
होगया खुशी का अंत तुरत, सब बालक फल तजकर भागे ।
रोते चिल्लाते हुये तुरत, आये भ्राताओं के आगे ॥
बोले हे कृष्ण करो रक्षा, बलदाऊ शरण तुम्हारी है ।
आ रहा धेनुकासुर राक्षस, कंपायमान भू सारी है ॥
ये इतना ही कह पाये थे, इतने में धूल उड़ाता हुआ ।
दानव इनके ढिंग आपहुँचा, आंखों से खूं बरसाता हुआ ॥
आतेहि लात दी दाऊ के, कर क्रोध झपट कर पुनि धाया ।
पुनि एक प्रहार किया फौरन, लखइन्हें अचलमन खिसियाया ॥
फिर दांत भींच कर वार किया, हलधर भूधर सम अड़े रहे ।
यों हमले उसने कई किये, पर ये तो निश्चल खड़े रहे ॥

थका असुर जब तनिकसा, पकड़ राम ने लात ।
दे मारा एक वृक्ष से, सह न सका आघात ॥

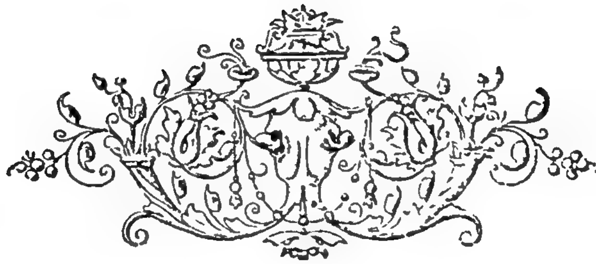
तज दिये प्राण उसने फौरन, गोलोक गया अति हरषा कर ।
गिर पड़े पेड़ कई भूमी पर, निश्चर तन का धक्का खाकर ॥
इतने में इसके साथी भी, कर क्रोध शस्त्र लेकर धाये ।
पर राम कृष्ण ने आते ही, वध किये सकल बिनु श्रम पाये ॥
लीलाधारी की लीला से, वह बन असुरों से साफ हुआ ।
पशु पक्षी पुरुष नारियों का, झट दूर सकल संताप हुआ ॥
भर गईं झोलियां बच्चों की, कुछ खाया कुछ घर ले आये ।
अद्भुत कर्तव्य दोउ भाइन के, आनन्दित हो घर घर गाये ॥

बलिसुत इकदिन साथ ले, गणिकायें सानन्द ।
गया गंध मादन शिखर, करन लगा आनन्द ॥

गाजे बाजों के साथ नृत्य, वे सकल नारियां करती थीं।
गाती थीं सब मद मस्त होय, तालियां बजाकर हंसती थीं॥
उनकी इस विकट ध्वनी को सुन, दुर्वासा का तप भंग हुआ।
कुटिया से बाहिर आपहुँचे, लख लाल दृगों का रंग हुआ॥
दे दिया शाप खर आनन बन, वृन्दावन वास बना अपना।
बलदाऊ तेरे प्राण हने, तब तक प्रभाव दिखला अपना॥

दुर्वासा के शाप से, गधा बन बलिनन्द।
हलधारी ने बध इसे, मेटा सब दुख छंद॥
इस प्रकार पूरा हुआ, मित्रो षष्टम भाग।
"श्रीलाल" अब सातवाँ, सुनो सहित अनुराग॥

❋ श्रीकृष्णार्पणमस्तु ❋





श्रीकृष्ण चरित्र अथवा श्रीमद्भागवत

सातवां भाग

वृन्दावनबिहारी कृष्ण

रचयिता—

श्रीलाल खत्री

प्रकाशक—महाभारत पुस्तकालय, अजमेर

मुद्रक—के. हमीरमल लूनिया, दि डायमण्ड जुबिली प्रेस, अजमेर.

प्रथम बार २,०००	सम्वत १९९१ विक्रमी सन् १९३४ ईस्वी	मूल्य ।) आने

कृष्णस्तु भगवान्स्वयम्

स्तुति

(१)

भजोरे कृष्ण चरण सुखदाई ।

इन चरणों की महिमा शिव, अज, सनकादिक ने गाई ।
शेष, महेश, सुरेश प्रेम से रहें सदा लौलाई ॥ कृष्ण च० ॥
जिसने ध्यान धरा चरणों का बिन प्रयास गति पाई ।
तर गई गणिका, गीध, अजामिल, मीरा, सजन कसाई ॥ कृष्ण च० ॥
जप तप योग यज्ञ करने में पड़ती अति कठिनाई ।
चरण शरण में रहे सदा वो भवसागर तर जाई ॥ कृष्ण च० ॥
"श्रीलाल" सब तज कर गिरजा कृष्ण चरण पर जाई ।
करिहैं तोहि अभय पलभर में कृपासिन्धु यदुराई ॥ कृष्ण च० ॥

मंगलाचरण

(२)

पीताम्बर धर पाप हर, गोकलेश गोपाल ।
ताप हरन जन सुख करन, जय जय दीन दयाल ॥
जय जलशायी जलदसम, सुभग सुहावन रूप ।
सृष्टि रचन, पालन, हरन, शिव अज विष्णु स्वरूप ॥
तुम गुरु गणपति शारदा, सहस बदन तुम शेष ।
विघन हरो मंगल करो, जग व्यापक अखिलेश ॥
बंदहुं वेदव्यास सुत, श्री शुकदेव सुजान ।
गायो कलिमल हरन जिन, "कृष्ण चरित" गुणखान ॥

* श्लोक *

वंशीविभूषितकरान्नवनीरदाभात्पीताम्बरादरुणबिंबफलाधरोष्ठात् ।
पूर्णेन्दुसुन्दरमुखादरविन्दनेत्रात्कृष्णात्परं किमपितत्वमहं न जाने ।

❀ कथा प्रारम्भ ❀

व्यास पुत्र कहने लगे, सुनहु परिच्छित भूप ।
कालीमर्दन की कथा, वरणों परम अनूप ॥
श्रवण करे जो प्रेम से, हरि चरित्र सुखरास ।
अनपायनि भक्ती मिले, अंत धेनुपुर वास ॥

वृन्दावन में नित नव चरित्र, करते रहते थे बनवारी ।
अवलोक जिसे सुख पाते थे, पितु नंद यशोदा महतारी ॥
मोहित थे सारे ग्वाल बाल, हरदम हरिनाम सुमिरते थे ।
सोते जगते चलते फिरते, बस ध्यान कृष्ण का रखते थे ॥
ब्रज बालायें भी अष्ठ प्रहर, धरती थीं ध्यान मुरारी का ।
यहां तक गउऐं भी नित्यप्रती, करतीं अनुसरन बिहारी का ॥
एक रोज सखा मंडल सारा, अपनी अपनी गायें लेकर ।
सूरज उगने से पहिले ही, आ पहुँचा राम कृष्ण के घर ॥
लख अपने बाल गोटियों को, आनन्दकंद अति हरषाये ।
बलभद्र दूसरे काम में थे, अस्तू ये इकले ही धाये ॥
बोले रस्ते में मनमोहन, गायों को आज चरायें कहां ।
कोई नवीन थल बतलाओ, ले झुंड शीघ्र ही जायें जहां ॥

कहा सुबल ने छोड़ दो, यमुना का तट आज ।
चलो महावन में सभी, गऊ चरावन काज ॥

भागई पसंद सलाह सबको, सब उसी ओर को जाने लगे ।
मुरलीधर आगे चलते हुये, मुरली अति मधुर बजाने लगे ॥
ऐसी अद्भुत मोहन ध्वनि थी, होगये मग्न गउऐं ग्वाले ।
कुछ सुध न रही जाते हैं कहां, बन गये इस क़दर मतवाले ॥

चलते चलते थक गये बहुत, दिनमणि सिर के ऊपर आये ।
होगये पसीनों में लथ पथ, तब तो सब के सब घबराये ॥
बोले कान्हा से हे मोहन, हमसे तो चला नहीं जाता ।
होने दो अब विश्राम यहीं, येही हम सबका दिल चाहता ॥
ये सुन नटवर ने पीताम्बर, एक तरु के नीचे बिछा दिया ।
विश्राम करन की नीयत से, रख मुरली फौरन शयन किया ॥
इस तरफ खोज में पानी की, सब सखा विपिन में चले गये ।
थी प्यास अधिक यमुना थी दूर, इसलिये चहूँ दिशि भ्रमत भये ॥

आगे आ सबने लखा, बहुत बडा एक कुंड ।
पहुँचे ग्वाले शीघ्र ही, ले गायों का झुंड ॥
"कालीदह" के नाम से, थी ये जगह मशूर ।
कोई आता था नहीं, रहते थे सब दूर ॥

क्योंकि इसमें एक महा सर्प, कालिया नाम का रहता था ।
उसकी प्रचंड विष ज्वाला से, जल नित खौलाया करता था ॥
रहता था उछलता ऊपर को, विषमय बनगई पवन सारी ।
थल चर जीवों की बात नहीं, नभचरों की होती थी ख्वारी ॥
भूले से भी यदि पक्षि कोई, दह के ऊपर आजाता था ।
जहरीली वायू के द्वारा, फौरन ही प्राण गमाता था ॥
ग्वालों को बिल्कुल खबर न थी, इसलिये खुशी सबको छाई ।
आ बैठे शीघ्र किनारे पर, पानी पीने की ठहराई ॥

अधिक तृषा के सबब से, किया तुरत जल पान ।
पीते ही गायों सहित, गिरे गमाकर जान ॥

कुछ देर बाद जागे श्री हरि, देखा तो वहां सन्नाटा था ।
था पता नहीं गउ ग्वालों का, नहिं शब्द कहीं से आता था ॥
झट लगे ढूंढने सबको प्रभु, आखिर कालीदह आ पहुँचे ।
अपने आश्रित जनके रक्षक, जनरक्षा हित तहां जा पहुँचे ॥

देखा सब गोप और गायें, महानिद्रा में सुधिहीन हुये ।
आरहे हैं मुख से हरित झाग, तन उनके ज्योती चीन हुये ॥
सोचा यदि इन्हें जिलाऊँ नहीं, जन रक्षक कौन बतायेगा ।
सेवक पै की नहिं कृपा दृष्टि, को सेवा में मन लायेगा ॥
मैं नये बना तो सकता हूं इकरंगी लीला नीक नहीं ।
ब्रह्मा मोह में जो किया खेल, उसको दोहराना ठीक नहीं ॥
पुनि सोचा काली नाग भी है, एक बवाल ब्रजवालों के लिये ।
नभचर जीवों के लिये और, गायों वत्सों ग्वालों के लिये ॥

ये विचार कर कृष्ण ने, अमृत दृष्टि बनाय ।
मरे हुये गउ ग्वाल सब, पल में लिये जिलाय ॥

आते हि होश में ग्वाल बाल, सबके सब हरि से लिपट गये ।
मृत्यू के मुख से बचा लिया ये सोच प्रभू के चिपट गये ॥
बोले, नंदलाल आज तुमने, हम सबको आन बचाया है ।
जननियों को भी जी दान मिला, अति अनुपम धर्म कमाया है ॥
हो तृषा के हमतो वशीभूत, पीगये थे विष मिश्रित पानी ।
गायों ने भी अनुसरन किया, होगई तुरत जीवन हानी ॥
पर तुम जैसे जनरक्षक का, जब हम लोगों पर है साया ।
तो किस प्रकार होता अनिष्ट, किम चलसकती थी विषमाया ॥
हमतो नित निर्भय रहते हैं, हे भयभंजन तुमको पाकर ।
नित रहे चरन में मन हमरा, ये दो वरदान कृपासागर ॥
इतना कह ग्वालों ने खुश हो, करुणानिधान को नमन किया ।
पुलकायमान होकर प्रभु ने, सबको हृदय से लगा लिया ॥
फिर बोले आओ भोजनकर, खेलें कुछ खेल नया भाई ।
जो हुआ भूल जाओ उसको, आगे की सुधि लो सुखपाई ॥

हरिसमेत तब शीघ्र ही, कर भोजन तत्काल ।
लगे खेलने गेंद से, मिलकर सारे ग्वाल ॥

ये खेल परम आनन्दायक, घंटों तक होता रहा वहां।
सोचा तब गर्वप्रहारी ने, काली मद मर्दन करें यहां॥
इसलिये जानकर मोहन ने, कंदुक फैंकी जल लीन हुई।
रुकगया खेल आकृती तुरत, सब बच्चों की द्युतिहीन हुई॥
इतने में एक सखा बोला, कान्हा अपराध तुम्हारा है।
अस्तू लाकर दो गेंद हमें, तुमही ने खेल बिगारा है॥
रोतों को हंसा देनेवाले, बोले रोनी सूरत धर कर।
जल के भीतर से किस प्रकार, सोचो कंदुक लावें बाहिर॥
इसलिये छोड़ ये खेल मित्र, दूसरे खेल में ध्यान धरो।
मैं कई खेल बतलाता हूं, उनमें से चुनलो श्रवन करो॥
लेकिन नहिं सुनी सखाओं ने, बोले उसको ही लाकर दो।
क्यों फैंकी इतना ज़ोर लगा बस जाओ जल से जाकर लो॥
चाहते थे प्रभु दिल में येही मित्रों का कहना मान लिया।
बोले अच्छा लाता हूँ अभी, यों कहदह जानिब गमन किया॥

दुष्ट दलन के वास्ते, धरी है जिसने देह।
वे प्रभु एक कदंब पर, चढ़े जाय सस्नेह॥
काछ बांधकर फेर हरि, कूदे दह के मांय।
उछला जल बांसों तुरत, गये ग्वाल घबराय॥

परिपूरनतम के कूदत ही, अद्भुत हलचल पानी में हुई।
अति क्षोभ को प्राप्त हुआ विषधर, सब बुद्धी हैरानी में हुई॥
कर क्रोध उगलने लगा ज़हर प्रगटी दूनी विष की ज्वाला।
पर इसकी कुछ परवाह न कर, क्रीड़ा करते थे नंदलाला॥
आगे पीछे दांये बांये, बस सरपट दौड़ लगाते थे।
दोनों हाथों से पानी को, मथते थे रव उपजाते थे॥
अपने विष को निष्फल लखकर, काली मन में अति गरमाया।
सोचा क्या बात है जो अब तक, मम शत्रु नहीं मरने पाया॥

क्या वृक्ष किनारे का कोई, गिरगया टूट वायू द्वारा ।
या उल्कापात हुआ नभ से, जिसका ये शोर है अति भारा ॥
क्योंकि जड़ चीजों को तजकर, चेतन न कोई दृष्टी आवे ।
जो मेरे विष की ज्वाला में, पड़कर फिर जिंदा बच जावे ॥
यही सोचते सोचते, चला सर्प तत्काल ।
आ पहुँचा उस ठौर जहं, क्रीडित थे गोपाल ॥
देखा दर्शन करने लायक, सुकुमार सुघड़ शोभावाला ।
तेजस्वी मुख सरसिज लोचन, रंग में बस मेघ सरिस काला ॥
छः वर्ष का इक अनुपम बालक, निर्भय हो दह में फिरता है ।
मुस्काय रहा है मंद मंद, विष तनपर असर न करता है ॥
मनहरन आकृती प्रभु की लख, छिन भर तो ठहर गया काली ।
लेकिन तामसी प्रकृती ने, फौरन ही मती बदल डाली ॥
आगया क्रोध मन में एक दम, फुंकार मार सन्मुख धाया ।
बोला रे बालक क्या तुझको, यमराज ने यहांपर भिजवाया ॥
हो रहा अचम्भा बड़ा मुझे, तू किस विधि ज़िन्दा फिरता है ।
हाथी भी गर जल छू लेवे, पल में मरकर गिर पड़ता है ॥
चाहे तू हो कितना हि बली परअब जीवित नहिंजा सकता ।
काली के विष से कोई भी, नहिं अपना प्राण बचा सकता ॥
तेरी भोली सूरत लखकर, कुछ रहम हृदय में आता है ।
जा चला जा उसके ढिंग जल्दी, जो कहलाती तव माता है ॥
काली की गुफ़्तार सुन, हंसे गोकुलाधीश ।
इससे निज अपमान गिन, क्रोधित हुआ फनीश ॥
फौरन ही सर्राटा भरकर, मोहन के तन से लिपट गया ।
फन उठा के बारंबार फेर, दातों से हरि तन डसत भया ॥
अपनी पूरी ताक़त लगाय, चाहा प्रभु का चूरन करदे ।
मेटे दुनियां से नामो निशा, जो कहा उसे पूरन करदे ॥

इतने में श्री योगेश्वर का, तन बढ़ा अग्निसम लाल हुआ।
होगया विकल काली फौरन गिरपड़ा बहुत बेहाल हुआ ॥
कुछ देर बाद फिर सजग होय, धाया लिपटा प्रभु के तन से।
पर विफल हुई चेष्टा सारी, होगया शिथिल बस तन मनसे ॥
इस तरफ गर्व गंजन भगवन् काली मद खंडन करते थे।
उस ओर बिना देखे प्रभु को, वे ग्वाले धीर नहिं धरते थे ॥

थे सब से प्रिय जगत में, गोपों को गोपाल।
इनका तनिक वियोग बस, करता था बेहाल ॥

सारा शरीर सब आशायें, दुनियां की सब रिश्तेदारी।
भगवान कृष्ण के चरणों में, अर्पण कर दीनी थी सारी ॥
उन जीवनधन मनमोहन के, तनपर भुजंग लिपटा लखकर।
अत्यंत दुखित हो रोते हुये, गिर गये तुरत धरनी तलपर ॥
बोले अब किम वृन्दावन जा, नंदराय को मुंह दिखलावेंगे।
गर क्रोध किया बलदाऊ ने, तो कैसे प्राण बचावेंगे ॥
किस तरह धीर उर धारेंगी, ये समाचार सुन नंदरानी।
वृजबालायें भी विकल होय, किम रोक सकेंगी दृग पानी ॥
सारे झगड़े की जड़ हम हैं, हम हीं ने आफत ढाई है।
यदि गेंद नहीं हम मंगवाते, क्यों जाते कुंवर कन्हाई है ॥
जैसे बिन मणि के सर्प विकल, बिन शशि चकोर घबरा जाती।
त्यों ही बिन कृष्ण गुपालों की, अति हीन दशा दृष्टी आती ॥
गउऐं भी मर्माहत सी हो, भयभीत भाव दरसाती हुई।
रहगई खड़ी मूरतवत् सब, आंखों में अश्रु बहाती हुई ॥
अपशगुन भयानक शुरू हुये, इस तरफ तुरत वृन्दावन में।
होजाय न कुछ अनिष्ट ये गुन, होगये दुखी सब निजमन में ॥

सोचा सबने आज वन, गये कृष्ण बिन राम।
ईश्वर खैर करे नज़र, आता है विधि वाम ॥

इतने में आया सखा, बोला हे नंदराय ।
जल्द चलो कूदे हरी, कालीदह के माय ॥
रहता था मन जिनका निशदिन, श्रीकृष्णचन्द्र में लगा हुआ ।
ईश्वर बुद्धी नहिं रखते थे, सुतवत् सनेह था पगा हुआ ॥
इसलिये रहस्य क्या है प्रभु की, लीला में था ये ज्ञात नहीं ।
अस्तू सुनते ही घबराये, सोचाकिकुशलदिखलात नहीं ॥
आगये पसीने सीने पर तड़फड़ाके भूमी पर आये ।
बेसुध होगये एक पल में, ये लख व्रजवाले घबराये ॥
भीतर जिस समय खबर पहुँची, व्रजरानी दौड़ी घबराकर ।
कर श्रवण हाल गिरगई तुरत, खाकर पछाड़ धरनी तलपर ॥
कोहराम सा वृन्दावन में हुआ, आख़िर मिल सारे व्रजवासी ।
जल्दी से कालीदह पहुँचे, देखा नटनागर सुखरासी ॥
लड़रहे हैं नाग कालिया से, अतिशय फुरती दिखलाते हैं ।
होते हैं कभी आगे पीछे, जलमग्न कभी हो जाते हैं ॥
विषधर भी फण ऊंचा उठाय, चौगिर्द प्रभू के फिरता है ।
क्रोधित हो पुनि पुनि डसता है, पुनि चोट खाय गिर पड़ता है ॥
पिटते पिटते होगया, काली अति लाचार ।
बे सुधसा हो गिर गया, फौरन भूमि मंझार ॥
सारा बल सारा गर्व गया, मुख से निकली लोहू धारा ।
कई तरह के यत्न किये लेकिन, श्रीकृष्ण से चला नहीं चारा ॥
आख़िर जब थक कर लेट गया, तब उचक केप्रभु सिरपर आये ।
और लगे नाचने सुखी होय, ये लख सारे सुर हरषाये ॥
जब जब अहि ऊंचा शीश करे, तब तब प्रभु पद से ठुकरावें ।
होता गर्वी का सिर नीचा, ये जगवालों को दिखलावें ॥
जब ऊर्द्ध्वस्वास चलने लागा, तब नागिनियां अति घबराईं ।
पुछता देखा सिंदूर मांग, तब हरि के चरणों में आईं ॥

बोली दोउ करजोड़ कर, हे हरि हे सर्वेश।
नाग जाति अति मूर्ख है, जाना नहि अखिलेश॥

हे जगनायक हे जगजीवन, जगरमण जगत के प्रतिपालक।
करुणानिधान, हे पीताम्बर, हे जनसुखदायक खलघालक॥
हे गर्व प्रहारी मधुसूदन, अच्छा हि किया जो शिक्षा दी।
पर दो अब हमें सुहागदान, कहदो अहिवात की भिक्षा दी॥
दुष्टों को दंड देने के लिये, अवतार आपने धारा है।
फिर भी हैं आप समदर्शि प्रभू, कोई वैरी नहिं प्यारा है॥
फिर आप दंड देते हैं जिन्हें, परिणाम में उनका हित होता।
निर्मल हो जाते कंचनवत्, पापों का प्रायश्चित होता॥

किसी कुकर्म विवशमिला, काली को संताप।
पर तप भी अति है अधिक, दिया दर्श जो आप॥

जिस पदरज को पाने के लिये, मुनि वर्षों ध्यान लगाते हैं।
पा जाते हैं तो फिर वे सब, त्रिलोकी तुच्छ बताते हैं॥
वो रज क्रोधी तामसवाले, काली के सिर पर शोभित है।
है महा पुन्य का फल कोई, है धन्य ये अहि अरुवंदित है॥
हे दीनदयाल कृपासागर, हे राधापति त्रिभुवन साईं।
हे जगतकांत अपराध क्षमा, कर देहु कांत प्रभु हरषाईं॥

चार बदन मुख पांच षट, आनन शेष सुरेश।
महिमा तुव नहिं कहि सके, शारद हू लवलेश॥

करते हो बास सब के दिल में अंतरयामी पर लिप्त नहीं।
हो सब से भिन्न, अभिन्न भी हो, कहिं विराट अरु संक्षिप्त कहीं॥
पृथ्वी जल वायू तेज सून्य, पांचों तत्त्वों के निर्माता।
सब के कारण, कारण से रहित, कहि नेतिनेति नित विधिगाता॥
हो आप खान विज्ञान ज्ञान, संसार रचानेवाले हो।
हो आप काल के महाकाल, भक्तों को बचानेवाले हो॥

मद अहंकार अरु गर्व प्रभू, ब्रह्मा तक का हर डाला है।
फिर सर्प तुच्छ बुद्धी का क्या, निकला मदमोह दिवाला है॥
हे कृपायतन कर कृपाविभो, अपराध क्षमा पति का करदो।
करदो हे देव अभय इसको, चरणों की भक्ती का वर दो॥
पति हो कैसा ही क्रूर दुष्ट, पत्नी के हित परमेश्वर है।
पति के जीवन से जीवन है, बिन पति जग दुःखों का घर है॥
हे मनमोहन मदहरन, करन सकल सुरकाज।
शीश झुका चरणों पड़ी रखो हमारी लाज॥

*** गाना ***

हो चुका मद नष्ट इसका अब क्षमा कर दीजिये।
हम अनाथनियों से प्रभु पति को अलग मत कीजिये॥
मिल चुकी इसको सजा हे नाथ इसके कर्म की।
लज्जित हुआ है पूर्णतः ये बात चित धर लीजिये॥
तुमको समझ प्राकृत मनुज जाती स्वभाव पै आगया।
समझा नहीं अज्ञान वश अब क्रोध सारा पीजिये॥
हम सब शरण है आपकी कृपया अभय वर दो हमें।
हे विश्व के मालिक दयामय य विनय सुन लीजिये॥

यों कह अति आधीन हो, परसे प्रभु पदकंज।
करुणानिधि तब तुरतही, बोले वाणी मंजु॥
हे नाग नारियों अभय होउ, जो सारी आशाएं तज कर।
मम शरण में आ जाता उसके, सब दुख हर लेता हूँ सत्वर॥
इतने में उठकर कालो भी, आया प्रभु के चरणों में गिरा।
बोला हे नाथ क्षमा करदो, अपराध आपका किया निरा॥
है अधम नाग योनी अतिशय, क्रोधो व तामसी हे भगवन्।
पल में न बदल सकता स्वभाव, रहता हूँ तव माया में मगन॥

तुमही चाहो तो जगदीश्वर, माया से मुक्त कर सकते हो।
पल में अधमाधम प्राणी को, कर उत्तम दुख हर सकते हो॥
बिना कृपा प्रभु आपकी, बने नहीं कुछ काम।
भला होय जिससे मेरा, करिय वही घनश्याम॥
रख हाथ शीश पर काली के, दुःखों से अभय किया उसको।
कुछ देर ठहर फिर मृदु स्वर से, ऐसा आदेश दिया उसको॥
हे काली अब ये जगह छोड़, शीघ्र ही पुराने धाम जा तू।
जो रमणक द्वीप कहाता है, निर्भय रह तनिक न घबरा तू॥
पक्षेन्द्र गरूड़ अवलोकन कर, मम चरन चिन्ह तेरे सिर पर।
आदर से शीश झुकावेगा, जा वेगि कुटुम्ब को संग लेकर॥
काली को यों सीख दे, भेजा रमणक द्वीप।
फेर तैरकर शीघ्र ही, आये तीर समीप॥
कर प्रभु के दर्शन गऊ ग्वाल, दाऊ अरु नंद यशोदादिक।
गोपियों सहित अति हर्षित हो, आमिले वृद्ध अरु बालादिक॥
ज्यों तृषाग्रस्त को मिले सुधा, सूखत खेतों पर मेह बरसे।
या चन्द्र प्राप्त करले चकोर, यों सारे व्रजवाले हरषे॥
उस दिन से उस दह का पानी, अमृत समान स्वादिष्ट हुआ।
थलचर नभचर राहगीरों का, हरिकृपा दूर सब कष्ट हुआ॥
इतनी गाथा श्रवण कर, हाथ जोड़ सिरनाय।
भूप परिक्षित कह उठे, सुनहु मुनी चितलाय॥
क्या कारण था जो काली ने, तज रमणक द्वीप यहां आकर।
डेरे डाले थे कुटुम्ब सहित, पक्षेन्द्र गरुड़ से भय पाकर॥
फिर सबब कौनसा था जिससे, हरि वाहन यहां न आता था।
सब जगह पहुँच सकने वाला, इसजगहक्योंदहशत खाताथा॥
व्यास पुत्र कहने लगे, सुनो भूप धर ध्यान।
रमणक द्वीप है भूमि पर, सापों का स्थान॥

छोटे व बड़े लाखों विषधर, यहां पर निवास करते राजन् ।
प्राकृतिक दृष्य अति उत्तम लख, सुख सहित आयु धरते राजन् ॥
इनकी सुख पूर्ण जिन्दगी में, हरि बाहन ठेस लगाते थे ।
जब भी आते थे अनगिनती, नागों को चट कर जाते थे ॥
पक्षेन्द्र के हाथों होता लख, निज कौम का ह्रास भयंकारी ।
इन लोगों ने एक रोज करी, खग नायक की विनती भारी ॥
बोले यद्यपि हम हैं खुराक, स्वाभाविक तुम्हरी खगनायक ।
पर इस प्रकार का हमला तो, होता है हमें अतिदुखदायक ॥
अस्तु यदि आप आज्ञा दें, तो यह प्रबंध ठहरावें हम ।
प्रतिदिन इकअहिमयखाद्य वस्तु, निर्दिष्ट जगह पहूँचावें हम ॥
यों तुमको बिना परिश्रम के, तयार भोग मिल जावेगा ।
और हम लोगों का संकट भी, कुछ अंश में कम हो पावेगा ॥
उस दिन से बारी बारी से, एक नाग वहां पहुँचा करता ।
और हरि बाहनभी अतिसुखसे, उनको निज उदर धरा करता ॥
यों होते होते एक दिवस, इस काली की बारी आई ।
पर बल से गर्वित हो इसने, नहीं भेट गरुड़ को पहुँचाई ॥
उल्टा हो लड़ने को तयार, विनता-सुत के सन्मुख आया ।
अवलोक दुष्टता काली की, हरिवाहन को गुस्सा छाया ॥
फौरन ही अपने पंखों से, वो मार करी विषधर ऊपर ।
हो गया गर्व सब खंड खंड, बुद्धी आगई ठिकाने पर ॥
गो करी कालि ने मनुसाई, पक्षीपति से न चला चारा ।
आखिर प्राणों के भय से झट, इसने रमणक थल तज डारा ॥
लेकिन सोचा अब कहां चलूं, हो गया वैर खगनायक से ।
कोइ नाग न देगा शरण मुझे, सब डरते हैं हरिपायक से ॥
ये फिक्रमन्द था इतने में, श्री देव ऋषि नारद आये ।
ये इसके गुरु थे देख इन्हें काली के उर आनन्द छाये ॥

गिरा तुरत आ चरन में, बोला अति बिलखाय ।
त्राहि त्राहि रक्षा करो, हरो दुःख मुनिराय ॥
अपने चेले को धीरबंधा, बोले नारदमुनि मुस्काई ।
है व्यथा तेरी मालूम मुझे, जो कहूँ सो सुनले चितलाई ॥
जा चला जा तू वृन्दावन में, तहं है इक दह यमुना तट पर ।
उसको अपना स्थान बना, वहाँ गरुड न आवे आयू भर ॥
कारन उस दह पर किसी समय, तपरत थे सौरभ मुनिराई ।
तब एक रोज वनिता-सुत ने, वहां आकर थी मछली खाई ॥
गो किया मना मुनि ने लेकिन, खगनायक ने नहिं कान दिया ।
संलग्न रहे मछली वध में, तब कुपित हो मुनि ने शाप दिया ॥
आयंदा यदि हरि का वाहन, इस दह के ऊपर आवेगा ।
है शाप मेरा होवेगा भस्म, जिन्दा नहिं वापिस जावेगा ॥
अस्तू बेटा निर्भय होकर, उस जगह जाय आराम करो ।
वो कालीदह कहलावेगी, जाओ सुख से विश्राम करो ॥
यों कह नारद चल दिये, काली भी सिरनाय ।
दह में आ रहने लगा, सुनहु परिक्षितराय ॥
नागदमन लीलाकरी, यों हरि ने सानन्द ।
पढ़े सुने जो प्रेम से, हरे सर्प भय द्वन्द ॥
आखिर सबसे मिल मोहन ने, सब शोक वियोग का हर डाला ।
पुनि वृजवासी हरषाने लगे, मिटगई सकल दुख की ज्वाला ॥
होगई रात सब लोगों को, मिलते जुलते उसही वन में ।
अब रैन इस जगह ही काटें, सबने येही सोचा मन में ॥
होगया प्रबंध समय माफिक, सबने सुख से आराम किया ।
बलदाऊ कृष्णचन्द्र ने भी, झटपट सोने में चित्त दिया ॥
सोते थे वृजवासि सब, धर हिय प्रभु का ध्यान ।
इतने में आई तहां, आफत एक महान ॥

था पास में बांसों का उपवन, आंधी बयार से रगड़ पड़े ।
दावाग्नी प्रगट हुई भारी, शोले सब थल से उमड़ पड़े ॥
पशु पक्षी वृक्ष लगे जलने, चिल्लाहट से सब जाग गये ।
हल्ला मच गया चहूँदिशि में, हरि को पुकारने लाग गये ॥
बोले हे कृष्ण हे बलदाऊ, हम सब अब शरण तिहारी हैं ।
हे वृज रक्षक आओ जल्दी, अब हुआ प्रगट दुख भारी है ॥
तुमने शकटासुर त्रणावर्त, बक वत्स अघासुर मारे हैं ।
निश्चरी पूतना को बध कर, धेनुक दैत्यादि पछारे हैं ॥
फिर कालीदह निर्विघ्न किया, अब बडवानल से रक्ष करो ।
हे जनमनरंजन मनमोहन, कर दया दुःख प्रभु शीघ्र हरो ॥
तब हँस कर बोले हरी, बन्द करो दोउ नैन ।
अभी विघ्न टल जायगा, मानो मेरे बैन ॥
प्रभु की आज्ञा कर शिरोधार्य, आबाल वृद्ध सब बैठ गये ।
मयापति की महा माया से, दावानल प्रभु मुख पैठ गये ॥
जो हुआ अनल से नष्ट वहां, क्षणभर में नूतन रचडाला ।
परिपूरन तम अवतारी ने, भक्तों का सब दुख हरडाला ॥
पुनि दूसर क्षण बोले नटवर, खोलो आंखें भयनहीं रहा ।
होगये सभी चैतन्य तहां, देखा फिर सबने धन्य कहा ॥
जिसकी केवल एक कृपा दृष्टि, जग के विषयों की क़ातिल है ।
फिर भौतिक दावानल मिटना, उसके सन्मुख क्या मुशकिल है ॥
भक्तों की आरत बानी को, सुन कर प्रभु देर न लाते हैं ।
जो सच्चे दिल से विनय करें, रक्षाहित दौड़े आते हैं ।
हैं धन्य धन्य वृज के वासी, नटवर को नट वन नचा रहे ।
और हैं "भगवान भक्त के वस", ये त्रिभुवननायक जचा रहे ॥
जितने भी थे मौजूद वहां, सबका था ध्यान प्रभूपद में ।
रटते थे निशदिन कृष्ण कृष्ण, वे रहें कहो किम आपद में ॥

अस्तु हे श्रोताओं तुम सब, अपने दिल की घुंडी खोलो।
और एक बार अति प्रेम सहित, श्री कृष्णचन्द की जय बोलो॥

जय जय जय सर्वात्मा, जगपालक जगदीश।
"श्रीलाल" चरणों पड़ा, भक्ति करो बकसीस॥
शरणागत वत्सल प्रभू, दुख भंजन भगवान।
सकल विघ्न बाधा हरो, भक्तन जीवनप्रान॥

बस इसी तरह लीलाधारी, नित नव लीला दिखलाते थे।
गोपाल गोपियों के उर में, बेहद आनन्द पहुँचाते थे॥
माता व पिता सुतवत सनेह, दिखलाते शारंगपानी पर।
हर्षित रहते थे रैन दिवस, अपनी तकदीर भवानी पर॥

वृंदावन का सुन लिया, मित्रों तुमने हाल।
क्या करता था कंस नृप उसका सुनो हवाल॥

धेनुक बध काली मद मर्दन, और दावानल से रक्षा सुन।
मथुरा नरेश अति विकल हुआ, बोला मन्त्रियों से सिर को धुन॥
क्या करूं चले कोइ चाल नहीं, योधा मृत्यू के मुख पैठे।
किस तरह मरें वे बंधु दोऊ, सोचा करता बैठे बैठे॥
पूतना शकट अरु त्रणावर्त, वत्सा वक अधा गये मारे।
धेनुक भी निज साथियों सहित, यमराज भवन को पगधारे॥
एक बचा था काली मित्र मेरा, सोचा था ये हमदम होगा।
इसके द्वारा मम शत्रु कृष्ण, बलराम के सहित खतम होगा॥
पर शत्रू ने उस नाग का भी, कर दिया गर्व पल में खंडन।
अब रहा कौन ऐसा योधा, जो करे हमारा हित मंडन॥
ये सुनकर नृप का तन रक्षक, दानव प्रलंब आगे आया।
और कहन लगा मेरे होते, करते हो फिक्र क्यों नरराया॥
मैं अभी शीघ्र वृंदावन जा, दोनों का बध कर आता हूँ।
जाने आने की देरी है, तुमको बस सुखी बनाता हूँ॥

यों कह बिन आयुस प्राप्त किये, ग्वालों तुम सुभग भेषधर कर ।
निश्चर वृंदावन में आया सम्मिलित हुआ हरिदल भीतर ॥
यहाँ खेल में मग्न थे, हलधर अरु गोपाल ।
बांटे थे दोनों ने मिल, आधे आधे ग्वाल ।
थी शर्त खेल की यहां पर यह, जो हारेगा इस दंगल में ।
वो जीती हुई मंडली को, ले जाय लाद कर जंगल में ॥
चल रहा था खेल यहां पर यों, दानव भी मिल कर खेल रहा ।
था मालुम राम कृष्ण को सब, लेकिन ग्वालों से कुछ न कहा ॥
आख़िर हारी मोहन मंडलि, अब लदने की बारी आई ।
प्रभु ने लादा श्रीदामा को बलदाऊ दैत्य चढ़े जाई ॥
मौका पा खल हलधर को ले, अति फुरती से चल खड़ा हुआ ।
बल के घमंड में थे न लखा, मृत्यू खुद सिर पर चढ़ा हुआ ॥
एकान्त जाय निज रूप धरा, सोचा मैदान है मार लिया ।
उस समय शेष अवतारी ने, एक कौतुक झट पट वहां किया ॥
कर लक्ष दैत्य के मस्तक को, इस जोर से एक घूंसा मारा ।
प्राणों से हीन हुआ निश्चर, घुस गया उदर में सिर सारा ॥
माया से बलदेव ने, फैंका खल का शीश ।
गिरा गोद में कंस की, दुखित हुआ नरईश ॥
एक समय यक्षपति ने शिव की, पूजा करने का व्रत ठाना ।
उस हेतु रचे तालाब कई, निज बाग में कमलों के नाना ॥
इनकी अति उत्तम खुशबू से, सब उपवन महका करता था ।
जो निकल उधर से जाता था, प्रमुदित उसका मन होता था ॥
थी वहाँ न रोक टोक कोई, आता जो सुमन लेकर जाता ।
इस कारन शिव पूजा के लिये इक भी न कमल बचने पाता ॥
ये हाल विलोक कुवेर ने तब, ये शाप दिया अति क्रोधित हो ।
छूवेगा जो कमलों को कोई, निश्चर तन धारे लोभित हो ॥

उस रोज से तालावों के निकट, भय वश कोई नहिं जाता था।
धनईश का व्रत आनन्द सहित, शुभ रूप से चलता जाता था॥
इक दिवस एक गंधर्व सुवन, फिरता फिरता तंह आय गया।
था शाप हाल इसको न ज्ञात, फूलों को देख लुभाय गया॥
हे नृप ! था इसका विजय नाम, भावीवश पुष्प इक तोड़लिया।
तज सुंदर तन निश्चर सदृष्य, तन से झट नाता जोड़ लिया॥
तब तो ये अतिशय घवरा कर, आया जहाँ वैठे थे धनपति।
चरणों में गिर अति व्याकुल हो, बोला हे प्रभु ये कैसी विपति॥
लख इसे विकल धनराई ने, कर दया गिरा इक फरमाई।
द्वापर में बलदाऊ द्वारा, तब मुक्ति होगी सुखदाई॥
तब से ये नाम प्रलंब धार, था कंस की सेवा अनुगामी।
हरि भ्रात के हाथों से इसने, पाई थी मृत्यू सुखधामी॥
दानव को कर यों निधन, रोहणि नंदन राम।
आये मुस्काते हुये, थे जँह लीला धाम॥
हो गया शुरू फिर खेल कूद, आनंदसे दिवस व्यतीत किया।
होतेहि शाम गायें लेकर, फिर अपने घरको पांव दिया॥
इक दिन आपस में सखियों ने, एकत्रित हो यों फरमाया।
हे प्रिय बहनों धर ध्यान सुनों, जो कुछ हमरे मन में छाया॥
बिन नंदसुवन मनमोहन के, हम पलभर सुखी न रहसक्ती।
मन हरन रसीले नयनों की, छविनिरखत आँखनहींथकती।
पर वो प्यारा बिन जप तप के, बातों से मिले नहीं आकर।
अब मास अगहन लगा अस्तू, "कात्यायनि" पूजो हरषाकर॥
भगवती की पूजा जो दिल से, बहनों री हम कर पावेंगी।
तो निश्चय चित्त चोर को हम, दृग सन्मुख हाज़िर पावेंगी॥
आपस में ये बातें तै कर तैयार होगईं व्रजबाला
आरम्भ अगहन के होते ही, व्रत का आयोजन करडाला॥

नित उठकर गोपकुमारी सब, यमुना के तटपर जाती थीं ।
कर शुद्ध देह यमुना जलसे, मिट्टी की मूर्ति बनाती थीं ॥
पुनि पत्र पुष्प अक्षत कुंकुम, आदिक चीजें पूजाहित ला ।
अतिश्रद्धा भावसहित सारी, पूजा करती हिय हर्ष मना ॥
शास्त्रानुसार पूजन करके, गिरजा की यों अस्तुति गाती ।
हे अम्बे जगदम्बे जननी, हे जगकारन शिव रंगराती ॥
हे पार्वती दुर्गा काली, हे कात्यायनि सुखदायनि मा ।
हे गिरजा गणपति की जननी, हे मातु षड़ानन माननि मा ॥
हे शंकर प्रिया जया, मंगला, गिरिवासिनि हे गिरिराजसुता ।
हे प्रलय कारनी दुख हरनी, भवभय भंजनि दामिनीद्युता ॥
हम भोली मूढ़ गवालिनियें, श्रद्धा से शीष झुकाती हैं ।
तुम को वरदायनि जान सदा, हे मातु कृपा तव चाहती हैं ॥

हे जननी जगदीश्वरी, आदि शक्ति सुखमूल ।
वर दो हमको हे शिवा, मिटे हृदय के शूल ॥
हे देवी हे भगवती, हे परिपूरन काम ।
पती हमारे होयँ बस, नंदकुंवर घनश्याम ॥

इस भांति गोप बालायें सब, व्रत का क्रम नित्य चलाती थीं ।
सोती थीं धरती के ऊपर, और हविपान्न ही खाती थीं ॥
इस तरह रोज़ करते करते, वो व्रत पूरा होने आया ।
बाकी था केवल एक दिवस, तब गौरी से शुभ वर पाया ॥
वरदान श्रवणकर हर्षाई, पूर्णाहुति की चीज़ें लेकर ।
आख़िरी दिवस व्रजबालायें, पहुँची कुछ जल्दी से तटपर ॥
लख जगह निराली शब्द रहित, सबने निज वस्त्र उतार दिये ।
जल में घुस गई दिगम्बर हो, क्रीड़ा करने अति हर्ष हिये ॥
अंतरयामी को मालुम था, लड़कियां रोज व्रत करती हैं ।
पतिरूप में मुझको पाने को, सन भाव ध्यान हियधरती हैं ॥

दे दिया है उनको वर भी फिर, हर्षित हो शैलकुमारी ने।
भर दिये हैं उनके हृदय पूर्ण, आनन्द से आशा भारी ने॥
है आज आखिरी दिवस अस्तु, यमुना तट पर चलना चहिये।
वरदान शंभु अर्धांगिन का, आज ही पूर्ण करना चहिये॥
ये विचार ले साथ सब, ग्वालबाल यदुवीर।
दिनकर उगने से प्रथम, पहुँचे यमुना तीर॥
देखा कुमारियां नंगी हो, कालिन्दी जल मे न्हाती हैं।
तट पर रक्खे हैं वस्त्र सकल, क्रीडा में मत्त लखाती हैं॥
अवलोक माजरा मनमोहन, चुपके से वहां पर आय गये।
सब वस्त्र उठाकर वृक्ष चढ़े, पल्लवों में शीघ्र छुपाय गये॥
थी क्रीड़ा मगन सभी बाला, वस्त्रों का बिलकुल ध्यान न था।
सांवरिया हमको देख रहे, इसका दिल में कुछ ज्ञान न था॥
इतने में मुखपर मुरली धर, मुरलीधर ने मुरली टेरी।
सब भूल गई न्हाना धोना, वस्त्रों पर तुरत नजर गेरी॥
जब वस्त्र लखे नहिं घबराई, चहरों की आभा चीन हुई।
होगई बंद सब जल क्रीड़ा, लज्जा से तेरह तीन हुई॥
आकंठ पैठ जल के भीतर, आपस में यों बतलाती थीं।
यहां तो अबतक था नहीं कोई, कित गये वस्त्र अकुलाती थीं॥
व्याकुल लख गोपी सकल, हंसे यशोदालाल।
बोले शीतल नीर में, क्या करती हो बाल॥
सरदी का मौसम है अस्तू, ज्यादा मत ठहरो पानी में।
पहुँचेगा कष्ट शरीर को अति, क्या रक्खा है मनमानी में॥
सुनकर गुफ़्तार कृष्ण की सब, हिय हंसी क्रोध मुखपर आया।
बोलो अन्याय करो न यहां, दो वस्त्र हमारे ब्रजराया॥
ये कैसी हंसी करो तुम ने अति खोटी टेव तुम्हारी है।
हे जगमनमोहन मुरलीधर, दो वस्त्र शीत अति भारी है॥

माखन चोरी करते करते, अब चीर चुराने आये हो ।
पितु मात तो तुम्हरे सज्जन हैं, तुम ये आदत कहां पाये हो ॥
हो चुकी हंसी बस देर न कर, नंदलाल जल्द कपड़े दीजे ।
हम ठिठुर रही जल के भीतर, करिये न देर रक्षा कीजे ॥
सुन कुमारियों के बचन, बोले नंदकुमार ।
चीर तुम्हारे जब मिले, निकलो जल से बार ।
सुन बचन मुरारी मोहन का, सब बालायें घबराय गई ।
मुख से निकली एक चीख तभी, अकचका उठी बौराय गई ॥
बोली ऐसा अनर्थ कारी, भाषण नहिं हमें सुहाता है ।
हम सब के शील व लज्जा का, क्या ध्यान तुम्हें नहिं आता है ॥
हो तुम बिल्कुल निर्लज्ज श्याम, जो हमें नग्न लखना चाहते ।
है शास्त्र वचन जो अस करते, उनके सब सुकृत नस जाते ॥
प्रभु बोले तुमने मेरे हित, कात्यायनि व्रत्त चलाया है ।
पतिरूप में तुम्हरे पास रहूँ, ये वर गरी से पाया है ॥
मैं इसीलिये यहां आया था, देवी की गिरा सची करदूं ।
और एक महीने की महनत, कर सफल तुम्हारी, सुख भरदूं ॥
पर तुमने जल में नंगी घुस, श्रीवरुण का अति अपमान किया ।
सब करी कराई महनत को, बरबाद किया नहिं ध्यान दिया ॥
व्रत में जब दोष आगया है, तब उसका फल किम पावोगी ।
सम्पूर्ण प्राश्चित हुये बिना, नहिं कभी हृदय हरपाओगी ॥
नमस्कार रवि को करो, जल से बाहिर आय ।
प्रायश्चित हो पाप का, मन मुराद मिल जाय ॥
मुरलीधर की बात सुन, घबराई व्रज नार ।
हाथ जोड़ कहने लगी, हैं हम सभी गंवार ॥
सचे हृदय से रात दिना, हे नटवर तुमको ध्याती हैं ।
जिस समय दर्श पाती तुम्हरा, बस धन्य कृत्त हो जाती हैं ।

तुम्हरे ही कारन नंदसुवन, हमने देवी व्रत धारा है।
तुम मिलो त्रास चित की हरदो, ये ही प्रिय काम हमारा है॥
फिर भी कैसे छोड़ी जावे, ये लोक लाज हे सुखधामा।
नर के आगे हम नग्न होयँ, कहाँ लिखा बताओ घनश्यामा॥
हम हैं मतिमंद अधम नारी, व्रत खंडित सुन घबराय गईं।
अनजाने में अपराध किया, श्रीकृष्ण का यों अकुलायगईं॥
अब कैसे होवे काम सफल, हमने युक्तियां न पाई हैं।
हे शरणागत वत्सल कृपाल, सब शरण तुम्हरी आई हैं॥
तन मन सब तुम्हरे अर्पण है, अतिदीन हो शीश झुकानी हैं
चाहो तो काटो माथ नाथ, हम कुछ भी उज्र न लाती हैं।
हमने दिल से निज भावीपति, हे कृष्ण तुम्हें हि बनाया है
पर जब तक है कौमार चिन्ह, नंगी न होयँ यह भाया है।

शुद्धभाव अवलोक कर, मुस्काये करतार।
चमत्कार सबने लखा, छाया तेज अपार॥

होगये प्रगट कई कृष्णरूप, उस महातेज में से फौरन।
घिर गईं सकल व्रजबनितायें, आरम्भ हुई मुरली की धुनि॥
फिर देखा निज प्रतिविम्ब तुरत वस्त्रों के ढिंग नवरूप धरे।
आखिर निज को प्रभु रूप लखा, कह उठी सभी जय कृष्ण हरे॥
रच दिया खेल पल में हरि ने, दुतियः पल सकलबिलायगया।
लेकिन इससे हरि बचनों पर, विश्वास सभी को आयगया॥
जो नजर घुमा देखा सबने, वो ही यमुना का किनारा है।
हैं सकल खड़ी जल के भीतर, तरु पर श्रीकृष्ण अखारा है॥
मोहन पर शंकित भाव था जो, वो दिल से फौरन धोडाला।
श्रीकृष्ण अखिल जगदीश्वर हैं, ये ज्ञान हुआ सबको आला॥
दोनों हाथों को जोड़ सभी, हरि की स्तुति करने लागी।
है धन्य आज जीवन हमरा, हम हुई आज अति बड़भागी॥

हे जन मन रंजन जगजीवन, हे प्रियदर्शन हे सुखदाई ।
हे त्रिलोकी के अधिनायक, हे जगदीश्वर हे व्रजराई ॥
गोलोकनाथ करुणासागर, मोहन मुरलीधर बनवारी ।
हे मोर मुकटवारे नंदसुत, हे परम प्रेम मूरति प्यारी ॥
हे तन के तन, मन के मन हे, आत्मा के आतम-सुखरासी ।
हे असुर निकंदन, दुख भंजन, हे काटनभव अघ की फांसी ॥
हे जगपति हमरे पती, देवो ये वरदान ।
तव पद निश्चल प्रेम हो, पावें गति निर्वान ॥
तब हरि ने हर्षित हो उनसे, यों कहा निकल बाहिर होलो ।
कर जोड़ सूर्य को नमन करो, नंगी न्हाने का अघ धोलो ॥
तुमने अज्ञान अवस्था में, जो पाप किया उसका फल है ।
आइन्दा होशियार रहना, श्रीवरुण देव का घर जल है ॥
प्रभु की आज्ञाशीशधर, व्रत पूरन हित काज ।
जल बाहिर आसूर्य को, किया नमन सहलाज ॥
तब हर्षित हो कृष्ण ने, दीन्हे वस्त्र गिराय ।
आखिर यों कहने लगे, सुन्हो सभी चितलाय ॥
शरद पूर्णिमा रात्रि में, रच वृन्दावन रास ।
पूर्ण करूं इच्छा सभी, जावो सहित हुलास ॥
चीरहरन की सुनकथा, बोले नृप चकराय ।
योगेश्वर श्रीकृष्ण की, लीला समझ न आय ॥
हे मुनिवर क्या जगदीश्वर को, लज्जा हरना हि मुनासिब था ।
एकान्त स्नान रत तियगन को, क्या नंगा लखना वाजिब था ॥
यह काम महा व्यभिचारी भी, करने में अति चकराता है ।
हरि के कामों का गुप्त भेद, नहिं तनिक समझ में आता है ॥
होगया है मेरा चित शंकित, किरपाकर संशय हरदीजे ।
यदि कुछ अपराध हुआ हो तो, लख दीन माफ उसको कीजे ॥

हंस पड़े श्रीशुकदेव मुनी, बोले नृप सब समझता हूँ।
जो शक छाया तेरे दिल में, प्रभु कृपा से उसे मिटाता हूँ॥
जिस समम हुई थी ये लीला, थे कृष्ण उस समय छः साला।
इतनी आयु का बालक नृप, होता निशंक भोला भाला॥
इतने छोटे बच्चे आगे, तिरिया परदा नहिं करती है।
बस जान बाल चापल्य उसे, कुछ दोष हिये नहिं धरती है॥
अस्तू यदि उन्हें मनुष्य गिनों, शंका को ठौर नहीं रहती।
जो उन्हे ईश्वर मानते हो, शक्ती गिनते हो गर महती॥
तो वे आत्मा के आत्मा हैं, चर अचर रचानेवाले हैं।
हम तुम गोपी गोपालों को, जगको उपजाने वाले हैं॥
जो है , परदे में बाहिर भी, है ओत प्रोत सब ओर भरा।
तिलभर भी जगह नहीं उसबिन, सब जगह रहे सिमटा उभरा॥
उस साक्षि रूप जगदात्मा से, रहता है काम कोइ गुप्त नहीं।
फिर जल क्रीड़ा बालाओं की, बतलाओ छिप सकती है कहीं॥

कात्यायनिका व्रत किया, मिलें कृष्ण पति रूप।
नंगी जल में घुसगई, व्रत टूटा सुन भूप॥

अपमान हुआ जल देवता का, मर्यादा भंग हुई भारी।
श्रुति का मारग यों लोप हुआ, जेहि हेतु बने प्रभु अवतारी॥
पुनि प्रभु गोपीजन वल्लभ थे, उनका तनमन हरि अर्पण था।
थी भक्त अमानी कृष्ण की सब, तिनका चित प्रभु का दर्पण था॥
अस्तू कर्तव्य कृष्ण का था, सच्चे मारग पर ले आते।
जो पाप हुआ अनजाने में, उसका प्रायश्चित करवाते॥
फिर याद करो गोलोक कथा, आदेश ये प्रभु ने फरमाया।
गोपियां अंश राधा की हैं, श्रीराधा है हरि की छाया॥
इस दृष्टी से भी ये लीला, शंका को थान नहीं देती।
जिसका जिसके ऊपर हक हो, यदि लखे नग्न नहिं अघ खेती॥

पुनि एक बात यह याद रहे, प्रभु भक्तों के आधीन सदां ।
जो उनमें नित लवलीन रहे, रहते उसमें वे लीन सदां ॥
हर समय गोपिकायें प्रभु का, हृदय में सुमरन करती थीं ।
जब तक दृग खुले हुये रहते, तबतक हरिध्यान हि धरती थीं ॥
बल्की निद्रावस्था में भी, श्रीकृष्ण कृष्ण रटती थी जबां ।
हर स्वास में उनके रहता था, प्यारे मोहन का चरित बयां ॥
ऐसे भक्तों की चाह पूर्ण, नहिं करे तो फिर ईश्वर कैसा ।
अंतरयामीपन जो न होय, तो वो पुनि योगेश्वर कैसा ॥
श्रुति शास्त्र पुरानों ने अगणित, भक्तों की गाथा गाई है ।
पर प्रेम की वृजबालाओं के, उत्तमता अधिक बताई है ॥
कलुषित मनवाला तुच्छ जीव, ये ऊंचा पद नहिं पा सकता ।
जिसने न वासना को त्यागा, वो भक्त नहीं कहला सकता ॥

जिनकी कृपा कटाक्ष से, भक्त हों पूरन काम ।
उनके पावन चरित पर, शंका करो न खाम ॥
एक बात अति गूढ़ है, सुन अभिमन्यू लाल ।
बिना पात्र मिलता नहीं, अध्यातम का हाल ॥

जिसकी सुनने की इच्छा हो, श्रद्धालू हो अरु विश्वासी ।
तब ही ये तत्व हाथ आता, जब प्रभू को समझे अविनासी ॥
रहता आत्मा का जीव भाव, माया आवरण रहे जब तक ।
देहाभिमान, जात्याभिमान, मद अहंकार मत्सर तब तक ॥
वृत्ती संकल्प विकल्पित हो, अरु द्वैत भाव में रह लिपटा ।
है आत्म दर्श उसको दुर्लभ, जो तेरे मेरे में चिपटा ॥
जब अहं भाव हो जाय नष्ट, मैं जीव हूं ये मिट जाता है ।
जिसने छोड़ा "मैं" पन उसका, सौभाग्य कमल खिल जाता है ॥
रविरूपी गुरु तब दर्शन दे, अज्ञान तिमिर हर लेते हैं ।
निज रूप का थिप को भान करा, भवसिंधु पार कर देते हैं ॥

अध्यात्म रूप से चीर हरन, जब समझ में तेरी आवेगा।
फिर प्रभू में शंका शील भूप, तू कभी न देखा जावेगा॥
गोपियां सकाम भक्ति करके, लवलीन चरन हो जाती हैं।
निज चाह पूर्ण करने के लिये, हरदम हरि ध्यान लगाती हैं॥
करती हैं व्रत कात्यायनि का, वरदान इन्हें मिल जाता है।
जिससे पैदा हो अहं भाव, सारे मन में भर जाता है॥
अहं भाव से हों प्रगट, जग में अगणित कर्म।
बिना हुये सद्ज्ञान के, समझ पड़े नहिं मर्म॥
वस्त्रों को जानो किये कर्म, जिनको ले प्रभु छिप जाते हैं।
यानी गिन भक्त गोपियों को, फल कर्म का नष्ट बनाते हैं॥
जो भक्ति सकाम दीखती थी, वो अब निष्काम नज़र आती।
बस इसी भाव को हे पांडव, ये नग्नावस्था बतलाती॥
चाहती हैं गोपियाँ भक्ती भी, आवरण न तजना चाहती हैं।
लवलीन भी होने की इच्छा, अरु द्वैत को भी चिपटाती हैं॥
लेकिन प्रभु पक्के सद्गुरु हैं, कर्मों से पिंड छुड़ाते हैं।
उनकी भक्ती का असल रूप, नयनों से देखा चाहते हैं॥
जब तक कर्मों की इच्छा थी, शुभ अशुभ में बुद्धी चकराई।
गुरुवर का पूर्ण प्रभाव देख, तज लाज शीघ्र सन्मुख आई॥
यानी आवरन नष्ट करके, जिससमय स्वयमको पहिचाना।
हो गया चित्त स्थिर फौरन, मिट गये दुःख संशय नाना॥
अज्ञान अंधेरा दूर हुआ, सद्ज्ञान का सूर्य निकल आया।
होगये गुरू चेले इकरंग, सब द्वैत भाव को बिसराया॥
मुनिराई की श्रवणकर, यहां तक की गुफ़्तार।
नृप हरषा कहने लगे, धन्य धन्य करतार॥
फिर बोले यहां तक तो समझा, माया का परदा दूर हुआ।
लेकिन गुरुवर फिर वस्त्र दिये, ये कैसा हरि दस्तूर हुआ॥

मुक्ती का पथ पाने पर भी, क्या फिर कर्मों की चाह रही ।
जो मांगे वस्त्र दिये प्रभु ने, शंका ये दिल में आय रही ॥
मुस्काकर बोले व्यास पुत्र, शाबास तेरी मति को राजन ।
जो अस बारीक बुद्धि द्वारा, तू खोज रहा सत को राजन ॥
सुन, ज्ञान प्राप्त हो जाने पर, भक्ती की लगन रहे बाकी ।
ये है भक्तों की टेक सदा, प्रभु पद नित रती रहे जाकी ॥
हरि किरपा से था ज्ञान सुलभ, गोपी चाहतीं अपना लेतीं ।
एकान्त बैठ वृत्तियां दबा, ओंकार जाप में चित देतीं ॥
पर उन्होंने सारी इच्छायें, हरि के अर्पण कर डाली थी ।
उनके तो हृदय उपवन में, श्रीकृष्ण नाम हरियाली थी ॥
हां मिले उन्हें कपड़े जरूर, पर मिले कृष्ण अर्पण होकर ।
होगये सहायक भक्ती में, प्रभु पद पा सारा मल धोकर ॥
इसलिये जो कर्म करो राजन, श्रीकृष्ण चरन अर्पण कर दो ।
तुमको न कोई खटका होगा, सब कुछ मोहन पद में धरदो ॥
जिस तरह बालु का भुना बीज, उगने की शक्ति गमाता है ।
त्यों फल भी शुभाशुभ कर्मों का, हरि अर्पण से नस जाता है ॥
अस्तू निशदिन कुरुवंशमणी, तज अहंकार गोविंद भजो ।
आगे क्या होगा अब मेरा, इसका सारा तुम ख्याल तजो ॥

भूप परीक्षित कह उठे, धन्य धन्य गुरु धन्य ।
शंका सारी मिट गई, हुआ सनेह अनन्य ॥
अब आगे फिर क्या हुआ, कहिय नाथ समझाय ।
लीलाधारी की कथा, भवभय तुरत नसाय ॥
बोले मुनि गोपिन विदा, करके श्रीघनश्याम ।
बालसखा सब साथ ले, गये विपिन अभिराम ॥

बन में क्रीड़ा करते करते, सब सखा भूख से घबराये ।
बरदास्त क्षुधा की जब न हुई, तब तुरत कृष्ण के ढिंग आये ॥

बोले बनवारी से सब मिल, हे सखा भूख अति भारी है।
कुछ दिलवाओ हमको मोहन, बस आशा लगी तुम्हारी है॥
यों तो वनफल हैं यहां बहुत, पर इच्छा अब भोजन की है।
पक्वान मिले तो पेट भरे, देरी तब आयोजन की है॥
हरि बोले तुमने ठीक कहा, मेरा जी भी यह चाहता है।
घर तो है यहां से दूर बहुत, ये वक्त न जाया जाता है॥
अस्तु तुम सब एक काम करो, वो देखो गिरी गुफाओं में।
धूआं उठता है यज्ञ कोई, हो रहा यज्ञशालाओं में॥
मथुरापति दुष्ट कंस के डर, छिपकर द्विज यज्ञ रचाय रहे।
आहुती देकर मंत्रों से, देवों को तृप्त बनाय रहे॥
वहां जाकर उनसे ये कहना, बन में गउओं को चराते हुये।
नंदराय सुवन को भूख लगी, आये हैं उनके पठाये हुये॥
अस्तू जो कुछ दातव्य योग, हो तो फौरन दिलवाइयेगा।
भूखों को तृप्त कराने से, यज्ञसे भी अधिकफल पाइयेगा॥
हो नम्र मधुर बचनों द्वारा, ग्वालों सत्वर भिक्षा लाना।
फिर सुख से भोग लगावेंगे, बन में खेलेंगे मनमाना॥

प्रभु की आज्ञा शीशधर, चले तुरत ही ग्वाल।
पहुँचे यज्ञशाला निकट, मंडप लखा विशाल॥

फिर देखा कतुक विप्र वर तो, मशगूल हैं हवन कराने में।
कुछ लगे हुये हैं एक जगह, भोजन सामिग्रि बनाने में॥
स्वाहा व स्वधा का पावन रव, मंडप भर में छारहा तहां।
उत्तम अरु मन भावन सुगंध, यज्ञकुंड में से आरहा वहां॥
थे सौम्यरूप यग के कर्ता, शास्त्रों के पृष्ठ उलटते थे।
होतागण स्वाहा शब्द को सुन, आहुती कुण्ड में रखते थे॥
हरि आज्ञा से गोपाल वहां, भिक्षा हित उनके ढिंग आये।
बोले हे विप्रवरों हम को, भोजन दो कृष्ण ने मंगवाये॥

कई बार नम्र होकर मांगा, लेकिन विप्रों ने कुछ न दिया ।
यहां तक कि मौन साधकर वे, चुप हुये ध्यान किंचित न किया ॥
अतिशय पछता कर गोपबाल, बैरंग हरि ढिंग लौटे दुख पा ।
बोले हमको उन विप्रों ने, कुछ नहीं दिया न कहा हां ना ॥
वहां की उत्तम सामिग्री की, जो घुसी गंध नथनों द्वारा ।
बस क्षुधा अनिल में आहुति सी, लग गई भूख है चौधारा ॥
हंस पड़े तुरत हरि बलदाऊ, बोले तकलीफ और करना ।
उनकी तिरियाओं से मांगो, जाकर बैठो देकर धरना ॥
होती है दया भरपूर सखा, पुरुषों से अधिक तियाओं में ।
है धर्म की नाव उन्हीं के बल, सच समझो कुल बालाओं में ॥

प्रभु की आयसु पाय फिर, ग्वालबाल अकुलाय ।
भूखे ही फिर चल दिये, जहं था तिय समुदाय ॥

जाते ह नम्र वाणी द्वारा, यों कहा मातु भिक्षा दीजे ।
बन में भूखे हैं व्रजभूषण, कर तृप्त उन्हें शुभ यश लीजे ।
आ गये विपिन में जल्दी ही, नहिं किया कलेवा हे मैया ।
अस्तू हम तुम पर आये हैं, भूखे हैं हरि दाऊ भैया ॥
सुनकर गोपालों की बानी उत्कंठा हुई तियाओं को ।
पुलकायमान हो गया वदन, आनंद छाया धन्याओं को ॥
थीं ये सब कृष्णभक्त पूरी, प्रभु दर्शन की अनुरागी थीं ।
लग रही थी लगन कई दिन से, उत्कंठा हिय में जागी थी ॥
थे इनके पति कोरे कर्मठ, वे अनित स्वर्ग सुख चाहते थे ।
अनजान थे भक्ती तत्वों से, यज्ञों में उमर बिताते थे ॥

इनसे भोजन मांगकर, हरि ने भक्ती तत्व ।
बतलाया था मगर ये, काम रहा निसत्व ॥

पर इनकी धर्मपत्नियों ने, झट षटरस भोजन सजा लिया ।
हर्षित हो प्रभु मूरत हिय धर, जहँ थे मोहन वहां गमन किया ॥

रोका विप्रों ने बहुतेरा, पर इनने तनिक न परवा की।
सब चली गई बरियाई से, जा शरण हरी चरणों की ली॥
देखा एक वृक्ष तले मोहन हलधर के सहित विराजते हैं।
सिर मोर मुकट कटि पीताम्बर, लोचन नीरज सम राजते हैं॥
है वर्ण श्याम घन के समान, बांकी भृकुटी मुख मुस्कावन।
तक रहे इन्हीं की ओर प्रभू, सुख के दायक जन मन भावन॥
प्यासी अँखियों को तुरत, दर्शन सुधा पिलाय।
हाथ जोड़ चौबाइने, गिरी चरण में आय॥
फिर बोलीं हे निर्गुण व सगुण, परब्रह्म निरीह देह धारी।
हे परमधाम आश्रय अलिप्त, हे साक्षिरूप नित सुखकारी॥
तुम प्रकृति परे परमात्मा हो, तुव अंश विश्नु विधि शंकर हैं।
एक एक रोम में प्रभु तुम्हरे, अगिणत ब्रह्मांड मनोहर हैं॥
तुम तेज रूप हो तेजों के, ज्ञानियों के ज्ञान निगमसे अगम।
शिव, शिवा, शारदा शेष लक्ष्मि, गणपतियुतकहिन सके महातम॥
फिर हम वर्णन किस तरह करें, बस शरण है तुम्हरी बनवारी।
हे दीनबंधु कर कृपा हमें, दो अनदायनि भक्ती प्यारी॥
भोजन करने की सामिग्री, लाईं हैं प्रभू थाल भरके।
हे जगत तृप्त करने वाले, करलो तृप्ती भोजन करके॥
प्रभु ने सब सखा गुपालों को, कर पंक्ति बद्ध झट बिठलाया।
बिच में हलधर भाई समेत, खुद बैठ स्वयम् भोजन खाया॥
कर भोजन सब तियों को, दिया भक्ति वरदान।
फिर मुस्का कहने लगे, नंद सुवन गुणखान॥
क्या खातिर करें तुम्हारी हम, वृन्दावन घर अति दूर रहा।
गर वहाँ होते माखन द्वारा, तुम्हरा स्वागत करते सुखपा॥
अब जावो पूरन यज्ञ करो, अर्धांगिन बिना अधूरा है।
है नियम यही यदि यज्ञ होय, पत्नी बिन होत न पूरा है॥

तब चरण धूल को शीश लगा, बोलीं द्विज पत्नी यों बानी ।
तुम्हरे चरणों को तज करके, अब जायँ कहां शारंगपानी ॥
तुम्हरी लीलायें सुन सुन कर, हम हिय में अति हुलसाती थीं ।
हां हमको दर्शन मोहन के, विधि से यह नित्य मनाती थीं ॥
हे जग आश्रय प्रभु बतलाओ, तज तुम्हरा आश्रय कित जावें ।
यदि करें इरादा जाने का, तो घर में अब नहिं घुस पावें ॥
इसलिए हमारा है विचार, हे नाथ आपकी शरण रहें ।
पावन जल कालिंदी का भी हर समय कृष्ण ही कृष्ण कहें ॥

* गाना *

शरण में रखिये हमें कृष्ण कहानेवाले ।
विरज में प्रेम से गउओं को चरानेवाले ॥
आगईं छोड के घर बार हम दयासिन्धू ।
अब किधर जायँ हे माखन के चुरानेवाले ॥
दीन मतिहीन हैं अबला है तनिक ज्ञान नहीं ।
तुम्हीं से लौ लगी है दुष्ट नशानेवाले ॥
फिक्र में थीं करें किस भांति तुम्हारा दर्शन ।
होगया जन्म सफल बंशी बजानेवाले ॥



कहा कृष्ण ने तब उन्हें सुनो सभी द्विज बाल ।
जग में पति परमेश है, उसका रखो ख्याल ॥
अपने पति को मम रूप समझ यदि प्रेम सहित अपनाओगी ।
तो निश्चय समझो उसमें ही, मुझको तुम हरदम पाओगी ॥
तक रहे राह तुम्हरी पति सब, आदर से तुम्हें अपनावेंगे ।
निज करनी पर शरमिंदा हो तुम आगे शीश झुकावेंगे ॥

रोका विप्रों ने बहुतेरा, पर इनने तनिक न परवा की।
सब चली गई वरियाई से, जा शरण हरी चरणों की ली॥
देखा एक वृक्ष तले मोहन हलधर के सहित विराजते हैं।
सिर मोर मुकट कटि पीताम्बर, लोचन नीरज सम राजते हैं॥
है वर्ण श्याम घन के समान, बांकी भृकुटी मुख मुस्कावन।
तक रहे इन्हीं की ओर प्रभू, सुख के दायक जन मन भावन॥

प्यासी अँखियों को तुरत, दर्शन सुधा पिलाय।
हाथ जोड़ चौवाइने, गिरी चरण में आय॥

फिर बोलीं हे निर्गुण व सगुण, परब्रह्म निरीह देह धारी।
हे परमधाम आश्रय अलिप्त, हे साक्षिरूप नित सुखकारी॥
तुम प्रकृति परे परमात्मा हो, तुव अंश विश्नु विधि शंकर हैं।
एक एक रोम में प्रभु तुम्हरे, अगिणत ब्रह्मांड मनोहर हैं॥
तुम तेज रूप हो तेजों के, ज्ञानियों के ज्ञान निगमसे अगम।
शिव, शिवा, शारदा शेष लक्ष्मि, गणपतियुतकहिन सके महातम॥
फिर हम वर्णन किस तरह करें, बस शरण है तुम्हरी बनवारी।
हे दीनबंधु कर कृपा हमें, दो अनदायनि भक्ती प्यारी॥
भोजन करने की सामिग्री, लाई हैं प्रभू थाल भरके।
हे जगत तृप्त करने वाले, करलो तृप्ती भोजन करके॥
प्रभु ने सब सखा गुपालों को, कर पंक्ति बद्ध झट बिठलाया।
बिच में हलधर भाई समेत, खुद बैठ स्वयम् भोजन खाया॥

कर भोजन सब तियों को, दिया भक्ति वरदान।
फिर मुस्का कहने लगे, नंद सुवन गुणखान॥

क्या खातिर करें तुम्हारी हम, वृन्दावन घर अति दूर रहा।
गर वहाँ होते माखन द्वारा, तुम्हरा स्वागत करते सुखपा॥
अब जावो पूरन यज्ञ करो, अर्धांगिन बिना अधूरा है।
है नियम यही यदि यज्ञ होय, पत्नी बिन होत न पूरा है॥



श्रीकृष्ण चरित्र अथवा श्रीमद्भागवत

आठवां भाग

गोवर्धनधारी कृष्ण

रचयिता—

श्रीलाल खत्री

प्रकाशक—महाभारत पुस्तकालय, अजमेर

मुद्रक—कं. हमीरमल लूनिया, दि डायमण्ड जुबिली प्रेस, अजमेर.

प्रथम वार २,००० | सम्वत् १९९१ विक्रमी, सन् १९३५ ईस्वी | मूल्य ।) आने

तुमने जो स्वागत किया मेरा, मंडली सहित भोजन दीन्हा।
सब पाप तुम्हारे दूर हुये, अतिथि आदर हितयुतकीन्हा॥
प्रभु की आज्ञा मान कर, विदा हुईं द्विज बाल।
प्रेम सहित उर धार कर, मूरति श्रीनंदलाल॥
पत्नियों की देख अतिथि सेवा, विप्रों का सब मद उतर गया।
जो नशा चढ़ा था कर्मकाण्ड, लख भक्ति तुरतही उतर गया।
ज्योंही वे पहुँची डेरे पर, उनके पति चरणों मांहि गिरे
बोले हम धन्य हुये हैं सब, तुम्हरी भक्ती से दिवस फिरे।
है वृथा हमारा ब्रह्म गर्व, जप तप संध्या वंदन आदिक।
ये यज्ञ दीक्षा भी भ्रम है, सुख संपति वैभव स्वर्गादिक॥
तुमने खुद यज्ञपती की जा, हित से कीन्ही है पहुनाई।
हम भी तुम्हरे फल से देवी, पहुँचेंगे हरि के ढिंग जाई॥
यों कह अति आदर कर उनका, विधि सहित यज्ञ को पूर्ण किया।
तज कर्म कांड हरि भक्ती में, चौबों ने फौरन चित्त दिया॥
वृन्दावन कृष्ण बिहारी का, श्रोताओं वर्णन पूर्ण हुआ।
अब "श्रीलाल" लिखाना है ये, किस तरह इन्द्र मद चूर्ण हुआ॥





श्रीकृष्ण चरित्र अथवा श्रीमद्भागवत

आठवां भाग

गोवर्धनधारी कृष्ण

रचयिता—

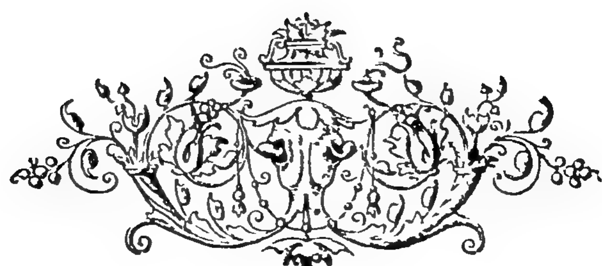
श्रीलाल खत्री

प्रकाशक—महाभारत पुस्तकालय, अजमेर

मुद्रक—कं. हमीरमल लूनिया, दि डायमण्ड जुबिली प्रेस, अजमेर.

प्रथम बार २,०००	सम्वत १९८१ विक्रमी सन् १९२४ ईस्वी	मूल्य ।) आने

तुमने जो स्वागत किया मेरा, मंडली सहित भोजन दीन्हा।
सब पाप तुम्हारे दूर हुये, अतिथि आदर हितयुतकीन्हा॥
प्रभु की आज्ञा मान कर, विदा हुईं द्विज बाल।
प्रेम सहित उर धार कर, मूरति श्रीनंदलाल॥
पत्नियों की देख अतिथि सेवा, विप्रों का सब मद उतर गया।
जो नशा चढ़ा था कर्मकाण्ड, लख भक्ति तुरतही बितर गया॥
ज्योंही वे पहुँची डेरे पर, उनके पति चरणों मांहि गिरे।
बोले हम धन्य हुये हैं सब, तुम्हरी भक्ती से दिवस फिरे॥
है वृथा हमारा ब्रह्म गर्व, जप तप संध्या वंदन आदिक।
ये यज्ञ दीक्षा भी भ्रम है, सुख संपति वैभव स्वर्गादिक॥
तुमने खुद यज्ञपती की जा, हित से कीन्ही है पहुनाई।
हम भी तुम्हरे फल से देवी, पहुँचेंगे हरि के ढिंग जाई॥
यों कह अति आदर कर उनका, विधि सहित यज्ञ को पूर्ण किया।
तज कर्म कांड हरि भक्ती में, चौबों ने फौरन चित्त दिया॥
वृन्दावन कृष्ण बिहारी का, श्रोताओं वर्णन पूर्ण हुआ।
अब "श्रीलाल" लिखाना है ये, किस तरह इन्द्र मद चूर्ण हुआ॥





श्रीकृष्ण चरित्र अथवा श्रीमद्भागवत

आठवां भाग

गोवर्धनधारी कृष्ण

रचयिता—

श्रीलाल खत्री

प्रकाशक—महाभारत पुस्तकालय, अजमेर

मुद्रक—क. हमीरमल लूनिया, दि डायमण्ड जुबिली प्रेस, अजमेर.

प्रथम वार ३,०००	सम्वत १९९१ विक्रमी सन् १९३४ ईस्वी	मूल्य ।) आने

दूसरी गोप कन्यायें भी, श्रीकृष्ण दरस कर सुखपातीं।
माता पितु गोप गुवालों के, गऊओं के ये मोहन थाती॥
थे अल्प वयस के प्रभु पर वहां, वय वाले सलाह मानते थे।
भगवान कृष्ण के वचनों को, श्रुति वचनों सरिस जानते थे॥
वृन्दावन में छारहा, था अखंड आनन्द।
इसमें क्या अचरज जहाँ, वसें सच्चिदानन्द॥
यों रहते रहते एक दिवस, तहँ इन्द्र यज्ञ उत्सव आया।
सारे व्रजमण्डल में घर घर, फौरन नवजीवन सा छाया॥
निज निज मकान को पुतवा सब, सामर्थ्यनुसार सजाने लगे।
रंगीन स्वच्छ सुन्दर झूले, गऊ बछड़ों को पहिराने लगे॥
पकवान लगे बनने प्रति घर, कई तरह की सामिग्री आई।
मंजुल मंगल मय वाजों ने, मनहरन मृदुल ध्वनि फैलाई॥
हो रहे कार्य में व्यस्त सभी, अतिशय फुरती दिखलाते थे।
गोपालबाल नव वस्त्रों में, फिरते तहँ दृष्टी आते थे॥
अंतरयामी को विदित, था ये रहस्य तमाम।
फिर भी माता के निकट, आये लीलाधाम॥
जननी को भी देखा प्रभु ने, फुर्सत है नहीं सुस्ताने की।
पड़ रही है जल्दी यग के लिये, सुन्दर पकवान बनाने की॥
तो भी मनमोहन ने पूछा, हो रहा आज क्या घर घर में।
बालबाल वृद्ध वनिता आदिक, फिरते हैं लिये आनंद उर में॥
क्या व्रज में कोई उत्सव है, माता मुझको बतलाओ ना।
भोजन का इतना आयोजन, किसलिये है ये समझाओ ना॥
यशुमति बोली बेटा मुझको, इस समय न तंग करो जाओ।
चौपाल में बैठे पिता तेरे, उनसे सब भेद समझ आओ॥
... करके आनंदकंद।
... जहँ नंद॥

*** श्लोक ***

वंशीविभूषितकरान्नवनीरदाभात्पीतांबरादरुणबिंबफलाधरोष्ठात् ।
पूर्णेन्दुसुन्दरमुखादरविन्दनेत्रात्कृष्णात्परं किमपितत्वमहं न जाने ॥

❀ कथा प्रारम्भ ❀

जय जगपति राधापती, जय श्रीपति भुवनेश ।
कारण कर्ता कर्म सब, विश्वाधार सुरेश ॥
करुणा वरुणालय प्रभो, भक्त सुखद भगवान ।
तव श्रीपद अरविंद में, मन रह भ्रमर समान ॥
परमानन्दम् परम धन, परम प्रेम के धाम ।
परिपूरनतम ईश के, वरणों चरित ललाम ॥
जाहि सुने अघ नाश हों, पावहिं जन आनन्द ।
अस्तु प्रेम से मिल सभी, कहो जयति व्रजचन्द ॥

ासिन सुख पहुँचावन हित, सेवक का बाना धारा है ।
ते जग को जग भूषण, अवतार भेद ये सारा है ॥
रमण रेत में रमे प्रभू, उसके दर्शन भव दुःख हरें ।
कुंजन में बिचरें माधव, वे जन्म मृत्यु को दूर करें ॥
नई नई लीला करके, लीलाधारी सुख पहुँचाते ।
व्रजवाले निर्भय थे, अति नेह कृष्ण में दिखलाते ॥
साफ हो चुका था, कई निश्चर यमपुर धाये थे ।
के वन उपवन सब, भय रहित हुये सुखदाये थे ॥
गुपाल ने गोपालन, का काम लिया कर में राजन् ।
शय अचरज कारी, अति वृद्धि हुई उनमें राजन् ॥
प्रेम मूरती का, चहुँ दिशि में प्रेम बरसता था ।
चर सभी, वर्णन करना कवि थकता था ॥
श्रीराधे, व्रजराज के साथ रहें वन में ।
धारें, बस रहे श्याम तन में मन में ॥

कृष्णस्तु भगवान् स्वयम्

स्तुति

(१)

रहे हैं तुमको पुकार कबसे कृपा करो अबतो आओ मोहन ।
लगी तुम्हीं से है लौ हमारी हमारे संकट मिटाओ मोहन ॥
न देर अबतक की तुमने नटवर, पुकार सुनते ही आये सत्वर ।
हूँ इसही आशा पै बस मैं निर्भर, पधारो दर्शन दिलाओ मोहन ॥
लिया है जग में ये जन्म जब से, रहा हूं पापों में डूबा तब से ।
बना न कुछ भी सुकर्म मुझसे, शरण हूँ सतपथ दिखाओ मोहन ॥
तुम्हारे दासों का दास गिनकर, विनय श्रवण करिये कृपासागर ।
चरण कमल की दे भक्ति का वर, माया से मुझको बचाओ मोहन ॥

मंगलाचरण

(२)

पीताम्बर धर पाप हर, गोकलेश गोपाल ।
ताप हरन जन सुख करन, जय जय दीन दयाल ॥
जय जलशायी जलदसम, सुभग सुहावन रूप ।
सृष्टि रचन, पालन, हरन, शिव अज विष्णु स्वरूप ॥
तुम गुरु गणपति शारदा, सहस बदन तुम शेष ।
विघन हरो मंगल करो, जग व्यापक अखिलेश ॥
बंदहुं वेदव्यास सुत, श्री शुकदेव सुजान ।
गायो कलिमल हरन जिन, "कृष्ण चरित" गुणखान ॥

*** श्लोक ***

वंशीविभूषितकरान्नवनीरदाभात्पीताम्बरादरुणबिम्बफलाधरोष्ठात् ।
पूर्णेन्दुसुन्दरमुखादरविन्दनेत्रात्कृष्णात्परं किमपितत्वमहं न जाने ॥

❀ कथा प्रारम्भ ❀

जय जगपति राधापती, जय श्रीपति भुवनेश ।
कारण कर्ता कर्म सब, विश्वाधार सुरेश ॥
करुणा वरुणालय प्रभो, भक्त सुखद भगवान ।
तव श्रीपद अरविंद में, मन रह भ्रमर समान ॥
परमानन्दम् परम धन, परम प्रेम के धाम ।
परिपूरनतम ईश के, चरणों चरित ललाम ॥
जाहि सुने अघ नाश हों, पावहिं जन आनन्द ।
अस्तु प्रेम से मिल सभी, कहो जयति व्रजचन्द ॥

व्रजवासिन सुख पहुँचावन हित, सेवक का बाना धारा है ।
बतलाते जग को जग भूषण, अवतार भेद ये सारा है ॥
जिस रमण रेत में रमे प्रभू, उसके दर्शन भव दुःख हरें ।
जिन कुंजन में विचरें माधव, वे जन्म मृत्यु को दूर करें ॥
नित नई नई लीला करके, लीलाधारी सुख पहुँचाते ।
सारे व्रजवाले निर्भय थे, अति नेह कृष्ण में दिखलाते ॥
कालीदह साफ हो चुका था, कई निश्चर यमपुर धाये थे ।
वृन्दावन के वन उपवन सब, भय रहित हुये सुखदाये थे ॥
जब से गुपाल ने गोपालन, का काम लिया कर में राजन् ।
तब से अतिशय अचरज कारी, अति वृद्धि हुई उनमें राजन् ॥
मनमोहनि प्रेम मूरती का, चहुँ दिशि में प्रेम बरसता था ।
थे पूर्ण काम चर अचर सभी, वर्णन करता कवि थकता था ॥
आल्हादिन शक्ती श्रीराधे, व्रजराज के साथ रहें वन में ।
कई प्रकार की लीला धारें, बस रहे श्याम तन में मन में ॥

कृष्णस्तु भगवान् स्वयम्

स्तुति

(१)

रहे हैं तुमको पुकार कबसे कृपा करो अबतो आवो मोहन ।
लगी तुम्हीं से है लौ हमारी हमारे संकट मिटाओ मोहन ॥
न देर अबतक की तुमने नटवर, पुकार सुनते ही आये सत्वर ।
हूँ इसही आशा पै बस मैं निर्भर, पधारो दर्शन दिलाओ मोहन ॥
लिया है जग में ये जन्म जब से, रहा हूं पापों में डूबा तब से ।
बना न कुछ भी सुकर्म मुझसे, शरण हूँ सतपथ दिखाओ मोहन ॥
तुम्हारे दासों का दास गिनकर, विनय श्रवण करिये कृपासागर ।
चरण कमल की दे भक्ति का वर, माया से मुझको बचाओ मोहन ॥

मंगलाचरण

(२)

पीताम्बर धर पाप हर, गोकलेश गोपाल ।
ताप हरन जन सुख करन, जय जय दीन दयाल ॥
जय जलशायी जलदसम, सुभग सुहावन रूप ।
सृष्टि रचन, पालन, हरन, शिव अज विष्णु स्वरूप ॥
तुम गुरु गणपति शारदा, सहस बदन तुम शेष ।
विघन हरो मंगल करो, जग व्यापक अखिलेश ॥
बंदहुं वेदव्यास सुत, श्री शुकदेव सुजान ।
गायो कलिमल हरन जिन, "कृष्ण चरित" गुणखान ॥

❋ श्लोक ❋

वंशीविभूषितकरान्नवनीरदाभात्पीताम्बरादरुणबिंबफलाधरोष्ठात् ।
पूर्णेन्दुसुन्दरमुखादरविन्दनेत्रात्कृष्णात्परं किमपितत्वमहं न जाने ॥

❀ कथा प्रारम्भ ❀

जय जगपति राधापती, जय श्रीपति भुवनेश ।
कारण कर्ता कर्म सब, विश्वाधार सुरेश ॥
करुणा वरुणालय प्रभो, भक्त सुखद भगवान ।
तव श्रीपद अरविंद में, मन रह भ्रमर समान ॥
परमानन्दम् परम धन, परम प्रेम के धाम ।
परिपूरनतम ईश के, बरणों चरित ललाम ॥
जाहि सुने अघ नाश हों, पावहिं जन आनन्द ।
अस्तु प्रेम से मिल सभी, कहो जयति व्रजचन्द ॥

व्रजवासिन सुख पहुँचावन हित, सेवक का बाना धारा है ।
बतलाते जग को जग भूषण, अवतार भेद ये सारा है ॥
जिस रमण रेत में रमे प्रभू, उसके दर्शन भव दुःख हरें ।
जिन कुंजन में बिचरें माधव, वे जन्म मृत्यु को दूर करें ॥
नित नई नई लीला करके, लीलाधारी सुख पहुँचाते ।
सारे व्रजवाले निर्भय थे, अति नेह कृष्ण में दिखलाते ॥
कालीदह साफ हो चुका था, कई निश्चर यमपुर धाये थे ।
वृन्दावन के वन उपवन सब, भय रहित हुये सुखदायै थे ॥
जब से गुपाल ने गोपालन, का काम लिया कर में राजन् ।
तब से अतिशय अचरज कारी, अति वृद्धि हुई उनमें राजन् ॥
मनमोहनि प्रेम मूरती का, चहुँ दिशि में प्रेम बरसता था ।
थे पूर्ण काम चर अचर सभी, वर्णन करता कवि थकता था ॥
आल्हादिन शक्ती श्रीराधे, व्रजराज के साथ रहें वन में ।
कई प्रकार की लीला धारें, बस रहे श्याम तन में मन में ॥

दूसरी गोप कन्यायें भी, श्रीकृष्ण दरस कर सुखपातीं।
माता पितु गोप गुवालों के, गऊओं के थे मोहन थाती॥
थे अल्प वयस के प्रभु पर वहां, वय वाले सलाह मानते थे।
भगवान कृष्ण के वचनों को, श्रुति वचनों सरिस जानते थे॥
वृन्दावन में छारहा, था अखंड आनन्द।
इसमें क्या अचरज जहाँ, वसें सच्चिदानन्द॥
यों रहते रहते एक दिवस, तहँ इन्द्र यज्ञ उत्सव आया।
सारे व्रजमण्डल में घर घर, फौरन नवजीवन सा छाया॥
निज निज मकान को पुतवा सब, सामर्थनुसार सजाने लगे।
रंगीन स्वच्छ सुन्दर झूलें, गऊ बछड़ों को पहिराने लगे॥
पकवान लगे बनने प्रति घर, कई तरह की सामिग्री आई।
मंजुल मंगल मय बाजों ने, मनहरन मृदुल ध्वनि फैलाई॥
हो रहे कार्य में व्यस्त सभी, अतिशय फुरती दिखलाते थे।
गोपालबाल नव वस्त्रों में, फिरते तहँ दृष्टी आते थे॥
अंतरयामी को विदित, था ये रहस्य तमाम।
फिर भी माता के निकट, आये लीलाधाम॥
जननी को भी देखा प्रभु ने, फुर्सत है नहीं सुस्ताने की।
पड़ रही है जल्दी यग के लिये, सुन्दर पकवान बनाने की॥
तो भी मनमोहन ने पूछा, हो रहा आज क्या घर घर में।
आबाल वृद्ध बनिता आदिक, फिरते हैं लिये आनंद उर में॥
क्या व्रज में कोई उत्सव है, माता मुझको बतलाओ ना।
भोजन का इतना आयोजन, किसलिये है ये समझाओ ना॥
यशुमति बोली बेटा मुझको, इस समय न तंग करो जाओ।
चौपाल में बैठे पिता तेरे, उनसे सब भेद समझ आओ॥
माता की आज्ञा श्रवन, करके आनंदकंद।
चले गये चौपाल में, बैठे थे जहँ नंद॥

वहाँ जाकर देखा कान्हा ने, चौपाल गोप ग्वालों से भरा ।
है मध्य में हवन कुँड जिसके, पास हि मख का सामान धरा ॥
बैठे हैं एक तरफ ऋषि मुनि, हो रही ज्ञान चर्चा भारी ।
और तरफ दूसरे विप्रवृंद, कर रहे यज्ञ की तैयारी ॥
बस यहीं एक स्वर्णासन पर, आसनासीन है व्रजराई ।
जिनके ढिंग एक और आसन, खाली देता है दिखलाई ॥
एक ओर नर्तकी नाच रही, गायक गन गान सुनाते हैं ।
बज रहे मन हरन वाद्य तहाँ, सब हर्षित दृष्टी आते हैं ॥
ये सब शोभा लखते लखते, श्रीकृष्ण नंद के ढिंग आये ।
जब लखा इन्हें व्रजराई ने, नेत्रों में प्रेमाश्रू छाये ॥
मुख चूम पुत्र का बिठा दिया, फौरन खाली सिंहासन पर ।
प्रभु ऐसे शोभित हुये जनू, नक्षत्रों में शोभित निशिकर ॥

और दिनों से आज था, हरि का तेज अपार ।
चकित हो गये, उठ सभी, करने लगे जुहार ॥

कुछ देर बाद सब बैठ गये, तब गुणातीत अंतरयामी ।
स्वेच्छा से निर्मित सगुन रूप, जन रक्षक परते पर स्वामी ॥
सम्बोधन कर अपने पितु को, बोले हे व्रजपति व्रजराई ।
क्या सबब है जो वृन्दावन में, देती प्रसन्नता दिखलाई ॥
हो रही सफाई घर घर में, प्रति आंगन चौक पुराये हैं ।
घर हाट बाट चौराहों में, उत्तम छिड़काव कराये हैं ॥
कई तरह के रंग से गायों को, गोपों ने आज संवारी हैं ॥
पहराई नव झूलें सबको, घंटियां नई गल डारी हैं ।
माता ने भी उठते हि प्रात, सुंदर कपड़े पहिराये मुझे ।
आभूषण भी पुनि नये नये, धारन सत्वर करवाये मुझे ॥
अस्तू जो कुछ भी कारन हो, समझाओ शंका दूर करो
किस देव का ये पूजन है पिता, जेहि हित खर्चा भरपूर करो ॥

होवेगा कौनसा हेतु सिद्ध, क्यामिलेगाइससेफल तुमको।
वो फल क्या काम बनावेगा, ये सब बातें कहदो हमको॥
रूठ हि देव तो हानि क्या, करहिं कहो ब्रजराय।
लाभ अलभ्य मिले कवन, यदि प्रसन्न हो जाय॥
सुत को सनेह दृष्टी से लख, श्रीनंदराय ने फ़रमाया।
बेटा शचिपति यज्ञ के कारन, सामान सकल ये सजवाया॥
हम गोपालक कृषिकारक हैं, है शक्र हमारा प्रतिपालक।
इस कारन उसकी पूजा को, प्रति वर्ष करें वृद्ध युव बालक॥
कारन वो वर्षा का पति है, जिससे त्रण अन्न उपजता है।
उसको पाकर गो, गोप आदि, का जीवन सुख से चलता है॥
है चौमासे का अन्त सुवन, नव धान्य सभी ने पाया है।
इस हेतु इन्द्र सत्कार करें, ये शुरू से होता आया है॥
यदि कोप करें मघवा हम पर, ये ठाठ सकल नस जावेगा।
व्रज का, गऊओं का, हम सबका, यहाँचिन्ह तलक नहिं पावेगा॥
इस कारन हम यह इन्द्र यज्ञ, हे लाल करें भय के वश भी।
संसारी हैं रत कामना हैं, होता व्रजवालों का यश भी॥
सुनकर निज पितु के बचन, मुस्काये गोपाल।
कहन लगे मुझसे सुनो, सच्चा सच्चा हाल॥
ग्रीषम में रवि की गरमी से, जल सिंधु का भाप बना करता।
वो ही नभ में जा बादल बन, पा समय फेर बरसा करता॥
सिखलाता ये विज्ञान हमें, इसमें सुरपति का काम नहीं।
यह तो कुदरत की रचना है, सुर पूजा का अंजाम नहीं॥
यदि इन्द्र की सारी माया हो, जहं यज्ञ नहीं तहं वर्षा क्यों।
इस भरतखंड के सिवा पिता, कहिं नहीं शक्र की पूजा हो॥
अज्ञान का सारा कारन है, जो अंध भक्ति की जाती है।
जब तक हमको सत ज्ञान न हो, तब तक हि जगह ये पाती है॥

कोप करेगा इन्द्र यदि, देगा कष्ट महान् ।
ये भी सत्य नहीं पिता, सुनो लगा कर कान ॥
ये सब ब्रह्मांड जो दृष्टि पड़े, बस कर्म प्रधान कहाता है ।
जो जैसा कर्म करे जग में, वो वैसा ही फल पाता है ॥
जब फल मिलता कर्मानुसार, और उसे सुरेन्द्र हटा न सके ।
तब उससे क्यों डरते हो पिता, जो काम तुम्हारे आ न सके ॥
फिर इन्द्र का पद भी कर्म से है, सौ अश्वमेध कर पाया है ॥
जो स्वयम कर्म वश है उसने, कहो किसका काम बनाया है ।
उल्टा असुरों के हमले से, तज स्वर्ग पलायन कर जाता ।
जप तप यदि किया चहे कोई, तो विघ्न उपस्थित करवाता ॥
वो डरता है कर तप कोई, सुरपति पद पर कबजा न करे ।
इस हेतु सदां करता प्रयत्न, छल बल से उसकी आन हरे ॥
अस मतलबी सुरेश की, पूजा से मुख मोड़ ।
भजो इन्द्र के इन्द्र को, सारे संशय छोड़ ॥
जो अपनी सत्ता से क्षण में, सारा ब्रह्मांड उपजाते हैं ।
करते हैं नित पालन पोषण, फिर अंत में नष्ट बनाते हैं ॥
हैं अजर अमर दोषों से रहित, सबके आत्मा अंतरयामी ।
फिर हैं मन बुद्धि से अगम्य, कहलाते दीनों के स्वामी ॥
ब्रह्मा के एक दिवस में, भुगतें चौदह इन्द्र ।
वो विधि जीवे शत बरस, कहते अस योगिन्द्र ॥
उस वेद जनक की कुल आयू, जिसका एक निमिष कहाता है ।
उस प्रभु को तज क्यों शचिपतिका, पितु पूजन तुम्हें सुहाता है ॥
ये रीति पुरानी चली हुई, अब तक यहाँ होती आई है ।
वो होगी उसी समय माफिक, इस समय नहीं सुखदाई है ॥
इसलिये उसी परिपूरन का, हे पिता यज्ञ करवाओ तुम ।
जिससे अनंत सुख मिले तुम्हें, वापिस न यहाँ फिर आओ तुम ॥

यद्यपि वर्षा बरसाने का, केवल एक निमित पुरंधर है।
पर जिसकी सत्ता से ये सब, होता वो असली इंदर है॥
अस्तू तज पल्लव शाखायें, जल यदी मूल में सींचे हम।
तो फिर हानी हो किस प्रकार, सर्वेश्वर को यदि खींचे हम॥
व्रत जप तप दान यज्ञ आदिक, उसही के कारन करना है।
सारे कर्मों के फल को पितु, जगदीश्वर पद में धरना है॥

चार वर्ण संसार में, विधि ने दिये बनाय।
न्यारे न्यारे धर्म हैं, सुनों पिता चितलाय॥

जिनमें हम वैष्णव वर्ण के हैं, गोपालन धर्म हमारा है।
व्रज में जो वैभव दिखता है, सारा इन का हि पसारा है॥
जो फल तीरथ यात्रा से मिले, जो मिले विप्र भोजन दीन्हे।
या जो फल महादान का हो, वा मिले प्रभू सेवा कीन्हे।
अथवा व्रत उपवासादिक से, या भूमि प्रदत्तिन करने से।
सच भाषण से या नियम सहित, जो मिले जनेऊ धरने से॥
उससे कितना ही अधिक पिता, फल गौ सेवा से मिल जाता।
इसलिये उसे पूजो मन दे, ये है सबकी सच्ची माता॥

सकल देवता गाय के, अंग में करें निवास।
तीर्थ सहित तीरथपती, खुर में पावें वास॥

जिसने गौ के खुर की रज का, अपने मस्तक पर तिलक दिया।
उसने मानो घर बैठे ही, श्रीगंगा में स्नान किया॥
फिर गाय जिस जगह बंधती हो, उस जगह यदी कोई मरजावे।
चाहे कितना भी पापी हो, पर सीधा स्वर्ग लोक धावे॥
अस्तू यदि पूजन करना है, इस गऊ माता का चित्त धरो।
हवनादिक की जो इच्छा हो, परमात्म नाम का हवन करो॥

वो प्रभु रूप विराट में, हैं सर्वत्र समान।
जो प्रत्यक्ष फल दे तुम्हें, धरो उसी का ध्यान॥

गौपालन करने वालों का, तो देव नदी बन पर्वत है ।
जहाँ पैदा होय अन्न जल त्रण, गोपों के लिये स्वर्गवत है ॥
अस्तू गोवर्धन गिरि पूजा, करवाना तुम्हें मुनासिब है ।
जो सदा करे उपकार पिता, उसका आदर ही वाजिब है ॥
गउओं का वर्धन करने से, गोवर्धन ये कहलाता है ।
इसका सब हेतु गऊ हित है, सब कुछ इस ही मे आता है ॥
गर कोप करे वर्षा पति तो, अपना वह कुछ नहिं कर पाये ।
गिरिराज अगर नाराज होंय, तो ब्रज का ठाठ बिखर जायें ॥
अस्तू हे पिता ब्रजाधीश्वर, मेरी गर राय समझ आये ।
तो गोवर्धन पूजा रीती, ब्रज में चालू करदी जाये ॥
अपने ग्रंथों में गिरवर की, महिमा वरणीऋषिमुनियों ने ।
गउलोक से वृन्दावन गिरवर, आये महि, लिखा है मुनियों ने ॥
अस्तू गोलोकी का स्वरूप, है एक गिरी गिरराज पिता ।
दर्शन से चारों फल देवे, इसका ऐसा है साज पिता ॥

नंदराय ने पुत्र की, जोश भरी गुफ़्तार ।
सुनकर अपने चित्त में, अचरज किया अपार ॥

फिर बोले बेटा कथन तेरा, वेशक मम दिल में भाया है ।
वास्तव में गोवर्धन गिर का, सब ब्रजवालों पर साया है ॥
अब तक जो भूल हुई सो हुई, अब आज से उसे सुधारेंगे ।
सुरपति की पूजा की ऐवज़, गिरवर का आदर धारेंगे ॥
लेकिन हे सुत गिरि पूजा विधि, हमको न ज्ञात है फिर कैसे ।
पूजें, यदि तुम कुछ जानते हो, तो कहो करें हम सब वैसे ॥

कहा कृष्ण ने भाव के, भूखे देव तमाम ।
पत्र पुष्प अर्पण करो, करो सप्रेम प्रणाम ॥

फिर भी पितु शास्त्रानुसार हमें, गिरिको पूजन करना चहिये ।
जो बतलाऊं मैं उसे सभी, लोगों को चित धरना चहिये ॥

पूजा की पूर्व निशा में हो, दीपावलि उत्सव सुखदायक।
फिर लक्ष्मी का पूजन ठानो यग हवन करो श्रद्धा माफिक॥
पुनि प्रात समय आबाल वृद्ध, पकवान आदि लेकर जावें।
गिरवर की सुघड़ तलहटी में, छिड़काव वारि से करवावें॥
पाटम्बर सुभग बिछा करके, उनपर सब सामिग्री धरना।
फिर पूजन वस्तु पुष्प दीपक, घृत आदिक एकत्रित करना॥
इसके उपरान्त पुरोहित को, बुलवा पूजन करवाइयेगा।
पुनि गउओं को चारा देकर, गिरवर का ध्यान लगाइयेगा॥

नरनारी बालक जरठ, हाथ जोड़ सिरनायँ।
श्रद्धा से गिरराज को भोजन भोग लगायँ॥
इस प्रकार यदि प्रेम से, पूजें गिरि धर ध्यान।
दर्शन हो गिरराज का, पावें शुभ वरदान॥

※ गाना ※

तज दो रिवाज को तुम सत ज्ञान को अपनावो।
जैसा समय हो सन्मुख वैसा करम करावो॥
नहिं हाथ इन्द्र के है बरसाना वर्षा हरगिज।
लीला है प्रकृति की उसको न भूल जावो॥
संसार का नियन्ता केवल है भाव भूखा।
उसके लिये वृथा तुम पकवान यहा बनावो॥
तज के प्रत्यक्ष सुर को करते हो वृथा श्रम तुम।
जिससे मिले तृणादिक उसको न क्यों पुजावो॥
व्रज पालता है गिरिवर उस ही को पूजियेगा।
पकवान आदि वस्तू केवल उसे खिलावो॥

व्रजवल्लभ के बिधि कहते ही, सब गोपों में आनन्द छाया।
विप्रों ने भी हर्षित होकर, मोहन के कथन को अपनाया॥

होते हि श्याम वृंदावन में, दीपों की आभा छायगई ।
होने से यज्ञ हर एक घर में, सौरभ वायू में आयगई ॥
निशि में लक्ष्मीजी का पूजन, विधिवत सारे व्रज ने कीन्हा ।
कई भांति का अति उत्तम भोजन, हरषा कर विप्रों को दीन्हा ॥
प्रात होत सब ने सजा, चलने का सामान ।
वस्त्राभूषण धारकर, लिया संग पकवान ॥
घर घर से छकड़े जुत निकले, सब वृन्दावन बाहिर आये ।
गोवर्धन जानिब चले सकल, अति हर्ष मनाते छबिछाये ॥
सोलह सिंगारयुत व्रजबाला, स्यंदनों में दृष्टी आती थीं ।
यसुमति रोहिणी 'गिरि' गुणगाती, डोलों में बैठी जाती थीं ॥
अपनी टोली के सखा सहित, गायों का नव श्रंगार किये ।
चलरहे राम संग श्रीकृष्ण, जग मोहन मुरली हाथ लिये ॥
श्री राधा भी सखियों का ले, उत्तम आभूषण तन धारे ।
आई सुन्दर रथ में चढ़कर, दर्शन करने वंसी वारे ॥
परिपूरनतम आल्हादिन का, नयनों द्वारा सम्मिलन हुआ ।
इकटक रह गये नेत्र चारों, हिय का हिय में आगमन हुआ ॥
सुरपति पूजन भी एक प्रथा, सदियों से मानी जाती थी ।
उसमें था ऐसा जोश नहीं, बुढ़िया पुरान कहलाती थी ॥
पर श्री हरि के आयोजन ने, उत्साह हृदय भर दीना था ।
हो इन्द्र के मद का सर्वनाश, प्रभुने चित में धर लीना था ॥
यहि विधि गोलोक अधीश्वर ने, श्री गोवर्धन को पुजवाया ।
सुरपति का यज्ञ निवारन कर, नव मेला व्रज में भरवाया ॥
आबाल वृद्ध अति हर्षित हो, गोवर्धन जय उचारते थे ।
मस्तानि चाल से चलते हुये, गिरवर जानिब पग धारते थे ॥
इस प्रकार पहुँचे सभी, गोवर्धन ढिंग आय ।
जहँ व्रजेश ने प्रथम ही, दिये थे तंबु तनाय ॥

अब पूजन करना शुरू हुआ, कुल प्रोहित आगे बढ़ आये।
अपने अपने यजमानों को, आचमन उन्हों ने करवाये॥
बोला संकल्प फेर विधि से, गोवर्धन पूजा का सुखकर।
दे अघपात्र पंचामृत से, स्नान को करवाया सत्वर॥
सुन्दर वस्त्राभूषण गिरि पर, अति प्रेम सहित फिर चढ़वाये।
गायक गण ने मंजुल स्वर से, श्री गोवर्धन के यश गाये॥
पूजन होजाने पर समाप्त, फिर भोग चढ़ाया गिरिवर पर।
तब मन मोहन अंतरयामी, बोले सब से यों मुस्काकर॥

हिय में यदि विश्वास हो, वपु विराट के माय।
तो सब मूंदो नयन दोउ, दर्श देहिं प्रभु आय॥
था सबको प्रभु बचन पर, वेद सरिस विश्वास।
तुरत नेत्र मीचे सबन, धरि हिय दर्शन आस॥

खुलतेहि दृगों के क्या देखा, सबने पर्वत की कंदर से।
शुभ्र श्याम वर्ण धर चार भुजा, एक मूरत आई अंदर से॥
थी देह विशद मंजुल आकृति, पीताम्बर तन में धारे हैं।
प्रभु ने पुकार कर सबसे कहा, देखो गिरिराज पधारे हैं॥
इनको अपने कर से भोजन, करवाओ पृथक पृथक जाकर।
हो अभय जाय चरणों में गिरो, इच्छा वर पाओ सब आकर॥
बोलो क्या ऐसे इन्द्र कभी, तुम को दर्शन देने आये।
लो सफल नयन करलो अपने, लख गिरिवर दर्शन सुखदाये॥

हर्षित हो सबने किया, गोवर्धन हि प्रणाम।
जय बोली फिर ले चले, भोजन वस्तु ललाम॥

बारी बारी से जाकर सब, उनको भोजन करवाते थे।
जो थाल सामने आता था, गोवर्धन चट कर जाते थे॥
व्रजपति ने व्रज वासियों सहित, हो प्रेम मग्न भोजन दीन्हा।
सिर झुका नमन कीन्हा सबने, इच्छानुसार शुभ वर लीन्हा॥

इतने में श्री राधाजी भी, गिरि के समीप भोजन लाईं ।
लख तहँ हियवासी को बैठा, अचरज में हो पुनि मुस्काईं ॥
कोमल कर से सुन्दर भोजन, जोवन धन को करवाने लगी ।
मोहन की अद्भुत लीला लख, हृदय में आनन्द पाने लगी ॥
यों भोजन करवा चुके, जब ब्रजवासि तमाम ।
तब बोले मुस्काय कर, गोवर्धन सुखधाम ॥

हे गोपालो ! ब्रजवालो तुम, सब मम प्रताप से सुखी रहो
दिन ब दिन बढ़े गोधन तुम्हरा, सपने तक में नहिं दुखी रहो ॥
मुझको अति तृप्त किया तुमने, रक्षा में तत्पर रहूं सदा ।
मम कृपा के तुम अधिकारी हो, य सत्य वचन मैं कहूं सदा ॥
बस अब मैं विदा चाहता हूँ, कभि कष्ट होय मम ढिंग आना ।
गो विप्र चरन में रत रहना, निष्काम कर्म चित में लाना ॥
यों कह गायब हो गये प्रभू, ब्रजवासी आनन्द मग्न हुये ।
लखकर प्रभाव गोवर्धन का, गोद्विज सेवा संलग्न हुये ॥
तब श्रीकृष्ण ने फ़रमाया, आबाल वृद्ध बैठें यहां पर ।
पावें प्रभुकी सब परशादी, कुछ उत्सव हो पुनि इस जांपर ॥
सुन पंक्ति बना सब बैठ गये, पत्तल बिछगई सुखकारी ।
भोजन के सारे पात्र भरे, लीला बनवारी ने धारी ॥
श्रद्धालू ब्रजवासी सुख से, जीमे अति अघा अघा करके ।
हरि भी भोजन कर रहे तहां, इन सबको हंसा हंसा करके ॥
भोजन समाप्त हो जाने पर, सबने यमुना जल पान किया
पुनि लगा लिये बिस्तर तहंपर, तरु छाया में आराम किया ॥
क्या मुशकिल है विश्वेश्वर को, जो ऐसा कारज करडाला ।
हे पाठक श्रद्धालू भक्तों, बोलो सप्रेम जय नंदलाला ॥
करके विश्राम दुपहरी में, गोपाल सभी चैतन्य हुये ।
सोचा गोवर्धन दर्शन कर जीवन हम सब के धन्य हुये ॥

फिर लगे खेलने ग्वाल बाल, आगये अखाड़े में फौरन।
नंदराय आदि सब बड़े गोप, डटगये देखने कुश्ती फन॥
लंगर व लंगोट बांध करके, कुश्ती के दांव दिखाने लगे।
लख मलविद्या पारांगत सुत, श्री व्रजाधीश हरपाने लगे॥
कई और खेल भी हुये वहां पुनि भोजन का अवसर आया
खा पी, गिरिवर यश गाने लगे, तहं रात बिताना ठहराया॥

रात्री भर आराम कर, प्रात काल सब लोग।
वृन्दावन में आगये, कर गिरियज्ञ प्रयोग॥

व्रजवालों कि गिरिवर पूजा गिरिराज का अनुपम दर्शन कर।
नभ में बैठे नारद मुनि को, अति हर्ष हुआ उर के अंदर
लख सुरराई का मानभंग, सोचा अच्छा ही हुआ ये भी।
प्रभु कृष्णचंद ने शिक्षा दी, है इसके गर्व हृदय में भी॥
निजको स्वतंत्र ईश्वर गिनकर, परवा न किसी की करता है
दिन रात ऐश आरामों में, रहता अघ से नहिं डरता है॥
चलकर देखूं अमरावति में, उसने प्रबंध क्या ठाना है।
कर रहा हो कुछ तो ठीक वरन, हरि के विरुद्ध उकसाना है॥

कारन गर्व समस्त ही, होना चहिये दूर।
थोड़ा भी यदि रहगया, दुख देवे भरपूर॥
असगुनि देव सभा तुरत, आ पहुँचे ऋषिराइ।
इन्तजाम कुछ भी नहीं, इनको दिया दिखाइ॥

अस्तू आसन पा शचिपति से, बोले हे नृप कित होश गया।
कल सब व्रज तुम्हरी ऐवज में, गोवर्धन पूजा करत भया॥
जिन जिन चीज़ों से तव पूजन, व्रज प्रती वर्ष करता आया।
उनही चीज़ों से हे सुरपति, नंद सुत ने गिरवर पुजवाया॥
क्या इस ही बल पौरुष पर तव, कायम सत्ता रह पायेगी।
मालुम पड़ता बिन मन्वन्तर, तुम्हरी पदवी छिन जायेगी॥

ऋषिवाक्य नहीं थे वाण थे वे, जो लगे कलेजे में जाकर ।
कर रक्त नयन बोले सुरेश, आसन से उठकर अकुलाकर ॥
ओ हो मुनि यहां तक बात हुई, व्रज को गोधन अभिमान हुआ ।
अपमान किया मेरा खुलकर, मम सत्ता का नहिं ध्यान हुआ ॥
चंचल बच्चे ने बहकाया, वुद्धों ने हां में हां भरदी ।
भूले मेरे उपकारों को, पूजा गोवर्धन की करदी ॥
चींटी के जब पर निकल आंय, समझो उसकी मृत्यू आई ।
त्योंही उन तुच्छ व्रजवालों पै, बस जानो अब परलय छाई ॥
मैं अभी बुलाकर मेघों को, व्रज पर वर्षा करवाता हूँ ।
उनका घमंड चूरन करके, सबको यमसदन पठाता हूं ॥
अपमान इन्द्र के करने का, फलशीघ्र सकल खल पावेंगे ।
मैं देखूंगा किस तरह इन्हें, श्रीकृष्ण बचाने आवेंगे ॥

खूब किया ऋषि जो मुझे, दिया संदेशा लाय ।
वृन्दावन का खोज मैं, दूंगा अभी मिटाय ॥

मेरी सत्ता द्वारा ही सब, प्राणी जीवन को धार रहे ।
मैं कोप करूं जिन जीवों पर, उनका न कोई आधार रहे ॥
व्याधी के बढ़ने से पहिले, औषध करलेना उत्तम है ।
मिल जाय सबक़ सब दुनियां को, पद इन्द्र जगत में महत्तम है ॥
बिन भय दिखलाये प्रीति न हो, बल बिना भूप पदवी है वृथा ।
इन सब बातों को ध्यान में रख, दूंगा उनको अब दंड यथा ॥

जो सोचा था कर उसे, चले गये ऋषिराय ।
इधर इन्द्र ने क्रोध कर, लीन्हे मेघ बुलाय ॥

बोला इस वर्ष मेरी पूजा, व्रजवालों ने ठुकराई है ।
अस्तू दूं उनको उचित दंड, ये मेरे दिल में आई है ॥
इसलिए शीघ्र मेघो जाकर, हमला बोलो व्रजमंडल पर ।
बरसाओ प्रलय सरिस पानी, करदो सब गर्व नष्ट सत्वर ॥

जड़ चेतन प्राणी व्रजवाला, कोई न बचे मृत्यू पावें।
गोधन मणि माणिक वृद्ध युवक, सारे मिट्टी में मिल जावें॥
पितु मात से बालक होय जुदा, रो रो कर प्राण तजें सारे।
बहजायँ सकल जलधारा में, मरजायँ सभी बिन ही मारे॥
सब जग को मालुम होवे ये, बदला सुरेश अपमान का है।
सब सोचें करो इन्द्र पूजा, शचिपति मालिक जहान का है॥
एक तुच्छ छोकरे के कहने, में आ उन था गिरवर पूजा।
इसीलिये सभी होगये नष्ट, हे देव न इन्द्र बिना दूजा॥
व्रज नाश की शीघ्र खबर लाओ, तब ही मैं सुख को पाऊंगा।
जाओ मेरे वीरो धाओ, भरपूर इनाम दिलाऊंगा॥

चले मेघ तत्काल सब, सुरपति आज्ञा पाय।
सारा साज सजाय कर, घेरा व्रज को आय॥

सारी जल सेना ने मिल कर, छावनी तुरत नभ में डाली।
छाई घनघोर घटा पल में, काली काली अति भयवाली॥
लग गई प्रचंड पवन चलने अंधियारा चारों ओर हुआ।
छप्पर उड़ गये वृक्ष टूटे, वृन्दावन में अति शोर हुआ॥
फिर होने लगी प्रचंड वृष्टि, जल मूसलधार बरसने लगा।
दामिन पल पल में चमकने लगी, रव से आकाश लरजने लगा॥
वायू से प्रेरित मेघ फेर, ओलों को गिराने लगे तहां।
वो शिलायें नभ से आने लगी, सब गोप अकुलाने लगे वहां॥
थोड़ी ही देर में भूमि सभी, परिपूर्ण होगई पानी से।
बिन वर्षाऋतु वर्षा लखकर, सब कहन लगे हैरानी से॥
क्रोधित होगया इन्द्र व्रज पर, अब हम नहिं बचने पावेंगे।
आबाल वृद्ध गोधन उसकी, कोपानल से नस जावेंगे॥
कर ये विचार नर नारि सभी, गोदी में बाल छिपाये हुये।
ओलों से ज्यों त्यों बचते हुये, अति शीत से तन कंपाये हुये॥

पीड़ित हो दौड़े घबड़ा कर, झट नन्दराय के ढिंग आये ।
बोले दादा क्या यत्न करें, हम पर अब खोटे दिन आये ॥
क्षणिक वृष्टि ने कर दिया, सारा व्रज बरबाद ।
बिन सोचे जो कुछ किया, पाया उसका स्वाद ॥
अब कहां है बल गोवर्धन का, रक्षाहित क्यों न यहां आता ।
किस जगह छिपा फिर पुत्र तेरा, क्यों नहीं यत्न अब बतलाता ॥
उस समय तो बात बना करके, हमसे पर्वत को पुजवाया ।
जब काम पड़ा तब आगे को, कोई बढ़ता न नज़र आया ॥
टखने से चढ़ता हुआ नीर, कटि के समीप आ पहुँचा है ।
दुर्दशा यहां जिसकी न हुई, ऐसा न बचा कोई बचा है ॥
जितने भी हैं पक्के मकान, लगभग सबकी पट्टियां गिरी ।
कच्ची झोंपड़ियों को देखो, पानी पै तैरती फिरें निरी ॥
फिर लखो उस तरफ़ बछड़ों को, वह जल में बहते जाते हैं ।
अपनी माताओं गायों को, रक्षा के लिये बुलाते हैं ॥
पर गज पछाड़ पानी विलोक, हिम्मत न किसी की होती है ।
खूंटे पर खड़ी खड़ी गउएं, अपने वत्सों हित रोती हैं ॥
यदि शीघ्र न कोई यत्न हुआ, सब वृन्दावन नस जायेगा ।
गोधन समेत सब वैभव का, नामो निशान नहिं पायेगा ॥
ऐसा भीषण हाल लख, घबराये नरनाह ।
सोचा, पर न मिली कोई, व्रज रक्षा की राह ॥
आखिर बोले नन्दजी, चलो कृष्ण के तीर ।
उससे ही जाकर कहें, करे कोई तदबीर ॥
ये सुन कर गोप गोपियां सब, मय नन्द के हरि सन्मुख आये ।
बोले हे प्रभु अब तक तुमने, की रक्षा अब क्यों चुप लाये ॥
कित गई तुम्हारी वो जुर्रत, जिसने सब दैत्य पछाड़े थे ।
वो हिम्मत पस्त हो गई क्या, जिसने व्रज काज संवारे थे ॥

तुम ही ने आगे हो हम से, गिरि गोवर्धन पुजवाया है।
अपमान इन्द्र का करा दिया, इसलिये ये दुर्दिन आया है॥
बतलाओ अब किसके ढिंग जा, अपनी दुख कथा सुनावें हम।
जो हुआ नाश अति वर्षा से, किससे मांगे कहां पावें हम॥
टुक नेत्र घुमा देखो तो सही, जल मग्न हो रही भू सारी।
बिन स्वांस लिये वो वज्रपाणि, कर रहा घोर वृष्टी भारी॥
होगये नष्ट धन अन्न वस्त्र, मर गये कई बछड़े स्वामी।
ओलों गोलों ने गज़ब किया, अब तो सुधि लो अंतरयामी॥

देख इन्द्र की दुष्टता, ब्रज का बुरा हवाल।
करुण कथा सुन सोचने, लगे तुरत नंदलाल॥

होगया इन्द्र को गर्व बहुत, निज को वो ईश समझ बैठा।
सच है मर्यादाहीन हुआ, अभिमान हृदय जिसके पैठा॥
विरले ही मद को जीत सकें, गौरववाली पदवी पाकर।
वरना सब के सब भ्रमित होय, करते कुकर्म तन मन लाकर॥
सुरपुर वाले मम भक्त और, अति सतोगुणी होते आये।
उनके उर यदि अभिमान बढ़ा, करदूं विनष्ट बिन क्षण लाये॥
मम द्वारा मान भंग होना, दुर्जनों को होता हितकारी।
कारन वे फिर चुप हो जाते, मिट जाता उनका भ्रम भारी॥
गोपी गुवाल गोपाल बाल, गउ आदिक ब्रजमंडल सारा।
मेरे आश्रय से जीवित है, गिनता है मुझको रखवारा॥
आया है इसी से शरण मेरी, पल में सब कष्ट मिटाऊंगा।
मघवा के मद को चूरन कर, सब अक्ल ठिकाने लाऊंगा॥
केवल भक्तों के कारन ही, अव्यक्त से व्यक्त हुआ आकर।
है नाम भक्तवत्सल मेरा, भक्तों की रक्षा करूं धाकर॥
इस तरह विचार कर रहे थे, अपने मन में श्रीबनवारी।
लख प्रभु को चुप होकर अधीर, फिर कहन लगे सब नरनारी॥

हे जनरंजन जगविभो, जगनायक भगवान ।
करुणानिधि करुणायतन, कृपा करो गुणखान ॥
हे गोप—ईश गोकुलाधीश, हे गउपालक गोलोक पते ।
हे दानव दर्प दलन दाता, देवादिदेव हे दीन रते ॥
हे जीवनधन हे जगन्नाथ, शरणागत रक्षक नारायन ।
कर दया दयानिधि दीनों का, करिये जल्दी ही दुःख दमन ॥
हे नाथ भय अभय सुख दुख में, शुभअशुभ में तुमही त्राता हो ।
अंतिम गति हो व्रजवासिन की, हमरे तुम भाग्य विधाता हो ॥
गर देर हुई कुछ रक्षा में, तुम्हरा प्रिय व्रज नस जावेगा ।
और गर्व सहसलोचन का प्रभु, फिर और तरक्की पावेगा ॥
इतने में दौड़ी हुई तहां, वृषभानु सुता सन्मुख आई ।
दृग से दृग मिला इशारे से, बोली क्या होगा व्रजराई ॥
उस समय तो दूसर रूपधार, सारा पकवान चबा डाला ।
अब गाल पै कर रख सोच रहे, करके चहरा भोला भाला ॥
जन रक्षक का बाना धर कर, रक्षा में देर लगाते हो ।
बस बहुत हुआ अब कृपा करो, प्रियजनों को क्यों कलपाते हो ॥

*** गाना ***

हे दयामय देर क्यों दरकार है ।
व्रज में वर्षा होत मूसलधार है ॥
देर से बट्टा लगेगा शान में ।
कटि कसो रक्षा करो अंधियार है ॥
है शरण में आपकी सारे ही जन ।
इनकी रक्षा ही तुम्हारा कार है ॥
शक्ति अपनी को प्रभो अजमाइये ।
तुम्हरी कृपा से हि बेड़ा पार है ॥

राधा की गुफ़्तार सुन, मुस्काये गोपाल ।
बोले गोपों हो अभय, करूं रक्ष तत्काल ॥

लो चलो शीघ्र गोवर्धन तट, तुम्हरा सब दुःख मिटाता हूँ ।
उस गर्वी तुच्छ पुरंधर का, पलभर मे शान घटाता हूं ॥
आज्ञा की केवल देरी थी, सारा व्रज गिरिवर ढिंग आया ।
उस समय कृपासागर प्रभु ने, सबको एक अचरज दिखलाया ॥
बायें कर से गिरि उठा लिया, बोले सब इसके तले आओ ।
जब तक वर्षा बरसे व्रज मे, गोधन समेत यहां सुख पाओ ॥
देखूंगा ताक़त मघवा की, किम तुमको दुख पहुँचाता है ।
मत डरो यहां आकर बैठो, मम ढिग संकट नहिं आता है ॥

यों कह लघु उंगली धरा, सब गिरिराज पहाड़ ।
बाल वृद्ध गोवत्स सब, बैठे लेकर आड़ ॥

अरबों खरबों मन बोझा था, पर फूल हुआ योगेश्वर को ।
लख अद्भुत बल अपने सुत का, अचरज आते हुआ व्रजेश्वरको ॥
जैसे लघु बालक छतरी से, मेह मे निज वदन बचाता है ।
वैसा ही दृश्य यहां पर भी, आताओं दृष्टी आता है ॥
थी बाये कर पर गोवर्धन, सीधे कर से मुरली मुखधर ।
मुरलीधर ने ध्वनि शुरू करी, होगये मगन सब चर व अचर ॥
मिट गई भूख अरु त्रषा नींद, मानों समाधि मे लीन हुये ।
इक टक तक रहे प्रभू पद को, सब चिन्ता भय से हीन हुये ॥
हो रही थी मूसलधार वृष्टि, विद्युत पल पल में चमकती थी ।
सुन घन गर्जन का घोर शब्द, कइयो की छाति धड़कती थी ॥
बढ़ रहा था क्षण क्षण मे पानी, लेकिन जबगिरितल आनलगा ।
घबराये सारे व्रजवाले, तब प्रभु ने दी एक शक्ति जगा ॥
बनगई सुदर्शन चक्र तुरत, पर्वत पर चहुँदिशि फिरती थी ।
उसके प्रभाव से बूंदें सब, जल जाती जो महि गिरती थी ॥

था तेज सुदर्शन का भारी, रविसम प्रकाश फैलाता था ।
आता था दिन ही दिन दृष्टी, नहिं दुख कोई भी पाता था ॥
श्रीकृष्ण सखाओं ने समझा, कहिं प्यारे कान्ह न थक जावें ।
गिर पड़े न कहिं पर्वत हम पर, सब के सब नीचे दब जावें ॥
अस्तू अपना भी कर्तव है, हम भी कुछ मदद करें आकर ।
ये सोच हाथ में डंडे ले, गिरि के पैंदे टेके जाकर ॥
दाहिनि दिशि गोप अरु गोपवाल, थे खड़े प्रभू गुण गाते थे ।
बांई दिशि झुंड गोपियों के, राधा संग दृष्टी आते थे ।
अरु मध्य में गिरवर लिये हुये, थे शोभित गोवर्धनधारी ।
उस समय की छबि मनमोहन की, वर्णन करना है कठिन भारी ॥
फिर कृष्ण के नयन राधिका के, नयनों से थे बस मिले हुये ।
और आल्हादिन के दृग दोनों, थे प्रभु नयनों में घुले हुये ॥
इक नयन युगल शक्ती यांचे, दूजे भक्ती को याच रहे ।
उन दोनों नयनों वालों के, अतिरिक्त न कोई जांच रहे ॥

इस प्रकार प्रभु ने हरा, व्रज का दुःख तमाम ।
धन्य जीव जो नित भजें, असकरुणानिधिश्याम ॥
सात दिवस दिन रैन लों, वर्षा हुई अखंड ।
पर व्रज को एक बूंद भी, दे न सकी कुछ दंड ॥

जगरक्षक जिसका रक्षक हो, उसकी क्या हानि करे कोई ।
दुख पाप क्लेश दृष्टी न आय, जहं कृष्ण नाम की खुशबोई ॥
मेघों ने सारा ज़ोर लगा, महाप्रलय का जलतकबरसाया ।
पर कर न सके कुछ भी विगाड़, वो चमत्कार प्रभु दिखलाया ॥
आखिर हो भग्न हृदय सब ने, आ इन्द्र से सारा हाल कहा ।
सुनते हि सुरेश सिंहासन पर, गिरगया तुरत नहिं होश रहा ॥
सारा मद सारा गर्व गला, बुद्धी आगई ठिकाने पर ।
हिय में अति व्याकुलता छाई, अवलोका इक अचरज सत्वर ॥

क्या लखा अचेत अवस्था में, होगया कृष्णमय जग सारा।
क्या जड़ क्या चेतन जो भी था, सब ही ने प्रभु का वपु धारा॥
फिर मुरली होठों पर रखकर, इक स्वर से सभी बजाते हैं।
जगमोहन मंजुल राग महा, चहुँदिशि में वे फैलाते हैं॥
कुछ देर में ये सब लुप्त हुआ, फिर रूप विराट लखा भारी।
अगणित देखे शिव अज विश्नू, कई देखे सुरपति पदधारी।
कर रहे प्रार्थना कृष्ण की सब, चरणों में शीश झुकाये हुये।
भक्ती वरदान मांगते हैं, हृदय में अति पुलकाये हुये॥

उठा इन्द्र अकुला मगर, गुप्त थे सब आसार।
प्रभु का आविर्भाव लख, करने लगा विचार॥

हा ये कैसा अन्याय हुआ, मुझको पद मद ने भरमाया।
जो सब ब्रह्मांडों की जड़ से, करने मुकाबिला मैं धाया॥
यह तो है उनकी महा कृपा, जो मुझे निधन नहिं करडाला।
यदि चाहते तो कर सकते थे, था उन्हें कौन रोकनवाला॥
जो सदा सहायक सुरों के हैं, दुष्टों का गर्व मिटाते हैं।
और इसीलिये धर व्यक्तरूप, जगभूप जगत में आते हैं॥
उनही जगदीश्वर के सन्मुख, मैंने ईश्वरपन दिखलाया।
पद सेवा करने के बदले, अभिमानी हो लड़ने धाया॥

इत सुरपति यों था विकल, उत वृंदावन मांय।
घटा खुली सूरज उगा, हरि बोले हरषाय॥

होगई बंद वर्षा बिल्कुल, नभ में रवि ने निज पग धारा।
सारी महि दृष्टी आने लगी, यमुना जल उतर गया सारा॥
गोवर्धन का उपकार मान, अबतुमसबबाहिरनिकलजावो।
लेकर अपना सामान सकल, निज निज घर की जानिब धावो॥
आज्ञा पाकर गिरधारी की, सारे व्रजवासी हरषाये।
ले सब चीज़ें उत्कंठित हो, घर को जानिब दौड़े आये॥

विश्वास था इनको साराघर, क्षत विक्षत दृष्टी आवेगा ।
हमरे जीवन के सिवा और, सब नष्ट भ्रष्ट हो जावेगा ॥
लेकिन हानी कुछ भी न हुई, अक्षत घरबार लखे सारे ।
लख इसे कृष्ण किरपा खुश हो, सोगये तुरंत थके हारे ॥
गोवर्धन को पूर्ववत, थापन कर भगवान ।
लगे करन विश्राम पुनि, घर पर आय निदान ॥
होते हि प्रभात दूसरे दिन, सब वृद्ध गोप अचरज में आ ।
एकत्रित होकर व्रजपति से, यों कहन लगे चौपाल में जा ॥
हे नंदराय ! इस कान्हा के, होते हैं कर्म अद्भुत भारी ।
सुन जिसे रात दिन पाते हैं, अति विस्मय व्रजके नरनारी ॥
होता है हमें संशय इससे, हम दीन गरीब गुपालों का ।
घर जन्म स्थान किमि बन सकता, अस अद्भुत कर्मी लालों का ॥
तुम्हीं देखो ले उठा फूल, बिन श्रम ऊपर हाथी जैसे ।
इस सात बरस के बच्चे ने, गोवर्धन उठा लिया तैसे ॥
फिर लिये सात दिन खड़ा रहा, कुछ भूख लगी न नींद आई ।
निशदिन की मुरली ध्वनि इसने, इससे क्या समझें व्रजराई ॥
ज्यों काल जीव की आयु हरे, त्योंही इसने बच्चेपन में ।
अतिशक्ति शालिनी पूतना के, हर लिये प्राण एक हि छन में ॥
इसके कुछ ही दिन बाद फेर, निज लात से छकड़े को तोड़ा ।
लेगया था नभ में त्रणावर्त, उसको गिराय कर सिर फोड़ा ॥
जब माखन चोरी करी तब मां ने रिसियाय ।
कर कस बांधा था इसे, पुनि ऊखल से जाय ॥
उस समय भी ये चुपका न रहा, यमलार्जुन वृक्ष उखाड़े थे ।
गउवत्स चराते हुये फेर, वन में कई असुर पछाड़े थे ॥
फिर और याद करलो दिल में, कालीदह निर्भय बना दिया ।
दावानल से हम लोगों को, एक पलक मूंदते बचा लिया ॥

किस तरह किया इसने ये सब, नहिं समझ में हमरी आया है।
इसलिये हमें शक है ये कृष्ण, हरगिज़ न तुम्हारा जाया है॥
ये सुनकर नंदराय ने, जन्मपत्र ला दीन।
रचा था जिसको गर्ग ने, फिर सब वर्णन कीन॥
आखिर बोले गोपो जब से, मुनि गर्ग के मत को जाना है।
तब से मैंने अपने सुत को, परिपूरनतम पहिचाना है॥
ये सुन सबने प्रसन्न होकर, संदेह हृदय का विसराया।
भक्ती उत्पन्न हुई दिल में, गिन कृष्णचन्द्र को जगराया॥
हुये इधर संदेह गत, व्रज के सब गोपाल।
उत सुरेश से सुतगुरू, बोले सुन सुरपाल॥
अपराध तो है तुम्हरा भारी, लेकिन प्रभु दीनदयालू हैं।
यदि अब भी शरण गहो जाकर, करदेंगे माफ कृपालू हैं॥
कैसा भी अनुचित करे कोई, पर अंत में यदि सच्चे दिल से।
श्रीकृष्ण की शरण चला जावे, हो जाय पार सब मुशकिल से॥
निशचर उर धरकर शत्रुभाव, नित प्रभु को बधने आते हैं।
तो भी करुणासागर उनको, बधकर निजलोक पठाते हैं॥
है ये ही टेव जनार्दन की, रिपुभाव से भी जो ढिंग आवे।
उसको भी दें शुभगति फिर किम, सत भावोंवाला रहजावे॥
इसलिये दीन सम भेष बना, सुरधेनु को अपने आगेकर।
मुख में त्रण दाब सत्य मन से, जा पड़ो प्रभू के चरणों पर॥
दीनबन्धु करुणायतन, जनवत्सल भगवान।
अभयदान देंगे तुरत, जाव धार ये ज्ञान॥
ये सुन ले कामधेनु संग में, चढ़ ऐरावत अति भय धारे।
पहुँचे बन में सुर ईश तुरत, थे जहां उपस्थित असुरारे॥
था अरुणोदय का समय और, चलरही थी त्रिबिधबयारतहां।
कलकल रव श्रीकालिंदी का, दे रहा था अति आनन्द वहां॥

यहां देखा एक कदंब तले, आसनासीन हैं जगस्वामी ।
खलमदगंजन जनमनरंजन, भवभयभंजन अंतरयामी ॥
सिरमोर मुकट बालों की लट, लटकी लहराती गालों पर ।
बांकी चितवन कुंडल श्रवनन, शशिसम आनन सुन्दर मनहर ॥
लोचन विशाल अरु तिलक भाल, गल में बन माल गुपाल धरे ।
कटि पीताम्बर मुरली लेकर, ध्वनि करत अधर धरचित्तहरे ॥
जिनकी एक इच्छा मात्र से ही, ब्रह्मांड प्रगट हों नस जावें ।
रहते फिर जो अव्यक्त सदां, नहिं ध्यान में मुनियों के आवें ॥
पुनि जिनका चिन्तन कर बुद्धी, अपनी सब बुद्धि गमाती है ।
मिलती न तर्क को जगह जहां, जहं दलील रद हो जाती है ॥
जिस परिपूरन परमात्मा का, वेदों ने पार नहीं पाया ।
वोही प्रभु भक्ति विवश सगुण, वपु में सुरपति हि नज़र आया ॥

मुरली ध्वनि में निरत थे, श्याम गोकुलाधीश ।
गिरा चरन मुख दाब त्रन, लज्जित हो सुरईश ॥

पुनि उठा और कर नम्र कंध, कर जोड़ बचन यों उचारे ।
नख से चोटी तक अपराधी, हूँ नाथ तेरा ब्रज के प्यारे ॥
मारो वध करो नष्ट करदो, करदो पदच्युत हे गिरधारी ।
है सब कुछ प्रभु मंजूर मुझे, कीन्हा कसूर मैंने भारी ॥
भगवान आप हैं ज्ञान रूप, सर्वज्ञ सत्वमय शुद्धात्मा ।
पुनि रहित रजोगुण तमगुण से, अव्यक्त अजन्मा परमात्मा ॥
फिर भी अवसर अवसरपर तुम, सतधर्म की रक्षा करने को ।
धर व्यक्त रूप अवतरते हो, दुष्टों का सब मद हरने को ॥
था मैं मदमत ऐश्वर्यों में, निज को ही ईश जानता था ।
होगई भ्रष्ट बुद्धी मेरी, नहिं तव प्रभाव पहिचानता था ॥
भृकुटी विलास से क्षण भर में, सब जग उपजे वस नस जावे ।
अस महाशक्ति के ईश्वर से, कहो कौन विजय लड़कर पावे ॥

मेरे जैसे अभिमानी का, यग बंद होना हि मुनासिब था।
गर्वी का सिर नीचा करना, सचमुच प्रभु तुमको वाजिब था॥
षटमुखी, चौमुखी, सहसमुखी, तुम्हरी लीला नित गाते हैं।
पर तुम्हरे गुण का गुणसागर, वे कभी पार नहिं पाते हैं॥

तुमसे बढ़ ब्रह्मांड में, हे काल हु के काल।
कोई नहिं अस्तू तुम्हीं, हो तुम सम गोपाल॥

उत्पति, स्थित, लय के कारन, तुम ही हो बस हे जगस्वामी।
जिसको चाहो यश दो छिन में, छीनो छिन में अंतरयामी॥
कर्मों के फल भुगताने में, तुम तनिक दया नहिं धरते हो।
पर जो सब तज शरणे आवे, उनको तुम निर्भय करते हो॥
हो जाते उनके पाप नष्ट, जीवन सुखमय बन जाता है।
करते हो क्षेमवहन उसका, जो भक्त अनन्य कहाता है॥
हे कृष्ण कृपाल जनार्दन प्रभु, हे मनमोहन गिरवरधारी।
हे शांत पद्म लोचन माधव, हे विपिन विहारी दुखहारी॥
हे दीनबंधु अघमोचन हरि, हे शरणागत वत्सल नटवर।
राधिका ईश गोपीवल्लभ, हे व्रजजीवन हे नंद कुंवर॥
हे भक्त सुखद नरनारायन, हे वरदायक हे श्रेष्ठ वरं।
हे संत विप्र गउ हितकारी, हे दानव कुल के नष्ट करं॥
करते हो दया अकारन ही, हो सबके आश्रय मदगंजन।
हे सम सर्वत्र समान सदा, करता हुं प्रेम से पद वंदन॥
मैं मूढ हूँ तम रज गुण युत हूं, आदेश भूल मदमत्त हुआ।
जो मिला धेनुपुर में मुझको, केवल पद मद आसक्त हुआ॥
लवलीन स्वर्ग सुखों में रह, तुम्हरा सब ध्यान भुला डाला।
अच्छा हि किया उपदेश दिया, खुलगये नेत्र मम नंदलला॥

*** गाना ***

लाज से नाथ मै खुद ही मरा जाता हूँ ।
क्षमा कर दीजये चरणों की शरण आता हूँ ॥
गर्व गंजन हो प्रभु खूब सबक दीन्हा है ।
अपनी करनी पे हे घनश्याम खुद लजाता हूँ ॥
सर्व शक्तीपति तुम से कहा जाऊं बचकर ।
अस्तू चरणों मे हे जगदीश सिर झुकाता हूँ ॥
मारदो, छोड़ दो, गिरधर चहे पदच्युत करदो ।
मैं तो तन मन से तुम्हें अपना पति बनाता हूँ ॥

त्राहि त्राहि गोलोकपति, त्राहि त्राहि करतार ।
कर अपराध क्षमा सकल, लीजिये मोहि उबार ॥
यों कह पुनि सुरराज ने, परसे प्रभु पद्कंज ।
मंद मंद मुस्काय कर, बोले भव-भय-भंज ॥

हे इन्द्र सुनो आदेश मेरा, जो कहूँ सो चित में धारो तुम ।
आयंदा असुरों सरिस काये, को कभी न यहां प्रचारो तुम ॥
सुर वही जो होवे सतोगुणी, समदर्शी सबको सुखदाता ।
जो जग को दुखी करे मघवा, वो असुरों की पदवी पाता ॥
अवतार का है बस रहस्य यही, दुष्टों का मद खंडन करना ।
पाखंड दूर कर पुनि यहां पर, सद्धर्म कर्म मंडन करना ॥
मम भक्त सदा मम आश्रित रह, मेरी भक्ती चितलाते हैं ।
उनको जो व्यर्थं सताते हैं, वे मुझ द्वारा वध पाते हैं ॥
सुर असुर में केवल भेद यही, जग सुखी करे दुख पहुँचावे ।
होते हैं किसी के सींग नहीं, सब कर्मों से जाना जावे ॥

दीनों का दीनबंधु हूँ मैं, निरआश्रय का आश्रयदाता।
भक्तों का जानो प्राण मुझे, दुष्टों को काल बन ग्रस जाता॥
व्रजवासी गोप गऊ गोपी, मुझको निज प्राण मानते हैं।
मुझ बिना न पल भर रह सकते, सर्वत्र मुझी को जानते हैं॥
इन जैसा अनुपम भक्ति भाव, हे इन्द्र न कहीं नज़र आवे।
व्रजरज मस्तक पर धारन कर, मुक्ती भि मुक्ति पद पा जावे॥
इसलिये किया है प्रण मैंने, प्रिय व्रज तज कहीं न जाऊंगा।
जो टेरेंगे विश्वास सहित, उनको यहिं दर्श दिखाऊंगा॥
तुमने मद तज आश्रय लीन्हा, इसलिये क्षमा कर देता हूं।
जो भूल समझ पछिताता है, निष्पाप उसे कर लेता हूँ॥
अस्तू अब जाओ घर अपने, फिर आगे कभी न मद करना।
जो काम सुपुर्द तुम्हारे है, उसही में निशदिन चित धरना॥

इतने में सुरधेनु भी, बोल उठी तत्कात।
जय गोलोकपती हरी, गोरक्षक गोपाल॥

विध्वंस वंस मम करने में, सुरपति ने कसर नहीं छोड़ी।
ऐसा मद नशा बढ़ा इसको, सब मर्यादा क्षण में तोड़ी॥
नख पर गोवर्धन धारन कर, यदि तुम न मदद करते स्वामी।
तो व्रज की सब गउएं तत्क्षण, नसजातीं हे अंतरयामी॥
दे दिया इन्द्र को माफी का, परवाना तुमने व्रजचंदन।
पर हम गरीबिनी गायों को, इसका विश्वास नहीं भगवन॥
शायद आगे फिर किसी समय, सुरराज भूल इन बातों को।
पद के मद से गर्वित होकर, पहुँचाने लगे अघातों को॥
इसलिये तुम्हें मम वंस का मैं, प्रभु इन्द्र बनाना चाहती हूँ।
प्रतिनिधि बन कर सब गायों की, कर जोड़ के विनय सुनाती हूँ॥
'गोविंद' नाम मंजूर करो, हे राधावल्लभ गोपाला।
गो करें तुम्हारा ध्यान सदा, गो के तुम धन रहु तिहुँ काला॥

यों कह थन से दूध ले, किया कृष्ण अभिषेक ।
हुये भक्त के बस प्रभू, राखी उसकी टेक ॥

फिर दीन भाव से कर प्रणाम, सिर नीचा किये गर्व खोकर ।
सुरधेनु साथ ले वज्रपाणि, पहुँचे घर सारा मल धोकर ॥
आनन्दकंद नंदनन्दन ने, गोविंद' नाम को धार लिया ।
जिसने गायों की सेवा की, उसको भवनिधि से पार किया ॥
गोधन है सच्चा धन जग में, जो इसे प्रेम से अपनाता ।
पाता है धर्म अरु अर्थ काम, मर अंत धेनुपुर को जाता ॥
इसलिये सदा रह सावधान, श्रोताओं ये कर्तव्य करो ।
गउ पालो, गोविंद नाम भजो, चित में नित पर उपकार धरो ॥
परिपूरनतम भगवान कृष्ण, सच्चे शिक्षक हैं जग मांही ।
उनके चरित्र भव भय हारी, भक्ती उपजावन सुखदाई ॥

मध्य रात्रि में एक दिन, भोर हुआ जियजान ।
अनुचर लेकर नन्दजी, पहुँचे यमुना न्हान ॥

शौचादिक से निवृत होकर, कालिंदी में झट घुस आये ।
इनको ले जलपति के सेवक, फौरन निज मालिक ढिंग आये ॥
फिर बोले मध्य निशा में ये, नर यमुना में न्हाने आया ।
मर्यादा तोड़ दई इसने, इसलिये तुरन्त पकड़वाया ॥
पूछा जब इनका नाम गांव, तब बोले यों श्रीव्रजराई ।
वृंदावन गांव हमारा है, कहते हैं नन्द मुझे भाई ॥
ये सुनते ही श्रीवरुणदेव, हरि जनक समझ कर घबराये ।
सोचा भृत्यों ने शुभ न किया, जो इन्हें पकड़ कर ले आये ॥
यदि क्रोध किया मनमोहन ने, पर नहीं वे कोप न धारेंगे ।
मर्यादा की रक्षा की है, ये गिन अनुचित न बिचारेंगे ॥

फिर सोचा इनको वापिस ही, पहुँचादूं अब इनके घर पर।
पर इन्हें यहां ठहराना ही, होगा मेरे हक़ में बेहतर॥
कारन इनको अंतरयामी, ढूंढ़ते हुये यहां आवेंगे।
घर बैठे उनके प्रिय दर्शन, कर नेत्र सफल हो जावेंगे॥
ये सोच किया स्वागत नंद का, उत्तम आसन पर बिठलाया।
और कहा भूल से मम सेवक, तुमको ले आये व्रजराया॥

प्रातकाल के होत ही, तुम्हें तुम्हारे धाम।
पहुँचा दूंगा तब तलक, करो यहां आराम॥

विस्मित होकर श्री व्रजाधीश, करने आराम लगे यहां पर।
उत यमुना तटवाले अनुचर, पहुँचे मनमोहन पर जाकर॥
बोले रोते कांपते हुये, हे कृष्ण अनर्थ हुआ भारी।
बह गये नदी में नंदराय, व्रज भूमी सून्य हुई सारी॥
थे वे उत्तम तिरने वाले, फिर पानी भी न अधिक था वहां।
अचरज है गोता लेते ही, गुम हुये दिखे नहिं हमें तहां॥

बचन श्रवन कर सोचने, लगे प्रभू गुणरास।
जान लिया पहुँचे पिता, वरुणदेव के पास॥

इन सबको आश्वासन देकर, पक्षेन्द्र का ध्यान किया प्रभु ने।
आगये शीघ्र तब हो सवार, जलपति घरमार्ग लिया प्रभु ने॥
जा पहुँचे थोड़ी देर में हरि, मिलते हो सुधि जलराई को।
आया फौरन आगे बढ़कर नंदनंदन की पहुनाई को॥
आते हि प्रणाम किया झुककर, कर दर्शन प्रभु का हरषाया।
पुनि प्रेम सहित पग पाटम्बर, बिछवा हरि को पुर में लाया॥
फिर रत्न जटित सिंहासन के, ऊपर मोहन को बिठलाकर।
शास्त्रानुसार पूजन कीन्ही, स्तुति कीन्ही अति सुख पाकर॥

बोला जय हो जय जगनायक, लज्जित हूं करनी परस्वामी ।
भूले से ये अपराध हुआ, करदो मुआफ अंतरयमी ॥
वरदो मन तव चरणों में रहे, अभिमान न मुझको छूपावे ।
जो कुछ मैं कर्म करूं भगवन, वो तुम्हरे अर्पण कहलावे ॥
हैं धन्य जगत में नंदराय, जगपितु के पिता कहाते हैं ।
इनके पद हैं छूने लायक, दर्शन कर अघ नस जाते हैं ॥
मेरे अनुचर निशि में जलपर, हे माधव पहरा देते हैं ।
मर्यादा भंग करे न कोई, इस हेतु वहीं पर रहते हैं ॥
है स्नान समय नहिं मध्य रात्रि, पर भूले से जो आ न्हावे ॥
उसको अनुचर लाते मम ढिंग, चेता कर वहीं छोड़ आवे ।
मैंने प्रभु दर्शन लालचवश, श्रीनंदराय को रोका है ।
ये सत्य आपसे कहता हूँ, इसमें न ज़रा भी धोखा है ॥
वैसे प्रभु अंतरयामी हैं, घट घट की जानन हारे हैं ।
यदि हो अपराध दंड दीजे, तव चरण शीशहम धारे हैं ॥

जय जगदात्माजगतपति, जयगुपाल घनश्याम ।
भक्ति करो बकसीसअरु, भवभय हरो तमाम ॥

❋ गाना ❋

गोलोक नाथ के दर्शन हित मैंने यह काण्ड रचाया है ।
जल में न्हाते नंद बाबा को कर कैद यहां बुलवाया है ॥
मेरे सब पाप व ताप मिटे संकट दुख अरु संताप हटे ।
हू बड़ा भाग्यशाली भगवन जो तुम्हें यहां पर पाया है ॥
करुणा निधान करुणा कर दो चरणों की भक्ती का वर दो ।
श्रद्धा विश्वास हृदय भर दो नित रहे आपका साया है ॥
त्रैलोकधनी राधाजीवन व्रजरक्षक आश्रित तन मन धन।
नित रहे लगा चरणों में मन बस यही चित्त ललचाया है ॥

मुस्काकर भगवान ने, कहा अभय हो जाव ।
भक्ति करो निष्काम तुम, निश्चय मम पदपाव ॥

होगया निहाल वरुण अतिशय, मणिमाणिक भेंट धरी लाकर ।
नंदराय सहित पूजन फिर से, कीन्ही जलपति ने हरषाकर ॥
सत्कार गरुड़ का भी करके, अतिनेह से इनको विदा किया ।
कुछ देर बाद प्रभु पिता सहित, पहुँचे झट वृंदावन में आ ॥
निज सुत का चमत्कार लखकर, विस्मित नंदराय हुये भारी ।
चौपाल में आकर कथा सकल, सारे गोपों से कह डारी ॥
सुनकर इनसे जल लोक हाल, चित में सब ग्वाल प्रसन्न हुये ।
बोले तुम्हरे सुत को पाकर, हम व्रजवासी सब धन्य हुये ॥
इस तरह हमेशा व्रज नायक, लीला कर सुख पहुँचाते हैं ।
जो जन मन से प्रभुगुण गावें, वे फेर जन्म नहिं पाते हैं ॥
अस्तू जो हरि यश गान किया, वो हरि के ही अर्पण करदो ।
अति प्रेम से श्रोताओं मिलजुल, श्रीकृष्णध्वनी जग में भरदो ॥

गोवर्धन लीला हुई, इस प्रकार "श्रीलाल" ।
'रास बिहारीकृष्ण' का, सुनो कान दे हाल ॥

* श्रीकृष्णार्पणमस्तु *



श्रीकृष्ण चरित्र अथवा श्रीमद्भागवत

नववां भाग

रासबिहारी कृष्ण

रचयिता—

श्रीलाल खत्री

प्रकाशक—महाभारत पुस्तकालय, अजमेर

मुद्रक—के. हमीरमल लूनिया, दि डायमण्ड जुबिली प्रेस, अजमेर.

प्रथम वार ३,०००	सम्वत् १९९१ विक्रमी सन् १९३५ ईस्वी	मूल्य ।) आने

कृष्णस्तु भगवान् स्वयम्

स्तुति

(१)

इतनी कृपा हो गिरधर जब तव शरण में आऊं ।
मेरे किये करम सब जड़ से हि भूल जाऊं ॥
जप योग ज्ञान तप का मुझको न ध्यान आवे ।
बस साँवली छटा को हृदय कमल में पाऊं ॥
पातक किये हज़ारों उनका न फल मिले कुछ ।
तुम्हरे समत्त आकर सब से निजात पाऊं ॥
मेरी तुम्हारी सृष्टी बस मन के महल में हो ।
बाकी ख़याल सारे तत्काल मैं भुलाऊं ॥
धन मान सुख की इच्छा त्यागे सदैव मुझको ।
तुमहीं रहो जबाँ पर तुमहीं से लौ लगाऊं ॥

मंगलाचरण

(२)

पीताम्बर धर पाप हर, गोकलेश गोपाल ।
ताप हरन जन सुख करन, जय जय दीन दयाल ॥
जय जलशायी जलदसम, सुभग सुहावन रूप ।
सृष्टि रचन, पालन, हरन, शिव अज विष्णु स्वरूप ॥
तुम गुरु गणपति शारदा, सहस बदन तुम शेष ।
विघन हरो मंगल करो, जग व्यापक अखिलेश ॥
बंदहुं वेदव्यास सुत, श्री शुकदेव सुजान ।
गायो कलिमल हरन जिन, "कृष्ण चरित" गुणखान ॥

❋ श्लोक ❋

वंशीविभूषितकरान्नवनीरदाभात्पीताम्बरादरुणबिंबफलाधरोष्ठात् ।
पूर्णेन्दुसुन्दरमुखादरविन्दनेत्रात्कृष्णात्परं किमपितत्वमहं न जाने ॥

❀ कथा प्रारम्भ ❀

तीन लोक चौदह भवन सात द्वीप नव खंड ।
व्याप रहा सम रूप से जो सर्वत्र अखंड ॥
जिसके सुमरन मात्र से मिटें सकल जंजाल ।
बंदहु तेहि प्रभु पद सदा, जो भक्तन प्रण पाल ॥
जब से मोहन ने उंगली पर धारा था गिरि गोवर्धन को ।
सुरपति का गर्व किया खंडन, अरु बचा लिया व्रज लोगन को ॥
तब ही से शंकित थे मन में, वृंदावन के सब नर नारी ।
चित में समझा था कर न सके, अस चमत्कार बालक भारी ॥
ये निश्चय कोई महा पुरुष, ले जन्म विरज में आये हैं ।
हैं धन्य भाग हम लोगों के, जो इनके दर्शन पाये हैं ॥
आख़िर लख जन्म पत्र प्रभु का, सुन गर्ग बचन नंद के मुख से ।
हिय में पक्का विश्वास हुआ, सब करन लगे भक्ती सुख से ॥
गायों को दुहते वक्त ग्वाल, गाते लीलाएँ नटवर की ।
बन में भी गऊ चराते हुये, रखते थे सुधि विश्वम्भर की ॥
ग्वालिनें भी गोबर थापन में, और नित प्रति दही बिलोने में ।
धरती थीं ध्यान विहारी का, रत थीं उस श्याम सलौने में ॥
सब से ज़्यादा गोपाल बाल, कान्हा में प्रेम दिखाते थे ।
अपने प्राणों से भी बढ़कर, गिरवरधारी को चाहते थे ॥
बन में कदंब के नीचे ये, अपना शुभ वस्त्र बिछा देते ।
अति हित से निज जीवनधन को, उस पर सुख सहित बिठा देते ॥
फेर दाबते कृष्ण के, चरन सहित आनन्द ।
झूंठन खाते थे सदा, पाते परमानन्द ॥
गायें बछड़े भी प्रमुदित थे, अवलोकन कर प्रिय मूरत को ।
अनुगामी नितप्रति रहते थे, लखते थे हरदम सूरत को ॥

इस तरह कृष्ण मय वृंदावन, आता था नज़र हे नरराई ।
होती रहती थी अष्ट पहर, मोहन की चर्चा सुखदाई ॥
अब भी वृन्दावन में गुपाल, भक्तों को दर्श दिखाते हैं ।
जिन दृगन प्रेम रस सिंधु नहीं, वे कहां देख ये पाते हैं ॥
है सत्य प्रेम वस फक़त मुख्य, आनन्दकन्द के दर्शन में ।
बिन प्रेम न रीझें नटनागर कितना भी तर्क करो मन में ॥

सचराचर व्रज के सभी, थे सुख माहिं निमग्न ।
पर कुछ जीवों के तहां, रहते थे चित भग्न ॥

या यों कहिये उत्कंठित थे, वा प्रिय वियोग में व्याकुल थे ।
अथवा उन्माद भरा था कुछ या चंचल थे अति आकुल थे ॥
वे कौन जीव थे श्रोताओं, वे थी कुमारियां गोपन की ।
जिन किया था व्रत कात्यायनि का, पति रूप में चाह कर मोहन की ॥
दे दिया था वर गिरिनन्दनि ने, फिर कृष्ण ने भी की थी पुष्टी ।
आगामी शरद पूर्णिमा में, हम करेंगे तुम सबकी तुष्टी ॥
तब ही से बिता रहीं थी ये, एक एक दिवस कठिनाई से ।
आख़िर एक बर्ष बाद आई, ऋतु शरद मनोहरताई से ॥
होगया स्वच्छ आकाश सभी, धरती ने सुंदर वपु धारा ।
मल्लिका आदि के पुष्पों से, बस महक उठा जंगल सारा ॥
होते होते चिर अभिलाषित, वो शरद पूर्णिमा दिन आया ।
जिस रोज रास करने के लिये, था कृष्णचन्द्र ने फ़रमाया ॥

अस्तु सुबह से ही भरा, गोपिन हिय उल्लास ।
आज मिलेंगे सत्य ही, मनमोहन सुखरास ॥

प्रभु याद में दिवस पहाड़ हुआ, काटे से भी नहिं कटता था ।
हो रही व्यतीत घड़ी युग सम, घर में मन तनिक न लगता था ॥
थीं फिक्र में सब कब निशि आवे, और कब हम प्रियके ढिंग जावें ।
अवलोक मनोहर आनन को, सब दुःख बिरह का बिसरावें ॥

इत हालत थी गोपियों की ये, उत लगे सोचने नँदनन्दन ।
है आज पूर्णिमा गोपिन की, आशा करनी चहिये पूरन ॥
ये सोच रात्रि के आते ही, आनन्दकन्द जनदुखहारी ।
पहुँचे कालिन्दी के तट पर, कर में लेकर मुरली प्यारी ॥
थी आज बड़ी सुखमई निशा, पूर्णेन्दु पूर्व में शोभित था ।
जिसकी अमृत सम किरनों से, सारा उपवन आलोकित था ॥
चल रही थी त्रिविध समीर तहां, पुष्पों की खुशबू छाई थी ।
कल कल रव करती रवितनया, बह रही अमित सुखदाई थी ॥
मारुत द्वारा सुंदर गति से, लेता था हिलोरें जमुना जल ।
जिसके ऊपर शशि की किरणें, पड़ दिखलाती थीं दृष्य अतुल ॥
यानी वन उपवन जल थल सब, लख बिहार इच्छा नटवर की ।
ऐसे सुंदर मन हरन हुये, जनु प्रकृती ने निज छबि भरदी ॥

अस अद्भुत शोभा निरख, हो प्रसन्न घनश्याम ।
प्रिय मुरली अधरन धरी, कीन्ही ध्वनी ललाम ॥

वो विश्व विमोहन दिव्य ध्वनी, जब मुरली से बाहिर आई ।
चेतन्य जीव निस्तब्ध हुये, स्फूर्ति अचेतन में छाई ॥
खग मृग मदमत्त बने पल में, अरु मोर अलि शोर मचाने लगे ।
होगये फूल विकसित तुरन्त, तरुवर फल रस टपकाने लगे ॥
कालिंदी पर भी असर पड़ा, जल का बहना तक बन्द हुआ ।
लुट गई समाधी मुनियों की, नभ मांहि जयति सुखकन्द हुआ ॥
यों बनी प्रकृति अति शोभायुत, वायू में अनुपम लहर उठी ।
छा गई सकल वृन्दावन में, सुननेवालों की बुद्धि लुटी ॥
अस अध्यात्मिक आकर्षण का, संगीत प्रभू ने गाया था ।
जिसने थावर जंगम सब को, एक पल में मुग्ध बनाया था ॥

लगे श्रवन करने सभी, वंसी ध्वनि सह चाव ।
पर कुमारियों पै पड़ा, इसका पूर्ण प्रभाव ॥

मन को आनन्द देनेवाली, उस मुरली की मृदुध्वनिसुनकर।
सब गोप सुताओं का हृदय, होगया कृष्णमय तेहि अवसर॥
कर गया पलायन 'भय' चित से, 'कुलकान' साथ तज भाग चली।
"लज्जा" ने फौरन बिदा लई, मिलगई 'धर्म' को तिलांजली॥
परिजन पितु मातु भगनि भ्राता, इन सब से नाता बिसराकर।
पागलों सरिस झट उठ धाईं, दौड़ीं सरपट यमुना तट पर॥
दुह रही थी गो का दूध कोई, इतने में मृदु ध्वनि सुनपाई।
दुहना तज पात्र फेंक फौरन, आतुर हो यमुना तट धाई॥
कर रही थी कोई दूध गरम, तैयार थी भोजन को कोई।
खा लिया था आधा किसी ने अरु, करती थी दांतन को कोई॥
संलग्न थी कोई वस्त्रों में, आभूषण कोई पहरती थी।
थी रत कोई बाल संवारन में, कोई इत्र ढूंढती फिरती थी॥
पर ज्योंही बंसी की प्रिय ध्वनि, प्रविशी कानों द्वारा मन में।
त्यों ही उन्मत्त सरिस दौड़ीं, अति वेग से सबकी सब बन में॥
वस्त्रों तक पर कुछ नज़र न की, आभूषण भी उल्टे धारे।
विक्षिप्त सरिस होगई सकल, भागी जहं थे मुरलीवारे॥
यानी जो जिस हालत में थी, उस ही हालत में उठ धाई।
नहिं रहा बदन का ध्यान तलक, कुछ ऐसी तन्मयता छाई॥

किया मना पितु मातु ने, इन सब के ढिंग आय।
लेकिन ये लौटी नहीं, भागी हाथ छुडाय॥

हे पांडव गोप सुतायें थीं, पूरी अनुरक्त बिहारी में।
जो कुछ थे बस वे मोहन थे, इनके प्रिय दुनियां सारी में॥
फिर इसी वास्ते किया था व्रत, पतिरूप में कृष्ण मिलें आकर।
इच्छायें सारी पूर्ण करें, अति प्रेम सहित हिय हरषाकर॥
तक रहीं थी राह साल भर से, तब कहीं आज पूनम आई।
निज आश पूर्ण होगी ये गुन, सब सजन लगीं तन सुखपाई॥

छवियुत तन को और भी, करती थीं छविधाम ।
इतने में श्रवनन पड़ी, मुरलीध्वनी ललाम ॥
प्रभु नित ही बंसि बजाते थे, सुनती थी नित ही ये सारी ।
पर इतनी मुग्ध न होती थीं, बन गईं आज तो मतवारी ॥
इसका ये कारन था राजन, कुछ आज कि ध्वनि अस अद्भुत थी ।
जिसने कानों में पड़ते ही, हरली सब तन मन की सुध थी ॥
ये कामोद्दीपक ध्वनी न थी, बासना का गान नहीं था ये ।
कामियों की चाह पूर्ती का, हरगिज़ सामान नहीं था ये ॥
बल्की उस परिपूरनतम का, सब चर व अचर के भावों को ।
तद्रूप बना देनेवाला, कर नाश बुरी इच्छाओं को ॥
था पवित्र प्रेम आवाहन ये, बस इसी से सारी बालायें ।
तन्मय बन गईं समर्पित कीं, हरि चरणों में सब इच्छायें ॥
ज्यों ज्यों ये सब उस जंगल में, प्रभु ओर को बढ़ती जाती थी ।
त्यों त्यों अति प्रेम उमड़ने से, विह्वलता बढ़ती आती थी ॥
आखिर कुछ देरी में सारी, पहुँची सन्मुख नटनागर के ।
श्रीराशेश्वरि भी आय गईं, सखियों संग साजसजा करके ॥
कुछ कुमारियां भवन से, आ न सकीं इहिकाल ।
उन्होंने घर ही बैठ कर, सुमिरे श्री नंदलाल ॥
अति अधिक प्रेम होने के सबब, भगवान ने ध्यान में दर्श दिया ।
कर नष्ट सकल शुभ अशुभ कर्म, तत्काल देह से मुक्त किया ॥
इस तरफ गोपियों की अद्भुत, हालत व प्रीति लख गिरधारी ।
मुस्काये और परिक्षा के, लेने की हृदय में धारी ॥
बोले हे गोप सुताओं तुम, क्यों यहां आईं हो बतलाओ ।
मैं करूं तुम्हारा काम कौन, है कुशल तो व्रज में कहजाओ ॥
है समय रात्रि का और विपिन, फिर हिंसक जीव विचरते हैं ।
जिनकी भयदायक बोली सुन, धीरों के प्राण निकलते हैं ॥

पुनि सर्प आदि विषभरे जीव, यहां पर रहते अति भयदाई ।
ऐसे कुसमय में बालाओं, क्यों कर आने की ठहराई ॥
यदि बन विहार को आई हो, तो भी अति देर हुई तुमको ।
अवलोकन सारा दृष्य किया, अब शीघ्र लौट जाओ घर को ॥
या शौक बंसि के सुनने का, बोलो तुमको लाया यहां पर ।
तो कहो बजाऊं फेर वही, सुनलो आनंद से जी भरकर ॥
कुल बालाओं को उचित नहीं, घूमे स्वतंत्र निशि में बन में ।
यों वंश कलंकित होता है, निंदा होती है निज जन में ॥

ढूंढ़ रहे होंगे तुम्हें, घर पर रिश्तेदार ।
अस्तु लौट जाओ तुरत, मम सलाह उर धार ॥

नटवर की अप्रिय बानी सुन, अति दुखित हुई सब व्रजबाला ।
अभिलाषाओं का अंत हुआ, पड़ गया उमंगों पर पाला ॥
चिंता ने चंचल चित्त किया, लम्बी लम्बी स्वासें निकली ।
सब ओष्ठ एक दम सूख गये, रहगई खड़ी इमि कठपुतली ॥
जिनको कुमारियों ने जग में, सबसे प्रियवर अनुमाना था ।
जिनके कारन घरबार तजा, निशि में बन आना ठाना था ॥
उन प्रिय के मुख से अति अप्रिय, बचनों को सुनकर व्रजनारी ।
आंखों से अश्रु गिराती हुई, बोलीं सुनलो हे गिरधारी ॥
ऐसी कठोरता क्यों दिल में, धारी है तुमने घनश्यामा ।
हम सदा से शरणागत तुम्हरी, रहती आई हैं सुखधामा ॥
प्रत्येक स्वांस में हे मोहन, करती हैं तुम्हरा रटन सदा ।
प्रति पल में ज़बां हमारी से, तव लीला का है कथन सदा ॥
माता, पितु, भ्रात, भगनि, स्वामी, हम तुमको ही पहिचानती हैं ।
तुम बिन इस जग में हितचिंतक, हम नहीं किसी को जानती हैं ॥

व्रत भी तुम्हरे ही लिये, किया था हमने नाथ ।
वर था तुम्हरा शरद में, करं रास तुम साथ ॥

तब से इन दिवसों को गिन कर, उंगलियों पै हमने काटे हैं ।
अब ऐसे कटुक बचन हमको, कहने को तुमने छांटे हैं ॥
यदि प्रण न पालना था तुमको, तो फिर बिरथा क्यों वर देकर ।
हमको आशा ही आशा में, रक्खा तुमने हे नटनागर ॥
फिर आज किसलिये बंसि बजा, हम सबको यहां बुलाया है ।
आजाने पर फिर कहते हो, क्यों कुल में दाग़ लगाया है ॥
तो कहो हमें हे जगदात्मा, हे दीनों को आश्रयदाता ।
क्या पास तुम्हारे आने से, कुल में कलंक है लग जाता ॥
जग में जप, तप, व्रत, आराधन, करते हैं किस कारन प्रानी ।
केवल तुमको पाने के लिये, तुमको खुश करने गुणखानी ॥
जब तुम प्रसन्न हो मिलते आ, तब क्या बाकी रह जाता है ।
जब तक तुमको पाता न जीव, भवनिधि में गोते खाता है ॥
वे दिन बीते जब कृष्ण तुम्हें, हम गिनती थीं बस नन्दलाला ।
पर अब तो तुम्हरे कार्य देख, होगया हृदय में उजियाला ॥
हमको ये निश्चय हुआ प्रभो, भूमी का भार हटाने को ।
नर देह धार ब्रज प्रगटे हो, भक्तों को सुख पहुँचाने को ॥
जाने किस सुकृत के फल से, हमने तव दर्शन पाया है ।
तज तुम्हें प्राणप्रिय चल देना, ये हरगिज़ हमें न भाया है ॥
वाजिब है तुमको हे मोहन, अपने बचनों का प्रतिपालन ।
संयोग सुःख देकर हमको, बस रास रचाओ मन भावन ॥
गर अंतिम हो आदेश यही, जो तुमने अभी उचारा है ।
तो हमने भी तुव चरणों पर, बलि होना चित में धारा है ॥

शायद भक्ती की कमी, रखती हमको दूर ।
दे आहूती प्राण की, करें उसे हम पूर ॥

*** गाना ***

प्रभु अब तो हमारे सहारे तुम्हीं हो ।
तुम्हीं प्राणधन प्राण प्यारे तुम्हीं हो ॥
तुम्हें नंद का सुत समझना वृथा है ।
इस सारे जगत के अधारे तुम्हीं हो ॥
अंधेरा चहूं दिशि में माया का छाया ।
मिटाने को उसके उजारे तुम्हीं हो ॥
तुम्हें त्याग कर हम न जायेंगी वापिस ।
हमारे दृगों के सितारे तुम्हीं हो ॥

सुन आरत बानी गोपिन की, अंतरयामी हरि मुस्काये ।
बोले मैं तो अजमाता था, क्यों हृदय तुम्हारे घबराये ॥
जन को सुख पहुँचाने के लिये, मैंने नर का तन धारा है ।
जो शरण पड़े सच्चे दिल से, वो सब से ज़्यादा प्यारा है ॥
अस्तू तज दो सब सोच फिकर, आओ अब रास रचावें हम ।
होवे मनरंज़न हम सब का, अपने चित को बहलावें हम ॥
योगेश्वरों के ईश्वर ने, यों कह माया विस्तार किया ।
क्षणभर में अति अद्भुत अनुपम, मंडप एक तहाँ तयार किया ॥
वस्त्राभूषण ऋतु के माफिक, खुशबू की चीज़ें वाद्य सभी ।
सब को तहाँ दृष्टी आने लगीं, आगये मनोहर खाद्य सभी ॥
दासियाँ भी अगणित प्रगट हुईं, सखियों की परिचर्या करने ।
विव्हलता के कारन बिगड़े, शृंगार को यथा विधि धरने ॥
था वही ज्योत्स्सना पूर्ण विपिन, चंद्रिका चहूंदिशि छाई थी ।
चलती थी सुखद समीर तहां, होरही प्रकृति सुखदाई थी ॥
विद्यत सम चंचल बालाएँ, सुन्दर वस्त्राभूषण धर के ।
आल्हादिन शक्ति सहित पलमें, घिर आईं चहुँ दिशि नटवर के ॥

ज्यों कांचनमणि ढेर बिच, मरकत शोभा पाय ।
त्योंही गोपिन मध्य में, राज रहे व्रजराय ॥
आखिर त्रिभुवन मोहन सुन्दर, वो सुखद रास आरम्भ हुआ ।
जिस हेतु रमणियां आई थीं, वो रमण कार्य प्रारम्भ हुआ ॥
हाथों में हाथ मिला सखियें, चौगिर्द कृष्ण के फिरने लगीं ।
हरि द्वारा प्यारी मुरली भी, सुख उपजावन ध्वनि करने लगी ॥
इस ध्वनि में मस्त होय सारी, करती थी नृत्य हे नरराया ।
इतने में दिव बाजों ने भी, मनहरन शब्द तहां फैलाया ॥
वो ताल व स्वर का समा बंधा, मोहित होगये गगनबासी ।
और वाह वाह सब कहने लगे, पुष्पांजलि बरसाई खासी ॥
गोपियां गई थीं हरि के ढिंग, रख काम भाव अपने मन में ।
पर पूर्ण काम ढिंग आते ही, होगईं तृप्त तुरत हि छन में ॥
बनगईं सकल वृत्तियां शांत, लगगई समाधी सी उनकी ।
सच है प्रभु की शरणागत में, सुधि रहे नहीं तन मन धन की ॥
वो रास न था इक रहस्य था वो, नहिं मिलन गोप वंशों का था ।
जो था वो था बस सर्व श्रेष्ठ, सम्मिलन ईश अंशो का था ॥
कुछ देर में व्रजबालायें सब, अस मस्त हुई सुधि बिसराई ।
हम सदृष्य कौन धन्य जग में, ऐसी उनके चित में आई ॥
अंतरयामी झट जान गये, गोपिन उर मान हुआ भारी ।
इसको तुरंत हरना चहिये, ये है जन हित संकटकारी ॥
आल्हाद था प्रभु की शक्ती का, वहां जो सर्वत्र छारहा था ।
जिसके वश सचराचर हरेक, आनन्दित दृष्टि आरहा था ॥
जन मनरंजन हरन को, भक्तन को अभिमान ।
ले शक्ती आल्हादिनी, होगये अंतरध्यान ॥
प्रभु की लीला मदभरे नयन, हरगिज़ न देखने पाते हैं ।
सर्वत्र व्याप्त सच्चिदानंद, बोलो कहां छिपने जाते हैं ॥

जब तक था प्रभु में भक्ति भाव, थीं शरण में जब तक व्रजबाला।
तब तक था साथ जगत्पति का, था रास विहार का उजियाला॥
जब "अहं" भाव आया दिल में तो दुनियां ही बचगई वहां।
दुनियांवाला दृष्टी ओझल, होगया पहुँच 'मद' की न जहां॥
मचगई खलबली गोपिन में, आनन्द कृष्ण के संग गया।
रवि के छिपते ही अंधकार, व्यापा प्रकाश सब भंग भया॥
जिस तरह भूप क्षण में भिक्षुक, हो तो अति घबरा जाता है।
अथवा विधवा का एकहि सुत, मर जाय तो जो दुख आता है॥
या सात दिवस के भूखे की, परसी थाली हरले कोई।
उसको जो व्याकुलता होती, गोपिन की दशा हुई सोई॥
आनन्द कित बिन आनन्दकन्द, सुख कहाँ बिना सुखरासी के।
क्षण भर में सकल अलक्ष हुआ, संग गया कृष्ण अविनाशी के॥
सब बिगड़ गया श्रृंगार साज, चट नयन अश्रु बरसाने लगे।
जो किये रंग जगदीश संग, दुख सहित याद वे आने लगे॥
विक्षिप्त सरिस इत उत तकतीं, बोलीं मोहन की खोज करें।
है रात चांदनी बन उपवन, ढूंढ़े सब दिल का सोच हरें॥
आकार रहित जगदीश्वर का, जब पता लगा लेते ज्ञानी।
साकार ईश को ढूंढ़न में, तब होगी क्योंकर हैरानी॥

अस विचार करने लगी, हरि का अनुसंधान।
जब न मिले तब तो हुई, मन में दुखी महान॥

प्रभु के वियोग में ऐसा कुछ, पागलपन सा तन पर छाया।
हम कौन कहां हैं क्या करतीं, इसका न ध्यान बिल्कुल आया॥
वृक्षों से जाकर कहन लगीं, बतलाओ प्यारा कहां गया।
हे पीपल बट तुम ही कह दो, प्रिय प्रान हमारा कहां गया॥
मल्लिके ,केतकी, सूर्यमुखी, हम विरह ज्वाल से जलती हैं।
खोकर अपने जीवनधन को, पछताती हैं कर मलती हैं॥

हे आम ! सदा उपकार रती, इतना उपकार करो हम पर ।
क्या देखे तुमने मनमोहन, सुन्दर सुखदाई मुरलीधर ॥
हे जन्मदायनी व्रजभूमी, हम लोगों पर कुछ कृपा करो ।
तेरे हृदय पर पद धरते, कित गये श्याम कह व्यथा हरो ॥
हे भ्रमर तेरे रंग के समान, तेरे स्वभाव के अनुगामी ।
यदि लखे तो बतलादे हमको, श्री कुंजबिहारी बलधामी ॥
हे नक्षत्रों लख हमें, दीन हीन लाचार ।
कहो शीघ्र, हैं किस जगह, प्रभू प्रेम अवतार ॥

हे चन्द्र तुम्हीं टुक दया करो, तुम सदृश्य आनन गये कहां ।
हे कालिंदी दे बता तुही, इस समय कृष्ण डेरा है जहां ॥
इस तरह विरह में मोहन के, सब बन भूमी देखी भाली ।
पर कहीं पता न मिला इनको, गायब हि रहे श्री बनमाली ॥
हे नृप जब तक थोड़ा सा भी मन में विकार रहता बाकी ।
तब तक कितना भी यत्न करो, नहिं दृष्टि पड़े सूरत बाकी ॥
यों फिरते फिरते एक जगह, देखा एक सखी कराह रही ।
हा प्राणनाथ हा कृष्ण कृष्ण, अति दुख से भरती आह रही ॥
सब दौड़ गईं उसके समीप, देखा राधा चिल्लाती है ।
श्रृंगार हो रहा छिन्न भिन्न, बेसुधि सो दृष्टी आती है ॥
यमुनाजल जब छिड़का उस पर, तब उसको थोड़ा होश आया ।
अवलोक गोपियों का समूह, वो उठी और यों फ़रमाया ॥
सखियों मुझ को ले साथ कृष्ण, तज तुम्हें विपिन में धाये थे ।
तब मैंने मग में प्रियतम से, बहु भांति के आदर पाये थे ॥
मैं भी तुम्हरी ही तरह हुई, गर्वित और प्रभु से फ़रमाया ।
मुझ से अब चला नहीं जाता, कंधे बिठलाओ व्रजराया ॥
मन में भरा गुमान यह, परमप्रिया मोहि जान ।
लिया संग में कृष्ण ने, अस्तु किया सम्मान ॥

फिर मुझको ये घमंड भी था, आल्हादिन हूँ प्रभु प्यारी हूँ।
गोलोकनाथ की बस मैं ही, अर्धाङ्गिनि हूँ सुखकारी हूँ॥
हा इसी गर्व ने हे सखियो, मेरा वियोग करवाया है।
उस सतचित आनंद मूरत से, पल भर में दूर हटाया है॥
अब तड़प रही हूँ बिसमिल सी, क्या जाने कब दर्शन होंगे।
या कृष्ण कृष्ण रटते रटते, यों ही ये प्राण गमन होंगे॥

※ गाना ※

सखी साथी हे शुद्ध हृदय के प्रभू मदमत्त उन्हे नहिं पावत हैं।
किया गर्व मिला फल अब हरि के बिन दर्श जिया अकुलावत है॥
श्रीकृष्ण अखिल जगदीश्वर है नहिं उनसे परे कोई ईश्वर है।
करते नित ध्यान महेश्वर हैं श्रुति नेति नेति कहि गावत हैं॥
विनती गउ विप्रों की सुनकर के प्रभु आये हे सग्गुण वपु धर के।
सब भार धरणितल का हरके तब जायेंगे गर्ग बतावत हैं॥
अस्तू यदि इच्छा हो दर्शन की करो दूर कुभावना सब मनकी।
करो प्रेम से भक्ति जनार्दन की सतभाव को प्रभु अपनावत हैं॥

रासेश्वरि की कर बात श्रवण, गोपियाँ हृदय में चकराईं।
सोचा नहिं लुभा सके हरगिज, प्रभु को हमरी सुन्दरताई॥
वे आप्त काम हैं उनके ढिंग, आतेहि काम नस जाता है।
हम भूल रही हैं जो उनके, संग जोड़ रहीं अस नाता है॥
अस्तू हृदय का सब विकार, फौरन निकाल बाहिर धर दो।
सच्चे मन से वृत्तियां सभी, हरि चरणों में अर्पण कर दो।
गाओ फिर लीलायें उनकी, सच्चे सनेह में पग जाओ।
तब तो निश्चय है तत्क्षण ही, मनमोहन के दर्शन पाओ॥

अस बिचार गोपी सकल, उरधर हरि का ध्यान।
लगीं करन श्रीकृष्ण की, लीलाओं का गान॥

लेतेहि शरण जिन चरणों की, पापी भी पाप रहित होता ।
अस्थिर और चंचल चित्त तुरत, अपनी सब चंचलता खोता ॥
फिर है जिनका कीर्तन सुमिरन, नरकों का भय हरनेवाला ।
है एक मात्र साधन कलि में, सब विपति दूर करनेवाला ॥
उनहीं के सुभग चरित्रों की, कर करके याद सब व्रजनारी ।
एकत्रित होकर गाने लगीं, हिय में प्रभु मूरत को धारी ॥
बोलीं, हे कृष्ण हे कमलनयन, हे प्रेम रूप अवतार प्रभो ।
हम व्रज की सारी ग्वालिनियें, हैं शरण तेरी करतार प्रभो ॥
जब से तुम प्रगट हुये व्रज में, सबका तुममें आकर्षण है ।
सब जीवों का तुव दर्शन में, प्रभु निशदिन रत रहता मन है ॥
यहां तक पशु पक्षी वृक्ष लता, सरिता व सरोवर गिरि कंदर ।
खिंच रहे आपकी तरफ प्रभो, तव सुघड़ मूर्ति अवलोकन कर ॥

जब जड़ चीज़ें हो रहीं, रत तुम में भगवान ।
हम चेतन हैं फिर न क्यों, धरें तुम्हारा ध्यान ॥

हे सर्वात्मा गिन चेरि हमें, अब देर न कर दर्शन दीजे ।
हम ढूंढ़त ढूंढ़त हार गईं, लख दुखी प्रभू किरपा कीजे ॥
सच है जिनको तुम स्वयम् प्रभू, दो दर्शन पा सकता वोही ।
बिन कृपा तुम्हारी तुम्हरा हरि, नहिं पता लगा सकता कोई ॥
हे कुंजविहारी मनमोहन, बस देर न करो चले आओ ।
हम टेर रहीं कब से तुमको, टुक दया करो मत कलपाओ ॥
जब जब हम लोगों पर नटवर, किसि तरह की विपता आई है ।
तब तब तुमने नहिं देर करी, फौरन ही करी सुनाई है ॥
रक्षा की कई राक्षसों से, सुरपति का मान घटाया है ।
दावानल पी दुख मिटा दिया, कालीदह से भि बचाया है ॥
हे कान्हा तुम्हरी मुरली सुन, हमने सब रिश्तेदार तजे ।
गिन तुमको ही सब कुछ जग में, बस फ़क़त तुम्हारे चरन भजे ॥

लज्जा को भी दे तिलांजली, हे कपटी तुम्हरी शरण गही।
लेकिन तुम अंतरध्यान हुये, ये प्रेम प्रसादी खूब दई॥
क्यों हमें दुखी करते प्रियतम, अब छोड़ कृपणता दर्शन दो।
हे प्रभू हमारे रोग की तो, बस केवल तुमही औषधि हो॥
निश्चय समझो चहें प्राण जाय, पर अब न लौट घर जावेंगी।
इस ही यमुना तट पर गिरधर, बस आज से अलख जगावेंगी॥

यों कहती कहती उठीं, फिर सब व्रज की बाल।
प्रभु लीला अभिनय तहाँ, शुरू किया तत्काल॥

फौरन ही एक कुमारि तहाँ, बस पूतना बन तैयार हुई।
धर लिया किसी ने कृष्णरूप, थन चूसन में नहिं वार लई॥
इक बनी त्रणावत, इक शकटा, बारी बारी से हरि ने बधी।
बन प्रलम्बासुर आई कोई, अरु कोई उस पर आन लदी॥
आशय ये जितने खेल किये, जितने प्रभु ने निश्चर मारे।
उतने ही हरिपद प्रेम रंगी, सखियों ने नाटक रचड़ारे॥
ऊखल बंधन माखन चोरी, आदिक कीन्ही सब लीलाएँ।
पर प्रगट हुये नहिं मन मोहन, तब तो खबराई बालाएँ॥
बढ़ गया विरह का वेग प्रबल, तन मन की सब सुधि बिसराई।
प्रभु दर्शन की प्यासी सखियां, क्रंदन करती हृष्टी आई॥
ये क्रंदन लोग दिखाऊ न था, बल्की अंतर आत्मा का था।
था अंतिम साधन गोपिन का, अरु दर्शक परमात्मा का था॥
ये उस हालत में होता है, सचे दिल से जब लगन लगे।
मछली जिम रहे नहीं जल बिन, तिम जन बिन प्रियतम रह न सके॥
इस ही क्रंदन को सुन करके, होगये थे ज़ाहिर जगस्वामी।
गोपियों के जीवनधन नटवर, साधना के प्रतिफल सुखधामी॥

बोली गोप कुमारियां, हे प्रानों के प्रान।
लीजे सुधि आ बेग ही, दीजे जीवन दान॥

हम टेर रहीं कब से तुमको, मिलकर के सारी व्रजबाला ।
हा गये कहाँ चित चोर ईश, कित बसे हो जाकर नंदलाला ॥
हे यसुदानन्दन नन्दकुंवर, बस आजाओ मत देर करो ।
हैरान और लाचार हुईं, अब नाथ दया कर दुःख हरो ॥
अपराध का पूरा दंड मिला, फिर क्यों न दर्श दिखलाते हो ।
क्यों हुआ निरस हृदय तुम्हरा, तुम तो अति सरस कहाते हो ॥
हा मदन मोहनेवाले हरि, तुमको किसने मोह डाला है ।
हे सर्व जीत जगदीश प्रभो, किस सोतिन का जंजाला है ॥
तुम से बढ़कर इस दुनियाँ में, नहिं मित्र कोई हमरा भगवन ।
हम वारवार चिल्लाती हैं, हो जाउ प्रगट हे जीवनधन ॥
जब वैर बुद्धिवाले निश्चर, तुम द्वारा शुभगति पाते हैं ।
तो बतलाओ तुम्हरे अनुचर, क्यों वृथा सताये जाते हैं ॥

एक आश है एक प्रण, एक वृत्ति इक नाम ।
तुम्हीं हो सब कुछ प्रभू, हमरे सर्वस श्याम ॥
यों कहहो अतिविकल सब, गिरीं मही पै आय ।
ऊर्द्ध स्वांस चलने लगा, तब सोचा व्रजराय ॥

गोपियों का सारा अहंकार, नस गया वृतियाँ शान्त हुईं ।
मुझको ढूंढा है वन वन में, बेचारी श्रान्त व क्लान्त हुईं ॥
यदि अब दर्शन में देर हुई, तो निश्चय तन तज डारेंगी ।
मेरा सुमरन करते करते, मुझ पर ही प्रान निसारेंगी ॥
हो चुकी परीक्षा पूर्णतया, अब देर न करना वाजिब है ।
अब तो दर्शन रस सुधा पिला, संकट हरना हि मुनासिब है ॥
ये सोच तुरत प्रभु प्रगट हुए, रख चरन हृदय चैतन्य किया ।
प्रभु पद रज के हिय लगते ही, दुख ने फौरन ही मार्ग लिया ॥
मुर्दा शरीर उठ बैठता है, जिस तरह प्राण आजाने पर ।
या जैसे खिल उठते हैं कमल, सूरज का दर्शन पाने पर ॥

त्यों ही व्रज की सब कामिनियां, प्रभु का दर्शन कर उठ धाईं ।
होगईं प्रफुल्लित मुस्कातीं, श्रीकृष्णचन्द्र के ढिग आईं ॥
आकर घेरा मनमोहन को, झुककर चरणों में सिर नाया ।
फिर बोलीं करदो माफ तुरत, जो कुछ कुसूर हो व्रजराया ॥
चल दिये छोड़ क्यों नाथ हमें, क्यो ऐसी निष्ठुरता धारी ।
क्या और कहीं था स्नेह अधिक, जा पहुँचे तहाँ पर बनवारी ॥

तुम्हरे नेह सरिस मुझे, नेह न दृष्टी आय ।
फिर तजकर जाता कहां, बोले यों व्रजराज ॥

सारे घमण्ड को विसरा कर, मम चरणों में प्रीती ठानो ।
इसलिये दृष्टि से ओझल था, नहिं कहीं गया था सच मानो ॥
मम आराधक को हे सखियों, "मद" मुझसे दूर हटाता है ।
जो अहंकार तज देता है, वो हरदम मुझको पाता है ॥
मत समझो तुम कृतघ्न मुझे, जो भजे उसे मैं भजता हूँ ।
जिसका मन दुनियां में रत हो, उसको फौरन ही तजता हूं ॥
फिर बिन वियोग नहिं ज्ञात होय, संयोग में कितना स्वाद भरा ।
नमकीन बिना अच्छा न लगे, भोजन में मीठा अन्न निरा ॥
अस्तू छोड़ो सब सोच फिकर, आओ पुनि रास रचावें हम ।
यमुना तट के सुन्दर बन में, आनन्द से समय बितावें हम ॥
यों कह सबको ले संग कृष्ण, फिर कालिंदी पर आते हैं ।
पुनि वोही ठाठ रास का सब, पल भर में आन जमाते हैं ॥
कुछ ऐसा सुघड़ जमाव जमा, शब्दों द्वारा नहिं जाय कहा ।
था वो बस विषय नेत्रों का, सुखदायक सुंदर सफल महा ॥
क्या कमी रहे उस उत्सव में, जहं नायक हों गोलोकपती ।
त्रिभुवन ल्हादित करनेवाली, नायका हो आल्हादिन शक्ती ॥

देख रास का ठाठ नव, शंभु गये हरषाय ।
हृदय भक्ति से भर गया, पहुँचे महि पै आय ॥

कर लिया रुचिर गोपी स्वरूप, फिर सोचा ग्वालिन जान मुझे ।
क्रीड़ा में शामिल कर लेंगे, वे दीनबंधु भगवान मुझे ॥
अस्तू सज धज के साथ शंभु, आये सुन्दर श्रृङ्गार सजा ।
त्रिभुवन मोहन लावण्य देख, सारा मण्डल जगमगा उठा ॥
श्रीराधाजी भी चकित हुईं, समझा न भेद त्रिपुरारी का ।
गिरजापति, नीलकंठ, शिव का, कैलाशनाथ कामारी का ॥
पर न छिपा गोविंद से, महादेव का वेश ।
स्वागत को आये बढ़े, कहा धन्य गोपेश ॥
की कृपा खूब शम्भू तुमने, भक्ती से मेरे नयन नमे ।
मेरी रग रग में नस नस में, हे आशुतोष तुम रहो रमे ॥
क्या मैं तुमसे छिप सकता हूं, वा मुझसे तुम छिप जाओगे ।
हे शिव ! हम तुम दोनों हैं एक, इसमें न अन्यथा पावोगे ॥
इस शुभ अवसर पर एक विनय, हे शूलपाणि मंजूर करो ।
गोपीश्वर नाम करो धारन, रह साक्षि रूप यहां विघ्न हरो ॥
उस दिन से जहाँ था रास रचा, शिव पिंड वहाँ पर थापन है ।
व्रजभूमी में यमुना तट पर, मंदिर है जहाँ वृन्दावन है ॥
खुल गया भेद जब शंकर का, पुलकित हो प्रभु के पांव परे ।
बोले मैं धन्य हुआ मोहन, तव दर्शन ने सब क्लेश हरे ॥

गाना

जय हो जय हो, जय रासबिहारी मोहन ।
दीजे चरणों की भक्ति सुखारी मोहन ॥
आपकी भक्ति है अज्ञान नशानेवाली ।
दुनियकी मोह छुड़ा ज्ञान सिखानेवाली ॥
जगत के बंधनों को पल में छुड़ानेवाली ।
नष्ट कर पाप, सफल जन्म बनानेवाली ॥

सारे भक्तों की प्राण पियारी मोहन । दीजे० ॥
धन्य व्रजभूमि है अरु धन्य धन्य वृन्दावन॥
धन्य गउ गोप सकल धन्य धन्य गोपीगन ।
धन्य कालिंदी नदी धन्य धन्य वृक्षमवन।
रा रहे व्यक्त हो जहं पर अवक्त त्रिभुवनधन ।
रहे चित्त में ये मूर्ति तुम्हारी मोहन ॥ दीजे० ॥

अल किस्सा फिर रास में, हुये निरत घनश्याम ।
मंडलाकार हुईं खड़ी, व्रज की गोपि तमाम ॥
योगेश्वरों के ईश्वर ने, माया इक नई रचा डारी ।
दो दो सखियों के मध्य एक, अति सुंदर निज मूरति धारी ॥
समझा हरएक बाला ने ये, मेरा हि हाथ प्रभु पकड़े हैं ।
कर रहे मेरे ही संग रास, मुझको ही करों में जकड़े हैं ॥
अस्तू सारी हरषाय गईं, पिछला सब दुःख भुलाय दिया ।
आनंद मग्न हो मोहन संग, तत्काल नाचना शुरू किया ॥
इक रूप से आत्माराम प्रभू, हो मध्य में वेणु बजाते थे ।
बाकी रूपों से सखियों को, मन भावन नाच नचाते थे ॥
लख अनुपम आनंद मय क्रीड़ा, उसशान्त प्रशान्तयमुन तटपर ।
नभ स्थित सुर सब चकित हुये, खिच गया दृष्य हृदय पट पर ॥
रुक गया निशापति का स्यंदन, नक्षत्र गती भि स्थंभ हुई ।
छः मास की रन हुई उस दिन, जब लीला ये आरम्भ हुई ॥
नीलाम्बुज, नीलमेघ सदृष्य, था वर्ण यशोदानंदन का ।
अरु स्वर्ण सरिस था कांतिवान, शोभायमान तन सखियन का ॥
इसलिये कृष्ण के साथ साथ, नाचती हुई सब कामनियां ।
इस तरह सुशोभित होती थीं, जनु नभ मंडल में दामनियाँ ॥

श्रोताओं जिस प्रकार बालक, निज परछाईं अवलोकन कर ।
मन माना खेल खेलता है, कई तरह के भाव हृदय में धर ॥
त्योंही त्रिभुवन ईश ने, कीन्हा रास विलास ।
पूर्ण करी गोपीन की, पिछली सारी आस ॥
इस तरह नृत्य करते करते, थक गईं सभी ब्रज बालायें ।
प्रस्वेद भाल पर दृष्टि हुये, गिर गईं टूटकर मालायें ॥
वेणी की गांठ खुली जिससे, कच आनन पर लहराने लगे ।
होगये वस्त्र सब अस्त व्यस्त, पद भी भारी दरसाने लगे ॥
ये लख लीला पुरुषोत्तम ने, वह क्रीड़ा करनी बंद करी ।
ले संग सखियों को श्रम खोने, जमुना जल में घुस गये हरी ॥
होगया शुरू जल का बिहार, खलबला उठा पानी सारा ।
वो आपस में बौछार हुई, पड़गई मंद यमुना धारा ॥
जैसे गजराज हथिनियों संग, जल में जा द्वंद मचाता है ।
छींटे दे देकर पानी के, सब को अति सुखी बनाता है ॥
बस त्योंही आत्माराम प्रभू, क्रीड़ा करते दृष्टी आये ।
हर्षित हो देवों ने नभ से, तत्काल सुमन बहु बरसाये ॥
आख़िर इससे निवृत्त हो, बाहिर आये श्याम ।
वस्त्र बदल करने लगे, मुरलीध्वनिअभिराम ॥
होगईं मुग्ध गोपियां सभी, कर पकड़ देवकीनंदन का ।
कुंजों में इत उत फिरने लगीं, हौसला किया पूरा मन का ॥
आख़िर जब पिछली रैन हुई, तब कृष्णचन्द्र ने फ़रमाया ।
अब अपने अपने घर जाओ, होगया तुम्हारा मन चाया ॥
जितने तुम्हरे सम्बन्धी हैं, मम माया से मोहित होकर ।
ये जानते हैं तुम गई कहीं, तो उनकी सब घर के भीतर ॥
इसलिये तुम्हारे प्रति बिल्कुल, वे नहीं चक्कर लावेंगे ।
अस्तू अब गमन करो सत्वर कुछ देर में रवि उग जावेंगे ॥

इच्छा तो ये थी नहीं, छोड़ प्रभू को जाय ।
पर हरि की लख प्रेरणा, चलीं सभी सिरनाय ॥
हे भूप रासलीला सुनकर, तुम्हरे मन में शंकायें कई ।
उठती होंगी और सच भी है, क्योंके ये है अति रहस्य मई ॥
तुम सोच रहे होगे चित में, सद्धर्म यहां थापन करने ।
कर नाश अधर्म का पृथ्वी की, सारी विपताओं को हरने ॥
परिपूरनतम जगदीश प्रभू, धर कृष्णरूप महि आये थे ।
खुद आप्त काम होकर फिर क्यों, कामना के दृष्य दिखाये थे ॥
एकान्त गोपियों को बुलाय, क्यों रासविलास किया निशिभर ।
पड़ता है असर इसका कैसा, दुनियां को कुल मर्यादा पर ॥
पर हे राजन इस लीला में, शंका करना दरकार नहीं ।
जो कुछ भी किया बिहारी ने, सब ठीक किया बेकार नहीं ॥
ये कथा नहीं कामोद्दीपक, बल्की है काम हरनेवाली ।
सच्चिदानन्द परमात्मा में, आत्मा का लय करनेवाली ॥
यदुनन्दन को पाने के लिये, गोपियों ने जो व्रत कीन्हा था ।
उसका फल इस लीला द्वारा, आनन्दकंद ने दीन्हा था ॥
अस पवित्र ये रास था, जिसके लखने काज ।
आये थे सब देवता, पति सहित सज साज ॥
अस्तू सब व्रज लीलाओं में, ये लीला अति आदर पाती ।
किन्तू ये है अति रहस्य भरी, नहिं शीघ्र समझने में आती ॥
इसके जरिये जो मोहन ने, जग को अमूल्य उपदेश दिया ।
उसका सब भेद बताता हूं, जिस कारन ऐसा कार्य किया ॥
भक्तों की इच्छा पूरन हित, प्रभु लीला कई रचाते हैं ।
जो तन मन से शरणागत हों, उनको अति सुख पहुँचाते हैं ॥
हर हालत में बनवारी के, चरणों को शरण हितकारी है ।
जो इसमें करे कुतर्क कोई, उसकी चहुँदिशि में ख्वारी है ॥

ये जीवात्मा परमात्मा का, है अंशरूप अरु अविनाशी ।
इसका है श्रेष्ठ पुरषारथ क्या, सुन अभिमन्यू सुत गुणराशी ॥
जिस तरह बने वो यत्न करे, जिससे भव भटकन नस जावे ।
आनन्द रूप परमात्मा में, वृत्तियां लीन कर सुख पावे ॥
पर ये जीवात्मा माया के, चक्कर में झट फंस जाता है ।
खुद की अरु निज निर्दिष्ट केन्द्र, ईश्वर की याद भुलाता है ॥

दयासिन्धु करके दया, अवसर देत अनेक ।
फिर भी चित में जीव के, होता नहीं विवेक ॥

हे पांडव ! मन में सत्य समझ, सच्चिदानन्द त्रैलोकपती ।
मिलते न शास्त्र की व्याख्या से, वक्तृता भि उन्हें न पा सकती ॥
तीक्ष्ण बुद्धीवाले की भी, चलती न इस जगह चतुराई ।
दिग्गज पंडित भी मौन होय, नहिं तर्क जगह पावे भाई ॥
किन्तू वह दयासागर खुद ही, जिस जन का प्रेरक बन जाता ।
बस वही जीव उसके समीप, हे नरराई जाने पाता ॥
बस इसी तरह यहाँ भी समझो, इस लीला से पहिले ईश्वर ।
करते हैं मर्म स्पर्शी ध्वनि, मधु मयी मुरलि अधरों पर धर ॥
इसका है सार गोपी रूपी, आत्मा तज दुनियां के बन्धन ।
आकर्षित हो जा पहुँचती हैं, जहं थे निज केन्द्र नंदनन्दन ॥

भक्तों का भगवान से, मिलन रूप था रास ।
न कि स्थूल शरीर का, था हे भूप विलास ॥

फिर आत्म समर्पण भक्ती नृप, नवधा भक्ती में श्रेष्ठ कही ।
व्रज गोपों की सब कन्यायें, गोपियां इसी की मूर्ति रहीं ॥
हर समय सुमरती रहती थीं, वे आनन्दकन्द बिहारी को ।
पितु मात भगनि भ्राता पति सब, गिनती थीं गिरवरधारी को ॥
उस शरद पूर्णिमा की निशि को, बंसी की ध्वनि होने से प्रथम ॥
सखियों के हों कुछ भी विचार, कैसे भि भाव हों नृपसत्तम ॥

पर सुनकर प्रेम मयी पुकार, वे ज्यों ज्यों तरफ जनार्दन की ।
अग्रसर हुईं त्यों त्यों सब गति, बस पलट गई उनके मन की ॥
सच है प्रभु सन्मुख होते ही, सारे विकार नस जाते हैं ।
इसके आगे क्या होता है, अब वो तुमको समझाते हैं ॥
होवे न कहीं वैराग्य क्षणिक, अस्तू प्रभु लेत परिक्षा हैं ।
गोपियों को वापिस जाने की, कई तरह से देते शिक्षा हैं ॥
जब इसमें दृढ़ पाते उनको, तब फिर माया दिखलाते हैं ।
रचते हैं रास मण्डप पल में, अरु एक अनेक हो जाते हैं ॥

कठिन परिक्षा है यही, जीवों की सुन भूप ।
फंसे जो माया जाल में, पड़े अंध भव कूप ॥

वैभव लखकर विरला हि पुरुष, रहता है शान्त तज गर्व सभी ।
बाकी सब अहंकार करते, गोते खाते भव मांहि तभी ॥
भक्ती में चाहत इक रस की, हरिचरन कमल में चित रखना ।
तन, मन, धन अरु सारे विचार, उस प्रभु के ही अर्पण करना ॥
पर दुर्लभ है ये वैभव में, गोपिन का भी यह हाल हुआ ।
प्रभु को अपने बस में लखकर, बस अहंकार का जाल हुआ ॥
सखियों ने सोचा जन्मों तक, नर कई प्रयत्न कराते हैं ।
लेकिन फिर भी ये आदि पुरुष, दर्शन देने नहिं आते हैं ॥

करते हैं वेही यहां, नृत्य हमारे साथ ।
बोलो अब इस जगत में, को हम सरिस सनाथ ॥

इस अहंकार का हाल भला, क्योंकर प्रभु से छिप सकता था ।
जिसका है घट घट में निवास, किम उस सन्मुख निभ सकता था ॥
हरि ने सोचा गोपियों में जो, है कसर वो सब मिटनी चहिये ।
होवे न कभी फिर अहंकार, वो मलीनता छटनी चहिये ॥
इसलिये कृष्णमय आल्हादिन, शक्ति के अंतरध्यान हुये ।
सारा वैभव हो गया गुम, गोपिन के चेहरे म्लान हुये ॥

शक्तियों की पटरानी को भी, जब हुआ गर्व उसको भि तजा ।
प्रभु साथी हैं केवल उनके, अभिमानत्यागवस जिनने भजा ॥
अपनी गलती याद कर, पछताईं व्रजबाल ।
पर चूंके दृढ़ भक्त थीं, छुटा न प्रभु का ख्याल ॥
इसका मतलब है एक बार, जग के सारे झगड़े तजकर ।
ये जीवात्मा आ पड़ता है, जब श्रीकृष्ण के चरणों पर ॥
तब चित में तो ये सोचता है, मैं कभी भक्ति नहिं छोड़ूंगा ।
चाहे कितना भी विघ्न पड़े, हरगिज़ नहिं मुख को मोड़ूंगा ॥
पर हृदय की कमजोरी का, उसको न ध्यान रहता नृपवर ।
बस इसीलिये फँस जाता है, दुनिया के वैभव में सत्वर ॥
फिर जब तक सद्गुरू मिले नहीं, सीधा रस्ता न हाथ आता ।
तब तक विक्षिप्त सरिस सा रह, नित प्रति यों ही गोते खाता ॥
बस यही हाल गोपियों का था, पागल बन प्रभु को ढूँढ़ती थीं ।
कभि वृक्षों से कभि तारों से, कभि यमुना जल से पूछती थीं ॥
आख़िर इनको सद्गुरू मिला, "राधा" शक्तियों की पटरानी ।
सुन प्रभु के छिपने का रहस्य, होगई तुरत संशय हानी ॥
अब आवश्यकता रही नहीं, गोपिन को फिरने की वन बन ।
इक ठौर बैठ वे करन लगीं, सच्चे मन से हरि का कीर्तन ॥
इस कीर्तन से प्रेम कुछ, इतना बढ़ा नृपाल ।
भूलगईं सब गोपियाँ, तनो बदन का हाल ॥
मिट गया हृदय से द्वैतभाव, और जीव भाव भी नाश हुआ ।
तब आत्मा से वो परमात्मा, आ मिला शुरू फिर रास हुआ ॥
सत मार्ग हाथ आजाने पर, देरी है पात्र के मंजने में ।
वरना प्रभु तो नजदीक हि हैं, कुछ कसर नहीं है मिलने में ॥
भक्ती अरु सत्ज्ञान में, फरक नहीं सुन भूप ।
अहँकार को छोड़ दो, समझो असल स्वरूप ॥

ज्ञानी को चाहत मुक्ती की, भक्ती हि भक्त की चाहत है।
वो छुट जाता भवबंधन से, इसको प्रभु पद में राहत है॥
उसमें है अपने पर श्रद्धा, इसमें विश्वास हरी में है।
वो हरदम चेतन रहता है, ये अभय प्रभू आसरी में है॥
उसको सतर्क रहना पड़ता, इसको कुछ भी नहिं भय जगमें।
वो निज स्वरूप सब जगह लखे, इसके व्यापक प्रभु रग रग में॥
लेकिन सच पूछो तो भाई, मैं अपने मन की कहता हूँ।
मैं तो इच्छुक हूँ भक्ती का, निज इष्ट कृपा नित चहता हूँ॥
प्रभु ने निज भक्तों के हितार्थ, ये वाह्य रूप लीला की थी।
इसके मिस अनुपम भक्ती की, सारे जग को शिक्षा दी थी॥
इसमें थीं आत्मसमर्पण की, मूरति व्रज की सखियाँ सारी।
और स्वयम् ब्रह्म जगदीश ईश, थे श्रीकृष्ण गिरवरधारी॥
इस अभिनय में जैसे हरि ने, गोपियों का हाथ, हाथ में ले।
अपनी इच्छा माफिक उनसे, करवाया नृत्य साथ में ले॥
यानी संचालित होती थीं, सखियाँ जिमि श्री हरि के द्वारा।
वैसे हि अनन्य भक्त का प्रभु, करते हैं क्षेमवहन सारा॥

यंत्री हैं गोलोकपति, जन हैं यंत्र समान।
जब चाहें जैसे करें, संचालन भगवान॥

हे भूप ज्ञानियों सरिस भक्त, भगवान में होता लीन नहीं।
पर जन व जनार्दन में रहता, नहि फर्क भि कुछ है बात सही॥
है यही भक्ति का मुख्य रूप, इसको ही पराकाष्ठा जानो।
बस इसे ही दिखलाने के लिये, की थी ये लीला सब मानो॥
है रास का इतना ही रहस्य, प्राणी माया में लिप्त न हो।
निष्काम प्रभू की भक्ति करे, आलस प्रमाद चंचलता खो॥

रोमाँचित तब हो गया, सुन रहस्य कुरुईश ।
कहा धन्य जीवन मेरा, तुमने किया मुनीश ॥

❀ गाना ❀

मिट गया संदेह मम सुन रहस्य श्री भगवान् का ।
अब तो तन मन से बना मैं भक्त करुणानिधान का ॥
भेद हरि लीलाओं का क्या जानते पामर पुरुष ।
उनका हरएक कर्म है नाशक जगत् अज्ञान का ॥
तत्व अध्यातम समझना बहुत टेढ़ी खीर है ।
तट पै ढूंढे मे मिले ना भेद सिन्धू ज्ञान का ॥
आपकी किरपा से मुनिवर धन्य धन मैं हो गया ।
होयगी शुभगति मेरी मैं दास हूँ अब कान्ह का ॥

इसके आगे क्या हुआ, कहो नाथ समझाय ।
पावन यश भगवान का, तीनों ताप नसाय ॥
प्रभु का हृदय में सुमिरन कर, बोले शुकदेव मुनी ज्ञानी ।
धर ध्यान सुनहु वृंदावन की, अब शेष कथा अति सुखदानी ॥
कर विदा गोपियों को भगवन, कुछ रात रहे घर पर आये ।
जा सोये शयनागार में फिर, नहिं भेद किसी ने भी पाये ॥
होते हि प्रात गउऐं लेकर, चल दिये विपिन में जगसाईं ।
गोपियाँ भी फुरती से लागीं, निज निज गृह कारज हरषाईं ॥
सुख सहित दिवस वो पूर्ण हुआ, जब शाम हुई घर श्याम चले ।
निज बाल सखाओं संग करते, मग में कई उत्तम खेल भले ॥
यों कई दिवस बीते इक दिन, नंदराय बंधुओं को लेकर ।
चलदिये अंबिका पूजन को, एक महापर्व के अवसर पर ॥
रथ आरोहित थीं बालाऐं, थे गोप सकल अश्वारोही ।
और राम कृष्ण निज ग्वालों युत, बैठे थे गज पर मुनि मोही ॥

सब से आगे व्रजराज केतु, गउ छाप उष्ट्र पर जाता था।
पीछे मागध दल चलता हुआ, व्रजपति की कीरति गाता था॥
यों पहुँचे सब देवी वन में, विधि से पूजा की माता की।
कई तरह के दान दिये सबने, जय बोली व्रज विख्याता की॥

फिर केवल जल पान कर, सोये सारे ग्वाल।
मध्य निशा में क्या हुआ, चित दे सुनहु भुवाल॥

आगया कहीं से उस वन में, एक बहुत बड़ा भूखा अजगर।
प्रभु पिता की निद्रावस्था में, उसने ली फौरन टांग पकर॥
और किया लीलना शुरू फेर, ये देख नंद अति घबराये।
"अजगर है निगल रहा मुझको", कोइ दौड़ो यों कह चिल्लाये॥
हड़बड़ा उठे सब गोप ग्वाल, जलती लकड़ी की मार करी।
पर हटा नहीं वो दुष्ट सर्प, तब आये कृष्ण कृपाल हरी॥
निज पाँव से मोहन ने केवल, उसके तन को स्पर्श किया।
तज दिया तुरत चोला उसने, सुंदर विद्याधर रूप लिया॥
पूछा ब्रजजीवन ने उससे, तू कौन कहाँ से आया है।
किस शाप के कारन हे भाई, अजगर का चोला पाया है॥
कर जोड़ चरन में शीश झुका, बोला वो सुंदर तन धारी।
है नाम सुदर्शन नाथ मेरा, विद्याधर हूं हे बनवारी॥
मैं अपनी युवा अवस्था में, था रूपवान शोभा वाला।
इसका था अतिशय गर्व मुझे, इसने हि किया गड़बड़ झाला॥
एक दिवस राह में मिले मुझे, मुनि अष्टवक्र तप की राशी।
लख उसका टेढ़ा रूप नाथ, आगई हंसी मुझको खासी॥
यद्यपि थे ऋषिवर सतोगुनी, पर रिस व्यापी उनके तन में।
बोले रे नीच अहंकारी, बन सर्प रहो देवी बन में॥
द्वापर में श्रीगोलोकनाथ, धर कृष्ण रूप महि आवेंगे।
तब तेरे सिर पर चरन धार, इस योनि से तुझे छुड़ावेंगे॥

तब से हे करुणासिंधु ईश, तुम्हरी ही आश लगाये था ।
तुम्हरी दर्शन लालसा से मैं, सारा दुख सोच भुलाये था ॥
हे जगपालक जगपिता, निराकार साकार ।
शरण तुम्हारी हूँ प्रभो, करिये बेड़ा पार ॥
दुष्टों से पृथ्वी हलकी हो, सद्धर्म ध्वजा फिर फहरावे ।
इस हेतु अवतरे हो भगवन, जगसुन्दर सुखकर बन जावे ॥
महिमा तव अपरम्पार कही, योगी ज्ञानी नहिं जान सके ।
शिव सनकादिक शेषो महेश, कर कर स्तुति चित माहिं थके ॥
फिर मुझ समान मतिमंद अज्ञ, किमि तुम्हरे गुण वरणे स्वामी ।
रखना नित दया दृष्टि मुझ पर, करना रक्षा हे गरुड़गामी ॥
ऋषिवर का शाप हुआ मुझको, इस समय अनुग्रह सम भगवन ।
जिसके प्रताप से मुझ समान, पापी को हुये दुर्लभ दर्शन ॥
हे भवभंजन दुखशमन, सुररंजन भगवान ।
चरण कमल की भक्ति का, दीजे शुभ वरदान ॥
कह एवमस्तु प्रभु ने उसको, अति आदर से करदिया विदा ।
कर परीक्रमा हरि की फौरन, विद्याधर घर को गये सिधा ॥
सारे व्रजवासी चकित हुये, प्रभु का प्रभाव लख हरषाये ।
होते हि प्रात सब गोप ग्वाल, वापिस निज निज घर को आये ॥
होते ही शाम श्यामसुंदर, बलभद्र भ्रात को संग लेकर ।
चाँदनी रात लख जा पहुँचे, मन बहलाने यमुना तटपर ॥
कुछ व्रज की बालाओं ने भी, स्वेच्छा से वन का मार्ग लिया ।
निज इष्ट देव व्रजजीवन संग, निशि विहार करना शुरू किया ॥
सुन्दरता की सुन्दर मूरति, अति सुन्दर वेणु बजाने लगे ।
सुन जिसकी प्रिय ध्वनि गोपिन के, मन और हि भाव जताने लगे ॥
लग गया प्रथम से लगा हुआ, मन प्रभु के पद अरविंदों में ।
तन मन की सुधि वेसुधि होस्वयम्, फंस गई छली के फंदों में ॥

जिसका भृकुटी विलास पल में, त्रिभुवन को वशीभूत करले।
उसके आगे क्या कठिनाई, यदि सखियों का हृदय हरले॥
इक टीले पर जा टिके, मनमोहन घनश्याम।
लगे बजाने बाँसुरी, गूँजा विपिन तमाम॥
आत्मा को सुख देनेवाली, उस प्रेम ध्वनी में लय होकर।
गोपियाँ कृष्ण गुण गाती हुई, विचरन लागी निर्भय होकर॥
आरहा था आनन्द रात्री का, वो स्वच्छ चाँदनी छाई थी।
इतने में विघ्न इक आने से, सब सुख की हुई सफाई थी॥
वो विघ्न रूप था यक्ष एक, धनपति का साधारन अनुचर।
कहलाता था वो शंखचूड़, आगया कहीं से उस जां पर॥
गोपियों को इकलाही विलोक, वो काल का ग्रास निकट आया।
ले चला घेर कर सखियों को, नहिं राम कृष्ण से भय पाया॥
उसका लख ये अनुचित कारज, सुन गोपिन की आरत बानी।
"मत घबराओ हम आ पहुँचे", यों कह ये दौड़े शारंगपानी॥
बलराम भी चुप रह सके नहीं, इक तरु उखाड़ प्रभु संग धाये।
यमराज सरिस दोनों को लख, उस यक्ष के तन मन दहलाये॥
कर त्याग गोप कन्याओं का, वो दुष्ट विपिन की ओर भजा।
हलधर रह गये गोपियों संग, लेकिन प्रभु ने पीछा न तजा॥
शीघ्र झपट कर गह लिये, हरि ने उसके केश।
गिरा दिया पुनि भूमि पै, बिगड़ गया सब वेश॥
इक मुष्टिक द्वारा प्राण हरे, सिर से सिरमणी निकाल लई।
अति हर्षित हो वापिस आकर, निज जेष्ठ भ्रात के हाथ दई॥
फिर जमा रंग तहाँ गाने का, सचराचर कहि जय कृष्ण उठे।
जिनने पावन यशगान किया उनके भवबंधन तुरत कटे॥
परिपूरनतम भक्तों के हित, जग में सब कारज करते हैं।
अरु इसीलिये जन-मन-रंजन, अवतार मही पर धरते हैं॥

अस्तू हे श्रोताओं चित से, अपना सब शोक भुला डालो ।
उस छलिया नंद के छौना की, भक्ती में चित्त लगा डालो ॥
बन बिहार की कर इती, नंदनंदन घनश्याम ।
निज मंदिर में आगये, शोभा सिंधु ललाम ॥
संध्या को मनमोहन एक दिन, आरहे थे गायें लिये हुये ।
था धूल धूसरित तन सारा, मुख मुरली धारन किये हुये ॥
कुंकुम कस्तूरी तिलक भाल, सिर मुकट मोर पंखोवाला ।
दामिन द्युति हीन करे ऐसा, था कटि में पीताम्बर आला ॥
उन्नत लिलाट पर छाये थे, श्रम बिन्दु सुहावन मनभावन ।
भक्तों को आनंद की मूरति, दुष्टों को यमघर पहुँचावन ॥
आगे आते ही क्या देखा, एक विकट वृषभ है खड़ा हुआ ।
पावों से खोद रहा धरती, कर रहा शब्द मग अड़ा हुआ ॥
जिसकी भयदायक कंठध्वनी, व्रज में अति त्रास बढ़ाय रही ।
तज खिरक गाय वत्सों समेत, हो व्याकुल भागी जाय रही ॥
नंदादिक व्रजवासी सारे, अति दुखित दृष्टि में आते हैं ।
हे राम कृष्ण लो सुधि आकर, उच्चारन करते जाते हैं ॥
उसको अवलोकन करते ही, झट समझ गये अंतरयामी ।
ये बैल नही दानव अरिष्ट, कंसासुर का है अनुगामी ॥
अस्तू प्रभु बोले मुस्काकर, क्यों वृथा हि ऊधम करता है ।
आ इधर ज़रा मेरी जानिब, देखूं कितना बल रखता है ॥
निडर वाक्य गोपाल के, सुन मृत्यू का ग्रास ।
दौड़ा सींग सम्हाल कर, आया प्रभु के पास ॥
नटवर ने सहज स्वभाव से ही, श्रंगों को कर में धार लिया ।
आगे पीछे धक्का देकर, दानव को अति हैरान किया ॥
फिर ठेल दिया पीछे की तरफ, गिर गया दैत्यअतिव्याकुल हो ।
पुनि क्रोध सहित उठकर धाया, तज प्रानमोह अतिआकुल हो ॥

चिल्लाय उठे ब्रजवाले सब, नभ में सुर भी अति घबराये।
बोले निशचर को शीघ्र बधो, हम सब के प्रान अति अकुलाये॥
लख त्रास संकुलित भक्तों को, मनमोहन ने आगे आकर।
इक लात दई जिससे दानव, तज प्राण गिरा चक्कर खाकर॥

भेजा अपने लोक को, प्रभु ने दया दिखाय।
को कृपाल श्रीकृष्ण सम, बोले शुक मुनिराय॥
तुरत परिच्छत ने कहा, सुनहु नाथ मति धीर।
किस कारन निश्चर बना, प्रथम कौन था वीर॥

सुन प्रश्न ऋषीश्वर कहन लगे, नृप ये था शिष्य बृहस्पति का।
वरतन्तु नाम था इसका प्रथम, था ज्ञानी अरु सुन्दर मति का॥
हो, होनहार के वशीभूत, निज ज्ञान का गर्व किये मन में।
बैठा गुरु ढिंग फैलाय पाँव, लख बोले सुरगुरु तेहि छन में॥
रे मूंढ, अहंकारी, कुबुद्धि, बैठा है बैल समान बना।
जा होजा वृषभानन निश्चर, और मृत्युलोक में थान बना॥
द्वापर कलि की संधी में जब, श्रीकृष्णनंद घर आवेंगे।
तब तुझे असुर योनी से वे, दे गति निजलोक पठावेंगे॥

गुरु के वाक्य अमोघ थे, वृषभ हुआ शिष आय।
हरि माया का हे नृपति, भेद न जाना जाय॥
श्रोताओं अब प्रेम से, कृष्ण ध्यान उरधार।
सुनो हुआ जिमि कंस का, 'श्रीलाल" उद्धार॥

श्रीकृष्णार्पणमस्तु



श्रीकृष्ण चरित्र अथवा श्रीमद्भागवत

दसवां भाग

कंस उद्धारी कृष्ण

रचयिता—

श्रीलाल खत्री

प्रकाशक—महाभारत पुस्तकालय, अजमेर

मुद्रक—के. हमीरमल लूनिया, दि डायमण्ड जुबिली प्रेस, अजमेर.

प्रथमबार २,००० | सम्वत् १९९१ विक्रमी, सन् १९३४ ईस्वी | मूल्य ।) आने

कृष्णस्तु भगवान् स्वयम्

स्तुति

(१)

यदुराज की शरण में गर हम यह दिल लगाते।
इसमें नहीं जरा शक उनके चरण को पाते॥
करते रहे हैं अब तक हम भक्ति स्वार्थ मय सब।
निष्काम भाव धरते इष्टी में हम समाते॥
माया में लिप्त रहकर विरथा जनम को खोया।
ले कांच हाथ में हम हीरा रहे बताते॥
उसकी दया तो देखो बिन भेद भाव छाई।
सब तजके जो शरण में आते वे फिर न जाते॥

मंगलाचरण

(२)

पीताम्बर धर पाप हर, गोकलेश गोपाल।
ताप हरन जन सुख करन, जय जय दीन दयाल॥
जय जलशायी जलदसम, सुभग सुहावन रूप।
सृष्टि रचन, पालन, हरन, शिव अज विष्णु स्वरूप॥
तुम गुरु गणपति शारदा, सहस बदन तुम शेष।
विघन हरो मंगल करो, जग व्यापक अखिलेश॥
बंदहुं वेदव्यास सुत, श्री शुकदेव सुजान।
गायो कलिमल हरन जिन, "कृष्ण चरित" गुणखान॥

*** श्लोक ***

वंशीविभूषित करान्नवनीरदाभात्पीताम्बरादरुणबिंबफलाधरोष्ठात् ।
पूर्णेन्दुसुन्दर मुखादरविन्दनेत्रात्कृष्णात्परं किमपितत्त्वमहं न जाने ॥

❀ कथा प्रारम्भ ❀

कहूँ तुम्हें साकार या, निराकार गोपाल ।
अपने असली रूप को, जानो तुम्हीं दयाल ॥
तुमसे परे न तत्त्व है, हे सचराचर ईश ।
करहुँ सप्रेम प्रणाम मैं, गृहण करहु जगदीश ॥
हिरण्य गर्भ से आज लों, सुर नर मुनी अनेक ।
गाते आये हैं सदा, तुम्हरे गुण सविवेक ॥
मैं मूरख मतिमंद हूँ, पतितन को सिरमोर ।
तव गुणसिन्धू का प्रभो, दीखे ओर न छोर ॥

अस्तू हे भक्तों के सर्वस, क्यों नहीं कंठ में आजाते ।
अपनी इस अकथ कहानी को, युग के माफिक तुम लिखजाते ॥
श्रीव्यास गर्ग आदिक ने जो, तुम्हरा चरित्र कथ डारा है ।
उसही को हम लिख रहे नाथ, उसका ही लिया सहारा है ॥
जो लिखा गया है लिखता हूँ, जो लिखा भविष्य में जावेगा ।
वो तुम्हरी पूर्ण कृपा का फल, हे परिपूरन कहलावेगा ॥
हे सर्वबीज हे सर्वात्मन्, गिनकर तुमको घट घट बासी ।
लिखता हूं तव प्रेरणा से मैं, तुम्हरे ही गुणगन सुखरासी ॥
जब दुष्ट अरिष्टासुर दानव, नटवर द्वारा संहार हुआ ।
तब हरि इच्छा वश नारद के, चित में उत्पन्न विचार हुआ ॥
लगभग सब मित्र कंस नृप के, मारे जा चुके कृष्ण द्वारा ।
पर जब तक वो खल जिन्दा है, नहिं मिले भूमि को निस्तारा ॥
अस्तू बस मथुरा में चलकर, मथुरापति को उकसावें हम ।
जिस तरह हो सके शीघ्र हि अब, भक्तों को सुख पहुँचावें हम ॥

यही सोचकर देव ऋषि, पहुँचे भूपति पास ।
देख इन्हें नृप ने किया, पूजन सहित हुलास ॥

प्रथम अनमना भाव धर, फिर कुछ भृकुटि मरोर।
बोले नारद भूप सुन, कुदिन आगये तोर ॥
मुझको अब पता लगा है ये, कर श्रवन हे राजन् चितलाई।
तव बहिन देवकी का सप्तम, सुत पहुँचा गोकुल में जाई ॥
नहिं गिरा अधूरा गर्भ नृपति, माया ने खेल दिखाया है।
उसने रोहणि से पैदा हो, "बलराम" नाम जग पाया है ॥
अरु गर्भ आठवें से उत्पन्न, जो लड़की तुझे दिखाई थी।
वो भी न भानजी तेरी थी, यसुदा ने उसको जाई थी ॥
वसुदेव ने झोंकी धूल तेरी, आंखों में सुत व्रज पहुँचाया।
उसकी ऐवज में कन्या ला, तुझको धोखे में रखवाया ॥
वे दोनों लड़के राम कृष्ण, हो रहे बड़े व्रज के भीतर।
मारे हैं उन्होंने ही सारे, तेरे अति बलवानी अनुचर ॥
सुन नारद की बात को, रक्त वर्ण कर नैन।
ऊंचा खड्ग उठाय के, कहे कंस ने बैन ॥
हे देव ऋषी मैं अभी जाय, भगनी बहनोई मारूंगा।
धोखा देने का फल देकर, तब और काम चित धारूंगा ॥
बिधि-सुत बोले हे भोजराज, ऐसा विचार तो मध्यम है।
बुलवालो राम कृष्ण को यहाँ, सब से सलाह ये उत्तम है ॥
वसुदेव तेरा कर सके नहीं, कुछ भी बिगाड़ हे कंसासुर।
तेरे हैं काल वेही दोनों, इसलिये भेज उनको यमपुर ॥
इतना कह चतुरानन-नन्दन, हर्षित हो वीन बजाते हुये।
चल दिये अमरपुर की जानिब, गुण कृष्णचन्द्र के गाते हुये ॥
इस तरफ कंस ने फौरन ही, वसुदेव देवकी बुलवाये।
कस के जंजीरों से उनको, झट बंदी गृह में भिजवाये ॥
इतना करके फिर "केसी" को, अपने ढिंग बुलवा के यों कहा।
हे वीर मेरे सब मित्रों में, बस केवल तू बाकी है रहा ॥

वरना सब स्वर्ग सिधार गये, उन राम कृष्ण के कर द्वारा ।
इसलिये वहाँ जाकर के तू, बध उन्हें चुका बदला सारा ॥
कंसराज के बचन सुन, हर्षित होय महान ।
केशी ने फौरन किया, व्रज की ओर पयान ॥
पहुँचा घोड़े का रूप धार, आँखों में लाली लिये हुये ।
अति बेग सहित मृत्यु का ग्रास, निज पूंछ को ऊंची किये हुये ॥
थे गो चारन में लीन प्रभू, इतने में देखा केशी को ।
निश्चर सुखदायक, देव दुखद् बलवान अश्व के वेशी को ।
पृथ्वी का बोझा हलका हो, सुरपुरवासी हो जायँ अभय ।
अस्तू इसको बध कर डालें, ये लगे सोचने करुणामय ॥
इतने में दानव आ पहुँचा, आते हि प्रभू से टकराया ।
अरु लगा दुलत्ती मारन वो, ये लख हरि को गुस्सा आया ॥
झट पकड़ दुष्ट के पाँव दोऊ, बहु भ्रमा के फेंका दूरी पर ।
रह कर एक घड़ी मूर्छित वो, पुनि आया चित में खिजलाकर ॥
अपना मुख पूरा फाड़ लिया, मानो जग को ग्रस जावेगा ।
भयभीत हुये सचराचर सब, सोचा ये प्रलय मचावेगा ॥
प्रभु ने निश्चर के आते ही, निज कर उसके मुख डाल दिया ।
हो गया हाथ अग्नी समान, खल को दाँतों के बिना किया ॥
ज्यों रोग बढ़े बिन दवा दिये, त्यों हरि का कर बढ़ जाता है ।
दानव का उदर बिदार तुरत, मृत्यू मुख में पहुँचाता है ॥
गिरा धरनि पर आनकर, दानव वृहत शरीर ।
उसमें से एक दिव्य वपु, निकला अति मतिधीर ॥
कर जोड़ समाने खड़ा हुआ, बोला मैं शतक्रतु किंकर था ।
सुरपति पर करता छत्र सदा, था युवा और अति सुंदर था ॥
वृत्तासुर बध प्रायश्चित में, सुरपति ने अश्वमेध कीन्हा ।
उसके हित श्यामकर्ण घोड़ा, लेकर मम रक्षा में दीन्हा ॥

लख उसे मेरे चढ़ने लायक, मैं भागा अश्व चुरा करके।
पर इन्द्र चरों ने घेर लिया, फुरती से आगे आ करके॥
ले आये पास पुरंधर के, गुस्सा खा उसने शाप दिया।
होजा निश्चर जा भूतल में, पा उसका फल जो कर्म किया॥
मेरे विलाप अरु रोदन पर, कुछ दया सचीपति को आई।
बोले हरि द्वारा मरेगा तू, द्वापर कलि की संधी माही॥
वो दिवस आज आगया नाथ, सुरपति किरपा तव दर्श हुआ।
होगये नष्ट दुष्कृत मेरे, हृदय में अतिशय हर्ष हुआ॥

जय जन मन रंजन प्रभो, दीनबंधु भगवान।
यों कह पहुँचा धेनुपुर, केशी बैठ विमान॥
दानव बध आगे चले, गउऐं ले जगदीश।
इतने में आये तहाँ, नारद देव ऋषीश।

बोले हे जगजीवन जगधन, करुणानिधान हे व्रजराई।
भल किया जो केशी बध कीन्हा, ये था देवों को दुखदाई॥
अब कर पयान मथुरा नगरी, बाकी के निश्चर मारो तुम।
बसुदेव देवकी बंदी हैं, उनके सब कष्ट निवारो तुम॥
पुनि काल यवन अरु जरासिंध, नरकासुर का बध करडालो।
शिशुपाल दंत वक्रादिक को, हे दृढ़प्रतिज्ञ यमपुर घालो॥
फिर पारथ के सारथि बनकर, महाभारत भारत में कर दो।
यों भूमि निश्चरों रहित बना, भक्तों का सारा दुख हरदो॥

व्रजलीला की इती श्री कर डालो गोपाल।
आगे के कर्तव्य का, धारो हृदय खयाल॥
यों कह नारद चल दिये, प्रभु गउ ग्वाल समेत।
पहुँचे गोवर्धन तले, लीला करत अनेक॥

इस जगह खेल में मोहन ने, मय सुत व्योमासुर को मारा।
धर ग्वाल रूप आमिला था वो, ग्वालों में किस्मत का मारा॥

ये काशी नृप था पूर्व जनम, था नाम भीमरथ अतिज्ञानी ।
दे राज पुत्र को विपिन गया, तहं कीन्हा तप अति सुखमानी ॥
एक दिवस कहीं से ऋषि पुलस्थ, इस नृप के आश्रम पर आये ।
अभिमान विवश ये उठा नहीं, ये लख मुनि अतिशय गरमाये ॥
अरु कहा रे तपगर्वी तूने, अतिथी सत्कार नहीं कीन्हा ।
द्वापर तक निश्चर योनि भुगत, मैंने ये शाप तुझे दीन्हा ॥
फिर श्रीकृष्ण के हाथों से मरकर छुटकारा पावेगा ।
जो अतिथी का आदर न करे, वो सदा यही फल पावेगा ॥

करें इस तरह नित्य प्रति, लीला श्रीनंदलाल ।
उधर विदित नृप को हुआ केशी का सब हाल ॥

कुछ देर निमग्न शोक में रहा, फिर फौरन राजसभा में आ ।
बैठा सिंहासन पर जाकर, बोला दोउ लोचन लाल बना ॥
हे मुष्टिक, हे चाणूर हे शल, तोशल आदिक मल्लों सुनलो ।
अब बधना होगा राम कृष्ण, ये पूर्णतया चित में गुनलो ॥
मारे हैं उन दोनों ने मिल, मेरे प्रिय अनुचर मित्र कई ।
मम कोप के पात्र बने हैं वे, मृत्यू उनके सिर आन छई ॥
इस कारन शीघ्र प्रबन्ध करो, एक रंगशाला बनवाने का ॥
आराम से बैठें नर नारी, ऐसे मचान बँधवाने का ।
फिर सुन्दर धनुषयज्ञ रच कर शंकर हित मैं बलिदान करूं ।
इस उत्सव को लखने के लिये, श्रीरामकृष्ण आह्वान करूं ॥
जिस तरह होसके तुम सब मिल बधना दोनों भ्राताओं को ।
देखो वे बचने पायँ नहीं, दिखलाना सकल कलाओं को ॥
हे महावत तुम भी सजग होय, गज कुबलपीड़ तैयार करो ।
द्वारे पर अटकाये रक्खो, आते ही उनके प्रान हरो ॥

पुनि बुलवा अक्रूर को, बोला शीश नवाय ।
तुम समान मेरा हितू, दृष्टि न जग में आय ॥

अस्तू भैया एक काम करो, व्रज में संदेश ये पहुँचाओ।
करते हैं कंस नृप धनुष यज्ञ, भेटें लेकर मथुरा जाओ॥
संग लेलो रामकृष्ण को भी, नयनाभिराम उत्सव होगा।
कई तरह के होंगे खेल तहां, बाजों का सुन्दर रव होगा॥
हे मित्र असल में बात है ये, कह गये हैं नारद मुनिराई।
इन्हीं बच्चों के द्वारा मम, मृत्यू विधना ने सिरजाई॥
इसलिये उन्हें बुलवाकर मैं फौरन यमलोक पठाऊंगा।
फिर भगिनी बहनोई बधकर देवक को दूर हटाऊंगा॥
पुनि जो बुड्ढा होने पर भी, चाहता है राज करना भाई।
उस उग्रसेन की भी जग में, देगी न शक्ल फिर दिखलाई॥
इनके सिवाय जो भी होंगे, रिपु मम द्वारा बध पावेंगे
यों कंसराज आनन्द सहित, निष्कंटक राज्य चलावेंगे।

अस्तु बने जैसे सखे, लाना हलधर श्याम।
बिना इन्हें मारे नहीं, मुझे पलक आराम॥

आदेश भूप का सुन करके, सफलक सुत ने यों फरमाया
कल प्रातकाल व्रज में जाकर, मैं करूं तुम्हारा मन चाया।
होगया खुशी मथुरा नरेश, अक्रूर लौट घर को आये।
होते हि सवेरा जाने के, सब साज तुरत ही सजवाये॥
समयोचित सुन्दर वस्त्र पहन, राजा का उत्तम रथ लेकर।
चलदिये तुरत वृन्दावन को, प्रभु के चरणों में चित देकर॥
मग में चलते चलते इनके, मन में घनश्याम मुरारी की।
भक्ती का आविर्भाव हुआ, जन-मन-रंजन दुखहारी की॥
पुलकायमान होकर चित में, सफलक सुत करन बिचार लगे।
क्या सचमुच होगा कृष्ण दर्श, ऐसे मेरे क्या भाग जगे॥
मैंने तो अपनी आयू में, नहिं कोई भी शुभ काम किया।
दिन रात रहा दुष्टों के संग, नहिं कभी प्रभू का नाम लिया॥

बस केवल एक भरोसा है, शरणागत वत्सल हैं स्वामी ।
हरगिज न विमुख लौटावेंगे, देंगे दर्शन अन्तरयामी ॥
निश्चय ही होगा मेरे, सब पापों का अन्त ।
देखूंगा मैं नयन भरि, श्यामल राधाकंत ॥
इनके स्वरूप के लिये सभी, कहते हैं परम मनोहर है ।
जिसका वर्णन वाणी की भी, वाणी के लिये अति दुष्कर है ॥
रहता है सिर पर सदा सुभग, मनहरन मुकट पंखोंवाला ।
कानों में मकराकृति कुंडल, करते हैं रवि सम उजियाला ॥
हैं लोचन युगल कमल सदृश्य, केशर का तिलक लगाते हैं ।
गल में बनमाल पड़ी रहती, कच घुंघराले दरशाते हैं ॥
रखते हैं एक कर में हरदम, प्रिय मुरली भक्तन सुखदाई ।
अरु हाथ दूसरे में रहती, गउ हांकन लकुटी मनभाई ॥
है पीताम्बर से प्रेम इन्हें, कटि में नित शोभा पाता है ।
जो गौरव प्राप्त है चरणों को, वो नहीं कथन में आता है ॥
इनके पाने के लिये सदा, रहते हैं लालियत संन्यासी ।
रखते हैं अति प्रयत्न करके, इनको हृदय में कैलाशी ॥
इनसे गंगा की उत्पति है, ये लक्ष्मी के मन भावन हैं ।
रमता है यहां चित भक्तों का, ये तीनों ताप नशावन हैं ॥
इन श्रीचरणों का दर्शन पा, मैं कृत्त कृत्य हो जाऊंगा ।
उस दुष्ट कंस की कृपा से मैं, ये जीवन सफल बनाऊंगा ॥
यदि वो मुझको न भेजता यहां, तो किस प्रकार जग साईं को ।
जो स्वेच्छा से नरदेह धार, अवतरे भक्त सुखदाई हो ॥
फिर जिनकी भृकुटी का विलास, कर्ता व कर्म का कारन है ।
कलिमल में जिनका नाम रटन, अघनाशक भव का तारन है ॥
अवलोकन करता प्रेम सहित, मुझ से न धन्य जग में कोई ।
जो मिले समाधी तक में नहीं, होगा प्रतच्छ मुझको सोई ॥

जिनका ऋषि मुनि बुद्धि से, करते हैं आह्वान।
होते ही उनका दरश, तज दूंगा मैं यान॥
जा पड़ूंगा फौरन चरणों में, मागूंगा भक्ती सुखदाई।
आशा है वे अवश्य देंगे, नहिं नटेंगे हरगिज यदुराई॥
श्रोताओं इन्हीं विचारों में, अक्रूर इस कदर मस्त हुये।
गिरपड़ी रास कर से छुटकर, जिससे घोड़े भी सुस्त हुये॥
इसलिये शाम होते होते, आये समीप वृन्दावन के।
देखा जाते हैं दूरी पर, कई झुंड मनोहर गउअन के॥
तिन पीछे मुरली ध्वनि करते, जा रहे हैं लीलाधाम प्रभू।
परिपूरनतम गोलोकनाथ, श्रीकृष्ण जगत आराम प्रभू॥
रेतीली भूमी में प्रभु के, पदचिह्न दृष्टि में आते हैं।
अवलोक इन्हें सफलक के सुत, फूले नहिं अंग समाते हैं॥
आखिर कूदे यान से, हो प्रसन्न अक्रूर।
लगे लोटने चरन पर, हिये लगाई धूर॥
इस धूरि ने ही त्रेतायुग में, गौतम पत्नी को तारा था।
पी इसे निषाद राज ने भी, पाया भव से छुटकारा था॥
जिस धूर को आदर सहित शीश, शिव अज सनकादि चढ़ाते हैं।
अति भाग्यवान अक्रूर उसी, धूरी में लोटे जाते हैं॥
रोमांचित सारा बदन हुआ, बोले है धन्य भाग्य मेरा।
होगया धूरि के छूते ही, बस जन्म मृत्यु से निबटेरा॥

❀ गाना ❀

भला हो भूप का जिसने यहां पठाया है।
दया से उसकी ही इस रज का दर्श पाया है॥
आव व्रज रज मैं तुझे शीश पै धारन करलूँ।
तेरे सीने पै प्रभू ने समय बिताया है॥
तेरी महिमा का कथन कर न सकें शिव अज भी।
जिसने गोदी में सदा श्याम को खिलाया है॥

व्रज के सब गोप गऊ वृक्ष लता कालिंदी ।
तुही है जिसने इन्हें अघ रहित बनाया है ॥
मुक्ति की मुक्ति भी है रज तेरे दर्शन से हो ।
प्रभाव तेरा सभी ने यही बताया है ॥

नर शरीर की सफलता, है इस ही में भूप ।
दंभ कपट तजकर करे, प्रभु की भक्ति अनूप ॥
मलकिस्सा गौ दुहने के समय, पहुँचे नंद घर सफलक नंदन ।
देखा बछड़े को थामे हुये, हैं खड़े कृष्ण व्रजके जीवन ॥
दौड़े फौरन अक्रूर तुरत, श्रीकृष्ण पदाम्बुज प रसाये॥
भगवान ने हर्ष सहित उनको, निज हृदय कमल में लिपटाये ॥
पूछा फिर आने का कारन, अक्रूर ने सारा बयां किया ।
सुन उसे प्रभू ने मुस्काकर, निज पितु को नृप संदेश दिया ॥
कर श्रवण व्रजाधीश्वर सत्वर, व्रज में ये खबर पहुँचाते हैं ।
चलना है सवेरे मथुरा को, नृप कंस भेट मँगवाते हैं ।
जावंगे संग में राम कृष्ण, उत्सव विशाल होनेवाला ।
लो दूध दही माखन आदिक, भरलो छकड़े सब गोपाला ॥
सुनते हि ढिंढोरा व्रजपति का, आबाल वृद्ध अकुलाय गये ।
गोपिन के हृदय कमल फौरन, गुन विरह निशा मुरझाय गये ॥
पाकर सनेह नदनंदन का, निज जोवन सफल बनाया था ।
मिट गये थे अधिभौतिक कलेश, भक्ती प्रशाद शुभ पाया था ॥
थी सब की इच्छा यही, श्याम कहीं नहिं जायँ ।
रहें दृगन सन्मुख सदा, लखें नित्य हरषायँ ॥
मस्तू सुनकर सब सन्न हुईं, आँखों में अश्रू भर आये ।
रो उठा हिया व्रज बनितन का, दुख शोक रंज घर घर छाये ॥

सब मिल जुल कर राधे पै जा, संवाद दुखद पहुँचाती हैं।
सुन ह्लादिन शक्ती भी प्रभु की, खुद व्यथा मगन हो जाती हैं॥
फिर सबको ढाढ़स दिया, श्री वृषभानु कुवाँरि।
कहा बुलावो कृष्ण को, यमुनातट इस पार॥
यों कह सखियाँ साथ ले, कालिन्दी के तीर।
आई इतने में लखे, श्रीकृष्ण यदुवीर॥
यमुना रेती में सभी, बैठीं हरि को घेर।
राधा सबकी ओर से, बोली नयन तरेर॥
हे छली बली नंदराय सुवन, ये क्या सुनने में आया है।
क्या सचमुच ही तुमको लेने, नृप ने अक्रूर पठाया है॥
कुछ भी हो पर तुम मत जाना, व्रजराज भेंट दे आवेंगे।
ऐसा क्या उत्सव होगा वहाँ, जो कृष्ण देखने जावेंगे॥
तुमने अपने आचरणों से, रस भरी मनोहर बानी से।
सुन्दर स्वरूप बाँकी छवि से, अरु शौर्य वीर्य लासानी से॥
सारे व्रज मंडल को मोहन, निज वशीभूत कर डाला है।
जीते हैं तुमको ही विलोक, तुम्हरा ही यहाँ उजाला है॥
यदि तुम यहाँ से चल दिये नाथ, सब उलट पुलट हो जावेगा।
ये हरा भरा वृन्दावन प्रभु, स्मशान दृष्टि में आवेगा॥
था बचन तुम्हारा व्रज तजकर, मैं कहीं नहीं जाऊंगा कभी।
पर आते ही उस यादव के, पिछली सुधि विसरा दई सभी॥
यदि ऐसा ही करना था तुम्हें, तो हम पर क्यों जादू डाला।
पिंजरे में फंसा लिये फुसला, अब करते हो गड़बड़ झाला॥
हमने सारे नाते तजकर, तुम से ही नाता जोड़ा है।
अध बीच में उसको ठुकरा कर, किसलिये नाथ मुंह मोड़ा है॥
हे दयासिन्धु कित गई दया, शरणागत रक्षन कहाँ गया।
जो आशायें दिलवाई थीं, उनका प्रतिपालन कहाँ गया॥

ऋषियों ने तुम्हरा यश गा गा, तुमको नभ माँहि चढ़ाया है।
कह दीनबंधु भक्तन वत्सल, त्रिथा ही तुम्हें बढ़ाया है॥
सच समझो करुणायतन, मनमोहन नंदलाल।
तुम बिन सब व्रज देश का, होगा बुरा हवाल॥
अब तुमको तो क्या कहें अधिक, अक्रूर समझ हम लेवेंगी।
अति क्रूर होकर अक्रूर बना, तेहि करनी का फल देवेंगी॥
आया है बनकर हितू बड़ा, दिखता अति सुंदर यादव है।
पर है अति दुष्ट, पिशाच, असुर, मानव के वेष में दानव है॥
आते हैं नित प्रति भेष बदल, उस दुष्ट कंस के हितकारी।
कहना मानों हे व्रजजीवन, कर दो उस निश्चर की ख्वारी॥
इतने हि प्रगट उद्गार किये, हरि सन्मुख राधारानी ने।
आगे को कुछ कह सकी नहीं, मुंह बंद किया हैरानी ने॥
हिचकियाँ बंधी सब गोपिन की, संताप सकल थल छाय गया।
अक्रूर आगमन बादल बन, करुणा वर्षा बरसाय गया॥
ल्हादिन को गोपिनसहित, मोह में फंसी विलोक।
दीनबन्धु बोले तुरत, वचन हरन दुख शोक।
हे रासेश्वरि हे प्राणप्रिये, मम अनुगामिनि हे महामाया।
हे मोह निवारण महाशक्ति, गोलोक अधीश्वरि जग जाया॥
जिसका पावन निर्मल यश सुन, नर भवसागर तर जाते हैं।
उसके मुख से ऐसे विचार, हरगिज नहिं शोभा पाते हैं॥
अपने स्वरूप का भान कहाँ, हे कीरति कुंवरि गँमाया है॥
जो प्राकृति नारी के सदृष्य, मन को मोह में भरमाया है।
आदेश गऊपुर का चित से तुमने बिल्कुल ही भुला दिया।
हे हृदयमणी सोचो हमने, किस कारन जग अवतार लिया॥
उद्देश हमारा है येही, जग से अधर्म सब नस जावे।
हो जाय धर्म पुनि थापन यहां, खल मरें भक्त आनन्द पावें॥

जब से यहां प्रादुर्भाव हुआ, तब से हि क्रिया यह जारी है।
पूतना आदि कई दैत्य हने, अब दुष्ट कंस की बारी है॥
तत्पश्चात करूं कई, भक्तन हित शुभ काम।
फिर कर महाभारत हरूं, भू का भार तमाम॥
हे राधे मुझको मेरे हित, जग में कुछ भी नहिं करना है।
मैं निराकार हूँ मुक्त सदा, भक्तों का हित चित धरना है॥
बस इसीलिये ऐसा जीवन, वृषभानु कुमारि बिताना है।
जिससे आगेवालों को प्रिय, मिल जावे मेरा ठिकाना है॥
श्रुति शास्त्र ढूंढ नहिं सकें मुझे, योगी जन ध्यान न आता हूं।
लेकिन भक्तों के बस में हूं, ये भेद तुम्हें बतलाता हूँ॥
इसका जो कारन है राधे, वोभो सारा मुझ से सुनलो।
अति श्रेष्ठ भक्त क्यों कहे जायं, यह रहस्य भी हृदय में गुनलो॥
कर्म कांडी को सदा, रहे कृत्य अभिमान।
मुक्ती हस्ता मलक है, जिनको पूरा ज्ञान॥
श्रुति शास्त्र वाक्य सब सच्चे हैं, अनुभवी कर्म तत्वज्ञी को।
यज्ञादिक कर्म उचित जग में, सुख स्वर्ग मिलेगा यज्ञी को॥
तप, व्रत, यम, नियम तीर्थ सेवन, सुर सुलभ भोग दिलवाते हैं।
पर उनका फल होते हि पूर्ण, पुनि लौट यहां पर आते हैं॥
यों बना रहे आना जाना, नहिं मिले पूर्ण निस्तारा है।
जन्मो पुनि मरो फेर जन्मो, ये चक्कर कठिन करारा है॥
दुतिय जो ज्ञानी हैं वे प्रिय, तज कर्म स्वयम् को पहिचाने।
ऋद्धी सिद्धी का मोह छोड़, रहें कठिन प्रतिज्ञा को ठाने॥
उनके सारे शुभ अशुभ कर्म, ज्ञानाग्नी नष्ट बनाती है।
अवसर पाकर उन लोगों को, मुक्ती अवश्य मिल जाती है॥
वे छूट जायँ भव भटकन से, तत्वों में तत्व मिलाते हैं।
सब लांघ लोक ब्रह्मादिक के, मुझ में अस्तित्व जमाते हैं॥

यह कठिन समस्या उनको भी, हल आख़िर करनी होती है
उनको अपने हि भरोसे पर, बुद्धी को धरनी होती है ॥
उनकी सहाय करना तो कहां, सुर कई विघ्न पहुँचाते हैं ।
गर जरा चूक जावे ज्ञानी, सब-करनी विफल बनाते हैं ॥
पर मम आश्रित भक्त को, विघ्न न कोइ सताय ।
जिस पर भक्ती कर धरे, माया मोह थराय ॥
इसका ये कारन है राधे, भक्तों का बस सर्वस मैं हूँ ।
जीवन जोती, शुभ, अशुभ कर्म, अज्ञान, ज्ञान, यश, अयश मैं हूं ॥
वे मुझे स्वजन परिजन समझें, मेरे हित सारे कर्म करें ।
तिल भर भी जगह न मेरे बिन, जाने हरदम मम ध्यान धरें ॥
जो मिले उसी में तुष्ट रहें, मम अर्पण कर सब सुख भोगें ।
देवें नहिं मुझको दोष कभी, चाहे कितने भी दुख भोगें ॥
जिसकी ऐसीं हो वृत्ति प्रिये, वोही मम भक्त कहावेगा ।
ऐसे भक्तों को छोड़ कहां, बोलो भगवान सिधावेगा ॥
इनका ही हित साधन करने, मैं जग में आया करता हूं ।
इनका दर्जा सब से बढ़कर, अपने चित में मैं धरता हूं ॥
दुनियां की आंखों से ओझल, होकर भी उसके पास रहूँ ।
सच्चे शब्दों में वो मालिक, मैं हरदम उसका दास रहूं ॥
तुम अरु सारी गोपियां, हो अस भक्त महान ।
तुम लोगों को छोड़कर, कित कर सकूं पयान ॥
ब्रजबालायें हैं अंश तेरी, तू मेरी आत्मा है रानी ।
मैं आत्माराम रमूं तुझमें, नहिं समझ सकेंगे अज्ञानी ॥
अपनी अंतर दृष्टी बनाय, हृदय में मुझको थिर करलो ।
छोड़ो जग की बाहिर दृष्टी, यों विरह जनित सब दुख हरलो ॥
जाओ अब सब आराम करो, मैं भी निज घर को जाता हूँ ।
है सुबह महूरत चलने का, सारा प्रबन्ध करवाता हूँ ॥

मैं सत्य सत्य फिर कहता हूँ, इसमें न तनिक मिथ्या मानो ।
जहं ब्रज, गोपी अरु गायें हैं, वहां सदा कृष्ण को थिर जानो ॥
जितना है मोह उतना हि तिमिर, जहं सत्य प्रेम तहं जोती है ।
उस जोति में मधुर मिलन राधे, भक्तों की पूर्ण कसौटी है ॥

※ गाना ※

मैं भक्त के मन में भक्त मेरे हृदय में हरदम निवास पावें ।
न वो तजे मुझको स्वप्न में भी न हम कभी उनको तजके जावें ॥
तुम्हारी वृत्ती भी मुझ में लय है बताओ फिर तुमको क्या भय है ।
जगत से फेरी है तुमने आँखें तो, हम भी दर्शन सदा दिखावें ॥
विचारो अपना स्वरूप राधे, तुम्हारे बिन हम हैं नित ही आधे ।
करूँ हूँ स्वीकार तुमको जब मैं, तभी सगुण होके भूम आवें ॥
रखो ये विश्वास मन में प्यारी, जहां है राधा तहां बिहारी ।
फरक पडेगा कभी न इसमें, सिधारो तुम अब व हम भी जावें ॥

बढ़ी हुई थी विरह की, गोपिन चित जो ज्वाल ।
बचनामृत से कृष्ण के, शांत हुई तत्काल ॥
इस कलि में भी आज दिन, जिन हिय दृढ़ विश्वास ।
उन हित ब्रज में करत हैं, मनमोहन नित बास ॥
यों गोपिन को धीरज बँधाय, उनके स्थान को लौटाया ।
आ पहुँचे फिर अपने घर खुद, करुणानिधान श्रीव्रजराया ॥
यसुदा भी अतिशय विकल हुई, जब सुना कृष्ण कल जावेंगे ।
फिर खबर नहीं कुछ भी इसकी, आवेंगे या रह जावेंगे ॥
अस्तू प्रभु को लख माँ ने उठ, फौरन छाती से लगा लिया ।
और कहन लगी हे मनमोहन, तुमने मुझको अति दगा दिया ॥
तुम्हरे वियोग की खबर पाय, अति आतुरताई छाई है ।
जिस बात का था विश्वास नहीं, वो स्वयम् सामने आई है ॥

उस कंस महा दुखदाई ने, ये कैसा जाल रचाया है।
जो मम आंखों के तारे को, अति दूर हटाना चाया है॥
प्यारे कान्हा लाला मेरे, क्यों मुझे छोड़ तुम जाते हो।
क्या रक्खा है वहाँ उत्सव में, जो व्रज से नेह हटाते हो॥
कर कठिन तपस्या जप, तप, व्रत, वृद्धावस्था में सुत पाया।
वो भी यों बिछुड़ रहा मुझ से, विधना कैसा अवसर आया॥

मोह का प्रबल प्रताप लख, मुस्काये मायेश।
कर प्रणाम फिर मातु को, कहन लगे अखिलेश॥
हे जननी हे मात मम, वृथा न होउ उदास।
कुछ दिन रह मथुरापुरी, आऊं तेरे पास॥

कारन हम प्रजा कंस की हैं, अस्तू है उचित कहना मानों।
जब उसने भेजा दूत यहाँ, कर्तव है वहाँ जाना ठानें॥
गर करें नहीं आज्ञानुसार, अति त्रास हमें पहुंचावेगा।
वो है समर्थ बलवान बड़ा, व्रज को विध्वंस बनावेगा॥
मेरे अनिष्ट की चिन्ता तू, मत करे हृदय में धीरज धर।
तव आशिष से हे मातु मेरा, कर सके नहीं कुछ भी निश्चर॥
वैसे तो बिना सताये मैं, चींटी तक पर नहिं वार करूं।
जो खल पहुँचावें दुख मुझको, उसके फौरन ही प्राण हरूं॥
इसलिये छोड़ दे सोच फिकर, विश्वास सहित मोहि जाने दे।
खोटे विचार भावना को तू, माता दिल में मत आने दे॥
यों जननी को आस्वासन दे, प्रभु सारी व्यथा मिटाते हैं।
अति अधिक रात आजाने से, फिर शैया में सो जाते हैं॥

प्रातकाल के होत ही, उठे सभी व्रजलोग।
हुई तयारी चलन की, जाना कृष्ण वियोग।

छोटे व बड़े नर नारि सभी, फौरन नंद के द्वारे आये।
अवलोक भीड़ अति व्रजपति ने, उनको रस्ते में ठहराये॥

बोले हो चुकी तयारी सब, हम शीघ्र उधर ही आवेंगे।
आनंदकंद मनमोहन के, तुम सब को दर्श करावेंगे॥
ये सुनकर सब हो गये विदा, मथुरा पथ पर डेरा डाला।
उत्कंठा थी सब को चित में, झट दर्शन देवें नंदलाला॥
व्रषभानु नंदिनी भी आई, अगणित सखियों को संगलेकर।
होगई खड़ी इतने में लखा, आरहा प्रभू का रथ सुंदर॥
जिस समय निकट स्यंदन आया, राधा ने उसको घेर लिया।
और कहा हे मृदुहासी मोहन, क्यों हमसे निज मुख फेर लिया॥
जो ज्ञान दिया था तुमने प्रभु, हमने चित माँहि जमाया है।
फिर भी तुम बिन नहिं जिया लगे, छलिया तेरी कस माया है॥
मथुरा जाकर हे भक्त सुखद, हमरी ना याद भुला देना।
अपने कथनानुसार नटवर, जल्दी ही सब की सुधि लेना॥
प्रभु बोले क्यों घबराती हो, तुमको तज कहाँ ठिकाना है।
ये नंदलाल हे आल्हादिन, व्रजवासिन हाथ बिकाना है॥

चोली दामन सरिस है, तुम्हरा मेरा साथ।
जहाँ रहे व्रषभानुजा, तहाँ रमे यदुनाथ॥

कर धारन इसी ज्ञान को तुम, अब अपने अपने घर जाओ।
आऊंगा जल्दी ही वापिस, धीरज रक्खो मत घबराओ॥
इतने में एक गठरी लेकर, यसुदा भी तहाँ चली आई।
बोली ये माखन मेवा है, इसको ही खाना तहाँ जाई॥
तुमको मेरी सौगंद लला, वहाँ का न कोई भोजन खाना।
कैसी भी कोई भेट धरे, हरगिज चित को मत ललचाना॥
नयनों में प्रभु की मूरति को, धर मातु यशोदा ठाढ़ी है।
हिचकी आती हिय रोता है, हरि बिरह पीर अति बाढ़ी है॥
ये लख तज यान बिहारी ने, छू चरन मातु को ज्ञान दिया।
फिर सबको आश्वासन देकर, व्रज से तत्काल पयान किया॥

चित्र लिखे से रह गये, नर अरु नारि तमाम ।
आखिर लौटे सोच ये, आवेंगे घनश्याम ॥
इस तरफ यान यदुनंदन का, कालिंदी के तट पर आया ।
"स्नान करूंगा मैं यहाँ पर", अक्रूर ने नंद से फ़रमाया ॥
चल दिये व्रजाधीश्वर आगे, सफलक नंदन जल में पैठे ।
कर दिया खड़ा रथ वृक्ष तले, जिसमें थे रामकृष्ण बैठे ॥
ज्यों ही डुबकी ली, कृष्ण सहित हलधर पानी में दृष्टि पड़े ।
हैं! ये क्या कर ऐसा विचार, अक्रूर तुरत हो गये खड़े ॥
देखा रथ में दोनों भाई, बैठे बैठे मुस्काते हैं ।
भ्रम समझ फेर गांधनी सुवन, यमुना जल में घुस जाते हैं ॥
अबके जो आया नज़र, देख उसे अक्रूर ।
कठपुतली सम रह गये, चकित हुये भरपूर ॥
क्या देखा एक सिंहासन पर, आसनासीन हैं सहसवदन ।
उनकी गोदी में स्थित हैं, गोलोकनाथ गिरिराज धरन ॥
दक्षिण दिशि राज रहे प्रभु के, गिरजापति गिरजा लिये हुये ।
बांई दिशि हैं शोभायमान, विधि हरिपद में चित दिये हुये ॥
सनकादि, शक्र, नारद, गणेश, ये सन्मुख दृष्टी आते हैं ।
पीछे किन्नर गंधर्व खड़े, आनंद से चँवर डुलाते हैं ॥
चतुरानन चारों आनन से, राधापति के गुन गाय रहे ।
सनकादिक अति आनंद सहित, प्रभु को जयकार सुनाय रहे ॥
कर रहे हैं तांडव नृत्य तहां, श्री शैलसुता संग कैलाशी ।
आरही है नारद वीणा से, झंकार मनोहर सुखरासी ॥
शचिपति मृदंग कर माँहि लिये, आकर्षित ध्वनि फैलाते हैं ।
मंजीर बजाते गणनायक, गंधर्वादिक सब गाते हैं ॥
हो रहा कीर्तन प्रभु यश का, भक्ती हरिपद में लीन हुई ।
लख ऐसा अद्भुत दृश्य तुरत, अक्रूर की गति तल्लीन हुई ॥

भक्ती रस से भर गया, हृदय हुआ आनन्द ।
गद गद हो अक्रूर जी, कहन लगे सानन्द ॥
हे आदिपुरुष परिपूरनतम, सम्पूर्ण कारनों के कारन ।
हे अखिल विश्व के अधिनायक, आनंद रूप जग दुख टारन ॥
हे कृष्णचन्द्र गोलोकनाथ, हे सर्वाधार जगत स्वामी ।
तुमको प्रणाम करता हुँ प्रभो, हे नारायण अंतरयामी ॥
आकाश, अग्नि, जल, थल वायू, प्रकृति अपरा व परा सारी ।
इन्द्रियां, प्राण, मन, चित बुद्धी, तुम्हरी विभूति है गिरधारी ॥
सत, रज, तम गुणवाली माया, आधान तुम्ही से पाती है ।
जड़ चेतनादि सृष्टी सारी, क्षण मात्र में झट उपजाती है ॥
करते हैं आपका आराधन, कर्मेष्टि यज्ञ आदिक द्वारा ।
ज्ञानी समाधि में लखते हैं, तुम्हरा ही रूप भगवन सारा ॥
वैष्णव गिन तुमको वासुदेव, पूजन कर ध्यान लगाते हैं ।
शिव रूप समझ कर शैव तुम्हें, कर उपासना हरषाते हैं ॥
शाक्तिक तुमको शक्ती समझें, गज मुख के सेवक गणनायक ।
भैरव के भक्त गिने भैरव, तुमको ही हे जनसुखदायक ॥
यानी प्राणी कई भिन्न भिन्न, देवों को इष्ट बना ध्याते ।
पर पूजन तुम्हरा ही होता, तुम सर्व देव मय कहलाते ॥
नदियां जिमि चहुँओर से, निकल सिन्धु में जायँ ।
यों ही सारे मतों के केन्द्र आप कहलायँ ॥
हे गुणातीत माया से परे, अग्नी तव मुख माना जाता ।
हैं नेत्र युगल रवि शशि दोऊ, मस्तक सुरधाम कहा जाता ॥
आकाश नाभि है भूमि चरन, हैं दिशायें तुम्हरे कान प्रभो ।
सूरेन्द्र आपकी बाहू हैं, कुक्षियां सिन्धु भगवान प्रभो ॥
हैं केश वनस्पति, स्वांस वायु, अरु अस्थिपुंज पर्वत सारे ।
निशिदिन हैं पलक खुलना मिचना, तुम्हरा हे कृष्ण मुरलीवारे ॥

अमित जीव धारन करें, जिमि गूलर फल एक ।
तिमि तव रूप विराट में, हैं ब्रह्मांड अनेक ॥
समझा है जिसने ये रहस्य, वो समदर्शी बन जाता है ।
जल में, थल में, जड़ चेतन में, लख एक प्रभू हरषाता है ॥
पर तुम्हरी माया से भगवन, नहिं ज्ञानी भी बचने पाते ।
फिर उन जीवों की क्या गिनती, जो अज्ञानी माने जाते ॥
मैं मूढ़ भि माया का शिकार, हो रहा हूँ हे गिरवरधारी ।
मिथ्या चीजों को सत्य समझ करता हूँ प्रेम उनसे भारी ॥
हो रही है बुद्धि मलीन मेरी, दिन रात ठोकरें खाता हूँ ।
फिर भी चंचल चित को मोहन, नहिं वशीभूत कर पाता हूँ ॥
अस्तू आया हूँ शरण तेरी, करुणानिधान ये वर दीजे ।
माया से मेरा पिंड छुड़ा अपने चरणों में रख लीजे ॥
मैं जग में जो कुछ काम करूं, वो तुम्हरे अर्पण हो जावे ।
जो भला बुरा होवे मुझसे, वो सारा तेरा कहलावे ॥
जिसको मैं मेरी वस्तु कहूं, वो हों तव पद पंकज स्वामी ।
बस इतनी कृपा करो नटवर, मैं रहूँ सदा तव अनुगामी ॥
इतना कह अक्रूर ने, कीन्हा दंड प्रणाम ।
फिर जो देखा दृष्य वो, हुआ अलक्ष तमाम ॥
घबराकर गांदिनि सुवन, निकले जल के बार ।
आपहुँचे रथ के निकट, कृष्ण छवी उरधार ॥
प्रभु मुस्का कहने लगे काका कीन्ह अबेर ।
जल में क्या करते रहे, चलो करो नहिं देर ॥
हो रहे हो विस्मित से क्यों तुम, क्या नूतन दृष्य नज़र आया ।
नयनों में भरा हुआ है जल, रोमांच सकल तन में छाया ॥
कर जोड़ कहा तब सारथि ने, हे प्रभू आप खुद विस्मय हो ।
अद्भुत हो फिर अति अनुपम हो, क्या कहूँ नाथ ममबांह गहो ॥

जिस जन पर कृपा तुम्हारी हो, क्षण में भवसागर तर जावे।
जो नहीं दया का पात्र बना, वो सदा योंही गोते खावे॥
अस्तू मन वच कर्मों से मैं, केशव तव शरणे आया हूँ।
दो अभयदान मुझको यदुपति, माया से अति घबराया हूँ॥
यों कह अक्रूर जोत रथ को, फौरन मथुरापुर में लाया।
जहं देख रहे थे राह नंद, तहं राम कृष्ण को पहुँचाया॥

रथ से नीचे उतर कर, सफलक सुत अक्रूर।
बोला प्रभु से एक मम, विनय करो मंजूर॥

कर कृपा दोऊ भ्राता चलकर, मेरे घर को पावन कीजे।
इच्छानुसार भोजन कर फिर, मथुरा निरखन में चित दीजे॥
"मैं फेर किसी दिन आऊँगा", यदुराई के यों कहने पर।
चल दिये कंस के पास शीघ्र, सफलक सुत स्यंदन को लेकर॥
वहाँ जा बोले ले आया हूँ, मैं राम कृष्ण दोनों भाई।
सुनते ही अतिशय खुशी हुये, मथुरा नगरी के नरराई॥
कर दिया प्रबन्ध खूब पक्का, इत पुरी देखने नँदनंदन।
चल दिये संग हलधर को ले, आनन्दकन्द जन-मन-रंजन॥

परम सुहावन नगर था, खाई थी चहुँ ओर।
परकोटा अति रुचिर था, लेता था चित चोर॥

मणियों के सुन्दर द्वार बने, दृग चका चौंध फैलाते थे।
चौड़े बाज़ार भव्य मन्दिर, आकर्षित हृदय बनाते थे॥
हो रहा था सड़कों पर चहुँदिशि, छिड़काव सुगंधित पानी का।
अमरावति सरिस दृष्य था सब, व्रजमंडल को रजधानी का॥

खबर खड़ी जब शहर में, आये नंदकुँवार।
धाये पुरवासी सकल, निज निज काम विसार॥

होगये खड़े बाज़ारों में, सब पुरुष प्रेम आनन्द भरे।
युवतियाँ झरोखों पर छाई, अनगिनत भाव चित माँहि धरे॥

प्रति थल पर प्रभु को ठहराकर, खातिर करते थे पुरवासी ।
पहराते थे गल मालायें, सुन्दर पुष्पों की सुखरासी ॥
इकटक दृष्टी से हर्ष सहित, अवलोक रही थीं पुरबाला ।
हो जाय निहाल तिया मन में, मुस्काय लखें जेहि नन्दलाला ॥
सुन सुनकर व्रज लीलाओं को, तिरियाँ निज देव मनाती थीं ।
होजाय दर्श बनवारी का, यों नित प्रार्थना सुनाती थीं ॥
सौभाग्य उदय होगया आज, सब जन्म कृतारथ कर डाला ।
होगई प्रफुल्लित दर्शन कर, बरसाई फूलों की माला ॥
आपस में करने लगी बात, जो मोरमुकुट सिर धारे हैं ।
नव नीरद सम तन की शोभा, दोनों लोचन रतनारे हैं ॥
फिर जिनके सीधे कर में सखि, मुरली शोभा को पाय रही ।
हैं यही देवकी सुवन कृष्ण, जिनकी छबि काम लजाय रही ॥

गौर वर्णवाले अली, कहलाते बलराम ।
ऐसी शोभा आज तक, देखी नहीं ललाम ॥

क्या जाने व्रज बनिताओं ने, उस जन्म कौन तप कीन्हा है ।
जिससे इस युगल मूर्ती का, शुभ दर्शन नित प्रति लीन्हा है ॥
कोमल होने पर भी हैं बली, व्रज में कई दैत्य पछारे हैं ।
पूतना, अघा, बक, धेनुकादि, केशी, व्योमासुर मारे हैं ॥
आये हैं देखने धनुष्य यज्ञ, राजा ने इन्हें बुलाया है ।
करलो सखियों निज नेत्र सफल, कोई पुन्य उदय हो आया है ॥

इस प्रकार पुर नारियां, करहिं परस्पर बात ।
आगे बढ़ते जारहे, प्रेम सहित दोउ भ्रात ॥

इतने में देखा रजक एक, अनुचर ले आगे जाता था ।
थे धुले हुये कपड़े संग में, मदमत्त हुआ कुछ गाता था ॥
लीला पुरुषोत्तम ने उससे, मांगे कपड़े मुस्काकर के ।
कर बचन श्रवण वो दुष्ट रजक, बोला दृग लाल बनाकर के ॥

छोकरे ! तुझे क्या सूझा है, तेरी शामत आई है क्या।
मृत्यू से करता मुलाकात, होनी तुझको लाई है क्या॥
व्रज के गंवार अरु इच्छा ये, राजा के कपड़े धारेंगे।
जा भाग दयाकर कहता हूं, वरना मम अनुचर मारेंगे॥
प्रभु ने अति सरल स्वभाव से ही, एक थप्पड़ धोबी के मारा।
चक्कर खाकर गिर गया भूमि, होगया शीश धड़ से न्यारा॥
उसके नौकर सब वस्त्र छोड़, फौरन ही वहाँ से हवा हुये।
कर धारन वस्त्र कृष्ण हलधर, आगे की जानिब रवां हुये॥
एक दरजी ने इन कपड़ों को, कर ठीक श्याम को पहनाया।
प्रार्थना करी गिरधारी की, मनभावन सुन्दर वर पाया॥

बागवान था एक यहां, प्रभु का भक्त सुजान।
उससे मिलने को चले, जनवत्सल भगवान॥

अवलोक युगल सुन्दर मूरत, माली को परमानन्द हुआ।
उठ धाया नमन किया सोचा, अब दूर मेरा सब फंद हुआ॥
पुनि समयोचित पूजन करके, सुन्दर मालायें पहिराई
बोला कृतकृत्य हुआ भगवन, तव चरणों की शुभ रज पाई॥
यों कह फिर दंड प्रणाम किया, अति भक्ति सहित उस माली ने।
निष्कपट भाव लख दिये कई, "वर" उसको श्रीवनमाली ने॥

फिर आगे को चल दिये, हलधर नन्दकिशोर।
देखा एक कुबड़ी तिया, आती है इस ओर॥

है तीन जगह से अंग टेढ़ा, कर कनक कटोरा भव्य लिये।
जिसमें सुगंधयुत चंदन है, चल रही है वो नत दृष्टि किये॥
ज्योंही वह कुछ आगे आई, मनमोहन से दृग चार हुये।
रह गई ठगी सी मुख विलोक, पैदा कुछ नये बिचार हुये॥
सोचा इनही के लिए सभी, कहते हैं ये अविनासी हैं।
सच्चिदानन्द आनन्दकन्द, जीवों के घट घट बासी हैं॥

अवतरे हैं स्वेच्छा से भगवन, भूमी का भार हटाने को ।
गउओं के भक्तों के हित को, सद्धर्म यहाँ फैलाने को ॥
बस तभी तो इनके आनन पर, अति दिव्य तेज दरसाता है ।
इकटक लखते रहने पर भी, मन अरुची नहीं जताता है ॥
जब प्रगटे हैं खल बधने ही, रह सकेंगे चुप यहांपर भीनहीं ।
इस दुष्ट शिरोमणि राजा को, इस उत्सव में मारेंगे सही ॥
तब मैं डर से कँस के, क्यों चित में दहलाउं ।
सुन्दर चंदन का तिलक, इनके क्यों न लगाउं ॥
ये गुन बोली कुब्जा, भगवन्!, मैं कंस की दासि कहाती हूँ ।
है उसे मेरा चंदन पसंद, अस्तू वहाँ नित ले जाती हूँ ॥
पर तुमसे गुणग्राहक को पा, चर्चित तव अंग बनाऊंगी ।
इच्छा वर पाकर दीनबन्धु, बस कृतकृत्य हो जाऊंगी ॥

❊ गाना ❊

जाग गये मम भाग्य कन्हैयाजी के दर्शन पाये ।
जन्म सफल कर लिया हाथ से प्रभु चंदन चरचाये ॥
वक्र अंग को सुघड़ बनाया पर नवीन इक रोग लगाया ।
इसकी दवा वेगि ब्रजराया करिये जी घबराये ॥
तन मन अर्पण करू तिहारे कोटि अनंग लजावन हारे ।
शाम सलोने हे बनवारे अब क्यों रहे तरसाये ॥
क्या कारन मुख से नहीं बोलोहे जीवनधन मम मळ धोलो ।
अपने दिल की घुंडी खोलो हे भक्तन सुखदाये ॥

यों कह चंदन की खोर करी, हलधर समेत नंद नंदन के ।
सुंदर मृग मद की विंदी थी, फिर हर्षित हो ब्रजजीवन के ॥
लख प्रेम, प्रभू ने झटका दे, कुब्जा का रोग निवार दिया ।
उस अति कुरूप की मूरति को, नवयुवती सुन्दर नार किया ॥

पुलकित हो बोली तिया, आँचल प्रभु का थाम ।
घर पवित्र करिये प्रभो, चलिये श्रीघनश्याम ॥
यों कहा कृष्ण ने पहिले मैं, दुष्टों का काम तमाम करूं ।
फिर तेरे घर आकर बामा, तन चित की सारी पीर हरूं ॥
यों आश्वासन दे चले फेर, आगे हलधर अरु यदुराई ।
इतने में धनुष भवन इनको, दीन्हा दूरी से दिखलाई ॥
भीतर प्रवेश करके देखा, रक्खा है एक धनुष भारी ।
अनगिनत वीर योधा उसकी, कर रहे हैं पूरी रखवारी ॥
वे लोग मना करते हि रहे, माना नहिं गिरवरधारी ने ।
झट चढ़ा धनुष दो टूक किया, जन-मनरंजन भयहारी ने ॥
सुन धनुष भंग की घोर ध्वनी, दिग्पाल तुरत थर्राय गये ।
पृथ्वी हिल उठी गगनचर भी, घबराय गये दहलाय गये ॥
खल कंस भी सुन ये महा शब्द, दिल ही दिल में अकुलाय उठा ॥
कर [1]परसराम के वाक्य याद, सोचा जीवन का चमन लुटा ।
फिर भी सेना को हुक्म दिया, धावो वीरों जल्दी जाकर ।
उत्पाती बच्चों को मारो, या पकड़ बांध लावो यहाँ पर ॥
पा हुक्म चली सेना सारी, अति शीघ्र धनुषशाला आई ।
देखा रक्षक योधाओं से, कर रहे युद्ध दोनों भाई ॥
हथियारों की एवज़ में हैं, धनु के ही टुकड़े हाथों में ।
ले इन्हें फिर रहे दोनों ही, उन वीरों की आघातों में ॥
फिर भी आधे से अधिक वीर, तजकर शरीर यम धाम गये ।
जो बचे हैं वे भी हो हताश, भगने की चित में ठान रहे ॥
ये देख फ़ौज "पकड़ो मारो", की ध्वनि करती सन्मुख आई ।
लख नया विघ्न प्रभु के तन में, कुछ गुस्से से लाली छाई ॥
जैसे बालक टिड्डी दल को, बांसों से मार गिराते हैं ।
त्योंही श्री नंददुलारे भी, सब को यमपुर पहुँचाते हैं ॥

धनुष भंग कर वीर बध, आगे चले कृपाल ।
हुये चकित बल देखकर, पुर के वृद्धरुबाल ॥
इतने में दिनकर अस्त हुये करुणानिधान डेरे आकर ।
भोजन कर नंदराय के संग, सोगये सेज में सुख पाकर ॥
अब हाल सुनो मथुरापति का, जब से उसने ये सुधि पाई ।
धनु तोड़ सकल योधा बधकर, सह कुशल गये दोनों भाई ॥
तब ही से दुर्मति दुखी हुआ, व्याकुल बेचैन नज़र आता ।
निद्रा में स्वप्न दिखें खोटे, जाग्रत अपशगुनों का तांता ॥
दर्पण में जल में भूपति को, सिर रहित दृष्टि आती छाया ।
दो सूरज अरु दो चन्द्र दिखें, ये बात निरखि अति घबराया ॥
परछाईं में बहु छिद्र लखे, कानों का अनहद बन्द हुआ ।
पद चिह्न दिखें नहिं कीचड़ में, यों नृप का उत्साह मंद हुआ ॥
सुपने में देखा वृक्ष सभी, सोने के दृष्टी आते हैं ।
अति हर्ष सहित नृप को पिशाच, अपने हिय से लिपटाते हैं ॥
शिर मुंडा तेल भीजा नगा, हो खरारूढ़ दक्षिण जाता ।
करता है विष भक्षण खुश हो, गुडहल माला गल में पाता ॥
ये लख भय विकल नृपाल हुआ, चमका उठ बैठा पुनि लेटा ।
आया उसको चहुँ ओर नज़र, विकराल काल नंद का बेटा ॥
यों चिन्ता में सब रात कटी, होते ही प्रात सभा में आ ।
बैठा सिंहासन पर जाकर, बोला झट मंत्री गण बुलवा ॥

इन्तज़ाम झटपट करो, जा रंगशाला मायं ।
आज यहां से शत्रु मम, जिंदा लौट न जाय ॥
योधा शस्तर ले सजग रहें, मल्लों का दल यहां आजावे ।
और ड्योढ़ी के दरवाजे पर, गज को ले महावत टिक जावे ॥
नृप की आज्ञानुसार सारा, मंत्रियों ने झट परबन्ध किया ।
बाजों का होने लगा शब्द, पुर वालों ने भी दर्श दिया ॥

निज निज योग्यतानुसार सभी, मंचों को पाते जाते हैं।
इतने में ग्वालों से घिर कर, व्रजराज नंद तहं आते हैं॥
भेंटें दे मथुराधीश्वर को, जा बैठे अपने आसन पर।
सब ग्वाल बाल भी लखन लगे, वहां की शोभा अति हरषाकर॥
लख समय फेर रंगभूमी को, शल, तोशल, मुष्टिक मल्ल चले।
मुंडित सिर छोटी सी चुटिया, सिंदूर बिंदु जांगिया भले॥
अपने अपने गुरु को ध्याकर, तन में रज आन लगाते थे।
फिरते थे मुदित हो काल ग्रास, फूले नहिं अंग समाते थे॥

जब जमाव सब जम गया, तब हलधर घनश्याम।
रंगभूमि के द्वार पर, आये पूरन काम॥

अवलोक कुवलियापीड़ हस्ति, रंगशाला के दर्वाजे पर।
महावत से बोले मन मोहन, कुछ मुस्का भृकुटी टेढ़ी कर॥
हे हाथीवान हटा गज को, हम भीतर जाना चाहते हैं।
कहिं कुछ अनिष्ट ना हो जावे, इसलिये प्रथम समझाते हैं॥
पर इनकी सलाह सुनी न गई, उल्टा महावत ने गुस्सा खा।
मदमत्त काल सम हाथी को, दोनों के सन्मुख दिया बढ़ा॥
ये लख हरि ने लाघवता से, एक लात दई गज मस्तक पर।
हट गया हस्ति पीछे की तरफ, अकुलाकर व्याकुल हो थककर॥
पुनि अंकुश का प्रहार खाकर, जैसे ही वो वापिस आया।
एक ऐसा झटका दिया श्याम, मय सारथि के भू पर छाया॥

दोनों दांतों को लिया, प्रभु ने फेर उखाड़।
पीड़ा से गज मरगया, मार एक चिंघाड़॥
महावत का भी दांत से, करके काम तमाम।
रंगभूमि में भ्रातयुत, आये लीलाधाम॥

इस समय रही जिसकी जैसी, भावना रंगशाला भीतर।
उसको वैसे ही दृष्टि पड़े, लीलाललाम प्रभु नटनागर॥

मल्लों ने देखा महा मल्ल, पितु मातु को बाल नज़र आये ।
भक्तों ने इष्टदेव समझा, दुष्टों ने भयदाई पाये ॥
अज्ञानी पुरुषों ने इनको, हृदय में मूरख अनुमाना ।
योगियों को भासे तत्व रूप, गायकों ने नाद ब्रह्म जाना ॥
पुर के लोगों ने पुरुष श्रेष्ठ, यादवों ने स्वजन बिचारा था ।
नारियों ने मन्मथ सरिस लखा, नृप कंस ने काल निहारा था ॥

※ गाना ※

कृष्ण ने रंगभूमि पग धारा ॥
अपनी २ रुचि के माफिक सबने उन्हें निहारा ।
मात पिता ने शिशु सम देखा कंस काल नज़ारा ॥
नव युवतिन को जचे रतीपति यदुकुल भ्रात पियारा ।
योगीगण ने ज्ञान ज्योति अरु भक्त प्रभू उचारा ॥
खल को जचे भयंकर वपु में लीन्हे कर करवार ।
बलवानों ने प्रभु को देखा महा सुभट बलधारा ॥
ग्वाल बाल सगी साथिन ने, जैसा भाव निकारा ।
वो नहीं विषय लेखनी का है प्रेमी जाननहारा ॥

जिसके जैसे थे वहां, अंतःकरण विचार ।
वैसे ही दीखे उन्हें, श्री वसुदेव कुमार ॥
कर रहे भ्रमण रंगभूमी में, यों रामकृष्ण निर्भय होकर ।
जिस भांति सिंह शावक फिरता, मृग के झुंडों में वन भीतर ॥
अवसर विलोक चाणूर उठा, बोला हे कृष्ण इधर आओ ।
नृप लखना चाहते मल्ल युद्ध, अस्तू तयार तुम होजाओ ॥
बलराम लड़ेंगे मुष्टिक से, मथुरापति की ये इच्छा है ।
झटपट आजाओ अखाड़े में, देरी करना नहिं अच्छा है ॥

ये सुनकर कहने लगे, यदुनन्दन भगवान ।
कुश्ती लड़ना है लड़ो, लख निज सम बलवान ॥
हम मल्लयुद्ध से डरें नहीं, पर जाड़ हमारो बतलाओ ।
तुम पर्वत सम हम टीले सम, ये न्याय कहां का कह जाओ ॥
बोला चाणूर तुम्हारे सम, दीखे न कोई भी बलखानी ।
गजराज को सहज स्वभाव वधा, छल यज्ञ निधान हो जग जानी ॥
ऐसा कह प्रभु का हाथ गहा, और तुरत अखाड़े ले आया ।
मुष्टिक ने भी बलदाऊ को, अपने समान बल में पाया ॥
आरम्भ होगया मल्लयुद्ध, कर रहे दांव पर दांव दोऊ ।
गुथ रहे हाथ से हाथ तहां, मिल रहे पांव से पांव दोऊ ॥
चाणूर ने बहुतेरा चाहा, हरि को हाथों में लिपटाले ।
हड्डी पसली चूरन करके, नृप का मन चीता कर डाले ॥
पर जिनकी आश्रित माया को, योगी जन तक नहिं समझ सकें ।
थक जायँ यत्न करते करते, आखिर में हरिपद ओर तकें ॥
उन मायापति को तुच्छ मल्ल, चाहें हाथों में लिपटाना ।
हाथी के बच्चे को किम हो, कच्चे धागे में अटकाना ॥
बस न चला तब मल्ल ने, कीन्हा मुष्टि प्रहार ।
वो हरि वक्षःस्थल लगा, मनो पुष्प की मार ॥
आखिर प्रभु ने ऊंचा उठाय, दे चक्कर खल को फेंक दिया ।
गिरते हि दुष्ट निर्जीव हुआ, घर अपना यम के लोक किया ॥
इस तरफ हली ने मुष्टिक के, मुष्टिक द्वारा चट प्रान हरे ।
ये लख शल, तोशल कूद तुरत, दोनों भ्रातन से आन भिरे ॥
इनकी भी हुई गतो वोही, चाणूर मुष्टि ने जो पाई ।
बाकी के मल्ल प्रान लेकर, भग गये शक्ल नहिं दिखलाई ॥
इन लोगों की मृत्यु लख, गया कंस बौराय ।
क्रोध सहित उसने दिये, बाजे बन्द कराय ।

सिंहासन पर होगया खड़ा, बोला बांधो व्रजवालों को ।
वसुदेव देवकी को बधकर, मारो यादव कंगालों को ॥
आओ हे राम कृष्ण आओ मैं तुम्हें मार ही डालूंगा ।
मेरे सारे वीरों का मैं, बस बदला आज चुकालूंगा ॥
ये सुन झट नृप के निकट, जा पहुँचे गोपाल ।
राजा भी तलवार ले, खड़ा हुआ तत्काल ॥
अपने बचने के लिये किये, केते उपाय पर बस न चला ।
उसके सारे दुष्कर्मों का, पूरा बदला बस आज मिला ॥
प्रभु ने कर से झोंटे पकड़े, आसन से नीचे गिरा दिया ।
उस पर त्रिलोकी भार सहित, कूदे प्राणों को विदा किया ॥
रहता था कंस का ध्यान सदा, उद्विग्न कृष्ण की चिंता में ।
मृत्यू सम दिखते कृष्ण उसे, जाग्रत अरु निद्रावस्था में ॥
फिर मरते समय भी थे सन्मुख, वेही श्रीकृष्ण जगत साईं ।
इसलिये कंस को कृष्ण रूप, होगया प्राप्त हे नरराई ॥
बैठा शीघ्र विमान में, कहि जय जयति मुकुंद ।
गया तुरत गोलोक को, पाकर परमानंद ॥
जयकार हुआ नभ मंडल में, देवता सुमन बरसाने लगे ।
गंधर्व सुयश हरि का गावें, किन्नर शुभ वाद्य बजाने लगे ॥
रानियों ने अतिशय रुदन किया, करुणानिधान ने समझाया ।
पुनि चिता यमुन तट पर रचकर, अंतेष्ठि कर्म सब करवाया ॥
छुड़वाया मात पिता को फिर, हरि ने बंदीखाने जाकर ।
पुनि उग्रसेन को मुक्त किया, अरु बिठलाया सिंहासन पर ॥
उस वधिकालय को भी तोड़ा, कारिंदों को यमलोक दिया ।
यों गिरवरधारी ने अपने, आश्रितों को भय से रहित किया ॥
फिर गये नंद के डेरे पर, अहवाल सकल समझाते हैं ।
उनका अज्ञान नशाने को, सब ज्ञान हिये बैठाते हैं ॥

बोले, हे व्रजपति जग में सब, प्रानी करनी वश तन पाते।
जो पूर्व जन्म में कर्म किये, प्रारब्ध वो इसमें बनजाते॥
संयोग वियोग जन्म मरना, होनी भवितव्य आधि व्याधी।
अच्छा व बुरा अपयश यश सब, प्रार ध वश्य हैं अंत आदी॥
ज्ञानी हो भक्त हो मूढ़ चहे, प्रारब्ध भोगना होता है।
बाकी जो हैं क्रियमाण कर्म, नर ज्ञान भक्ति से खोता है॥
अस्तू दृढ़ होकर कृष्ण नाम, द्वादस करोड़ जप डालो तुम।
तो निश्चय मेरे लोक आय, सर्वोपरि थान जमालो तुम॥
यों कहकर पुनि नंद बाबा को, एक झलक तेज की दिखलाई।
माया सब दूर करी पल में, व्रजराज नयन चक चौंधाई॥

फिर आभूषण वसन शुभ, पहिराये निज हाथ।
ग्वाल सखा संग नंद को, विदा कीन्ह यदुनाथ॥
कंस निधन पूरन हुआ, श्रोताओं मति धीर।
"श्रीलाल" हित से कहो, जय जय जय यदुवीर॥

* इति श्रीकृष्णार्पणमस्तु *





श्रीकृष्णचरित्र अथवा श्रीमद्भागवत

ग्यारहवां भाग

उद्धव ब्रज यात्रा

रचयिता—

श्रीलाल खत्री

प्रकाशक—महाभारत पुस्तकालय, अजमेर

मुद्रक—के. हमीरमल लूनिया, दि डायमण्ड जुबिली प्रेस, अजमेर.

प्रथमबार २,००० } सम्वत १९९१ विक्रमी सन् १९३५ ईस्वी { मूल्य ।) आने

कृष्णस्तु भगवान् स्वयम्

स्तुति

(१)

जगत मैं भक्ती ही है सार ॥

जितने रिश्ते नाते भव के हैं सब ही निरधार ।
छाँड़ि गुमान मूढ़ निज बलको हरि चरनन चितधार ॥ जगत०
जिस बल पर तू फिरे भुलानो वो तो है दिनचार ।
जब यम दंड पड़े आकर तब कोई न लेय सम्हार ॥ जगत०
अच्छे बुरे कर्म अर्पण कर चरनन नंद कुमार ।
शरण जाय निर्भय हो यांधों सुमरन का तुम तार ॥ जगत०
हरि की कथा सुनो बाचो अरु गावो मंगलाचार ।
आरत होय पुकारो आवें श्रीराधा भरतार ॥ जगत०

मंगलाचरण

(२)

पीताम्बर घर पाप हर, गोकलेश गोपाल ।
ताप हरन जन सुख करन, जय जय दीन दयाल ॥
जय जलशायी जलदसम, सुभग सुहावन रूप ।
सृष्टि रचन, पालन, हरन, शिब अज विष्णु स्वरूप ॥
तुम गुरु गणपति शारदा, सहस बदन तुम शेष ।
विघन हरो मंगल करो, जग व्यापक अखिलेश ॥
बंदहुं वेदव्यास सुत, श्री शुकदेव सुजान ।
गायो कलिमल हरन जिन, "कृष्ण चरित" गुणखान ॥

*** श्लोक ***

वंशीविभूषितकरान्नवनीरदाभात्पीताम्बरादरुणबिंबफलाधरोष्ठात् ।
पूर्णेन्दुसुन्दरमुखादरविन्दनेत्रात्कृष्णात्परं किमपितत्वमहं न जाने ॥

❀ कथा प्रारम्भ ❀

जिन प्रभु के सन्मुख भये, विमुख अमंगल होय ।
भजहु सदां तिन कृष्ण को, सारे संशय खोय ॥
इस कराल कलिकाल में, कृष्ण भक्ति है सार ।
करहु निरंतर प्रेम से, अस सिद्धान्त बिचार ॥

विश्वास गुरू वचनों में हो, श्रद्धा हो शास्त्र आज्ञाओं में ।
हो एक निष्ट अरु एक इष्ट, आनंद में जग बाधाओं में ॥
उसको फिर अटकानेवाला, नहिं दृष्टि त्रिलोकी में आता ।
जिसके चित में बस रहे कृष्ण, वो कभी नहीं गोते खाता ॥
इसलिये पाठकों श्रोताओं, मन का सब मैल तुरत धोलो ।
अरु एक बार अति प्रेम सहित, बंसीवाले की जय बोलो ॥
फिर श्रवण करो प्रभु लीलायें, उद्धार कंस खल का करके ।
क्या किया फेर यदुराई ने, व्रज का ये महाभार हरके ॥
बसुदेव देवकी मुक्त हुये, व्रज गये विदा हो व्रजराई ।
मथुरा की उग्रसेनजी ने, प्रभु कृपा से फिर गद्दी पाई ॥
ये समाचार बिजली की तरह, सब देश विदेशों में छाया ।
उत्साह भंग असुरों का हुआ, भक्तों ने अति आनन्द पाया ॥
चलदिये थे मथुरा से जितने, परिवार कंस से भय खाकर ।
अब उन्होंने सारा हाल सुना, आगये तुरत ही हरषा कर ॥

किया सभी का प्रेम से, नटवर ने सत्कार ।
हुआ फेर मथुरा नगर, सुःखों का आगार ॥

इसके उपरान्त जनेऊ की, वसुदेव ने त्यारी करवाई ।
पुनि गुरु से विद्या पढ़ने की, दोउ भाइन ने आयसु पाई ॥
कर ब्रह्मचर्य व्रत को धारन, सब विद्याओं के निर्माता ।
विद्या पढ़ने के लिये चले, सुर विप्र धेनु आनंददाता ॥

उन दिनों ऋषीश्वर सांदीपनि, विद्यासागर कहलाते थे।
इनके गुरुकुल में अनगिनती, लड़के पढ़ने को आते थे॥
भारतवासी तो थे ही पर, अनदेश के भी रहनेवाले।
बालक यहां शिक्षा पाते थे, द्विज विप्र क्षत्रि कुल उजियाले॥
था आश्रम इन मुनिराई का, नर्वदा के सुभग किनारे पर।
गिरि मालाओं से घिरा हुआ, आता था नज़र सुन्दर मनहर॥
फिर वृक्षों से परिवेष्टित था, चहुँदिशि से ये आश्रम सारा।
पक्षियों का कलरव रहता था, था आनंददायक नज़ारा॥
बन गये थे शांत वृत्तिवाले, मुनि के आतम बल से थलचर।
पीते थे एक जगह पानी, मृग,मृगपति आनन्दित होकर॥
आधुनिक समय की सी वहाँपर, थीं इमारतें कुछ बनी नहीं।
छोटी छोटी कुटियायें थीं, आराम ऐश से सनी नहीं॥
था सादा ही जीवन सबका, परिपूर्ण सात्विक भावों से।
रहती थी बुद्धी अष्ट पहर, निर्मल दुरअभिलाषाओं से॥
श्रुति,शास्त्र,न्याय,व्याकरण,सांख्य, धनुवेद की किरियायें सारी॥
निज निज रुचि माफिक पढ़ते थे, गुरुकुल में रहकर ब्रह्मचारी।

इन विद्याओं में गुरू पूर्ण शिष्य को जान।
सिखलाते थे फिर उसे, परंब्रह्म का ज्ञान॥

आत्मा परमात्मा का रहस्य, समझाकर आगे गुरुराई।
बतलाते थे माया क्या है, और कैसी देती दिखलाई॥
संसार हुआ किस तरह प्रगट, आधार है ये किन तत्वों का।
प्रारब्ध और संचित क्या है, क्या सार है धर्म महत्वों का॥
पुनि कौन है तू आया कहां से, किस जगह तुझे जाना होगा।
यहाँ आने का क्या कारन है, किस मग को अपनाना होगा॥

यानी मोक्ष मुमुक्ष किम, पावे ये समझाय।
बहुधा शिष्यों को विदा, कर देते मुनिराय॥

लगभग सब चेले इतना ही, पढ़ गुरुकुल से आजाते थे।
कुछ भाग्यवान ऐसे भी थे, जो फिर भी वहाँ रहजाते थे॥
जो निशिदिन कर अनन्य सेवा, गुरु कृपा से बनते अधिकारी।
वेही यहाँ रहते थे उनको, मिलती थी एक वस्तु प्यारी॥
वो प्रिय वस्तु क्या थी राजन्, वो तत्व था गुरुवर के चित का।
था कुल विद्याओं का निचोड़, और सार था भक्तों के हित का॥

कहते गुरु उस तत्व को, "सगुणभक्ति" सुखकंद।
देते थे जिस शिष्य को, पाता परमानन्द॥

इस भक्ती के ऐसे साधन, गुरुदेव उसे बतलाते थे।
जिससे हृदय में फौरन ही, प्रभु के दर्शन मिल जाते थे।
हो जाता था वो जन निहाल, भव बंधन सकल मिटाता था।
अन्त समय फेर प्रभु रूप होय, प्रभु ही में जाय समाता था॥
यों गुरु सारी विद्याओं में, पारंगत थे तेजस्वी थे।
थे वृद्ध मगर समझाने के, सब ढंग सरल ओजस्वी थे॥
निःशुल्क पढ़ाई होती थी, शिष्यों को पुत्र समझते थे।
अरु शिष्य भी थे गुरु अनुगामी, सब काम प्रेम से करते थे॥
निज जननी सम गुरु पत्नी का, दरजा वहाँ माना जाता था।
जो चलता थोड़ा भी विरुद्ध, वो दंड भयंकर पाता था॥
हर दो चेलों के मध्य में इक, थी हृष्ट पुष्ट सुन्दर गाई।
देती थी पय अमृत समान, पीने से आती पुष्टाई॥

ब्रह्म महूरत में सदा, उठते थे सब बाल।
वातावरण विशुद्ध था रहते थे खुशहाल।

बस इस ही उत्तम गुरुकुल में, बलराम सहित श्रीनटनागर।
पहुँचे अरु सांदीपनि के ढिंग, जा किया प्रणाम शीश ना कर॥
लख श्याम गोर सुन्दर जोड़ी, होगये थकित गुरुकुल नायक।
सोचा क्या युगल मूर्ति धरके, आये खुद प्रभु आनंददायक॥

बैराग्य रूप होने पर भी, चित क्यों लालसा जताता है।
निज इष्टदेव सदृष्य इन पर, क्यों प्रेम उमड़ता आता है॥
विधि की गति विधि जाने मैं तो, शुभ गिनता हूँ इनका आना।
होगया है कुछ मम पुन्य उदय, जो पाया दर्शन मन माना॥
ये सोच ऋषीश्वर सांदीपनि, आशीर्वाद शुभ देते हैं।
सिर पर दोनों के हाथ फेर, अपने ढिंग बिठला लेते हैं॥
ईंधन में छिपी अग्नि सदृष्य, अपना सब तेज छिपा करके।
बलराम कृष्ण तहां रहन लगे, अरु पढ़न लगे हरषा करके॥
मुनि को ईश्वर के तुल्य समझ, अति भक्ति सहित दोनों भाई।
करते थे सेवा तन मन से, रहते प्रसन्न थे गुरुराई॥
निज सहपाठी लड़कों पर भी, प्रभु प्रेम भाव दरसाते थे।
समदर्शि परस्पर रहने का, कुछ सबक़ भी उन्हें सिखाते थे॥

गुरुकुल के बालक सभी अहो भाग्य निज जान।
करते प्रेम मुरारि से, रहते भक्त समान॥

इन बच्चों संग एक ब्राह्मण का, लड़का भी शिक्षा पाता था।
जिसका शुभ नाम "सुदामा" था, अति शीलवान दरसाता था॥
फिर था विरक्त सब विषयों से, मानो सतगुण की मूरति हो।
रहता था हरदम शान्त बना, सब बाल सुलभ चंचलता खो॥
जिस दिन से यहां पर आये थे, बलभद्र सहित लीलाधारी।
तब ही से थापन की चित्त में, इसने प्रभु की मूरति प्यारी॥
विद्या को पढ़ने के सिवाय, जितना भि समय मिल पाता था
उसको ये विप्र कुमार सदा, हरिभक्ती मांहि बिताता था॥

ज्यों हीरे को परखना, जाने जौहरि बाल।
त्यों इसको पहिचान कर प्रभु ने किया निहाल॥

हर दम मनमोहन के संग में, ये रहता छाया की भांती।
मशहूर हुई थी गुरुकुल में, इन मित्रों की बहुँदिशि ख्याती॥

गुरुवर अथवा गुरुपत्नि यदि, कोई भी काम बताते थे ।
तो कृष्ण सुदामा दोनों ही, उसको करने को जाते थे ॥
एक दिन ईंधन हो चुकने पर गुरुपत्नी निज पति पै आई ।
बोली घर में लकड़ी न रही वन में से दीजे मंगवाई ॥
फौरन हो मित्रों की जोड़ी, कर बांध सामने आती है ।
इनको लकड़ी लाने के लिये, चट आज्ञा भी मिल जाती है ॥

माता ने अति हर्ष से, दई कुल्हाड़ी हाथ ।
भोजन हित दीन्हे चने, चले सखा दोउ साथ ॥

जंगल में जाकर दोनों ने, सूखे वृक्षों को लकड़ी ली ।
कस कर उसको निज शीश धरी, फिर राह तुरत आश्रम को ली ॥
इतने में अकस्मात तहाँ पर, अति प्रचंड आंधी चलने लगी ।
नभ मंडल मेघाछन्न हुआ, जलधार वेग से गिरने लगी ॥
नहिं रहा दिशाओं का खयाल, ऐसा कुछ अंधकार छाया ।
जलपूर्ण हुआ जंगल सारा, सीधा रस्ता न दृष्टि आया ॥
आखिर दोनों एक तरुवर के, नीचे आकर सुस्ताने लगे ।
रख दिया भूमि पर बोझे को, तन को सरदी से बचाने लगे ॥
जो चने दिये थे माता ने, थे मित्र सुदामा पै सारे ।
हो भूख से अति व्याकुल उसने, सब के सब तुरत चबा डारे ॥
खागया भाग मोहन का भी, गो भूखा था पर पाप किया ।
उसको न्यायानुसार प्रभु ने, इस कर्म का कैसा दंड दिया ॥
वो प्रसंग श्रीमद्भागवत के, सत्रवें भाग में आवेगा ।
फल मिला क्या विप्र सुदामा को, इस गाथा को बतलावेगा ॥

अलकिस्सा कुछ देर में, हुआ बरसना बन्द ।
मुस्काकर निज मित्र से, बोले आनंदकंद ॥

हे सखा भूख लग आई है, लाओ अब चने चबा डालें ।
पीकर सरिता का जल फिर झट, अपने आश्रम का रस्ता लें ॥

अंतरयामी ने एक बार, दो बार चार छै बार कहा।
पर उत्तर मिला न कुछ इनको, वो विप्रबाल खामोश रहा॥
आखिर मोहन ने हाथ पकड़, यों कहा मित्र तुम चुप क्यों हो।
गिरपड़े, खोगये, खा डाले, क्या हुआ चनों का भट कहदो॥
कर जोड़ गिड़ गिड़ाता आखिर, बोला वो ब्राह्मण सुत बानी।
अति क्षुधा से पीड़ित हो मैं तो, खागया उन्हें शारंगपानी॥
सुन वचन मौन नंदलाल हुए, उसका भविष्य लख दुख पाया।
इतने में इन्हें खोज करता, स्नातकों का एक समूह आया॥
थे साथ में गुरु सांदीपनि भी, दोनों को स्वस्थ लख हर्षाये।
दे आशीर्वाद शीघ्र इनको, वापिस आश्रम में ले आये॥

चौसठ दिन में प्रभू ने, विद्या पढ़ी तमाम।
परिपूरनतम के लिये, नहीं कठिन ये काम॥

गुरुकुल में कई सुधार किये, उपदेश बालकों को दीन्हा।
इसलिये देवकी नन्दन ने, तहं इतना समय पूर्ण कीन्हा॥
लख बुद्धि अगोचर की बुद्धी, आश्रम वाले चकराते थे।
ये प्रभु हैं ये तो ज्ञात न था, फिर भी अति भक्ति दिखाते थे॥
एक रोज देवऋषि ने आकर, हरि महिमा गुरु को समझाई।
करते हि श्रवण सांदीपनि के, हिय में अति प्रसन्नता छाई॥

पत्नि सहित गुरुवर बने, हरि के भक्त अनन्य।
देख सांवरी मूर्ति को, गिना आपको धन्य॥
जब सब विद्या पढ़ चुके, भ्रात सहित घनश्याम।
तब गुरु के ढिंग आयकर, बोले लीलाधाम॥

विद्या दे हमें कृतार्थ किया, हम ऋणी हैं तुम्हरे गुरुराई।
अतएव गुरू दक्षिणा में क्या, चाहते हैं आप दें फ़रमाई॥
ये सुन गुरु कुछ सोचने लगे, इतने में गुरु पत्नी तहां पर।
आई और कहन लगी सुनलो, हे दीनबंधु सब गुण आगर॥

नारद की किरपा से हमने, सब भेद आपका जाना है ।
भूमी का भार हटाने को, यहां हुआ तुम्हारा आना है ॥
तब ही तो बचपन से तुमने, कई चमत्कार दिखलाये हैं ।
गिरिधारन निश्चर संहारन, आदिक सुनने में आये हैं ॥
तुम्हरे आने से धन्य हुआ, ये आश्रम हम सब धन्य हुये ।
सुर मुनि दुर्लभ, दर्शन पाकर, सब ऋद्धि सिद्धि सम्पन्न हुये ॥
गुरुकुल में विद्यादान हेतु, करते हैं मदद सब नरराई ।
इससे अब धन की कमी नहीं, रहती है यहाँ पर यदुराई ॥
हे मोहन आप असम्भव को, सम्भव कर दिखला सकते हैं ।
तुम्हरा यश गायन कर सारे, श्रुति शास्त्र ऋषी मुनि थकते हैं ॥
अस्तू हे नाथ अगर चाहो, देना दक्षिणा तो यह दीजे ।
मेरे सुत को लेगया सिन्धु, लाकर वापिस दे यश लीजे ॥

"कह तथास्तु" वारीशतट, पहुँचे श्री यदुवीर ।
नर तन धर सागर तुरत, आया इनके तीर ॥

पूजन कर प्रेम सहित सिर ना, बोला, प्रभु क्या करना होगा ।
किसलिये पधारे नाथ यहाँ, क्या करतब चित धरना होगा ॥
प्रभु ने इससे गुरु सुत माँगा, तब कहा सिन्धु ने हे गिरधर ।
ये काम किया शंखासुर ने, जो रहता है मेरे अन्दर ॥
ये सुन जल में जाकर हरि ने, झट निश्चर का बध कर डारा ।
पर जब गुरु सुत वहाँ मिला नहीं, तब फौरन यमपुर पग धारा ॥
कर श्रवण कृष्ण आगमन तुरत, यमराज नगर बाहिर आये ।
अर्चन वंदन पूजन करके, कर जोड़ बचन यों फ़रमाये ॥
हे नाथ अखिल सर्वे सर्वा, हे विप्र धेनु सुर हितकारी ।
क्या करें आपकी सेवा हम, आज्ञा दीजे हे बनवारी ॥

"कर्म विवश करता यहाँ, गुरु का पुत्र निवास ।
उसे शीघ्र देवो मुझे", बोले प्रभु गुणरास ॥

मत सोचो कर्म भोग उसका, हो चुका शेष या है बाकी।
मेरी इच्छा ही है प्रधान, जब चाहे गती करे ताकी॥
इसलिये शीघ्र जाकर पुर में, यमराज उसे यहाँ ले आओ।
चाहे जैसी हालत में हो, मत देर करो जल्दी जाओ॥

फौरन यम ने कर दिया, हाजिर गुरु का बाल।
ले उसको आश्रम तुरत, आपहुँचे गोपाल॥

अवलोकन कर निज इकलौते, सुकुमार प्राणप्रिय बालक को।
गुरु, पत्नि सहित आनन्द हुये, झट नमन किया जगपालक को॥
फिर ज्योंही मस्तक ऊँचा कर, गुरु ने प्रभु पर दृष्टी डाली।
देखा एक तेज चहूँदिशि है, बिच में शोभित हैं बनमाली॥
पर कृष्ण रूप की एवज में, विश्नू का रूप बनाये हैं।
बंसी कि जगह कर कमलों में, चतु आयुध शोभा पाये हैं॥
लख हृदय मूर्ती को सन्मुख, गुरु ने पुलका स्तुति ठानी।
एक निमिष बाद बन गये फेर, श्रीकृष्ण रूप प्रभु गुणखानी॥
अरु बोले यदि कुछ और हुक्म, हो तो गुरुवर फ़रमाइयेगा।
ये शिष्य तुम्हारा हाज़िर है, सेवा ले आनन्द पाइयेगा॥

रोमांचित तन होगये, गुरु दंपति तेहि काल।
कहा चरण की भक्ति बस, देवो दीनदयाल॥
कहतथास्तु हलधर सहित, चलन लगे घनश्याम।
इतने में इनके निकट, आया मित्र सुदाम॥

अरु कहन लगा हे मनमोहन, मुझको क्यों छोड़े जाते हो।
क्या ध्यान मित्रता का न रहा, जो यों मुंह मोड़े जाते हो॥
नटवर ने गले लगा इसको यों कहा मित्र चिंता न करो।
मैं तुम्हें कभी नहिं भूलूंगा, विश्वास रखो सब शोक हरो॥
जो करते मेरी याद सदा मैं याद में उनकी रहता हूं।
जो मुझे बिसरते नहीं दोस्त, मैं उनको नहीं बिसरता हूँ॥

*** गाना ***

घड़ी आधी घड़ी भी मुझमें जो नर मन लगाते हैं।
मैं सच कहता हूं निश्चय ही मुझे ढिंग अपने पाते हैं॥
किया करता हूं हरदम याद उनको हे सुदामा मैं।
जो सच्चे भाव से अपना मुझे सब कुछ बनाते हैं॥
रहेगा तुम में मुझ में उम्र भर नाता मिताई का।
पड़ेगा फर्क इसमें कुछ नहीं सौंगंद खाते हैं॥
यदि कुछ भी कठिनता हो कभी हे मित्र दुनिया में।
तो फौरन मम निकट आना ये हम तुमको बताते हैं॥

यों कह फिर गुरुकुल के सारे, लड़कों से मिलकर गिरधारी।
आगये लौटकर मथुरा में, कर दर्शन हरषे नरनारी॥
उग्रसेन नृप के यहाँ, थे एक पुरुष सुजान।
उद्धव जिनका नाम था, मंत्री थे मतिवान॥
फिर नीति, निपुण, धर्मज्ञ, धीर, आदिक सब गुण की खानी थे।
अरु सखा थे गिरिवरधारी के, ज्ञानियों में ये लासानी थे॥
एक दिवस भक्त दुखभंजन ने, इनको अपने ढिंग बुलवाया।
समयोचित आदर मान दिया, अति प्रेम सहित यों फरमाया॥
हे उद्धव! तुम सद्दृष्य ज्ञानी, मैं नहीं किसी को पाता हूँ।
बस इसीलिये वृन्दावन में, तुमको भिजवाना चाहता हूं॥
मम विरह दुखी ब्रजवालों को, हे मित्र जायकर समझाना।
मेरे असली स्वरूप को तुम, उनके हृदय में बिठलाना॥
पितु नंद यशोदा माता से, कहना सप्रेम मम पालागन।
फिर कहना राम कृष्ण दोनों, हैं सुखी करो चिंता त्यागन॥
पुनि मिलना गोप कुमारों से, उपदेश उन्हें भी देना तुम।
कर ज्ञान प्रगट उनके चित में, संताप सकल हरलेना तुम॥

ब्रजबालाओं की दशा, कहूँ किस तरह मित्र ।
मिला न मुझको आजतक, ऐसा प्रेम पवित्र ॥
अपने प्रिय प्राणों से बढ़कर, गोपियों ने मुझको माना है ।
मेरे हित सब परिवार तजा, मुझ में ही चित्त लुभाना है ॥
हे उद्धव ! जो मम चाहत में, ऐहिक व पारलौकिक सारे ।
सुःखों का त्यागन करते हैं, वे हैं मुझको अतिशय प्यारे ।
अस्तू जब से व्रज तजा मैंने, आती है उनकी याद सदां ।
होगई शान्ती भंग मेरी, रहता है मन नाशाद सदां ॥
गोकुल से आते समय उन्हें, दे आया था ये आश्वासन ।
मैं शीघ्र लौट कर आऊंगा, करना न वृथा व्याकुल तन मन ॥
बस इसी आस में वे सारी, हैं जीवन धारन किये हुये ।
रहती हैं नित प्रति ध्यान मग्न, मम पद में चित को दिये हुये ॥
उनका चित होता यदी, सखा उन्हीं के पास ।
विरह अग्नि में तुरत ही, होता जलकर नास ॥
इसलिये जिस तरह बने मित्र, इनका सब विरह दूर करना ।
निज ज्ञान से इनके हृदय में, निर्गुण का पूर्ण तत्व भरना ॥
ताके मम तन से नेह त्याग, वैराग को सारी अपनावें ।
मुझको नंद का लड़का न गिने, पर ब्रह्म ईश चित में लावें ॥
इसी काम के वास्ते, व्रज को करो पयान ।
अधिक कहूँ मैं क्या तुम्हें, हो तुम स्वयम् सुजान ॥
प्रभु पद शीश नवाय के, बोले उद्धवराय ।
फ़रमाया जो आपने, करूं वही चित लाय ॥
गुरु कृपा अनुग्रह तुम्हरे से, सहज हि सब काम सँवारूंगा ।
जिस तरह बनेगा उसी तरह, उनका सब शोक निवारूंगा ॥
तुम्हरे स्वरूप का रहस्य उन्हें, कुछ दिन तहँ रहकर समझाऊं ।
हो जायँ आप निश्चिन्त नाथ, होते हि प्रात व्रज को जाऊं ।

प्रभु ने प्रसन्न हो निज स्यंदन, निज मुकुट और अंगार दिया ।
"तुमसे ऐसी ही आशा है", यों कह मुस्काकर विदा किया ॥
सूर्योदय होते ही उद्धव, निज गुरुदेव को सिर नाकर ।
चल दिये तरफ वृंदावन की, प्रभु के रथ पर चढ़ हरषाकर ॥
मथुरा से कुछ दूरी पर आ, चलते चलते सोचा मग में ।
बुद्धी का पूर्ण विकास करूं, सतज्ञान भरूं व्रज रग रग में ॥
कोशीश अगर की जावे तो, जड़ में भी ज्ञानोदय होवे ।
फिर नर नारी तो चेतन हैं, उन पर क्यों नहीं विजय होवे ॥
अष्टांग योग का पूर्णतया, मैं साधन उन्हें सिखाऊंगा ।
ये मन क्योंकर वस में होता, इसका रस्ता बतलाऊंगा ॥
संसार के सारे विषय उन्हें, मिथ्या ही कर समझाना है ।
सत ज्ञान रूप रवि तेज दिखा, अज्ञान निशा दुरवाना है ॥
जिस समय बैठ व्रजवालों में, अपना सब ज्ञान सुनाऊंगा ।
निश्चय है वारी वारी से, उनको निज शिष्य बनाऊंगा ॥

यही सोचते सोचते, वृन्दावन के पास ।
आपहुँचे उद्धव सखा, छवि लख भरा हुलास ॥

हो रहा था रवि इस समय अस्त, पश्चिम में लाली छाई थी ।
आ रही थी जंगल से गायें, धूली नभ मंडल धाई थी ॥
गउओं के गल में पड़ी हुई, घंटियां शोर फैलाती थीं ।
बंशी ध्वनि गोप कुमारों की, नटवर की याद दिलाती थी ॥
कहिं श्वेत वर्ण सुन्दर बछड़े, निज उछल कूद दिखलाय रहे ।
कहिं इन्हें पकड़ने की खातिर, ग्वाले इत उत को धाय रहे ॥
हो रहा था गो दोहन घर घर, प्रभु के गुणगन सब गाते थे ।
छोटे बच्चे मनमोहन के, शुभ भेष में दृष्टी आते थे ॥

लड़कों को इस रूप में, रखने से भूपाल ।
अधिक दूध देती गऊ, समझ इन्हें गोपाल ॥

चौपायों का केशव के प्रति, अस प्रेम देख उद्धव फूले।
पर जब व्रज वनिताओं को लखा, सब तनोवदन की सुधि भूले॥
क्या निरखा बाल खुले सबके, आभूषण तन पर एक नहीं।
कपड़े भी मामूली से हैं, कर पर मंहदी की रेख नहीं॥
तल्लीन हो एक ध्यान में सब, कर रहीं जबां से उच्चारन।
हे कृष्ण कृष्ण हे मनमोहन, हे नटनागर गिरवरधारन॥
गो देह दृष्टि आती दुर्बल, पर आनन तेज की खान बना।
सब को भक्ती की प्रति मूरति, लख कृष्ण सखा हैरान बना॥
यहां से आगे बढ़ फिर देखा, चौपाल में बैठे ग्वाल कई।
कर रहे कीर्तन केशव का, गाते लीला आनन्द मई॥
नभचरों की मृदु बोली में भी, हरिनाम की ही ध्वनि आती है।
तरुवर पर चढ़ी लतायें भी, बस यही भाव दरसाती हैं॥
यानी व्रज के जड़ और चेतन, हो रहे हैं मोहन मय सारे।
ये लख उद्धव ने मन ही मन, बोले प्रभु के जय जय कारे॥

कृष्ण ध्यान में रत हुये, पहुँचे नन्द की पौर।
स्यंदन की आवाज़ सुन, आई यसुमति दौर॥
प्रभू सखा ने प्रेम से, कीन्हा दंड प्रणाम।
कृष्ण मित्र तेहिश्रवणकर, खुशी हुई नंद वाम॥

अति नेह सहित इनको घर में, लाकर माता ने बिठलाया।
धुलवाकर हाथ पांव सुख से, फिर इच्छित भोजन करवाया॥
इतने में गायों से निवृत, हो नन्दराय भी आय गये।
उद्धव को घर में बैठे लख, हरषाय गये पुलकाय गये॥
अरु कहन लगे हे कृष्ण सखा, मथुरा का सारा हाल कहो।
वसुदेव मित्र सुख से तो हैं, अच्छे तो हैं गोपाल कहो॥
क्या कभी कृष्ण हम लोगों की, गउओं की, श्रीगोवर्धन की।
गोपों की, गोप कुमारों की, व्रजबालाओं, वृन्दावन की॥

करते हैं याद अरु क्या फिर भी, जनमनरंजन यहां आवेंगे ।
क्या ऐसे भाग्य हमारे हैं, जो हम फिर दर्शन पावेंगे ॥
मनमोहन ने हम लोगों को, कालीदह से, दावानल से ।
अजगर से, अगणित असुरों से, वायु से, वर्षा के जल से ॥
कई बार बचाया है उद्धव, उस द्दष्य की जब सुधि आती है।
हो जाते हैं सब अंग शिथिल, व्याकुलता आन दबाती है ॥

मुनिवर गर्गाचार्य से, सुनकर भेद तमाम ।
गिनता हूँ श्रीकृष्ण को, स्वयम् प्रभु सुखधाम ॥

देवों का कोई कार्य करने, धर मनुज रूप यहाँ आये हैं ।
तब ही तो जब से जन्म लिया, कई चमत्कार दिखलाये हैं ॥
था दस हज़ार हाथियों का बल, जिसके तन में वो कंस हना ।
बलवानी मल्लों को बधकर, कर दिया कुवलियापीड़ फना ॥
पुनि जैसे गज लीला पूर्वक, छोटी सी छड़ी तोड़ डाले ।
त्योंही उस तीन ताल ऊँचे, महा धनुष के टुकड़े कर डाले ॥
फिर एक हाथ पर सात दिवस, गोवर्धन धारन किये रहे ।
डरते थे देवता तक जिनसे, ऐसे असुरों के प्रान दहे ॥

फिर भी ममता प्रबल है, उठे विरह की हूक ।
बिन देखे घनश्याम के, होता दिल दो टूक ॥

हे राजन् कृष्ण प्रेम उन्मत, कर कृष्ण याद वे व्रजराई ।
विह्वलता वश खामोश हुये, दोउ अंखियाँ आँसू भरलाई ॥
नन्दरानी भी थिर रह न सकी, हो गया विरह सुत का ज्यादा ।
रो उठी मार कर हूक तुरत, बोली गुपाल आजा आजा ॥
फिर कहन लगी श्री उद्धव से, बेटा क्या दिल का हाल कहूँ ।
कर याद सांवरे की लीला, निशदिन बिछोह का दुःख सहूँ ॥
होते ही प्रात कलेवा कर, नटवर नित बन को जाते थे ।
अपने प्रिय प्राण सखाओ संग, सारे दिन गऊ चराते थे ॥

गो दोहन की विरियां आकर, गायों को खुद ही दोहते थे।
मुरली की ध्वनि सुन नर तो क्या, गायें बछड़े सुधि खोते थे॥
हिल गये थे ऐसे मोहन से, सुन बंसी कर निज 'कान' खड़े।
अति वेग सहित उत ही धाते, रहते थे जहाँ पर 'कान्ह' खड़े॥
अब भी वेणू की मधुर ध्वनी, गोपाल बाल नित करते हैं।
पर ना उत्सुकता गायों में, ना धेनु समूह चित धरते हैं॥
इस स्वर्ग सरिस वृन्दावन का, गोपाल विना बेहाल हुआ।
प्राणों से रहित शरीर सरिस, ब्रज गोपी गोप व ग्वाल हुआ॥
कालिंदी की काली लहरें, सावन की श्याम घटा ऊधो।
घनश्याम की याद दिला देती, रहता है हृदय फटा ऊधो॥
उनकी लीला की जगह देख, ये प्राण बहुत व्याकुल होते।
उनके संगी साथी भी नित, हा! कृष्ण कृष्ण कह जी खोते॥
क्या हाल कहूं गोपियों का मैं, जब मिलोगे तो मालुम होगा।
उन विरह की प्रतिमाओं को लख, तुमको भी दुःख अगम होगा॥

❊ गाना ❊

निगोड़ा भाग्य बुढ़ापे में रंग लाया है।
हृदय के टुकड़े से इकदम विछोह कराया है॥
इतना दुख तो न था जब थे बगैर सुत के हम।
कन्हाई ने तो हे ऊधो मृतक बनाया है॥
क्या नदी, क्या गऊ, क्या ग्वाल गोप, क्या गिरिवर।
सभी पै श्याम जुदाई ने रंग जमाया है॥
"शीघ्र आऊँगा" यह कह तो गया है वह छलिया।
मगर आशा व निराशा में मन भुलाया है॥

यों हरि माता ने किया, कई प्रकार विलाप।
कृष्ण विरह ताजा हुआ, बढ़ा बहुत संताप॥
नंद यशोदा का निरख, प्रभु प्रति अस अनुराग।
प्रेम मगन उद्धव हुए, लगे सराने भाग॥
आनंदाश्रु नेत्रों में भर, बोले हरि मित्र मधुर बानी।
जग जीवों में अति श्रेष्ठ हो तुम, हे व्रजाधीश हे व्रजरानी॥
कारन तुम्हरा त्रिभुवनपति से पितु माता का सा नाता है।
ऐसी पदवी त्रिलोकी में, अति भाग्यवान ही पाता है॥
फिर जिनमें अंत समय क्षण भर, मन को कर शुद्ध लगाने से।
सब कर्म वासना क्षय होती, बचता नर दुर्गति पाने से॥
होता स्वरूप साक्षातकार, तद्रूप भावना बन जाती।
सात्विक वृत्ती हो जाने से, मुक्ती फौरन सन्मुख आती॥
उन्हीं विश्वात्मा विश्वरूप, सब विश्व प्रगट करनेवाले।
सुर विप्र धेनु संतों के लिये, स्वेच्छा से तन धरनेवाले॥
मनमोहन में तुम दोनों की, है अनन्य भक्ती सुखखानी।
अतएव धन्य, कृत कृत्य हो तुम, है सफल तुम्हारी जिंदगानी॥
पर हे नँद हे यशुदा माता, मम एक विनय स्वीकार करो।
प्रभु पर से सुतवत् मोह हटा, भगवान् समझकर ध्यान धरो॥
वे हैं अनादि अव्यक्त सदा, नहिं नाम रूप उनका कोई।
अशरीर अकर्मा होकर भी, आते हैं फ़क़त जन हित सोई॥
लकड़ी में अग्नीवत सबके, अंतरआत्मा में रहते हैं।
सब जग के साक्षीभूत हैं ये, ये वेद शास्त्र सब कहते हैं॥
गया समय फिर लौटकर, आता नहीं व्रजेश।
तजो मोह अरु कृष्ण को, भजो समझ अखिलेश॥
आवेंगे जल्दी यहां, नटवर लीलाधाम।
रात हुई अब जाय कर, करो आप आराम॥

मैं रहकर कुछ दिन तक यहां पर, गोपालों को समझाऊंगा।
गोपियों को भी सतज्ञान बता, सीधा रस्ता बतलाऊंगा॥
ये सुनकर नंद यशोदा ने, अति निशा जान विश्राम किया।
होते हि प्रात उद्धवजी ने, श्रीरवि तनया का मार्ग लिया॥
इत उठे सकल गोपी व गोप, हरि का रथ लख अचरज पाया।
सोचा क्या फिर वो दुष्ट क्रूर, अक्रूर यहां वापिस आया॥
क्या अब वो हमरे कृष्ण रूप, प्राणों से रहित तन को लेगा।
इनके मांसों से निज स्वामी, मृत कंस को पिंड दान देगा॥
इतने में नंदरायजी ने, आ इनसे हाल कहा सारा।
जिस लिये जिस निमित उद्धव ने, वृन्दावन में था पगधारा॥
ये सुन मुरझाई हुई कली, गोपियों की कुछ कुछ खिल आई।
प्रिय का संदेश मिलेगा अब, ये सोच सभी मन हरषाई॥
श्री रासेश्वरि आल्हादिन ने, कर श्रवण हाल अति सुखपाया
संध्या को हो यमुना तट पर, सम्मिलन सभी से फ़रमाया॥

लौट गईं निज निज भवन, गोप सुता तत्काल।
एकत्रित हो गोप सब, आ बैठे चौपाल॥

कर संध्या वंदन निस्य नेम, ज्योंही हरि मित्र तहां आये।
चट घेर लिया गोपालों ने, लाकर सिंहासन बिठलाये॥
फिर कहा हे यदुकुल श्रेष्ठ कहो, नयनाभिराम अच्छे तो हैं।
घनश्याम सुखद लीलाललाम, व्रज प्रेम धाम अच्छे तो हैं॥
हर लिया प्राण कंसासुर का, पुनि उग्रसेन को राज्य दिया।
संतों को शांति प्रदान करी, ये अति ही उत्तम काम किया॥
उनका तो ध्येय सदां से ही, निर्बल की रक्षा करना है।
जो उनका होकर रहे सदां, उसका सारा दुख हरना है॥
पर केवल रक्षक का नाता, हमने न कृष्ण से जोड़ा है।
हम तो गिनते जीवन सर्वस, फिर काहे को मुंह मोड़ा है॥

उद्धव क्या कभी दीनबंधु, हम लोगों की सुधि करते हैं ।
अपने प्रिय बाल सखाओं का, कभि ध्यान भी चित में धरते हैं ॥
क्या कहूं दशा यहां की तुम से, व्रज रंजोग़म की मूरत है ।
बिन श्याम रंग बद रंग हुये, जीते हैं यही गनीमत है ॥
यमुना तट, गोवर्धन गिरि पर, कुंजों में, वृक्षन छाया में ।
नित नव लीला प्रभु करते थे, बीथिन में अरु चरवाया में ॥
था कैसा सुन्दर सुखद समय, कई बरस पलक सम बिता दिये ।
कर कर के याद उन बातों को, होता है अब दुख दाह हिये ॥
आराम न बिन नयनाभिराम, सुखकन्द बिना कुछ सुःख नहीं ।
सब गया साथ गिरधारी के, जिन्दगी भार सम होय रही ॥
अस्तु कहो कब तक यहाँ, आवेंगे घनश्याम ।
व्रजजीवन, व्रजदुखहरन, व्रजपति व्रजआराम ॥
उद्धव बोले भोले ग्वालों, जो दुख का दुःख मिटा सकता ।
देता है कुशल को कुशल सदाँ, वो कैसे दुख सुख पा सकता ॥
अस्तू उनकी क्या कुशल कहूँ, वे नित आनन्द बिहारी हैं ।
उनको मनुष्य हरगिज़ न गिनो, त्रैलोक्यनाथ असुरारी हैं ॥
उनकी सत्ता से सूर्य चन्द्र, जग को आलोकित करते हैं ।
यम इन्द्र कुवेर वरुण सुरगण, सृष्टी कारज अनुसरते हैं ॥
हरि हर ब्रह्मा भी हे गोपों जिनके एक अंश कहाते हैं ।
वो कैसे होंगे नन्दसुवन, ये भाव न मुझे सुहाते हैं ॥
भेजा है नटवर ने मुझको, सतज्ञान तुम्हें सिखलाने को ।
मोहन का असली रूप है क्या, ये सारा भेद बताने को ॥
हे मित्रों दुख का मूल रूप, इस तन में मन माना जाता ।
ये वशीभूत जब तक न होय, तब तक न मनुज थिरता पाता ॥
जो कुछ तुम चहुँदिशि देखते हो, आवरण ये सब माया का है ।
उस निर्गुण में जो गुण दिखता, आचरण वो सब माया का है ॥

कर्तव्य तुम्हारा व्रजवालों, है यही मुमुक्षू बन जाओ ।
अष्टांग योग साधना करो, तब मन काबू में कर पाओ ॥
आसन यम नियम प्राण साधन, अरु प्रत्याहार विचारो तुम ।
चित देकर ध्यान धारना में, हो समाधिस्थ मम प्यारो तुम ॥
तब समझोगे नटवर क्या हैं, क्या पिंड और ब्रह्मांड में है ।
आत्मा परमात्मा का रहस्य, क्या है क्या श्रुति के कांड में है ॥

फंसे हुये हो मोह में, करते वृथा विलाप ।
बिना ब्रह्म चीन्हे कभी, मिटे न तन का ताप ॥
उद्धव के सुनकर वचन, श्रीदामा अकुलाय ।
बोला हमको कृष्ण बिन, और न कछू सुहाय ॥

ग्रामीण मूर्ख गोपाल हैं हम, क्या समझें ज्ञान ध्यान ऊधो ।
यम नियमासन क्या होते हैं, क्या प्राण की है पहिचान ऊधो ॥
है हमरा हृदय स्थिर फिर क्यों, अष्टांग योग साधा जावे ।
जो श्याम रंग में डूब रहा, उस पर किम दूजा रंग आवे ॥
है ध्येय हमारा एक मित्र, आजन्म गुरू सेवा करना ।
गउओं के प्राण गुपाला को, त्रिभंगी छवि चित में धरना ॥
रग रग नस नस में व्याप रहा, वो सांवल कुँवर कन्हाई है ।
किस तरह उसे भूलें ऊधो, जिन हम संग धेनु चराई है ॥
व्रज रक्षा हित जो ढाल बना, गिरि गोवर्धन कर धारा था ।
कालीदह जल पी मृतक हुये, तब उसने आन उबारा था ॥
क्रीड़ा में कभी न कोप किया, हमको जिताय खुद हारा है ।
वो छलिया भूला जाय नहीं, प्राणों से ज़्यादा प्यारा है ॥
माखन चोरी में भी भाई, निज को पकड़ाया हमें बचा ।
हमको तो इस त्रिलोकी में, बस फ़क़त एक वो कृष्ण जचा ॥
योगेश योगियों को होगा, ज्ञानियों को वो होगा निर्गुन ।
हमरा तो सखा संघाती है, जीवनधन है वो नन्दसुवन ॥

हमने जो छवी निहारी है, नयनों से ओट न हो सकती ।
जो असर हुआ उसका दिल पर, विरथा वो चोट न हो सकती ॥
उसके वियोग ने हे यादव, हमको ये सबक़ सिखाया है ।
हरदम उस बंसीवाले को, निज ध्यान मे हमने पाया है ॥
है वृथा वो सम्भाषण जिसमें, नटवर यश विमल पवित्र नहीं ।
वो गाथा बिल्कुल फीकी है, जिसमें श्रीकृष्ण चरित्र नहीं ॥
जल रहे हैं उसके विरह में हम, मन घी की आहूती डारो ।
तुमसे बस यही प्रार्थना है, हम मरे हुओं को मत मारो ॥
ज्ञान योग यम नियम का, हमें नहीं कुछ भान ।
हमरे तो बस एक हैं, मोहन जीवनप्रान ॥

*** गाना ***

बेकार है तुम्हारा समझाना हमें ऊधो ।
प्रिय कृष्ण के चरन से छुडवाना हमें ऊधो ॥
जब जानवर भी अपनी प्रिय वस्तु नहीं तजते ।
हम हैं मनुज वृथा है बहकाना हमें ऊधो ॥
आपस में प्रेम करना कान्हा ने सिखाया है ।
है यत्न विफल उससे हटवाना हमें ऊधो ॥
हैं कृष्ण इष्ट हमरे हम भक्त कृष्ण के है ।
अब ज्ञान का सबक़ मत सिखलाना हमे ऊधो ॥

हे राजन् जब इन प्रेम रंगे, गोपों को ज्ञान न दे पाये ।
कई यत्न किये पर बस न चला, तब तो उद्धवजी चकराये ॥
आखिर सोचा ये ग्वाल सभी, हैं हठी वृथा हठ करते हैं ।
सर्वोत्तम वस्तु ज्ञान जो है, उस पर ये ध्यान न धरते हैं ॥
गो अटल भक्ति नटवर में है, "पर नटवर क्या," ये ज्ञान नहीं ।
बिन ज्ञान हुये तिहुं काल में भी, मिट सकती भव भटकान नहीं ॥

इनकी ये जाने मैंने तो, निज कर्तव्य पूरा कर डाला
गोपियों के चित में भरना है, अब ज्ञान सूर्य का उजियाला।
होता है नारियों का स्वभाव, पुरुषों से मृदु अस्तू उन पर
मम ज्ञान का रँग चढ़ जावेगा, योगिने बनेगी सब तजकर।
यही सोचकर दिन मुंदे, कृष्ण सखा मतिधीर।
ध्यान धार गुरु का हृदय, पहुंचे यमुना तीर॥
क्या देखा रमण रेतिया में, बैठी हैं सारी व्रजबाला
हो रही अखंड ध्वनी तहां पर, "हे कृष्ण कृष्ण हे नंदलाला"
बन रहे हैं चेष्टा रहित बदन, सब कृष्ण का ध्यान लगाये हैं।
हरकत करते हैं होठ फकत, लोचन भी बंद कराये हैं॥
दुतिया के चन्द्राकार सरिस, सारा जमाव दृष्टी आता।
बिच में वृषभानु नंदिनी का, सुन्दर आसन शोभा पाता॥
इनके सन्मुख ही एक ओर, है अनुपम बैठक बनी हुई।
जिसके समीप ही रक्खी हैं, माला फूलों की चुनी हुई॥
देख हाल गोपीन का, उद्धव हुये बिहाल।
ज्ञान जोश ढीला पड़ा, बोले जय नंदलाल॥
इष्टदेव के नाम की, सुनते ही जयकार।
चेतन हो बालाओं ने, देखा आंख पसार॥
हरि सखा पै दृष्टी पड़ते ही, होगईं खड़ी सब व्रजनारी।
रासेश्वरि आगे बढ़ आई, बोली मुस्का, बोली प्यारी॥
हे प्रिय के सखा तुम्हारा हम, हृदय से स्वागत करती हैं।
प्रभु का संदेशा सुनने की, अति उत्कंठा चित धरती हैं॥
यों कह राधा ने आदर से, इनको आसन पर बिठलाया।
फूलों की मालायें पहना, होकर गद्गद् यों फरमाया॥
हे सौम्य ! शीश पर मोर मुकट, जिनके अति शोभा पाता है।
उन्नत लिलाट पर चन्दन का, मन हरन तिलक दरसाता है॥

पुनि हैं जिनके कच चमकीले, काले सुन्दर घूंघरवाले ।
अच्छे तो हैं वे जीवनधन, इस वृन्दावन के उजियाले ॥
फिर करती शरद् चन्द्र लज्जित, शोभा जिनके मुख मंडल की ।
द्युति भी द्युति हीन दृष्टि आती, द्युति लखि कानों के कुंडल की ॥
कंबू सम गल में रहे, जिनके नित वनमाल ।
क्षेम सहित हैं ? श्याम वे, कमल नेत्र गोपाल ॥
अरु हे यादव जिनके विशाल, वक्षःस्थल कौस्तुभमणि द्वारा ।
छबियुत रहता है पुनि जिनके, कटि पीताम्बर राजत प्यारा ॥
आजानु भुजाओं की शोभा, लख सुरनर मुनि थक जाते हैं ।
वे घन सदृष्य घनश्याम प्रभू, क्या पूर्ण सुखी दरसाते हैं ॥
फिर जिनके कोमल हाथों में, मुरलिका मनोहर सोहती है ।
अधरों द्वारा वज जिसकी ध्वनि, सारे त्रिभुवन को मोहती है ॥
पुनि जितके पावों में नूपुर, अनुपम छविवाले धारे हैं ।
हे उद्धव सच कहदो तुमने, क्या उन्हें सकुशल निहारे हैं ॥
मुंह देखी कहना नहीं, बतलाना सच हाल ।
राजी तो हैं नंदसुत, नंदकुंवर नंदलाल ॥
अरु क्या गुरुकुल से मनमोहन, आगये हैं पढ़ विद्या सारी ।
फिर क्या हम लोगों की भि कभी, करते हैं याद वे बनवारी ॥
हम गंवारियों के संग रहना, शायद उनको नहिं भाया है ।
मथुरा की चतुर नारियों को, बस इसीलिये अपनाया है ॥
हे भ्रात जिस समय वृन्दावन, मल्लिका आदि पुष्पों द्वारा ।
शोभित था अरु वायूमंडल, तर था तिन खुशबू से सारा ॥
खिल रही थी शरद चन्द्रमा की, चांदनी पूर्णिमा की निशि थी ।
होरहा था सुन्दर सुखदरास, हम सब नटवर के चहुँदिशि थी ॥
क्या कभी कृष्ण उस रजनी की, तुमसे चरचा भी करते हैं ।
यहाँ तो इन बातों की सुधि में, नित प्राण तड़फते रहते हैं ॥

हमको वियोग अग्नि में डाल, जा बैठे मथुरा के मांही।
कबतक आवेंगे इसकी भी, क्या तुम्हें अवधि है बतलाई॥
जो कुछ कहलाया हो प्रभु ने, वो सब संदेश सुनाओ ना।
उत्सुक हैं हम सुनने के लिये, अस्तू जल्दी फ़रमाओ ना॥

तब उद्धव कहने लगे, सुनो सकल ब्रजवास।
पूर्णतया आनन्द में, हैं तुम्हरे प्रिय श्याम॥

मुझको भेजा है इसीलिये, दुख तिन वियोग का दूर करूँ।
सच्चे मारग को बतला कर, तुम्हरे सारे संशय हरलूँ॥
अस्तू अब ध्यान लगा सुनलो, तुम्हरे प्रेमी की प्रभुताई।
तुम नराकार गिनती जिनको, हैं निराकार वे जगसांई॥
हैं रूप रहित अरु सर्वरूप, सुखरहित सच्चिदानन्द हैं वे।
सर्वत्र व्याप्त पुनि कहीं नहीं ऐसे अद्भुत ब्रजचन्द्र हैं वे॥
तन रहित हो, सुन्दर तन धारें इन्द्रियों बिना इन्द्रियमय हैं।
बिन श्रवण सुने बिन पाँव चलें, न्यायी होकर करुणालय हैं॥
वहाँ पहुँच नहीं मन बुद्धी की, वेदों तक ने नहिं पहिचाना।
सबने अपनी अपनी गाई, क्या है न किसी ने भी जाना॥
सच भी है जन्म के दाता को, जन्मित व्यक्ती क्या जानेगा।
जैसा गुरु मुख से सुन पाया, बस वैसा ही अनुमानेगा॥
पर तुम किंचित भी दुख न करो, पावोगी भेद सारा उसका।
ये ही समझाने आया हूँ, धर ध्यान सुनो कारन इसका॥

जिस जन पर किरपा करें, स्वयम् जनार्दन ईश।
वोही उनके भेद को, पाता विश्वाबीस॥

फंस रही हो मोह के जाल में तुम, बस इसीलिये दुख पाती हो।
रोती हो, कलपती, छीजती हो, नित अश्रुधार बहाती हो॥
तुम्हरा कर्तव है नटवर के, असली स्वरूप को चितलाओ।
हो समाधिस्थ दर्शन करके, इस भवसागर से तरजाओ॥

तज दो अज्ञान रूप मोह को, अरु ज्ञान मार्ग को अपनालो ।
ये तब ही हो सकता है जब, मन का सारा मल धो डालो ॥
बिन योग न मन का मैल धुले, हट योग तुम्हें करना होगा ।
अभ्यास से इसके अंगों को अपने हृदय धरना होगा ॥
मैं रहकर यहाँ कुछ दिनों तलक सब योगाभ्यास सिखा दूँगा ।
मन को निर्मल वासना रहित, हे गोप सुताओं बना दूँगा ॥
शुभ संस्कारवाला मन ही, हृदय में ध्यान दृढ़ाता है ।
कर देता आवागमन नष्ट, फिर अंत में मोक्ष दिलाता है ॥

कर डालो मन का दमन, ज्ञान गंग में न्हाय ।
योगाभ्यास करो सभी, मोह जाल बिसराय ॥

उद्धव के मुख से श्रवण, कर निर्गुण का ज्ञान ।
कहन लगी वृषभानुजा, श्रीराधा गुणखान ॥

अटपटी ज्ञान की गाथायें, उद्धव नहिं हमें सुहाती हैं ।
हम तो सारी व्रजबालायें, श्रीकृष्ण प्रेम मदमाती हैं ॥
हम गंवारियों में भला कहाँ, है ज्ञान, जो "ज्ञान" समझ पावें ।
अभ्यास है हरि गुण गाने का, किम योगाभ्यास हृदय लावें ॥
यदि यत्न करें तो भी यादव, मन रहा हमारे पास नहीं ।
लग गया कृष्ण के चरणों में, वापिस आने की आस नहीं ॥
मन को कुछ मोर मुकट की छवि, बाँकी चितवन व कुटिल भृकुटी ।
चन्द्रानन की मुस्कान मधुर, प्रिय मुरली गउ हांकन लकुटी ॥
ऐसी भाई पागल सा हो, तज हमें हुआ नौछावर जा ।
प्रभु पद पर ऐसा मचला है, ज्यों भ्रमर मनोहर पंकज पा ॥
अब बोलो ज्ञान योग के हित, फिर जगह कौनसी लावें हम ।
यहाँ तो वे मन हैं उद्धव जी, कैसे तव कथन निभावें हम ॥

तुमने जो मोहन प्यारे की, प्रभुताई हमें बताई है।
होगी हमने तो फ़कत उन्हें, समझा नन्दलाल कन्हाई है॥

एक म्यान तलवार दो, रहे न उद्धव राय।
इसी तरह मन एक है, दो वस्तू न समाय॥

जिन आनन्दकन्द बिहारी ने, कई तरह की लीला कीन्ही है।
त्रिभुवन मोहन मुरली ध्वनि से, हम सबकी मति हर लीन्ही है॥
जिनके संग रास विलास किया, वन में उपवन में डोली हम।
सुख पाया जिनको हरदम लख, प्रतिपल जिनके संग होली हम॥
जिव्हा जिनका नित यश गाती, नयनों में जिसकी छविछाई।
उसको ये मन कैसे भूले, जो हरदम देता दिखलाई॥
ये सच है कृष्ण वियोग हमें, अतिशय पीड़ा पहुँचाता है।
लेकिन इसमें भी एक रहस्य, नटवर का हमें लखाता है॥
वो ये है विरह हमें हरदम, मोहन की याद दिला देता।
रहता है मन तल्लीन सदां रटता है उन्हें नहिं दम लेता॥
है यही सबब हग मींचते ही, प्रिय सूरत देती दिखलाई।
फिर कैसा योग ज्ञान कैसा, यम नियमासन क्या है भाई॥

उद्धव मोहन से प्रथम, यदि तुम मिलते आय।
तो तुमसे ही दीक्षा, लेती गुरू बनाय॥

लेकिन अब तो असमर्थ हैं हम, मन कृष्ण चरण में लगा दिया।
अब चाहे मोक्ष मिले न मिले, अच्छा या बुरा किया सो किया॥
उद्धव बोले अज्ञान है ये, जो परं ब्रह्म अविनासी से।
प्रीतम का नाता जोड़ा है, उन निर्गुन निर अभिलासी से॥
जो परे हैं बन्धन से उनको, बन्धन में बाँधना चाहती हो।
बस यही सबब है जो उन बिन, पछताती दृष्टी आती हो॥

कर योग साधना ज्ञान सहित, आवाहन यदी किया होता ।
"वो प्रीतम हैं हम प्यारी हैं", इस द्वैत में मन न दिया होता ॥
तो वो तुमको तज बालाओं, हरगिज न कदम आगे देते ।
बल्की कर अपना रूप तुम्हें, अपने ही में लय कर लेते ॥
तज दिया तुम्हें गिरधारी ने, ये द्वैत की ही प्रभुताई है ।
जब तलक रहेगा भाव यही, नहिं आवें श्रीयदुराई है ॥

अस्तू अब भी द्वैत तज, समझो असल स्वरूप ।
ज्ञान योग साधन करो, पावो भक्ति अनूप ॥

ये सुन आल्हादिन कहन लगी, हम हैं अनन्य हरि की दासी ।
तन में मन में अरु नस नस में, बस रहा श्याम रंग अविनासी ॥
जो पक्के प्रेमी हैं उद्धव, वे इसका ध्यान न धरते हैं ।
प्रेमास्पद उनको चाहें या, नहिं चाहें फिक्र न करते हैं ॥
है अनल का जलने का स्वभाव, वायू का धर्म बिचरना है ।
आकाश शब्द जल शीतलता, पृथ्वी का क्षमा हि करना है ॥
त्यों धर्म हमारा प्रेम करें, बदले में कुछ नहिं चाहती हम ।
बलिदान प्रेम वेदी पर हो, बस येही हृदय मनाती हम ॥
उद्धव ये मोह न कहलाता, ये प्रेम की ही बलिहारी है ।
जो व्रज के कोने कोने में, दृष्टी आते बनवारी है ॥

द्वैत भाव उसको कहें, जहं हो वस्तु अनेक ।
प्रेमी प्रेमास्पद दोऊ, रहे हमेशा एक ॥

जहँ दो हों वहाँ सुख रहे नहीं, जहँ एक वहाँ पर दुख कैसा ।
जिसमें तन मन तल्लीन किया, वो प्रथक न हो खुशबू जैसा ॥
जल से हो तरलता अलग अगर, चन्द्रिका चाँद बिन दिखलावे ।
होवे गर पोल प्रथक नभ से, तो प्रेमी न्यारा कहलावे ॥

हमको तो दृढ़ विश्वास है ये, प्रभु त्याग हमें नहिं गये कहीं।
वे रहें सदा हमरे समीप, ब्रजराज यहीं हैं यहीं यहीं॥
यदि तुम्हें ज्ञान की दृष्टी से, जगदीश दृष्टि नहिं आते हैं।
तो भक्त बनो हरि के ऊधो, हम तुम्हें उन्हें दिखलाते हैं॥
श्रद्धालु बनो विश्वास करो, अभिमान ज्ञान को धो डालो।
चित से हित से मनमोहन को, हृदय मन्दिर में बिठलालो॥
पुनि दास भाव रख आतुर हो, भगवान का नाम उचारो तुम।
कर अन्तर दृष्टि हिये अन्दर, मोहन की छवी निहारो तुम॥

उद्धव ने राधे वचन, सुनकर मूँदे नैन।
प्रेम सहित विश्वास से, ध्याये करुणाऐन॥

तत्काल हृदय में उद्धव के, एक अनुपम महा तेज छाया।
फिर उसी तेज में से फौरन, होगये प्रगट श्री ब्रजराया॥
क्या देखा मुरली अधर धरे, मुरलीधर मुरली बजाते हैं।
है ललित त्रिभंगी छवि उसकी, लख, अगणित मदन लजाते हैं॥
पल में ये दृष्य अलख हुआ, फिर अवलोका यमुना तट पर।
एक विशाल मंडप तना हुआ, जो है अति ही सुन्दर मनहर॥
जम रहा रास का रंग तहां, हो रहा नृत्य आनन्ददायक।
बज रहे मनोहर वाद्य कई, मुस्काय रहे हैं ब्रजनायक॥
पुनि देखा उंगली के ऊपर, प्रभु ने गोवर्धन धारा है।
वर्षा घनघोर बरसती है, गिरवर नीचे ब्रज सारा है॥
इसके आगे फिर क्या देखा, एक सुन्दर स्वर्ण सिंहासन पर।
वृषभानु नंदिनी बैठी है, मनमोहन के संग हरषाकर॥
एक पल में राधा कृष्ण बनी, श्रीकृष्ण राधिका रूप हुये।
द्वितीय पल दोनों आपस में, मिल एक स्वरूप अनूप हुये॥

आख़िर देखा वो प्रथम दृष्य, व्रजभूषण बंसी बजा रहे ।
तन की सुन्दरता से नटवर, त्रिभुवन की छवि को लजा रहे ॥

हुआ अगोचर दृष्य सब, सखा भये चैतन्य ।
पकड़े राधा के चरन, बोले माता धन्य ॥

आँखों पर परदा था जिससे, अब तक न तुम्हें पहिचाना था ।
केवल एक गोपी मात्र तुम्हें, हे रासेश्वरि जिय जाना था ॥
अब सारे संशय दूर हुये, अभिमान ज्ञान का धो डाला ।
हैं भक्ती के बस में सचमुच, आनन्दकन्द श्रीनन्दलाला ॥
तुम कृष्ण की शक्ति प्रकृती हो, तुम सहित सगुण दृष्टी आते ।
तुम्हरा लय होजाने पर फिर, बस वे निर्गुण ही रह जाते ॥
आया था गुरु बनने के लिये, पर शिष्य बना हूँ हे माता ।
तव चरणों में मन लगा रहे, हरदम ये वर दो मन भाता ॥

*** गाना ***

अभी ज्ञानी था और अब ज्ञान से नफरत हुई माई ।
हृदय चाहता है अब तो करना तुम्हरी भक्ति सुखदाई ॥
असल में क्या हो तुम और कृष्ण क्या है ये मैने जाना ।
हुआ तम दूर सब मेरा हृदय में प्रगटे दिनराई ॥
मुझे अब जान पड़ता है गर्व गंजन बिहारी ने ।
हरा अभिमान सारा भक्ति की शिक्षा है दिलवाई ॥
धन्य तुम हो ये व्रज धन है धन्य है गोपिया सारी ।
रहे चरणों में तुम्हरे मन मेरा ये वर दो हरपाई ॥

यों कह उद्धव ने किया, फिर एक बार प्रणाम ।
कहा धन्य वृषभानुजा, धन्य सभी व्रजबाम ॥

हुई विसर्जन तब सभा, निशि अति आई जान ।
फेर मिलन का वचन दे, सबने किया पयान ॥

इस दिन से नित्य प्रती व्रज में, उद्धव अरु गोपी सम्मेलन ।
होता था जिससे सब मिलकर, गाते थे कृष्णचन्द्र के गुन ॥
गोपियों का परम प्रेम लखकर, हरि सखा अनंदित रहते थे ।
तुम धन्य हो भाग्यशालिनी हो, कृत कृत्त हो नित प्रति कहते थे ॥
तप, योग, ज्ञान, व्रत, दान, जाप, मन दमन आदि करके प्रानी ।
पाते हैं श्रीयदुराई की, शुभ अनन्य भक्ती गुणखानी ॥
उसको बस फ़कत प्रेम द्वारा, हे बालाओं तुमने पाई ।
तुम्हरा ये प्रेम सामान्य नहीं, गूढ़ातिगूढ़ दे दिखलाई ॥
बिन जाने भी यदि सुधा पिये, होता है अमर पीनेवाला ।
त्यों ज्ञान रहित भक्ती से भी नर पा लेता है नन्दलाला ॥
हे प्रेम मूर्तियों धन्य हो तुम, यदि जन्म दूसरा पाऊँ मैं ।
ये इच्छा है तुव चरणों की, पुनि दुर्लभ रज बनजाऊँ मैं ॥

इस प्रकार सतसंग में, कइयक मास गुजार ।
उद्धवजी करने लगे, मथुरा गमन विचार ॥

एक दिवस बिदा होकर सबसे, असवार हुये निज रथ पर आ ।
इतने में नन्द गोप गोपी, लेले भेटें तहँ पहुँचे जा ॥
अनुराग के कारन सब ही के, दृग प्रेमाश्रु बरसाने लगे ।
आख़िर व्रजवासी हाथ जोड़, हरि सखा से यों फ़रमाने लगे ॥
उद्धव ! जैसे तुमने प्रभु का, संदेशा हमें सुनाया है ।
त्यों हमरे समाचार भी तुम, पहुँचाना जहँ यदुराया है ॥
कहना हे प्रभु व्रजवालों को, है यही कामना जीवन में ।
कि सब प्रकार से पूर्णतया, मन रहे आपके चरनन में ॥

पुनि हम लोगों की वाणी भी, नित तुम्हरी लीला गान करे ।
काया भी तव अर्चन नन्दन, पूजन का हरदम ध्यान धरे ॥
कर्मानुसार कोई भी योनि, विधि के विधान से पावें हम ।
लेकिन हे मनमोहन तुमको, नहिं किसी समय बिसुलावें हम ॥
फिर हमने आज तक जितने भी, जीवन में मंगल काम किये ।
गउ सेवा से लेकर जप तप, व्रत होम यज्ञ अरु दान दिये ॥
इन सबके फल की एवज़ में, हम यही माँगते यदुराई ।
अपने पद पद्मों की भक्ती दीजे किरपाकर सुखदाई ॥

यों कह भेटें दे तुरत, कीन्हा इन्हें प्रणाम ।
चले कृष्ण के मित्र तब, सुमिरि हृदय घनश्याम ॥

मथुरा में जाते ही उद्धव, तत्काल उतर कर स्यंदन से ।
सीधे प्रभु मन्दिर में पहुँचे, की भेट देवकीनन्दन से ॥
कई दिवस बाद निज मित्र देख, झट उठ धाये गिरवरधारी ।
अति हित से हृदय लगाय लिया, आसन दे बोले बनवारी ॥
उद्धव ! श्रीनन्द यशोदा की, अब कुशल क्षेम सब बतलावो ।
रहते हैं कैसे गोप ग्वाल, गोपियों की हालत समझावो ॥
तुम्हरा इतने दिन का प्रयत्न, क्या सफल होगया मित्र मेरे ।
बोलो क्या सब सन्यासि बने, सुन ज्ञान सहित उपदेश तेरे ॥

उद्धव ने पुलकाय कर, कहा नवाकर माथ ।
जग में केवल प्रेम ही, सर्व श्रेष्ठ है नाथ ॥

पड़ गया ज्ञान फीका मेरा, अष्टांग योग बेयोग हुआ ।
जब प्रेम मूर्ति व्रजवालों से, हे मोहन मय संयोग हुआ ॥
इनमें व्रजवालाओं ने तो, ले जन्म भूमि पर यदुराई ।
वो प्रेमादर्श दिखाया है, लख जिसको बुद्धी चकराई ॥

जाने से पहले ज्ञानी था, अब भक्ति सीख कर आया हूं।
व्रजवालों का संदेशा अरु, कई तरह की भेंटें लाया हूं॥
ये कह उद्धव ने कुल बातें, गोकुलवालों ने कही थीं जो।
कर दई निवेदन नटवर को, दे दी भेंटें लाये थे सो॥

फिर ले आज्ञा घर गये, श्री उद्धव गुणरास।
प्रात होत पुनि कृष्ण ने, बुलवाया निज पास॥

ले इन्हें साथ कुब्जा के घर, आनंदकंद सुखधाम गये।
सब तरह से उसकी तृप्ती कर, अक्रूर कका से मिलत भये॥
लख इष्टदेव को दृग सन्मुख, सफलक नंदन अति हर्षाये।
आगे आ हृदय लगाय लिया, सुंदर आसन पर बिठलाये॥
सम्मानित हो मोहन बोले, हे कका हस्तिनापुर जाओ।
पांडवों का संदेशा लेकर, वापिस झट लौट चले आओ॥

"श्रीलाल" अक्रूर से, कह कर यों घनश्याम।
आ पहुँचे निज भवन में, करन लगे आराम॥

॥ श्रीकृष्णार्पणस्तु ॥





श्रीकृष्णचरित्र अथवा श्रीमद्भागवत

बारहवां भाग

द्वारका निर्माण

रचयिता—

श्रीलाल खत्री

प्रकाशक—महाभारत पुस्तकालय, अजमेर

मुद्रक—के. हमीरमल लूनिया, दि डायमण्ड जुबिली प्रेस, अजमेर.

प्रथमवार २,०००	सम्वत् १९९१ विक्रमी सन् १९३५ ईस्वी	मूल्य ।) आने

कृष्णस्तु भगवान् स्वयम्

स्तुति

(१)

प्रभू बिन दूजो कौन सहाई ॥
महा विपति में जाकर जिसने द्रौपद्रि लाज बचाई ।
गज को ग्राह फंद से काढ्यो रुक्मणि व्याह कराई ॥
महाभारत में सारथि बनकर पारथ जय करवाई ।
कौरव दल बल छिन में नास्यो धर्म ध्वजा फहराई ॥
जप तप नियम व्रत्त में बिरथा मूरख उमर बिताई ।
पड़ा भरम में मरम न समझा खोई सकल कमाई ॥
हट वश रीति रिवाज बंधायो हरि संग नेह न लाई ।
अब भी चेत चतुरता इसमें पड़ो चरन प्रभु जाई ॥

मंगलाचरण

(२)

पीताम्बर धर पाप हर, गोकलेश गोपाल ।
ताप हरन जन सुख करन, जय जय दीन दयाल ॥
जय जलशायी जलदसम, सुभग सुहावन रूप ।
सृष्टि रचन, पालन, हरन, शिव अज विष्णु स्वरूप ॥
तुम गुरु गणपति शारदा, सहस बदन तुम शेष ।
विघन हरो मंगल करो, जग व्यापक अखिलेश ॥
बंदहुं वेदव्यास सुत, श्री शुकदेव सुजान ।
गायो कलिमल हरन जिन, "कृष्ण चरित" गुणखान ॥

❀ श्लोक ❀

वंशीविभूषितकरान्नवनीरदाभात्पीताम्बरादरुणबिंबफलाधरोष्ठात् ।
पूर्णेन्दुसुन्दरमुखादरविन्दनेत्रात्कृष्णात्परं किमपितत्वमहं न जाने ॥

❀ कथा प्रारम्भ ❀

बाल चरित भगवान के, कहे यथामति गाय ।
आगे की गाथा सुनो, श्रोताओं चितलाय ॥
कलियुग में केवल कृष्ण कथा, कलिमल विनाशने वाली है ।
वो हृदय निरर्थक है बिल्कुल, जो कृष्ण नाम से खाली है ॥
जब से कंसासुर निहत हुआ, जन मन रंजन केशव द्वारा ।
हो गये सुखी यदुवंशि सभी, बन गया मनोहर पुर सारा ॥
आनन्दकन्द की छाया में, चहुँदिशि आनन्द लखाता था ।
निर्मल यश श्री यदुराई का, निशि दिन सुनने में आता था ॥
चल रहा था धर्म राज्य यहाँ पर, सतयुग का दृश्य उपस्थित था ।
चोरी अन्यायी करने में, लगता न किसी का भी चित था ॥
मधुपुर के नर नारि सब, रहते खुश दिन रैन ।
फक़त पत्नियाँ कंस की, पाती थीं नहिं चैन ॥
जिस दिन से पति की मृत्यु हुई, रो रो कर समय बिताती थी ।
मन ही मन में मनमोहन को, मन चाहे शब्द सुनाती थी ॥
आखिर उत्थान यादवों का, जब देख सकी नहिं ये दोनों ।
तब होकर निज रथ पर सवार, जनकालय पहुँची वे दोनों ॥
नृप जरासन्ध इनका पितु था, मगधेश्वर बली हठी मानी ।
शत्रू था सब यदुवंशिन का, पहुँचाता रहता था हानी ॥
व्याकुल हो इसके निकट जाय, दोनों ने निज रोना रोया ।
बोली हे जनक ! देवकी के, सुत ने हमरा सब सुख खोया ॥
छलबल से मामा को वधकर, फूला नहिं अंग समाता है ।
गिनता है निज को श्रेष्टवीर, इठलाता है इतराता है ॥
अब तक तो सलाह तुम्हारी से, सब काम वहाँ पर होता था ।
जो चलता विरुध मगधपति से, निज तन से कर वो धोता था ॥

अब तो वृष्णियों का भोजों पर, हे पिता प्रभाव हुआ भारी।
राजा तो नाम मात्र का है सब हुक्म कृष्ण का है जारी॥
जो छिपते फिरते थे वन में, रहने का नहीं ठिकाना था।
बन बैठे वे सरदार वहाँ, जिनके न पास इक दाना था॥
मधुपुरी राज्य था मांडलीक, सम्राट मगधपति कहलाता।
पर अब वे हुये स्वतंत्र पिता, होगया बराबर का नाता॥

चुपके चुपके कर रहे, रण सामान तमाम।
चेतो वरना अन्त में, होगा दुष्परिणाम॥

शत्रु व रोग को कभी नहीं, हे जनक! क्षुद्र गिनना चहिये।
इनको तो उठते ही फौरन, जड़ सहित नाश करना चहिये॥
जिस तरह नीति बिन राज मिटे बिन दान किये धन नस जाता।
कर्मों का फल बिन हरि अर्पण, कीन्हें न उचित मिलने पाता॥
अरु जिमि जग में मन रखने से, त्यागी का अहित ही होता है।
त्यों ही रिपु की परवा न करे, तो वीर भूप भी रोता है॥
करते हो पान बे फिक्र होय, महफिल रंगीन जमाई है।
उस तरफ यादवों ने तुमसे, लड़ने की मन ठहराई है॥
लग गई आग यदि घर ही में, फिर कूप खने क्या होवेगा।
शत्रु का जब बढ़ जाय ज़ोर, तब शीश धुने क्या होवेगा॥
इसलिये तुरत सेना सजाय, मथुरा को नष्ट बना डालो।
तुम वीर हो बाँके योधा हो, निज जामाता का बदला लो॥

यों कह अस्ती प्रास्ती, कंस पति अकुलाय।
हा! पति पति कहती हुई, गिरी पछाड़ें खाय॥
जरासंध ने जब सुना, मथुरा का संवाद।
रक्त वर्ण नैना हुये, छाया परम विषाद॥

दे इनको धीरज मगधेश्वर, फौरन निज सभा भवन आया।
मंत्रियों को सेनापतियों को, आते ही तहां पर बुलवाया॥

अरु बोला इसी महूरत में, जंगी बाजा बजवा डालो।
चतुरंगिन सेना को झटपट, रण साजों से सजवा डालो॥
करदो जारी फरमान तुरत, अपने अधीन सब नरराई॥
हो जायँ इकट्ठे मगध में आ, ले ले कर अपनी कटकाई॥
यदुओं के नाशन हित वीरो !, मथुरा पुर पर चढ़ जाना है।
मारा जिसने दामाद मेरा उस कृष्ण का खोज मिटाना है॥
कुछ थोड़े से निश्चर वधकर, जग जीत बना है यदुनन्दन।
उसका सब गर्व ठिकाने हो, आवे यहां हमरे पद बन्दन॥
अस्तू सब मिल संगठन करें, सम्मिलित शक्तिको अजमावें।
रिपु शक्ती बढ़ने से पहिले, छिन भिन्न उसे हम कर आवें॥

इस प्रकार जारी हुआ, मगधपती फरमान।
एकत्रित होने लगे, धीर वीर बलवान॥
अक्षौहणि तेईस तहं, हुई इकट्ठी आय।
जरासंध हर्षित हुआ, चला निशान बजाय॥

कंपायमान होगई धरनि, धूली नभ मंडल में छाई।
छिप गया सूर्यका उजियाला, दिन में रजनी दृष्टी आई॥
बाँके मतवाले वीर सभी, जोशीले गाने गाते थे।
रण बाजे भी अति उत्तेजक, बस मारू राग बजाते थे॥
यों चलते चलते कुछ दिन में, ये निकट मधुपुरी के आये।
इनके आने के समाचार, दूतों द्वारा नृप ने पाये॥
घबराय गये श्री उग्रसेन, बुलवाया झटपट नटवर को।
अरु कहा करें अब यत्न कौन, कैसे जीतें मगधेश्वर को॥

कहा कृष्ण ने सोच तज, धरो धीर भूपाल।
पुर की रक्षा का करूँ, सब प्रबन्ध तत्काल॥

यों कह कर प्रभु ने मथुरा के, सब द्वार बन्द करवाय दिये।
परकोटों पर तोपें चढ़ाय, कइ योधा तहां टिकाय दिये॥

खाने पीने की चीज़ों का, कर इन्तज़ाम श्री यदुराई।
बलराम सहित पुर से निकले, लेकर थोड़ीसी कटकाई॥
देखा अपार सागर सदृश्य, मगधेश्वर का दल आय रहा।
चलने से पृथ्वी हिलती है, एक शोर गगन में छाय रहा॥
ये लखकर देवकि-नन्दन ने रोहणि-नन्दन से फ़रमाया।
अवतार कार्य संपादन हित, हे भाई अब अवसर पाया॥
हम कहां ढूँढते दुष्टों को, आगये हैं खुद मरने के लिये।
कस कमर खड़े होजाव तुरत, भूमी का भार हरने के लिये॥
पर एक ध्यान रखना भ्राता, केवल सेना ही वधना है।
सेना के मुख्य अधीश्वर को, मगधेश को जिन्दा रखना है॥
पा यहाँ पराजय जरासंध, यदि जीवित वापिस जावेगा।
तो निश्चय ही ले नई फ़ौज, ये फिर लड़ने को आवेगा॥

पुनि हम इसकी कटक का, करेंगे चकना चूर।
या बिधि कम हो जायगा, भूमि भार भरपूर॥
इतना कह भगवान ने, देखा नभ की ओर।
तुरत गगन से रथ युगल, आ पहुँचे तेहि ठौर॥

थे दिव्य शस्त्र सम्पन्न दोऊ, अवलोकन कर प्रभु मुस्काये।
बलराम सहित असवार हुये, शत्रू दल के सन्मुख धाये॥
आगे आ शंख ध्वनी कीन्ही, कांपी शत्रू सेना सारी।
नृप जरासंध भी दहल उठा, सुन घोर कठोर ध्वनी भारी॥
आखिर धीरज धर रथ बढ़ाय, ये कृष्णचन्द्र के ढिंग आया।
लख विश्वविमोहन रुचिर रूप, रह गया ठगा सा चकराया॥
देरी तक श्री यदुराई को, निर निमेश दृष्टी से लखकर।
कुछ क्रोध और कुछ शांति सहित, आख़िर यों बोला मगधेश्वर॥
हे पुरुषाधम वसुदेव पुत्र, तू अभी कम उमर बालक है।
इसलिये तुझे न वधूँगा मैं, यद्यपि जामाता घालक है॥

बस समझ सुरक्षित निज को तू, वरना बचना मुशकिल होता ।
मगधेश्वर के सन्मुख आकर, खुद काल भी अपना बलखोता ॥
बलराम यदि लड़ना चाहें, तत्पर हूँ मैं रण करने को ।
पर फिर भी कहता हूँ तुम से, क्यों आये हो यहां मरने को ॥
अस्तू जाओ घर को वापिस, मैं सेना हो संहारूंगा ।
एक कंसराज की ऐवज में, अनगिनती यादव मारूंगा ॥

मंद मंद हँस कह उठे, नंदनंदन घनश्याम ।
रण में विरथा बोलना, नहीं वीर का काम ॥

जो योधा हैं अपने मुख से, नहि कभी बड़ाई करते हैं ।
किन्तू अपना पोरुष दिखला, शत्रू का जीवन हरते हैं ॥
हम बालक हैं या बलवानो, ये विदित तुझे तब होवेगा ।
जब हमरे बाणों के द्वारा, तू कटक सहित जां खोवेगा ॥
यदि हमसे भय लगता है तुझे, है समय अभी जाओ राजन्
कायर का वध हमरा कर्तव, है नहीं अस्तु धाओ राजन् ॥
निर्भय बानी सुन मोहन की, नृप जरासंध अति गरमाया ।
कर अपने लोचन लाल लाल, धनु तान शीघ्र सन्मुख धाया ॥
दे दिया हुक्म झट सेना को, आरम्भ भयंकर युद्ध हुआ ।
हर एक वीर ले अस्त्र शस्त्र, भिड़ गया परस्पर क्रुद्ध हुआ ॥
प्रभु की छोटी सी सेना के, चहुँ दिशि शत्रू सेना छाई ।
मारो पकड़ो जाने न पाय, आवाजें चहुँदिशि से आई ॥

अपनी कटक निहार कर, विचलित दीनानाथ ।
शारंगधनु ले हाथ में, बढ़े राम के साथ ॥

फिर लगे शस्त्र वरषा करने, गज अश्व धड़ाधड़ मरने लगे ।
स्यंदनों का चकना चूर हुआ, घायल चिल्लाहट करने लगे ॥
हरि ने तर्कस से शर निकाल, कब धनु पर रख धनु का ताना ।
कब छोड़ा तीर निशाने पर, इसको न किसी ने भी जाना ॥

अंगार चक्र सदृष्य धनु का, मंडल बस दृष्टी आता था।
छुट रहे थे वज्र समान तीर, सन्मुख न कोई ठहराता था॥
इक तरफ़ कर रहे थे प्रकाश, अपना विक्रम गिरवरधारी।
अरु तरफ दूसरी रोहणि सुत, थे दिखा रहे अचरज भारी॥
इनके कर में शर धनुष न था, केवल हल मूसल लिये हुये।
फिर रहे थे निर्भय हो रण में, यम सरिस आकृती किये हुये॥
जिस तरफ़ निकल जाते हलधर, मैदान तहाँ हो जाता था।
दल का दल सारथि रथियों का, प्राणों से हीन लखाता था॥
ये हल से वीरों को समेट, करते प्रहार मूसल द्वारा।
यों तनिक देर में शत्रू का, लगभग आधा दल संहारा॥
हरचन्द मगधपति ने चाहा, सेना के प्राण बचाऊँ मैं।
बलराम कृष्ण का वध करके, भूमी पर इन्हें सुलाऊँ मैं॥
पर हो न सका कुछ भी प्रयत्न, खपगई निमिष में कटकाई।
दोनों का अद्भुत बल विलोक, मगधेश की बुद्धी चकराई॥

फ़कत अकेला रह गया, जरासंध बलवान।
हलधर से लड़ने लगा, क्रोधित होय महान॥

तज दिया मोह निज प्राणों का, अरु तीव्र वाण बरसाने लगा।
आगे पीछे दाँये बाँये, हट रण कौशल दिखलाने लगा॥
पर बस न चला बलदाऊ से, उल्टा ये ही मजबूर हुआ।
मर गया सारथी अश्व गिरे, रथ का भी चकनाचूर हुआ॥
तब दौड़ राम ने पकड़ लिया, फिर ले प्रभु के सन्मुख आये।
कर दया दयानिधि ने फौरन, नृप के सब बन्धन कटवाये॥

छोड़ दिया फिर भूप को, जिससे लज्जित होय।
चला गया अपने भवन, मान कीर्ति खोय॥

इस तरफ दया सागर ने भी, अमृत वर्षिणी दृष्टि द्वारा।
अपना सब कटक सजीव किया फिर पुर के अन्दर पग धारा॥

नृप उग्रसेन के निकट आय, बोले आशीष तुम्हारी से ।
पाई है विजय यादवों ने, उस वीर भयंकर भारी से ॥
पर वह चुपका नहिं बैठेगा, आवेगा फिर सेना लेकर ।
अस्तू हमको भी ये चहिये, लड़ने को सदा रहें तत्पर ॥
ये काम पूर्ण करने के लिये, है उचित कि शक्ति बढ़ावें हम ।
जो शत्रू जरासंध के हों, उनको निज ओर मिलावें हम ॥
नृप के सहमत होजाने पर, प्रभु ने एक दौरा शुरू किया ।
उत्तर अरु पश्चिम भारत के, भूपों को मित्र बनाय लिया ॥
कुछ समय बाद फिर मगधपती, ले कटक मधुपुरी चढ़ आया ।
पुनि राम कृष्ण ने उस खल को, सेना विहीन कर लौटाया ॥

इस प्रकार सत्रह दफ़ा, जरासंध भूपाल ।
सैन्य कटा घर को गया, चली न कोई चाल ॥

फिर भी वो हत उत्साह न हुआ, लग गया जोड़ ने कटकाई ।
इतने में मथुरापुर बाहिर, एक नई बात दृष्टी आई ॥
भारत के उत्तर पश्चिम की, सीमा में काल यवन नामी ।
यवनों का राजा रहता था, गो द्विज शत्रू खल बलधामी ॥
रहता था नित प्रति खोज में वो, अपने समान बलवानी की ।
एक रोज सभा में दिखी उसे, मूरति नारद मुनि ज्ञानी की ॥
इसको भूमी का भार रूप, लख देव ऋषी घबराये थे ।
किस तरह ये बोझा हलका हो, ये सोच यहाँ पर आये थे ॥
अस्तू आते ही कहन लगे, हे यवन राज! धर ध्यान सुनो ।
बस आज से आगे निज को तुम, बलहीन व कायर पुरुष गिनो ॥
कारन मैंने मथुरापुर में, एक ऐसा बाल निहारा है ।
जिसने चुटकी में कंसादिक, कई योधाओं को मारा है ॥
है अभी किशोर अवस्था में, सूरत भी है भोली भाली ।
यदि उसे हरादो तुम रण में, तब समझूँगा शक्ती-शाली ॥

उसकी क्या पहिचान है, सुनलो यवन नरेश।
त्रिभुवन मोहन मूर्ति है, घूंघर वाले केश॥
रहता है सिर पर मोरों के, पंखों का मोर मुकुट सुन्दर।
कानों में कुंडल पहरता है, लोचन हैं कमल सरिस मनहर॥
उन्नत ललाट पर मृगमद की, बिंदी अति शोभा पाती है।
हाथी की सूँड समान सुघड, आजानु भुजा दरसाती है॥
फिर कर में हरदम रहती है, त्रिभुवन मोहन मुरली प्यारी।
कंबू सम गल में पड़ी हुई, वन माल दिखाती छवि न्यारी॥
पीताम्बर से है प्रेम अधिक, कटि में हर समय दृष्टि आता।
रहती जिस पर करधनी सदा, लख हृदय चकित अति हो जाता।
रत्नों से जड़े हुये नूपुर, उसने पाँवों में धारे हैं।
जिनकी मंजुल ध्वनि से मोहित, होते सुरनर मुनि सारे हैं॥
उसके नाम अनेक हैं, पा न सके कोई पार।
ख़ास नाम बस कृष्ण है, सब नामों का सार॥

*** गाना ***

रिपुदल को कर देता खतम वो बाल जह आता वहीं।
कंसादिकों को सहज में इस विश्व में कीन्हा "नहीं"॥
अनुपम अनोखा रूप है नयनों को है ललचावना।
पर उस मृदूतन में है दिल यमराज का सचमुच सही॥
मगधादि पति ने बार सत्रह मुंह की खाई युद्ध में।
असुरों का काम तमाम कर रहता है मथुरा में वहीं॥
जो यकता थे इस वक्त में उनको सुलाया जंग में।
उसको हरादो तो गिनूं मै वीर तुमको सचकहीं॥

यदि ताक़त का है गर्व तुम्हें, गिनते निज को यदि भटमानी।
तो उस बालक के सन्मुख जा, दिखलाओ निज असि का पानी॥

सुन देव ऋषी की बातों को, वो यवन भूप अति गरमाया ।
बोला हे मुनि ! तुमने मेरा, बल नहीं आज तक लख पाया ।
यदि मुष्टि प्रहार करूँ गिरि पै. रजकन समान वो हो जावे ।
फिर एक नन्हा सा बालक किम, मुझ से कर युद्ध विजय पावे ॥
मैं अभी घेर कर मथुरा को, रण का डंका बजवाता हूं ।
उस बाल सहित पुरवालों को, वधकर यमपुर पहुँचाता हूं ॥
यों कह ले तीन कोटि योधा, अपने समान ही बल वाले ।
उस काल यवन ने मधुपुर के, नज़दीक आय डेरे डाले ॥
दूतों के मुख से जब प्रभु ने, इसके आने की सुधि पाई ।
तब कुछ विस्मय सा दिखलाकर, झट लगे सोचने यदुराई ॥
मथुरा ऐसी मजबूत नहीं, जो दो रिपुओं का वार सहे ।
हम कालयवन से इधर लड़ें, यदि उधर मगधपति आय रहे ॥
तो निश्चय ही यदुवंशिन को, मृत्यू के घाट उतारेगा ।
अथवा कर कैद साथ में ले, अपने पुर को पग धारेगा ॥
अस्तू ये ही उत्तम होगा, अब सुर शिल्पी को बुलवावें ।
अरु जलनिधि में एक सुदृढ़ दुर्ग, द्वादस योजन का बनवालें ॥
पहुँचा तहं सकल बांधवों को, शत्रू के सन्मुख धावेंगे ।
कर उसका वध सेना समेत, फिर हम भी वहीं सिधावेंगे ॥
ये कर विचार त्रिभुवन पति ने, झट विशकर्मा को बुलवाया ।
अरु जो कुछ सोचा था मन में, वो सारा उसको समझाया ॥
फिर बोले अर्ध रात्री तक, ये सब कुछ होजाना चहिये ।
इसके उपरान्त यादवों को, निशि ही में पहुँचाना चहिये ॥
कह जो आज्ञा फिर शीश झुका, इसने पश्चिम भारत में आ ।
जल भीतर सिंधू तट समीप, एक अति सुन्दर पुर दिया बसा ॥

अर्ध रात्रि तक बन गया, हरि का नगर ललाम ।
विशकर्मा ने सोचकर, रखा द्वारका नाम ॥

प्रभु की नगरी प्रभु माया से, कुछ अस शोभा की खान बनी।
अवलोक जिसे चतुरानन की, बुद्धि तक अति हैरान बनी॥
इसकी रचना करने वाला, खुद सुरशिल्पी भी चकराया।
नहिं समझ सका जाने कैसे, ऐसा सुंदरपुर बन पाया॥
राजन् जिसका भृकुटी विलास, पल में ब्रह्मांड उपजाता है।
कर पालन पोषण भली भांति, फिर अंत में नष्ट बनाता है॥
उस प्रभु को क्या हो सकती थी, इक पुर रचने में कठिनाई।
पर इसके मिस विशकर्मा की, चहुँ ओर कीर्ती फैलाई॥
हरि इच्छा ने गुप्त रह, खेला खेल तमाम।
बना वर्णनातीत पुर, सुर दुर्लभ सुखधाम॥
लख नगर अनोखा अचरज मय, सब लोक पाल अति पुलकाये।
अधिकार में जिसके जो जो थी, उत्तम वस्तू यहां ले आये॥
सुरपति ने अपना सभा भवन, कर दिया भेंट अति हरषा कर।
थे इसमें कितने ही अद्भुत, अनुपम गुण सुनो ध्यान लाकर॥
इस जगह बैठने वालों का, सब दुःख शोक नस जाता था।
रहती थी सदा युवावस्था, मन चंचलता न दिखाता था॥
नहिं भूख प्यास का असर होय, सरदी गरमी न सता सकती।
रति पति सम सुन्दर रूप रहे, माया नहिं दर्श दिखा सकती॥
श्री वरुणदेव ने श्याम कर्ण, अति सुन्दर घोड़े भिजवाये।
अरु यक्षराज भी हरषा कर, सब ऋद्धि सिद्धि तहँ दे आये॥
वर्षा पति ने वरदान दिया, दुर्भिक्ष न कभी सतावेगा।
बोले यम यहां रहने वाला, नहिं दर्श नर्क का पावेगा॥
इस प्रकार भगवान का, नगर बना सुखकंद।
ऋद्धि सिद्धि घर घर छई, दूर हुआ दुखद्वंद॥
विसकर्मा ने आयकर, दिया तुरत संवाद।
हो प्रसन्न प्रभु ने किया, निज माया को याद॥

इसके द्वारा द्वारावति में, सब यादव प्रभु ने भिजवाये ।
नहिं जान सका ये भेद कोई तब मोहन हलधर ढिंग आये ॥
सारे रहस्य को समझा कर, आखिर बोले श्री यदुराई ।
तुम तो मथुरा में ही रहकर, करना पुर की रक्षा भाई ॥
अरु मैं पहिले कौशल द्वारा, उस कालयवन को मारूँगा ।
फिर आकर उसकी सेना के, सब वीरों को संघारूँगा ॥

अग्रज को समझाय कर, प्रात होत गोपाल ।
आये पुर बाहिर तुरत, गल वनमाला डाल ॥

जिस तरह पूर्णिमा की निशि में, शोभा पाते हैं निशिराई ।
त्योंही जब सुखद जनार्दन की, कमनीय छटा दी दिखलाई ॥
प्रभु के अभिराम श्याम तन पर, पीताम्बर दृष्टी आता था ।
सिर पर था अनुपम मोर मुकुट, शुभ तिलक भाल दरसाता था ॥
श्रवणन कुंडल सरसिज लोचन, कर में प्रिय मुरली राज रही ।
आनन पर थी मुस्कान मंद, गल में कौस्तुभ मणि भ्राज रही ॥
इनको लखते हि यवन नृप ने, अपने चित माँहि विचार लिया ।
ये वही कृष्ण है जिसका श्री, नारद मुनि ने संकेत किया ॥
इस समय ये पैदल है अरु फिर, हथियार भी कोई पास नहीं ।
फिर रहा है बिल्कुल फिकर रहित, मन में मेरो भी त्रास नहीं ॥
मैं भी बिन शस्त्र लिये इससे, पैदल हि दौड़ संग्राम करूँ ।
नन्हा सा है अति कोमल है, अस्तू चुटकी में प्रान हरूँ ॥
ये कर विचार नृप कालयवन, फौरन हरि के पीछे धाया ।
लख इसे विपिन की ओर चले, लीलाधारी श्री यदुराया ॥
प्रभु को फुरती ले भगते लख, ये भी निज होट दबा करके ।
दौड़ा अरु बोला ठहर ठहर, कित छिपेगा अब तू जा करके ॥
इस समय मुझे ये ज्ञात हुआ, नारद ने झूंठी बात कही ।
किम मारे होंगे असुर तैनें, तुझ में तो बल का नाम नहीं ॥

हा शोक ! क्षत्रि का बालक हो, रण में निज पीठ दिखाता है ।
करता है कलंकित क्यों निज कुल, किसलिये न सन्मुख आता है ॥
यों बकता झकता कालयवन, प्रभु पीछे भागा जाता था ।
योगीजन पा न सकें जिनको, ये उन्हें पकड़ना चाहता था ॥
अब पकड़ा अब कर में आया, इस आश से बारंबार यवन ।
हाथों को आगे करता हुआ, दौड़ा जाता था क्रोध मगन ॥
यों बहुत दूर आगे जाकर, एक गुफा में पैठे यदुराई ।
घुसगया असुर भी फौरन ही, हो कालविवश अति झुंझलाई ॥
लेकिन एक अचरज मई बात, अवलोक यवन नृप चकराया ।
भगवान की एवज में उसने, एक पुरुष तहां सोता पाया ॥
सिर पर ओढ़े था पीताम्बर, खुर्राटे खूब ले रहा था ।
ना जाने कब से किस युग से, तन को आराम दे रहा था ॥

कालयवन समझा यही, कीन्ह कृष्ण ने चाल ।
अस्तु एक ठोकर दई, करके आंखें लाल ॥
पद प्रहार से व्यक्ति वो, उठा तुरत घबराय ।
देखा चारों ओर को, अपनी दृष्टि घुमाय ॥

जब कालयवन पर नज़र पड़ी, कंपित अति यवन नरेश हुआ ।
एक अग्नि ज्वाल निकली तन से, जिससे बस जीवन शेष हुआ ॥
सुन गाथा भूप परीक्षत ने, कर जोड़ मुनी से फ़रमाया ।
वो कौन था जिसकी दृष्टी से, हो भस्म यवन यमपुर धाया ॥
पुनि था किसका सुत अरु क्यों वह, इस गुफा में सोया था आकर ।
फिर इतनी कड़ी दृष्टि क्यों थी, ये सब कहिये प्रभु किरपा कर ॥

सुनकर राजा के बचन, व्यासपुत्र तत्काल ।
कहन लगे रविवंश में, हुये एक भूपाल ॥

था जिनका नाम मान्धाता, सतवादी पूरे ज्ञानी थे ।
ये उनके सुत मुचकंद रहे, जो भुजबल में लासानी थे ॥

उन दिनों असुर दल का गहरा, आतंक सुरों पर छाया था ।
अस्तू निज रक्षा करने को, सुरपति ने इन्हें बुलाया था ॥
तब स्वर्ग में रहकर वर्षों तक, इनने देवों की मदद करी ।
विध्वंस राक्षसों का करके, सेनापतियों की जान हरी ॥
आखिर शिवपुत्र षडानन ने, जब सुर सेना का भार लिया ।
तब सुरपति ने इनको बुलाय, अति हित से कहना शुरू किया ॥
हम सारे स्वर्गलोक वासी, हे वीर ! कृतज्ञ तुम्हारे हैं ।
कारन तुमने सब भोग त्याग, निशदिन सुरकाज संवारे हैं ॥
हे भूप मोक्ष देने की तो, शक्ती बस जगदाधार में है ।
तज इसे और सारा वैभव, हम लोगों के अधिकार में है ॥

अस्तु छोड़कर मुक्ति को, जो इच्छा हो सोय ।
मांगो हृदय विचार कर, देंगे हम खुश होय ॥

सुन वचन मान्धाता सुत ने, हर्षित होकर ये फ़रमाया ।
हे सुरपति मैंने निशिदिन रण, करते करते अति श्रम पाया ॥
अस्तू अब सोना चाहता हूँ, एक जगह बतादो किरपाकर ।
जहं बेफिक्री से शयन करूं, नहिं कोई मुझे छेड़े आकर ॥
यदि भूल से भी कोई मनुष्य, मम नींद में बाधा पहुँचावे ।
मैं ये वर चाहता हूँ सुरेश, वो भस्म तुरत ही हो जावे ॥

स्वर्गलोक पति ने यही, दीन्हा वर सुखपाय ।
तब से श्री मुचकंद ने, कीन्ह शयन यहां आय ॥

प्रभु को ये मालुम था अस्तू, नृप कालयवन को यहां लाकर ।
मुचकंद दृष्टि से वध करवा, फिर प्रगट भये अति पुलकाकर ॥
मुख तेज देवकी नंदन का, उस गुफा में चहुँदिशि छायगया
होगया उजेला दिवस सरिस, पल में सब तिमिर विलाय गया ॥
फिर परम मनोहर वानी से, आनंद कंद ने फ़रमाया ।
हे भूप पूर्व के सुकृत वश, तैंने मेरा दर्शन पाया ॥

अब जो इच्छा सो वर माँगो, प्रस्तुत हूँ मैं देने के लिये।
कटिबद्ध हमेशा रहता हूं, जन का दुख हर लेने के लिये॥

घन गर्जन सदृष्य श्रवन कर प्रभु की आवाज़।
लगे देखने चकित हो, सूर्य वंशि महाराज॥

राजा ने देखा त्रिभुवन पति, शुभ रूप चतुर्भुज धारे हैं।
हाथों में शंख गदा आदिक, चारों आयुध स्वीकारे हैं॥
तन की शोभा जल भरे मेघ, सदृश्य दृष्टी में आती है।
अनुराग भरी चितवन जनके चित में अति सुख उपजाती है॥
है किशोर वय अरु आनन पर, छा रही हंसी भवभय हारी।
लख अनुपम भव्य मूर्ती को, नृप को आनन्द हुआ भारी॥
फौरन ही वो उठ खड़ा हुआ, आगे आकर मस्तक नाया।
कर जोड़ नम्र हो कहन लगा, मैं धन्य हो गया जगराया॥
हे दीनबन्धु भव भय भंजन, हे आदि पुरुष शरणागत हूं।
तव चरण शरण मन रहे सदा, वरदान यही प्रभु मांगत हूँ॥
शुभकर्मों का फल स्वर्ग मिले, कर पाप नर्क में जाते हैं।
होतेहि भोग का समय पूर्ण, वापिस पृथ्वी पर आते हैं॥
इस तरह के आने जाने में, रहता है भटकता जीव सदा।
मिलती नहिं शान्ति पलक भर भी, पाता है दुख निःसीव सदा॥
संतप्त हो रहा हूँ मैं भी, कर्मों के चक्कर में फंसकर।
लेकिन अब थिरता आई है, कर दर्श तुम्हारा सुखसागर॥
बस कृपा कीजिये इतनी सी, तव पद पंकज तल्लीन रहूँ।
मिट जाय ये आवागमन प्रभो, भक्ती में नित लवलीन रहूँ॥

* गाना *

यही इच्छा है कि संसार से मैं दूर रहू।
तेरी भक्ती के नशे में प्रभु नित चूर रहूं॥

योग अरु ज्ञान का झगड़ा न निभेगा स्वामी ।
यही भिक्षा हो तेरे प्रेम में भरपूर रहूं ॥
कौन है विश्व में जिसको कि कहू मैं अपना ।
तुम्हीं हो नाथ मेरे तव चरन की धूर रहूं ॥
जिसने पाया तुम्हे पाना न रहा कुछ उसको ।
बस इसी ध्यान में हे नाथ ! मैं मसरूर रहूं ॥

कह तथास्तु भगवान फिर, बोले सुन मुचुकुन्द ।
करो तपस्या जाय कर, बदरी वन सानंद ॥
निज राज काल में नृप तुमने, मृगया वर्षों तक कीन्ही है ।
पुनि यज्ञों में भी अमित बार, कई पशुओं की बलि दीन्ही है ॥
इस पाप का प्रायश्चित राजन्, तुमको अवश्य करना होगा ।
बस इसीलिये मुक्ती से प्रथम, एक बार जन्म धरना होगा ॥
उस जन्म में जीवन मुक्त होय, तुम सच्चे भक्त कहाओगे ।
मम ध्यान अंत में रहने से, मुझ में ही आन समाओगे ॥
यों कह हरि अंतरध्यान हुये, मुचुकुन्द गुफा बाहिर आया ।
तरु आदिक सब छोटे लखकर, सोचा कलि पृथ्वी पर छाया ॥
चल दिया वह उतराखंड तुरत, वहाँ जा तप करना शुरू किया ।
इस तरफ कृष्ण ने कालयवन, की कटक पै धावा बोल दिया ॥
करके विनष्ट निश्चर सारे, भूमी का हलका भार किया ।
फिर मथुरा नगरी में आकर, सब हाल भ्रात को बता दिया ॥
आभास प्रभू की लीला का, नहिं कभी भि कोई पाता है ।
जिस तरह वो जैसा जब चाहे, वैसा ही दृष्य दिखाता है ॥
है काल चक्र होनी भावी, प्रारब्ध कहो कुछ भी कहदो ।
पर है प्रभु इच्छा ही सारी, जो चहो नाम उसका धरदो ॥
कालयवन का मिट गया, पल में नाम निशान ।
मगधेश्वर का हाल अब, सुनो लगाकर कान ॥

सतरवीं बार जब जरासंध, रण मांहि पराजय पा करके।
लौटा तब अपने प्रोहित से, बोला दृग लाल बना करके॥
हे विप्र राज का अन खाकर, तुमने निज देह फुलाई है।
पर क्या ये कभी प्रयत्न किया, किमि होगी राज भलाई है॥
उन तुच्छ बालकों के कर से, हर बार हार कर आता हूं।
पर उनका गर्व मिटाने का, रस्ता न कोई भी पाता हूँ॥
हो गये आधिभौतिक प्रयत्न, सब विफल अस्तु अब है ठानी।
अधिदैविक यत्नों के द्वारा, मैं करूँगा अपनी मनमानी॥
इसलिये शीघ्र बतलाओ मुझे, क्या करना जय दिलवायेगा।
जप तप यज्ञानुष्टानों में, मम कारज कौन बनायेगा॥
कर दो जल्दी आरम्भ उसे, अरु खबर दो मुझको जाने की।
ताके मम इच्छा पूर्ण होय, रिपुओं को नष्ट बनाने की॥
यदि अनुष्ठान करने पर भी, मन चीता काज न हो पाया।
तो निश्चय समझ लेहु मन में, तुमको यम संदेशा आया॥
तुम विप्र हो, ब्रह्महत्या होगी, नहिं इस डर से दहलाऊँगा।
पाते हि पराजय शीघ्र तुम्हें, मृत्यू की गोद सुलाऊँगा॥

रक्खूँगा नहिं एक भी, यहाँ विप्र का अंश।
कर डालूंगा खड्ग से, सह कुटुम्ब विध्वंस॥

जिस तरह वज्र के गिरने से, हिल उठता भू मंडल सारा।
त्योंही नृप बात श्रवण करके, काँपा वो ब्राह्मण बेचारा॥
आखिर धीरज धर ध्यान धार, मन में मोहन का, पुलकाकर।
बोला वो विप्र सुनो राजन्, कर लो रण तैयारी सत्वर॥
कल प्रात काल रवि उगते ही, ले कटक यहाँ से चल देना।
निश्चय जीतोगे और यदी, हारे, मम जीवन हर लेना॥
ये सुन प्रबन्ध सब करवाया, सेना झटपट तैयार हुई।
मगधेश की दृष्टी मथुरा पर, हे नृप अठारवीं बार हुई॥

प्रात होत ही चल दिया, जरासंध ले सेन ।
पीछे से उस विप्र ने, सुमिरे करुणाऐन ॥
रोमांचित हो, उर ध्यान दृढ़ा, अश्रुओं से आंखें गीलीकर ।
कर जोड़, टेक घुटने ब्राह्मण, यों बोला हे गोलोकेश्वर ॥
अवतार आपने लिया प्रभो, विप्रों का दुःख मिटाने को ।
पापी अन्यायी दुष्टों का, संसार से नाम हटाने को ॥
गिन तुम्हें भक्त वत्सल भगवन्, हो निर्भर तुम पर ही स्वामी ।
मगधेश को वाक्य कह दिये हैं, "जय पाने के" अंतरयामी ॥
अब लाज आपके हाथ में है, जन सुखद गरीबनिवाज प्रभो ।
हर दम सुधारते आये हो, दीनों के बिगड़े काज प्रभो ॥
इस तरफ पुरोहित दुखी होय, प्रभु को यों विनय सुनाता था ।
उस तरफ कटक मगधेश्वर का, आगे को बढ़ता जाता था ॥
आखिर मथुरा के निकट आय, अवलोका मगध नृपाला ने ।
उस कालयवन की सेन सभी, वध डाली है गोपाला ने ॥
अरु लूट का माल इकट्ठा कर, ऊँटों पर लादे जाते हैं ।
संग में हलधर भ्राता भी हैं, दोउ मंद मंद मुस्काते हैं ॥

क्रोधित हो आगे बढ़ा, जरासंध तत्काल ।
लगे सोचने फौज लख, मन में दीन दयाल ॥
अब के भी मगधेश की, हुई यहाँ यदि हार ।
तो निश्चय हो जायगा, ब्राह्मण का संहार ॥

सुर, विप्र, धेनु, संतों के लिये, मैंने नर तन स्वीकारा है ।
जैसे हो इनका दुख हरना, ये ही उद्देश हमारा है ॥
इसलिये विप्र की रक्षाहित, इस बार तरह दे जावें हम ।
वैसे भि द्वारका जाना है, क्यों लड़ने की ठहरावें हम ॥
ये कर विचार हलधर समेत, भय के भयदाई यदुराई ।
भय विह्वल मनुज सरिस भागे, सब माल लूट का बिसराई ॥

धाया मगधेश्वर भी पीछे, लेकर अपनी सेना सारी।
इतने में इक गिरि के ऊपर, जा चढ़े भ्रातयुत गिरधारी॥
कुछ देर राह लख दोनों की, नृप जरासंध ने झुंझलाकर।
लगवादी अग्नी पर्वत के, चौतरफ लकड़ियाँ चुनवाकर॥
लपट चढ़ी आकाश में, प्रभु हो अंतरध्यान।
पहुँचे द्वारावति नगर, इक क्षण के दरम्यान॥
प्रभुहिं मृतक जिय जानकर, गिनकर अपनी जीत।
लौट गया मगधेश भी, गाता जय के गीत॥
द्वारावति रह कर राम कृष्ण, आनन्द से दिवस बिताने लगे।
यादव भी प्रभु की छाया में, देवों सदृश्य सुख पाने लगे॥
कुछ दिनों बाद रैवत नृप ने, निज सुता रेवती सुकुमारी।
श्री हलधर के संग विवाह दई, होकर प्रसन्न मन में भारी॥
अब कृष्णचन्द्र की शादी की, श्रोताओं गाथा आती है।
सुन जिसे महा पापी की भी, अति उत्तम गति हो जाती है॥
मध्य आर्यावर्त में, था एक देश विदर्भ।
कुन्डिनपुर रजधानि थी, व्यापक थे सुख सर्व॥
यहाँ के राजा श्री भीष्मक थे, भगवान भक्त पंडित ज्ञानी।
इन घर रुक्मिणी नाम पाकर, प्रगटीं लक्ष्मीजी गुणखानी॥
इनका अनुपम लावण्य देख, नर नारी सभी थकाते थे।
ये कन्या है देवांशि कोई, ऐसा अन्दाज़ लगाते थे॥
इक दिवस रुक्मिणी सखियों संग, उपवन में मन बहलाय रही।
इतने में एक भिक्षुक टोली, देखी आगे को जाय रही॥
करताल थी सब के हाथों में, दृग प्रेम अश्रु टपकाते थे।
हो रहा था रोमांचित शरीर, मनमोहन के गुणगाते थे॥
रुक्मिणी ने उनको पास बुला, पूछा किनका यश गाते हो।
उसमें ऐसा क्या आनन्द है, जो तन सुधि तक बिसराते हो॥

टोली नायक ने कहा, हर्षित होय महान ।
राज सुता हम कृष्ण का, करते सुयश बखान ॥
वो कृष्ण जो ल्हादिनि शक्तिसहित गोलोक में नित लीला करते ।
भूमी पर जब जब भार बढ़े, तब तब नर तन धर अवतरते ॥
जिनके संकल्प मात्र से ही, ब्रह्मांड उपज नस जाते हैं ।
जिनके बल शेष धरें धरनी, हम उनही के गुण गाते हैं ॥
फिर जिनकी अनुपम तन शोभा, शोभा को शोभित करती है ।
एक झलक पलक में भक्तों के, सारे भव बंधन हरती है ॥
पुनि जो रहते सर्वत्र सदाँ, सच्चिदानन्द कहलाते हैं ।
जिनके चरित्र का पार नहीं, खुद वेद मौन हो जाते हैं ॥
सुन जिन्होंने देवों की विनती, मथुरापुर में अवतार लिया ।
वसुदेव के पुत्र कहा करके, जग में यदुकुल को धन्य किया ॥
फिर जिन्होंने गोकुल में जाकर, सुख दिया नन्द नन्दरानी को ।
हम सदा सुमिरते रहते हैं, उनही मोहन गुणखानी को ॥
पुनि मिला जिन्हें अति ही उत्तम, "गोपाल" नाम गोपालन से ।
सुरपति का गर्व किया खंडन, जिनने गिरिवर के धारन से ॥
फिर जिन्होंने कंसादिक संहार, भूमी का भार उतारा है ।
हम भजते उन्ही प्रभू को जिन, द्वारावति राज्य पसारा है ॥

कीर्तन इनके नाम का, हरता तीनों ताप ।
करता पापी मनुज को, पल भर में निष्पाप ॥
जो जन उनको निज इष्ट मान, तन मन से शरणागत आता ।
वह निश्चय अंतरयामी के, घर बैठे ही दर्शन पाता ॥
हे सुभग सुलोचनि नृपललना, मम वाक्यों को सच्चे मानो ।
द्वारकाधीश यदुराई को, जगदीश्वर आनन्दघन जानो ॥
हम अपने नयन सफल करके, द्वारावति से ही आय रहे ।
छबि को छबि देने वाली छबि, लख अब तक होश भुलाय रहे ॥

अब ये आंखें तज उन्हें कुंवरि, नहिं दर्श किसी का चाहती हैं।
हृदय को भी त्रिलोकी में, उनकी हि कीर्ती भाती है॥
यहां तक तन भी प्रभु पावों पर, चाहता है पड़ा रहना निशदिन।
जिव्हा भी तनिक न दम लेती, करती है सदा उनका सुमिरन॥
अच्छा तो वरानने हमको, अब जाने दो जग भ्रमण करें।
है काम एक ही अब हमरा, उन कृष्णचन्द्र में रमण करें॥

*** गाना ***

आजन्म हम रहेंगे बस याद में नटवर की।
गायेंगे कीर्ति हरदम तम-रैन-सुधाकर की॥
जिसने छवी दिखाकर छीना है हृदय छिन में।
चाहते हैं भक्ति करना उन श्याम कलाधर की॥
गिरि कंदरा में बन में उपवन में सब तरफ हम।
बस देखते है शोभा शोभा के समुन्दर की॥
वो है जगत के भीतर उसमें जगत समाया।
ये बात, हे कुमारी ! है वेद के अंदर की।'
नैया पड़ी भंवर में लेकिन ये पार होगी।
आशा है हमें पूरि पूरंधर के पुरंधर की॥

इतना कह फिर बोलकर, जय गिरधर सुखकंद।
भिक्षुक आगे चलदिये, गाते गुण सानंद॥
नटवर का सुन्दर यश सुनकर, भीष्मक कन्या अति हरषाई।
अंकित हो गई हृदय पट पर, मोहन की मूरति सुखदाई॥
पुलकित होकर सोचने लगी, हे विधि उन जन मन रंजन के।
क्या होंगे दर्शन कभी मुझे, व्रज जीवन भव भय भंजन के॥
कह गये हैं भिक्षुक, जो उनका, दृढ़ता से ध्यान लगाते हैं।
उनको वे दीनबन्धु निश्चय, अपना शुभ दर्श दिखाते हैं॥

तो मैं भी प्रण करती हुँ आज, निश दिन गिरधर को ध्याऊंगी ।
जीवन नैया का उनको ही, बस खेवनहार बनाऊंगी ॥
होगये आज से पति मेरे, आनंदकंद श्री यदुराई ।
निश्चय उनको हि वरूंगी मैं, वरना रह जाउंगी बिन व्याही ॥
कर ये विचार मन में पक्का, रुक्मिणी लौट घर जाती है ।
इतने में उसकी सखी एक, श्रीकृष्ण चित्र ले आती है ॥

घृत आहूती पाय जिमि, पावक होय विशाल ।
त्यों हरि चित्र विलोक कर, बढ़ा प्रेम तत्काल ॥

हो गई चित्रवत् चित्र देख, वो राज सुता कुंडिनपुर की ।
लग गई लगन प्रभु चरणों में, चट बदल गई हालत उर की ॥
चलते फिरते खाते पीते, रटती थी नाम मुरारी का ।
करती थी प्रेम सहित पूजन, कंसारी गिरवरधारी का ॥
इक दिवस देवऋषि नारद मुनि, वीणा के तार बजाते हुये ।
आगये सभा में भीष्मक की, गुण कृष्णचन्द्र के गाते हुये ॥
इनको आदर देने के लिये, नृप सिंहासन से उठ धाये ।
अति मान सहित लाकर इनको, एक स्वर्णासन पर बिठलाये ॥
फिर हाथ जोड़ नम्रता सहित बोले सौभाग्य हमारे हैं ।
हो गया आज कुछ पुन्य उदय, जो मुनिवर यहां पधारे हैं ॥
हो तुम त्रिकालदर्शी ऋषिवर, मम सुता का एक भविष्य कहो ।
इसका विवाह किसके संग में, होवेगा बस ये रहस्य कहो ॥
यों कह नृप ने निज कन्या को, ऋषि के दर्शन हित बुलवाया ।
अवलोक चेष्टा आनन की, हँस कर नारद ने फ़रमाया ॥
हे भूप ! तेरी सुकुमारी का, सारा भविष्य अति उज्वल है ।
ये आदि पुरुष को व्याहेगी, इसका सुहाग नित अविचल है ॥
ये सुन प्रसन्न हो रुक्मिणि तो, नत दृष्टि किये वहां से चल दी ।
पर ओट में परदे की होकर, फिर सुनने लगी बात इनकी ॥

नारद मुनि फिर कह उठे, सुन राजा धर ध्यान ।
स्वयम् लक्ष्मि है तव सुता, रूप शील गुण खान ॥
भूमी का भार उतारन हित, भू नायक भू पर आये हैं ।
और संग में अपनी चिर साथिन, महामाया को भी लाये हैं ॥
अवतार लिया है यदुकुल में, रहते हैं द्वारका के भीतर ।
उनके संग अपनी कन्या का, कर दे विवाह निर्भय होकर ॥
वो पुरुष हैं तव कन्या प्रकृती, वो ईश ये उनकी माया है ।
वो जल हैं तो ये है तरंग, वो सुमन तो त्रू तव जाया है ॥
वो कनक हैं तो ये आभूषण, वो रवि तो ये प्रकाश उनका ।
बिन सृष्टि वो रहते सूक्ष्म नित्य, जगहित ये स्थूल विकाश उनका ।
करुणानिधान जगदीश्वर की, नृप तव कन्या चिर संगिन है ।
व्याहेंगे इसको वही प्रभू, ये उनकी ही अर्धांगिन है ॥
है नूतन किसलय के सदृष्य, जिनके नयना अति सुखदाई ।
लख जिनकी छवि अगणित मन्मथ, मोहित होते हे नरराई ॥
फिर जिनका निर्मल यश गाकर, दुनिया निज विघ्न हटाती है ।
तव सुता उन्हीं की पत्नी है, उन ही प्रभु की ये थाती है ॥
पुनि जिनकी भृकुटी का विलास, सब जड़ चेतन का कारन है ।
जिनके पद पदमों का पूजन, जग का त्रयताप निवारन है ॥
शास्त्रों ने जिसको सर्व रूप, सर्वज्ञ आदि बतलाया है ।
ये उन्ही की अंकशायनी है, जिन "कृष्ण" नाम जग पाया है ॥

ज्यों चकोर को चन्द्र बिन, पड़े न पल भर चैन ।
त्यों यह तेरी लाड़िली, दासी करुणाऐन ॥

इतना कह चतुरानन नंदन, धर हृदय ध्यान बनवारी का ।
चलदिये द्वारका की जानिब, दर्शन करने गिरधारी का ॥
इस तरफ आड़ से परदे की, रुक्मिणी ने हाल सुना सारा ।
आवेंगे व्याहन नट नागर, ये दृढ़ विश्वास हृदय धारा ॥

एक दिवस भूप ने सभा जोड़, मंत्री मंडल को बुलवाया ।
पुत्रों को भी शुभ आसन दे, होकर गंभीर यों फ़रमाया ॥
हो गई विवाहने के लायक, मम प्रिय पुत्री हे मंत्रि वरो ।
अस्तू जो हो सुन्दर सुजान, ऐसे एक वर की खोज करो ॥
ये सुन प्रधान मंत्री बोला, महाराज आप बेफ़िक्र रहें ।
इस समय देश में कई वीर, रुक्मिणी के व्याहन योग्य अहें ॥
अर्जुन, दुर्योधन, जरासंध, नृप सोमदत्त बल की खानी ।
कम्बोज भूप, जयद्रथ, कलिंग, अरु धृष्टद्युम्न से भटमानी ॥
इनके बल, शौर्य वीर्य से ही, ये भारत धन्य कहाता है ।
सुरपुर तक में इन लोगों का, सुन्दर यश गाया जाता है ॥
यदि इच्छा हो इनमें से किसी, नृप को या नृप सुत को चुनकर ।
करदें कन्या का पाणि ग्रहण, मम बुद्धि में हैं सब उत्तम वर ॥

लघु सुत भीष्मकराज का, रुक्मकेश, सुन राय ।
बोला मेरी भी सलाह, सुनों पिता चितलाय ॥

मंत्रीजी ने जो वचन कहे, बेशक सच हैं हे नरराई ।
पर इनमें भगिनी के लायक, नहिं मुझे पड़ा कोई दिखलाई ॥
मैंने जिनको निज हृदय में, रुक्मिणी के योग्य बिचारा है ।
उनका यश शिव ब्रह्मादिक ने, कई एक बार उचारा है ॥
नारद भी वीणा के ऊपर, उनके ही गुणगन गाते हैं ।
श्री शेष नाग भी अष्ट प्रहर, उनही का ध्यान लगाते हैं ॥
देवों समेत इस पृथ्वी की, सुन करके अति आरत बानी ।
बसुदेव पुत्र हो यदुकुल में, अवतरे हैं वे ही गुणखानी ॥
तब से लेकर अब तलक पिता, कई वीर निशाचर मारे हैं ।
गोकुल में भी कई चमत्कार, दिखलाये न्यारे न्यारे हैं ॥

हे सभासदों सोचो मन में, जब इन्द्र ने कोप बढ़ाया था।
तब गोवर्धन से पर्वत को, क्षण में उंगली पै उठाया था॥
ऐसी शक्ती इस भारत के, किस वीर में देखी जाती है।
सुन्दरता का भी हाल है यह, सुन्दरता खुद शरमाती है॥
बस ज़्यादा कहना है फिजूल, इस समय वहिन की किस्मत मे।
वो मूर्ति देश में राज रही, इसलिये विवाह करदो हित से॥
उनका सा सौर्य वीर्य जग में, नहिं कहीं नज़र में आता है।
बहनोई बनें मदनमोहन, मुझको तो यही सुहाता है॥

रुक्मकेश की बात सुन, गये सभी हरषाय।
जेष्ट पुत्र रुक्मी मगर, बोला होट चबाय॥

क्या कहा, वो कृष्ण है वीर सुभट, जिन बन बन गऊ चराई है।
मक्खन की खातिर घर घर में, चोरी कीन्ही करवाई है॥
दो चार निशाचर बध करके, गिनता है निज को बलवानी।
हत्यारा मामा का घाती, छल बल करने में लासानी॥
हम से क्षत्रियों की बराबरी, वह ग्वाला क्या कर पावेगा।
जो भगा जरासंध से डरकर, किम वीर वो माना जावेगा॥
हे सभासदों क्या हुआ तुम्हें, जो बच्चे की बातों में आ।
कहते हो इस भूमंडल पर, नहिं कृष्ण सरिस कोई भी बड़ा॥
सुनलो क्या यज्ञ हवी भि कभी, अपवित्र काक खाने पाता।
सुरसरि संग क्या छोटा तलाब, सहवास योग्य माना जाता॥
क्या कभी समागम राहू से, कर रोहणि शोभा पाती है।
अथवा क्या सुधा स्वप्न में भी, असुरों के योग्य कहाती है॥
बस इसी तरह क्या रूप शील, शोभा सुन्दरता की खानी।
रुक्मिणी कभी बन सकती है, उस कुटिल कृष्ण की पटरानी॥

मम भगिनी के योग्य है, फकत वीर शिशुपाल ।
टीका भिजवादो अभी, पिता वहाँ तत्काल ॥

कुल में गुणरूप वीरता में, बस चंदेरी नृप यकता है ।
बस इसीलिये रुक्मिणी संग, उसका विवाह हो सकता है ॥
वीरों की कन्यायें केवल, वीरों को ही दी जाती हैं ।
क्या कभी सिंहनी स्यारों के, संग रहकर शोभा पाती है ॥
जो कहा मैंने बस ठीक है वो, उसको ही हृदय में धरना ।
अब आगे मेरे सन्मुख तुम, उस नटवर का न जिकर करना ॥

इतना कहकर चल दिया, रुक्मैया बलवान ।
सकल सभा भी उठ गई, हुये भूप हैरान ॥

सोचा जो हरि इच्छा होगी, होवेगा वही न फेर पड़े ।
व्याहेंगे उसको यदुपति ही, चाहे टीका कहिं और चढ़े ॥
यदि नारद वचन अमिथ्या हैं, तो अवसि कृष्ण यहाँ आवेंगे ।
रह जायगा यों ही शिशुपाला, मम सुता प्रभू ले जावेंगे ॥
यों कर विचार नृप शांत हुये, आखिर निज महलों में आये ।
ये समाचार कुन्डिनपुर के, घर घर में क्षण भर में छाये ॥

सखियों ने आकर कहा, रुक्मिणि से सब हाल ।
राजसुता! हरिमिलन का, दूर करो सब ख्याल ॥

द्वारावति की सुन्दरता का, तज ध्यान चंदेरी का लाओ ।
हिय मन्दिर से प्रभु मूर्ति हटा, शिशुपाल की प्रतिमा बिठलाओ ॥
बड़ भैया ने सब गुड़ गोबर, हे भीष्मक कुंवरि कराया है ।
सब के विरुद्ध होने पर भी, टीका चंदेरि भिजवाया है ॥
हम सारा इन्तजाम लखकर, सीधी यहाँ पर ही आती हैं ।
कुछ समझ नहीं पड़ता सजनी, विधि गति क्या रंग दिखाती है ॥

सुनकर दुख संवाद को, गई कुंवरि मुरझाय ।
जिम पाले के पड़त ही, हरी लता कुम्हलाय ॥

पुनि कर अपने को स्वस्थ चित्त, भर जोश हृदय में नृप बाला ।
बोली इस तन के मालिक तो, हैं केवल एक नन्दलाला ॥
वे अन्तरयामी हैं सजनी, अबला को अवश्य बचावेंगे ।
शरणागत वत्सल निज प्रण को, है आश जरूर निभावेंगे ॥
कारन उत्सुक रहते हैं दोऊ, दृग प्रभू की छवि अवलोकन को ।
अभिलाशा हाथों की है यही, दावें नित प्रभु के पायन को ॥
श्रवणों की है कामना सखी, प्रिय शब्द सुने बनवारी का ।
चाहते हैं प्राण नित संग रहे, मनमोहन गिरवरधारी का ॥
यदि कमी रह गई भक्ती में, इच्छा पूरी नहिं हो पाई ।
तो फिर विष की शरणागत हो, तन को तजदूँगी बरियाई ॥
पर जीतेजी न गहूंगी मैं, कर चंदेरी भूपाला का ।
यह हृदय यदी होगा आली, तो होगा श्री गोपाला का ॥
यदि रुक्मी ने भिजवाया है, वहाँ टीका तो भिजवाने दो ।
लेकर बरात शिशुपाला को, कुन्डिनपुर में आ जाने दो ॥
पर क्या श्री गंगा का प्रवाह, रत्नाकर से पलटा खाकर ।
जा मिलेगा मान सरोवर में, निज नियम बद्ध गति बिसराकर ॥

कोई कर सकता नहीं, मुझको प्रभु से दूर ।
दासी गिन परिणय मेरा, करेंगे प्रभु मंजूर ॥
तब सखियाँ कहने लगीं, ऐसा करो उपाय ।
चंदेरी नृप से प्रथम, आ पहुँचें यदुराय ॥

वे अन्तरयामी हैं तो भी, बिन बुलाये क्यों कर आवेंगे ।
यदि प्रेम पत्रिका पहुँचा दो, तो निश्चय लाज बचावेंगे ॥

रुक्मिणि बोली क्या किया जाय, द्वारावति दूर लखाती है ।
है समय अल्प यदुनन्दन को, दे पत्र कौन की छाती है ॥
युवराज की आज्ञा बिन कोई, नहिं दूत वहाँ पर जावेगा ।
यदि भेजा मैंने गुप्त कोई, ये भेद न छिपने पावेगा ॥
इसलिये सोचकर यत्न कोई, हे आली मुझको बतलाओ ।
किस भाँति संदेशा जाय और, ले जाय कौन ये समझाओ ॥
तब बोली सखि तुम पत्र लिखो, मैं विप्र एक बुलवाती हूँ ।
उसके द्वारा तुम्हरा संदेश, यदुराई ढिंग पहुँचाती हूं ॥
ये सुनकर राजसुता फौरन, लेखन सामान मंगाती है ।
अरु कृष्ण ध्यान में मग्न होय, अति प्रेम से लिखती पाती है ॥

सिद्ध श्री द्वारावती, शुभस्थान सुख धाम ।
रहें जहाँ श्री कृष्णजो, जन परिपूरन काम ॥
उनके चरणों में मेरा, पहुँचे कोटि जुहार ।
दासी की करुणानिधी, सुनिये करुण पुकार ॥

मुनि नारद ने हे मन मोहन, तुमको मम नाथ बताया है ।
बस इसीलिये ये करुण पत्र, लिखने को कलम उठाया है ॥
मुझको चरणों की चेरि जान, हे दीन दुःख भंजन स्वामी ।
लीजिये खबर अति शीघ्र आय, घट घट व्यापक अंतरयामी ॥
गज की पुकार करते हि श्रवण, जिमि गरुड़ छोड़ तुम धाये थे ।
दमयंती की लज्जा रखने, व्याधा के प्राण नसाये थे ॥
फिर जिमि प्रह्लाद उबारा था, पापी हिरनाकुश के कर से ।
उद्धार किया था सीता का, जिस तरह दुष्ट दशकंधर से ॥
पुनि भस्मासुर से डर शंकर, जब वन की ओर सिधारे थे ।
तब भी तुमने ही खल को वध शम्भू के क्लेश निवारे थे ॥

इसके सिवाय कई बार करी, गोकुल वालों की रखवाली।
त्योंही शिशुपाला के कर से, मम रक्षा कीजे वनमाली॥
जैसे जल विनु नहिं मीन रहे, बिन वायू जिये न तनधारी।
त्योंही मेरी भि दशा होगी, यदि शीघ्र न आये गिरधारी॥
चाहते हैं सभी मम जीवन की, नैया के तुम मल्लाह बनो।
दो जगह चरण में नाथ मुझे, इस दासी के तुम नाह बनो॥
लेकिन हठ वश मम भ्राता ने, चंदेरी नाथ बुलाया है।
जो भाग्य गरुड़ का है उसको, वायस को देना चाया है॥

तीन दिवस मम व्याह में, रहे हैं केवल नाथ।
दर्श दीजिये वेग आ, करिये अनाथ सनाथ॥

सूरज पश्चिम में उदय होय, वरु चन्द्र उगे प्राची दिशि में।
खद्योत दिवाकर सम प्रकाश, फैला देवे चाहे निशि में॥
अमृत पीने से मृत्यु होय, विष मृतक को जीवन दानकरे।
मच्छर चाहे निज ठोकर से, मेरू को रेत समान करे॥
ये सब उल्टी बातें चाहे, एक वार सत्य दें दिखलाई।
पर मेरा प्रण तिंहु काल में भी, मिथ्या नहिं होगा यदुराई॥
निश्चय समझो देवकी कुंवर, जिस रोज आपके दर्शन की।
आशा मन से नस जायेगी, देह मृतक होयगी रुक्मन की॥
अस्तू जिस हालत में भी हो, फौरन रथ पर चढ़कर आना।
यादवों की विजयी सेना भी, कुछ मोहन अपने संग लाना॥
कारन मुझ को ले जाने में, संग्राम तुम्हें करना होगा।
कई दुष्ट पापियों का नटवर, तुमको जीवन हरना होगा॥
जिस तरह इन्द्र की इन्द्राणी, गिरजा शिव की अर्धांगिन है।
लक्ष्मी बैकुंठनाथ संगिनि, त्यों दासी हरि अनुरागिन है॥

जिस तरह आश मम पूरी हो, बस वही काम करना स्वामी ।
ज्यादा क्या लिखूं तुम्हें केशव, तुम तो खुद हो अंतरयामी ॥
मनसा, वाचा, कर्मणा, दासी मुझको जान ।
करना इच्छा पूर्ण मम, भक्त सुखद भगवान ॥
इस प्रकार लिख पत्रिका, दी ब्राह्मण को जाय ।
कहन लगी कर जोड़ फिर, सुनहु विप्र चितलाय ॥

*** गाना ***

करके कृपा यदुनाथ ढिंग, पाती मेरी पहुंचाइये ।
चरणों में उनके दीनता से, यह विनय कर आइये ॥
खगनाथ के बलिभाग को, वायस उठा ले जा रहे ।
अस्तू न करना देर अब, अति शीघ्र ही आजाइये ॥
नैया फंसी मंझधार में, है शोक सिन्धु अथाह भरा ।
मल्लाह बन पतवार ले, जल्दी हि तीर लगाइये ॥
आशा भरी दृष्टी से मै, तकती रहूँगी राह को ।
करके दया दीनों पै, दीनानाथ दर्श दिखाइये ॥
यदि शीघ्र यहा पहुँचे नहीं, विष खा मरेगी रुक्मिनी ।
अविलम्ब दीनदयाल चढि रथ, भीष्मपुर में आइये ॥

लेकिन हे द्विज ! मनमोहन को, ये पत्र अकेले में देना ।
कह प्रेम सहित मेरा प्रणाम, फिर कहना हे राजिव नैना ॥
जितनी जल्दी हो सके नाथ, कुंडिनपुर को प्रस्थान करो ।
भीष्मक की सुता रुक्मणी का, हे दुख भंजन सब दुःख हरो ॥
पुनि अंत में यहां के समाचार, हे विप्र पूर्णतः बतलाना ।
जिस तरह बने उनको अपने, साथ ही साथ लेते आना ॥

भर दूंगी अन धन से भंडार, नहिं कमी तनिक रह पायेगी ।
जब तलक जियेगी राजसुता, हे द्विज तेरे गुण गायेगी ॥
कन्या के प्राणों की रक्षा, अब आगे हाथ तुम्हारे है ।
जो विवाह हुआ गिरधारी संग, तो सत्य तेरे पौबारे हैं ॥
फिर एक बात का ध्यान और, रखना अपने हिय के अन्दर ।
ये भेद न कोई जान सके, अच्छा अब गमन करो सत्वर ॥

यों कह ब्राह्मण को विदा, किया तुरत सिरनाय ।
कृष्ण ध्यान उर धारके, चला विप्र पुलकाय ॥
भीष्मक पुत्री का हुआ, प्रणय पूर्ण "श्रीलाल" ।
सुनो कथा अब जिमि मिले, रुक्मिणि को गोपाल ॥

॥ इति श्रीकृष्णार्पणस्तु ॥





श्रीकृष्णचरित्र अथवा श्रीमद्भागवत

तेरहवां भाग

रुक्मिणी विवाह

रचयिता—

श्रीलाल खत्री

प्रकाशक—महाभारत पुस्तकालय, अजमेर

मुद्रक—के. हमीरमल लूनिया, दि डायमण्ड जुबिली प्रेस, अजमेर.

प्रथमबार २००० } सम्वत १९९१ विक्रमी, सन् १९३५ ईस्वी { मूल्य ।) आने

स्तुति

(१)

शरण में राखलेहु यदुवीर।
जनमनरंजन, भवभयभंजन, असुरारी रणधीर ॥
मिटा है माया सेना द्वारा, सारा मम प्राचीर।
घट, प्रधान सेनप शत्रु के तकि तकि मारें तीर ॥
रक्षक दुर्ग मिले अरि से जा कैसे न होउं अधीर।
बुद्धि पताका गिरी जात है बढ़त हृदय में पीर ॥
करुणानिधि बनकर गढ़ रक्षक आवो मेरे तीर।
भक्ती की दो तोप मुझे प्रभु जेहि हृदय में धीर ॥
रिपुदल संभ्रम होय भगे फिर चाले सुमन्द समीर।
निर्भय होय जपं निशिवासर बलदाऊ के वीर ॥

मङ्गलाचरण

(२)

पीताम्बर धर पाप हर, गोकलेश गोपाल।
ताप हरन जन सुख करन, जय जय दीन दयाल
जय जलशायी जलदसम, सुभग सुहावन
सृष्टि रचन, पालन, हरन, शिव अज
तुम गुरु गणपति शारदा, सहस बदन
विघन हरो मंगल करो, जग व्याप
बंदहुं वेदव्यास सुत, श्री शुक
गायो कलिमल हरन जिन, "कृष्ण च

* श्लोक *

वंशीविभूषितकरान्नवनीरदाभात्पीताम्बरादरुणबिंबफलाधरोष्ठात् ।
पूर्णेन्दुसुन्दरमुखादरविन्दनेत्रात्कृष्णात्परं किमपितत्वमहं न जाने ॥

कथा प्रारम्भ

हे मन इस संसार की, तज कर सारी आस ।
गुण गा नित गोपाल के, राखि हृदय विश्वास ॥
उनके चरित्र जग पावन हैं, गाकर कर जन्म सफल अपना ।
बाकी सब झूंठा झगड़ा है, मिथ्या है सार रहित सपना ॥
श्रोताओं पत्र रुक्मिणी का, ले विप्र द्वारिका ओर चले ।
आते हि नगर बाहिर इनको, कई सगुन दिखाई दिये भले ॥
हर्षित हो कृष्ण कृष्ण रटते, आगे को बढ़ते जाते थे ।
पुर की शोभा प्रभु का स्वरूप, हृदय में घड़ते जाते थे ॥
यों कुंडिनपुर से कछुक, आगे आ द्विजराय ।
निशा जान कर सो गये, एक जगह सुख पाय ॥
उत अंतरयामी ने सोचा, नारद के बचनों को सुनकर ।
रुक्मिणी ने मेरे चरणों पै, कर दिया है तन मन न्यौछावर ॥
रहती है रात दिन ध्यान मग्न, सच्चा सनेह व्रत धारा है ।
ऐसे भक्तों की लज्जा को, रखना कर्तव्य हमारा है ॥
जो विप्र संदेशा लाय रहा, वो सुबह तलक नहिं आ सकता ।
अरु उसके विन आये यहां से, मैं कुंडिनपुर नहिं जा सकता ॥
यदि समय पै मैं वहां गया नहीं, तो निश्चय तन बलिदान करे ।
पर जीते जी वह कभी नहीं, शिशुपाल कंठ वरमाल धरे ॥
अस्तु माया द्वारा द्विज को, द्वारावति बाहर बुलवाऊं ।
होते हि सवेरा उसके संग, कुंडिनपुर की जानिब जाऊं ॥
यों कर विचार मायापति ने, माया को द्विज पै भिजवाया ।
निद्रावस्था ही में उसको, नगरी के बाहिर मंगवाया ॥

प्रातकाल के होत ही, जागा विप्र सुजान ।
देख जगमगाता नगर, हुआ बहुत हैरान ॥
सोचा कहिं स्वप्न जाल तो यह भरमा न रहा हो हे ईश्वर ।
जो करी कल्पना वैसी ही, रचना शुभ लखता हूँ यहां पर ॥
मुझको तो कुंडिनपुर के ही, जंगल में थी निद्रा आई ।
पर उसकी एवज में अब तो, सुन्दरपुर देता दिखलाई ॥
कैसे आ पहुँचा यहां, नहीं समझ में आय ।
हे विधि कैसी विडम्बना, मुझको रही सताय ॥
इतने में एक मनुज को लख, द्विज ने उससे पूछा जाकर ।
ये कौन नगर है अरु यदुपति, की पुरी है कितनी दूर किधर ॥
सुनते हि वाक्य इस ब्राह्मण के, वो राहगीर कुछ मुस्काया ।
अरु बोला क्या इस ओर कभी, आये हो नहीं तुम द्विजराया ॥
पर अब सारी चिन्ता तज दो, जाना होगा आगे न कहीं ।
जो सोचा है मन में तुमने, वो काम बनेगा विप्र यहीं ॥
लो सुनो यही द्वारावति है, है यही भवन यदुराई का ।
सच्चिदानंद, आनंदकंद, सुर, विप्र, धेनु सुखदाई का ॥
इस पुर की शोभा लख लोचन, क्या कभी तृप्त हो सकते हैं ।
हे ब्राह्मण नर की बात है क्या, शिव ब्रह्मादिक भी थकते हैं ॥
आहा ! टुक दृष्टि घुमा करके, देखो तो सामने द्विजराई ।
रवि किरणं पुर पर पड़ती हुईं, कस सुन्दर देतीं दिखलाई ॥
लो चलो साथ मेरे द्विजवर, मैं तुम्हें भवन तक पहुँचा दूं ।
हो सके तो मोहन को विलोक, कर नेत्र सफल फिर रस्ता लूं ॥
आशिर्वादों की झड़ी, द्विज ने दई लगाय ।
साथ हुआ अति हर्ष कर, कहि जय श्री यदुराय ॥
पुर की शोभा को देख देख, आनन्द न हृदय समाता था ।
जिस तरफ नज़र जा पड़ती थी, हो चकित खड़ा रह जाता था ॥

इस तरह ठिठकता चलता वो, प्रभु के निवास सन्मुख आया ।
रह गया ठगा सा शोभा लख, तब राहगीर ने फरमाया ॥
जिनको निर्गुण, निरीह कह कर, सम्बोधन करते हैं योगी ।
अरु जिनका ध्यान योग द्वारा, हृदय में धरते हैं योगी ॥
पुनि माया को स्वीकृत करके, क्षण में जो सृष्टि रचाते हैं ।
भक्तों की भावना सम तन धर, जो बार बार जग आते हैं ॥
फिर रहते जिनके दर्शन हित, लालयित सदा सुर मुनि सारे ।
ये उन्हीं कृष्ण का मंदिर है, जिन हेतु आपने पग धारे ॥
पांचों शस्त्रों से सज्जित हो, प्रहरी पहरा दे रहे यहां ।
इनसे कह भीतर गमन करो, करुणानिधान मोहन हैं जहां ॥
इतना कह बोल कृष्ण की जय, वो पथिक विदा हो चला गया ।
तब पुलकित हो रुक्मिणी दूत, आगे को जानिब जात भया ॥

द्वारपाल से जायकर, बोला द्विज सकुचाय ।
यादवेन्द्र को तुम मेरा, कहो संदेशा जाय ॥
कहना आया विप्र इक, कुंडिनपुर से नाथ ।
पत्र आपके नाम का, लाया है निज साथ ॥

ब्राह्मण के वाक्य श्रवण करके, वो द्वारपाल अति हरषाया ।
मस्तक झुकाय कर नमन किया, फिर हाथ जोड़ यों फरमाया ॥
हे विप्रदेव ! आनंदकंद, भगवान् कृष्ण फ़रमाते हैं ।
ज्यों स्वर्ग के सुर, त्योंही जग के देवता ये विप्र कहाते हैं ॥
इसलिये इन्हें मम द्वारे पर हरगिज न कभी अटकाना तुम ।
लखते ही अति आदर समेत, मेरे समीप भिजवाना तुम ॥

अस्तु करो हे देव तुम भीतर स्वयम् प्रवेश ।
कहो अभय हो जायकर, जो कुछ हो संदेश ॥

अवलोक कृपा के सागर की, अस कृपा ब्राह्मणों के ऊपर ।
वो विप्र कृष्ण गुण गाता हुआ, प्रमुदित हो चला भवन भीतर ॥

कई यक अनुपम मंदिर तय कर, फिर अंत में वो उस जां आया ।
जहां स्वर्णासन पर बैठे थे, मन्मथ-मदमर्दन यदुराया ॥
त्रिभुवनमोहन अनुपम छवि लख, ब्राह्मण को पुलकावलि छाई ।
सोचा आंखों ने स्वप्न में भी, नहिं देखी अस सुन्दरताई ॥
क्या कहूँ कौनसे जन्मों के, सुकृत फल उदय हुये आकर ।
जिनके प्रताप से लखे आज, लीला ललाम गिरधर नागर ॥
हे विधि क्या उत्तम था यदि मैं, सुरराज दृगों सम दृग पाता ।
तो अद्भुत रूप सुधा पीकर, बस कृत्य कृत्य मैं हो जाता ॥
फिर भी जो सुख इस समय मुझे, मिल रहा वर्णनातीत है वो ।
कारण दर्शन कर रहा हूँ मैं, उन प्रभु के परम पुनीत हैं जो ॥
फिर जिनका आदि व अंत नहीं, माया से परे माया मय हैं ।
निर्गुण हाकर भी सगुण हैं जो, हो न्यायवान करुणालय हैं ॥

यही सोचते सोचते, कृष्णमूर्ति उर धार ।
प्रतिमावत द्विजवर हुये, तन को दशा विसार ॥

इस तरफ कृष्ण ने दृष्टि घुमा, देखा एक विप्र पधारे हैं ।
फौरन सिंहासन से उठकर, बोले सौभाग्य हमारे हैं ॥
हे द्विजवर कृपा करो आओ, दर्शन दे मुझे कृतार्थ किया ।
निज चरणों की पावन रज से, घर को भी पवित्र बनाय दिया ॥
यों कह पूजन कर नेह सहित, आनंदकंद शारंगपानी ।
सिंहासन पर द्विज को बिठला, बोले विनीत कोमल बानी ॥
यद्यपि प्रभु अंतरयामी थे, ब्राह्मण के आने का कारन ।
सब जानते थे फिर भी अजान, सम लगे पूछने जगतारन ॥
हे विप्र कहो किस कार्य हेतु, आने का कष्ट उठाया है ।
यदि बात छिपाने योग्य न हो, तो कहो कहूं मन चाया है ॥

देख नम्रता कृष्ण की, द्विज उर हुआ अनंद ।
गद्गद् हो कर कह उठा, जय प्रभु करुणाकंद ॥

हे दीनबंधु, हे दयानिधे, हे जनरक्षक, जगदीश, प्रभो ।
मेरे आने का भेद सकल, तुम जानत त्रिभुवन ईश प्रभो ॥
फिर भी कहता हूँ श्रवण करो, कुंडिनपुर की सुकुमारी ने ।
नृप भीष्मक की प्रिय पुत्री ने, रुक्मिणी रूप गुणवारी ने ॥
मुझको एक विनय पत्रिका दे, तुम्हरे समीप है भिजवाया ।
लज्जा रखिये अबला की प्रभु, चलिये मेरे संग यदुराया ॥
सुन नाम आपका प्रणतपाल, नृप सुता ने प्रण ये ठाना है ।
पद पद्मों में यदुराई के, मम मन बन भ्रमर लुभाना है ॥
यदि गंध न नित पा सकी तो मैं, तन को निर्जीव बनाऊंगी ।
इस प्रेम से सौ जन्मों में तो, केशव की चेरि कहाऊंगी ॥
नृप भीष्मक की तो राय थी ये, रुक्मिणी आपको दी जावे ।
पर जेष्ठ पुत्र ये चाहता था, शिशुपाल से शादी की जावे ॥
आखिर सुत की ही बात रही, चंदेरी तिलक पठाया है ।
दमघोष सुवन लेकर बरात, आ रहा है ये सुन पाया है ॥
आवेंगे साथ में जरासंध, नृप शाल्व आदि कई भटमानी ।
परसों है विवाह अस्तु कृष्णा, जल्दी चलिये शारंगपानी ॥

इतना कह द्विजराज ने, दई पत्रिका हाथ ।
प्रेम सहित पढ़ने लगे, दीनबंधु यदुनाथ ॥

चिट्ठी पढ़ रोमांचित होकर, ब्राह्मण से बोले यदुनंदन ।
हे विप्र नहीं लख सकता हूं, मैं भक्तों का करुणा-क्रंदन ॥
क्या पूर्ण चन्द्र के रहते हुये, कभि कुमोदिनी कुम्हलाई है ।
रवि प्रकाश में चकवी ने क्या, कभि विरह व्यथा जतलाई है ॥
हे द्विज पुंगव तुम दुखीन हो, जिमि स्यार झुंड में पंचानन ।
आकर निज भख ले जाता है, त्योंही ले आऊंगा रुकमन ॥
यों कह नाना के पास जाय, प्रभु ने सब हाल सुनाय दिया ।
पुनि आज्ञा ले पितु माता से, रथ सजवा कर मंगवाय लिया ॥

ब्राह्मण को पहिले चिठलाकर, फिर जगतपती असवार हुये।
आशंका कर रन होने की, सेना ले राम तयार हुये॥
चल दिये तुरत कुंडिनपुर को, दिन भर में राह समाप्त हुई।
आ पहुँचे राज बाग के ढिग, तब कहीं यामिनी व्याप्त हुई॥
तब प्रभु ने मुस्काय कर, कहा विप्र तुम जाउ।
मेरे आने की खबर, रुक्मिणि को पहुँचाउ॥
इधर चले होकर विदा, द्विज नृप कन्या तीर।
उधर कथा जो रह गई, सुनो सुजन मति धीर॥
पत्रिका दिये उस ब्राह्मण को, जब तृतियः दिन भी पूर्ण हुआ।
अरु मिला नहीं कुछ भी संदेश, तब रुक्मिणि का उर चूर्ण हुआ॥
आखों से अश्रु गिराती हुई, यों कहन लगी वो नृप बाला।
हे सखियों क्या इस जीवन में, नहिं मिलेंगे आकर नंदलाला॥
थी आज की पक्की आश मुझे, ये भी पूरा होने आया।
लेकिन संदेश प्राणधन का, वो विप्र नहीं अब तक लाया।
क्या मुझ अभागिनी में कोई, अवगुन देखा बनवारी ने।
जो अभी तलक नहिं खबर लई, नटवर नागर गिरधारी ने॥
विधना क्या प्रेम के प्रतिफल में, विष की हि शरण ली जावेगी।
बिन श्याम दरश इस जीवन की, क्या शाम हाय की जावेगी॥
एक सखी कहने लगी, धीर धरहु नृप बाल।
अंतरयामी हैं प्रभू, आवेंगे तत्काल॥
क्योंकि तुम्हरा निष्कपट प्रेम, आकर्षित उन्हें बनालेगा।
उनका हि ध्यान चित माहिं धरो, निश्चय द्विज खुश खबरी देगा॥
अब तक तो किसी भक्त वर ने, अपनी लज्जा न गंमाई है।
अति शीघ्र आय कर मदद करी, जिस जिस ने टेर सुनाई है॥
कहा रुक्मिणी ने सखी, प्यासे ने जब प्राण।
त्याग दिये तब काम क्या, आवे सिन्धु महान॥

बस इसी तरह यदि मेरे भी, जीवन का अंत हुआ आली ।
तो फिर सब व्यर्थ है जो यहां पर, आये भी यदि वे वनमाली ॥
कुछ ही क्षण में शिशुपाला तो, सज साज यहां आजाता है ।
पर उनका कोई पता नहीं, जिनसे प्राणों का नाता है ॥
श्रुति शास्त्र उन्हें अंतरयामी, शरणागत वत्सल कहते हैं ।
लेकिन ये बचन मुझे तो सखि, स्तुति वाक्य से जचते हैं ॥
पर खैर जो होना था वह हुआ, नहिं सुधर सकी तक़दीर मेरी ।
प्रभु का वियोग ही लिक्खा है, हो गई व्यर्थ तदवीर मेरी ॥
तो फिर अब अश्रु वहा कर मैं, किसलिये समय को नष्ट करूं ।
जो कुछ स्थिर कर लिया उसे, कर कर्म में परणित दुःख हरूं ॥
हा ! कहां तो यह अभिलाषा थी, एक समय शीघ्र ही आवेगा ।
जब तन प्रभु पद अरविंदों का, वन भ्रमर धन्य हो जावेगा ॥
अरु कहं अब फिक्र सवार है ये, कितनी जल्दी तन त्यागन कर ।
इस विरह व्यथा को शांत करूं, नटवर के चरण हृदय में धर ॥
इतना कहते कहते रुक्मिणी, व्याकुल होगई विरह दुःख से ।
कर नेत्र बंद टूटे फूटे, शब्दों में कहन लगी मुख से ॥

* गाना *

हे द्वारका के वासी मम सुधि न भुला देना ।
अवला की आके मोहन लज्जा को बचा देना ॥
दुखियो की दीनबन्धू आये हो करते रक्षा ।
जाती है डूबी नैया टुक हाथ लगा देना ॥
भक्ती न वन सकी है मुझ से तनिक भी स्वामी ।
तोभी हे भक्त वत्सल निज नाम निभा देना ॥
जायेगी टूट जिस दम तुम से मिलन की आशा ।
चल देंगे प्राण, प्रीतम ! ये दिल मे जमा लेना ॥

यों कह पुनि हो अति दुखी, पोंछ दृगन का नीर ।
सम्बोधन कर बदन को बोली होय अधीर ॥
शरद पूर्णिमा चन्द्र सम, है जिस मुख की कांति ।
विद्युत लज्जित होत है, लख जिन दशनन पांति ॥
फिर कस्तूरी मिश्रित चंदन, जिस भाल की छवी बढ़ाता है ।
काले घुंघराले बालों की, शोभा लख भ्रमर लजाता है ॥
रहता है पुनि जिनके सिर पर, शुभ मुकुट मोर पंखोंवाला ।
कानों के मकराकृत कुंडल, फैलाते रवि सम उजियाला ॥
हे नेत्रों ! उस त्रिभुवन मोहन, मोहन का अति सुंदर आनन ।
अवलोकन की सब आस तजो, नहिं आवेंगे जनदुखदारन ॥
कानो ! बिम्बाफल के सदृष्य, है जिनकी अनुपम अरुणाई ।
रहती है मंद मुसकान सदा, जनमनमोहन जिन पर छाई ॥
उन अधरों से अमृत समान, मृदु वचन सुनन की अभिलाषा ।
तज दो अरु धीर धरो बैठो, किस्मत का उलट गया पासा ॥
होठो ! तुम भी कृष्ण के, अधरामृत का पान ।
करने की आशा तजो, गिनकर स्वप्न समान ॥
हे हृदय ! मंदभागी हृदय !, किस तरह तुझे मैं समझाऊं ।
कौस्तुभ मणि अरु बनमाला से, शोभित प्रभु उर कहां से लाऊं ॥
हे करों ! किया नहिं तुमने भी, कोई ऐसा सुकृत भारी ।
जिसके फल से छू सको कभी, प्रियतम पद पंकज भयहारी ॥
हे भुजा ! तू भी आसरा छोड़, क्यों वृथा लालसा करती है ।
तुझ सम अभागिनी क्या प्रभु के, गल में डाली जा सकती है ॥

हे प्राणों ! अब चल बसो, तज ये अधम शरीर ।
तुम्हें दर्श देते नहीं, दिखते हैं यदुवीर ॥

हे प्रीतम ! प्राणनाथ ! प्रियवर, करना स्वीकार ।
जिस योनि में जन्म लेउं जाकर, नहिं मिटे

है जीवनधन जितना चहिये, उतना मैं प्रेम दिखा न सकी।
है यही सबब जिससे तुमको, आकर्षित नाथ बना न सकी॥
अच्छा प्रिय अब होती हूँ विदा, हे सखियों तुम जल्दी जाओ।
इस विरह से छुट्टी पाने को, चिरशांति रूप विष को लाओ॥
बस इतना ही कह कर रुक्मिणि, हो गई असुधि सर सुधि खोकर।
घबराय गईं सखियां सारी, भागीं इत उत व्याकुल होकर॥
कोई पंखा लेकर आई, वायू करने में चित्त दिया।
अरु किसी ने गुलाब जल आदिक, चहरे पै डालना शुरू किया॥
आगया होश कुछ देर बाद, मुख से निकला "प्रभु कहां हो तुम"।
इतने में एक आवाज आई, 'प्रभु वहीं, रुक्मिणी जहां हो तुम'॥
चैतन्य हो राजसुता ने लखा सन्मुख उस ब्राह्मण को पाया।
जिसको दे पत्र द्वारिका की, जानिब था इसने भिजवाया॥

अवलोकन कर विप्र के, मुख पर अति आनंद।
भीष्मक कन्या के हृदय, छाया परमानंद॥

झट उठकर दंड प्रणाम किया, फिर हित से द्विज को बिठलाया।
अरु लगी पूछने कहो विप्र, अच्छे तो हैं वे यदुराया॥
मेरी उस विनय पत्रिका का, क्या उत्तर दिया बिहारी ने।
क्या किया असर कुछ भी प्रभु के, चितपर उस अरज हमारी ने॥
अति शीघ्र सकल अहवाल कहो, उत्कंठा हृदय जताता है।
एक एक निमिष युग के समान, इस समय मुझे दरसाता है॥

मंद मंद मुस्काय कर, कहन लगे द्विज बोल।
पूर्ण सुखी हैं जनसुखद पुरुषोत्तम, नंदलाल॥

फिर अपने जाने से लेकर, वापिस आने तक की सारी।
गाथा विस्तार सहित खुश हो, भीष्मक पुत्री से कह डारी॥
फिर कहा अंत में हे कुमारि, बलराम सहित प्रभु आये हैं।
और साथ में थोड़ी चुनी हुई, यादव सेना भी लाये हैं।

यों कह पुनि हो अति दुखी, पोंछ दृगन का नीर ।
सम्बोधन कर वदन को, बोली होय अधीर ॥
शरद पूर्णिमा चन्द्र सम, है जिस मुख की कांति ।
विद्युत लज्जित होत है, लख जिन दशनन पांति ॥
फिर कस्तूरी मिश्रित चंदन, जिस भाल की छबी बढ़ाता है ।
काले घुंघराले बालों की, शोभा लख भ्रमर लजाता है ॥
रहता है पुनि जिनके सिर पर, शुभ मुकुट मोर पंखोंवाला ।
कानों के मकराकृत कुंडल, फैलाते रवि सम उजियाला ॥
हे नेत्रों ! उस त्रिभुवन मोहन, मोहन का अति सुंदर आनन ।
अवलोकन की सब आस तजो, नहिं आवेंगे जनदुखदारन ॥
कानो ! बिम्बाफल के सदृष्य, है जिनकी अनुपम अरुणाई ।
रहती है मंद मुसकान सदा, जनमनमोहन जिन पर छाई ॥
उन अधरों से अमृत समान, मृदु वचन सुनन की अभिलाषा ।
तज दो अरु धीर धरो बैठो, किस्मत का उलट गया पासा ॥
होठो ! तुम भी कृष्ण के, अधरामृत का पान ।
करने की आशा तजो, गिनकर स्वप्न समान ॥
हे हृदय ! मंदभागी हृदय !, किस तरह तुझे मैं समझाऊं ।
कौस्तुभ मणि अरु बनमाला से, शोभित प्रभु उर कहां से लाऊं ॥
हे करों ! किया नहिं तुमने भी, कोई ऐसा सुकृत भारी ।
जिसके फल से छू सको कभी, प्रियतम पद पंकज भयहारी ॥
हे भुजा ! तू भी आसरा छोड़, क्यों वृथा लालसा करती है ।
तुझ सम अभागिनी क्या प्रभु के, गल में डाली जा सकती है ॥
हे प्राणों ! अब चल बसो, तज ये अधम शरीर ।
तुम्हें दर्श देते नहीं, दिखते हैं यदुवीर ॥
हे प्रीतम ! प्राणनाथ ! प्रियवर, करना स्वीकार प्रणाम मेरा ।
जिस योनि में जन्म लेउं जाकर, नहिं मिटे हृदय से नाम तेरा ॥

हे जीवनधन जितना चहिये, उतना मैं प्रेम दिखा न सकी।
है यही सबब जिससे तुमको, आकर्षित नाथ बना न सकी॥
अच्छा प्रिय अब होती हूँ विदा, हे सखियों तुम जल्दी जाओ।
इस विरह से छुट्टी पाने को, चिरशांति रूप विष को लाओ॥
बस इतना ही कह कर रुक्मिणि, हो गई अलुवि सर सुधि खोकर।
घबराय गई सखियां सारी, भागीं इत उत व्याकुल होकर॥
कोई पंखा लेकर आई, वायू करने में चित्त दिया।
अरु किसी ने गुलाब जल आदिक, चहरे पै डालना शुरू किया॥
आगया होश कुछ देर बाद, मुख से निकला "प्रभु कहां हो तुम"।
इतने में एक आवाज आई, 'प्रभु वहीं, रुक्मिणी जहां हो तुम'॥
चैतन्य हो राजसुता ने लखा सन्मुख उस ब्राह्मण को पाया।
जिसको दे पत्र द्वारिका की, जानिब था इसने भिजवाया॥

अवलोकन कर विप्र के, मुख पर अति आनंद।
भीष्मक कन्या के हृदय, छाया परमानंद॥

झट उठकर दंड प्रणाम किया, फिर हित से द्विज को बिठलाया।
अरु लगी पूछने कहो विप्र, अच्छे तो हैं वे यदुराया॥
मेरी उस विनय पत्रिका का, क्या उत्तर दिया बिहारी ने।
क्या किया असर कुछ भी प्रभु के, चितपर उस अरज हमारी ने॥
अति शीघ्र सकल अहवाल कहो, उत्कंठा हृदय जलाता है।
एक एक निमिष युग के समान, इस समय मुझे दरसाता है॥

मंद मंद मुस्काय कर, कहन लगे द्विज बोल।
पूर्ण सुखी हैं जनसुखद पुरुषोत्तम, नंदलाल॥

फिर अपने जाने से लेकर, वापिस आने तक की सारी।
गाथा विस्तार सहित खुश हो, भीष्मक पुत्री से कह डारी॥
फिर कहा अंत में हे कुमारि, बलराम सहित प्रभु आये हैं।
और साथ में थोड़ी चुनी हुई, यादव सेना भी लाये हैं॥

कह दिया है नृप से भी मैंने, यहां आये हैं शारंगपानी।
सुनते हि भूप आनंदित हो, पहुँचे हैं करने अगवानी॥
हे राजसुता! तेरे समान, मम हितु नहीं जग में कोई।
जो रहे सदा शंकर उर में, तेरी किरपा से लखा सोई॥
किम करूं रूप वर्णन उनका, किन शब्दों द्वारा समझाऊं
कल्पना करूं किस उपमा की, वर्णन शक्ती कहां से लाऊं॥
लाचार हो ये कहना पड़ता, बनमालि सरिस बनमाली हैं।
है सफल जन्म तेरा रुक्मिणि, जो प्रीति उन्हों से पाली है॥
रोमांचित तन हो गई, भूप सुता सुन बैन।
बोल सकी नहिं देर तक, लगे टपकने नैन॥
आखिर धर धीरज बार बार, ब्राह्मण को दंड प्रणाम किया।
हो सका समय पर जितना कुछ, उतना ही उसको द्रव्य दिया॥
पुनि हाथ जोड़ कर कहा विप्र, भारी अहसान तुम्हारा है।
आजन्म उऋण नहिं हो सकती, ऐसा मम काज संवारा है॥
मैं डूबी थी दुख सागर मे, कर दिया पार झट आन मुझे।
जीवनधन को लाकर तुमने, दीन्हा जीवन का दान मुझे॥
कर कृपा और एक काम करो, कह दो हरि से, हे नंदनंदन!।
पुर बाहिर देवी मंदिर में, मैं जाऊंगी करने पूजन॥
वहां अवश्य पधारें प्रभो आप, दर्शन दे सारे विघ्न हरें।
यदि उचित हो अर्धांगिन बनाय, दासी की इच्छा पूर्ण करें॥
कहा विप्र ने फिक्र सब, तज दो राजकुवांरि।
तुम्हीं को ब्याहने के लिये, आये यहां मुरारि॥
फिर भी मैं उनके पास जाय, कहता हूँ सारा हाल अभी।
गौरी पूजन के समय तलक, हो जावेगा परबन्ध सभी॥
यों कह द्विजराज चले प्रभु पर, उत पुरवासिन अस सुधि पाई।
रुक्मिणि बिवाह लखने के लिये, आये हैं यहां पर यदुराई॥

निज खास बाग में राजा ने, अति आदर से ठहराया है ।
हैं साथ में रोहणि नंदन भी, कुछ यादव दल भी आया है ॥
सुनते ही सब होकर प्रसन्न, हरि का दर्शन करने धाये ।
लख रूप, रूप के सागर का, हो गये चकित अति हर्षाये ॥
आपस में करने लगे बात, वर यही है योग्य कुमारी के ।
समझाओ रुक्मी को कर दे, भगनी ब्याह संग बिहारी के ॥
हे विधि यदि हमने किया है कुछ, शुभ कर्म तो उसके प्रतिफल से ।
जिमि वैदेही रघुवर से मिली, त्यों मिले रुक्मिणी श्यामल से ॥
इतने में नृप कन्या का सब, संदेश कहा द्विज ने आकर ।
"हम समय पै तहं जा पहुँचेंगे, बोले करुणानिधि पुलकाकर ॥

खबर पड़ी शिशुपाल को, आये हलधर श्याम ।
हुई मलीन मुखाकृति, भया नष्ट आराम ॥

घबरा कर फौरन दूत भेज, अपने मित्रों को बुलवाया ।
आ जाने पर सब लोगों के, भय विह्वल हो यह फ़रमाया ॥
हे मगधराज ! हे शाल्ववीर !, मैंने ऐसी सुधि पाई है ।
बलराम सहित यदुसेना ले, आया यहां पर यदुराई है ॥
यदि बात ये सच्ची है मित्रो, तो फिर ये भी निश्चय जानो ।
इस विवाह के मंगल कारज में, होगा उत्पात अवश्य मानो ॥
क्योंकि जिमि दैविक विघ्नों के, कई एक चिन्ह दृष्टी आते ।
जैसे घन जल की एवज में, नभ से अंगारे बरसाते ॥
रोती हैं प्रतिमायें बहुविधि, दिखते हैं दिन ही में तारे ।
कंपित होती भू बार बार, हिल उठते हैं भूधर सारे ॥
त्योंहीं भौतिक उत्पातों का, बस चिन्ह इन्हें समझो भाई ।
जहां ये दोनों जा पहुँचते हैं, तहां शांति न देती दिखलाई ॥
अस्तु मित्रो रहना सतर्क, छल कपट में ये लासानी हैं ।
इनमें से नटवर को तो बस, समझो ऐबों की खानी हैं ॥

ये सुनकर कहने लगा, मगध प्रदेश भुवार ।
सत्य वचन हैं आपके, हे दमघोष कुंवार ॥
संदेह नहीं दोनों भाई, हैं बड़े छली अरु बलवानी ।
बचपन से करते आये हैं, छल बल से असुरों की हानी ॥
फिर महाबली दुर्द्धष कंस, इन द्वारा ही संहार हुआ ।
नृप काल यवन पर भी इनका, बस जीवन घातक वार हुआ ॥
खुद मैं भी सत्रह बार मित्र, ले कटक मधपुरी पर धाया ।
पर कुछ न बिगाड़ सका इनका, दल कटवा कर वापिस आया ॥
आखिर अठारवीं बार दोऊ, जाने क्या गिनकर भाग गये ।
जा बसे सिन्धु में नगर बना, इनके सब कारज होत नये ॥
हाथ मूंछ पर फेर कर, बोले शाल्व नरेश ।
वृथा प्रशंसा कृष्ण की, क्यों करते मगधेश ॥
आ गये हैं इनकी चालों में, अबतक मनुष्य भोले भाले ।
लेकिन अब ये दोनों भाई, पड़ गये क्षत्रियों के पाले ॥
ये माखन चोरी नहीं भूप, जिसमें इनको जय मिल जावे ।
हम लोगों का रण कौशल लख, सुरराज इन्द्र भी चकरावे ॥
हे जरासंध सुनते हि नाम, रण का मम भुजा फड़क उठती ।
भर जाता हृदय वीर रस से, दृग अरुण होय छाती तनती ॥
उस समय काल भी मम सन्मुख, आवे तो हरा नहीं सकता ।
फिर क्षुद्र कृष्ण किस गिनती में, ये मुझसे किम जय पा सकता ॥
क्रोध हंसी हंस कह उठा, मगध देश भूपाल ।
शाल्वराज क्यों वृथा ही, बजा रहे हो गाल ॥
जंबुक जब तक लखते हैं नहीं, आनन मृगेश पंचानन का ।
तब तक ही गिनते रहते हैं, निजको महाराजा कानन का ॥
लेकिन जिस समय स्वल्प सी भी, आवाज सिंह की आती है ।
होती मलीन आकृती तुरत, सब होश हवास भुलाती है ॥

त्योंही वाचाल मनुष्यों का, सारा रण कौशल बल विक्रम ।
रण से पहिले दिखता है जिमि, तारा प्रकाश सूरज से प्रथम ॥
मैं वृथा बड़ाई मोहन की, करके न तुम्हें बहकाता हूँ ।
पर जो सच्ची बातें हैं उन्हें कहते भी नहीं दहलाता हूं ॥
कहने को सब कह देते हैं, हम जय कर सकते त्रिभुवन को ।
पर जब रण का मुख लखते हैं, तब बगल झांकते आतुर हो ॥

इतने में आया तहां, रुकमैया बलवान ।
बोला हे मगधादिपति, क्यों होते हैरान ॥

वादा विवाद सब बंद करो, आराम से समय बिताओ तुम ।
छोड़ो उन दोनों का खयाल, मुझ में विश्वास जमाओ तुम ॥
मैं शपथ पूर्वक कहता हूं, यदि उन्होंने गड़बड़ फैलाई ।
तो फिर उनको इस जीवन में, देगी न द्वारिका दिखलाई ॥
क्या है मजाल उन ग्वालों की, क्षत्री कन्या हर ले जावें ।
जंबुक कितना ही यत्न करें, लेकिन न सिंह से जय पावें ॥
जिस समय धनुष ले हाथों में, मैं रण भूमी में जाऊंगा ।
केवल टंकोर मात्र से ही रिपुओं के होश भुलाऊंगा ॥
फिर छोड़ूंगा जिस समय बाण, मुंडो से महिं पट जावेगी ।
यादवों के शोणित की सरिता, बहती झट दृष्टी आवेगी ॥
अच्छे अच्छे रणधीरों का, सब रणोत्साह मिट जावेगा ।
आमिष भक्षण कर प्रेत समूह, परलय तक तृप्ति जतावेगा ॥
होंगी योगिनियां भी प्रसन्न, कर रक्त पान हुलसावेंगी ।
"रुकमैया लाखों बरस जिये", ये आशिर्वाद सुनावेंगी ॥
यहां तक भगवान महेश्वर की, जो माला अभी अधूरी है ।
ऐसा दिखता है इस रण में, होगी मुझ द्वारा पूरी है ॥
ज्यादा कहना अनुचित होगा, यदि आया समय दिखा दूंगा ।
यादवों का यश गौरव मित्रो, चुटकी में नष्ट बना दूंगा ॥

धन्य रुक्म तुम धन्य हो, धन्य क्षत्रि सिरमोर ।
कहा शाल्व ने जोश से, अपनी मूंछ मरोर ॥
यहां जिक्र था ये, उत महलों में, देवी पूजन की तैयारी ।
कर रहीं थी अति आनंद सहित, रुक्मिणी की प्रिय सखियां सारी॥
नैवेद्य धूप दीपादिक सब, उत्तम सामान मंगाया था ।
रुक्मिणी को वस्त्रा भूषण से, सब ने मिल खूब सजाया था॥
होते हि प्रात ये झुंड चला, शिवरानी का पूजन करने ।
हलचल सी चारों तरफ हुई, मंगल मय वाद्य लगे बजने ॥
चल रहे थे चहुँदिशि कवच धार, ले शस्त्र हाथ में भटमानी ।
इनके सिवाय मग के दुहुँ दिशि, थे खड़े हुये कई बलवानी ॥
इस पर भी शिशुपाल ने, निज योधा पठवाय ।
ताकीदी यह कर दई, रुक्मिणी हरी न जाय ॥
प्रभु ने भी जब नृप कन्या के, मंदिर जाने की सुधि पाई ।
चल दिये बैठ रथ में सत्वर, रोहणि सुत को कुछ समझाई ॥
बलराम ससैन तयार हुये, कुछ दूर पै डेरा डाल दिया ।
उस तरफ रुक्मिणी ने आखिर, गिरजा मंदिर में गमन किया ॥
विधिवत् माता की पूजन कर, चरणों में अपना शीश झुका ।
कर जोड़ रुक्मिणी कहन लगी, हे शिवा मम विनय पर चितला ॥
कर कृपा गौरि मुझको वर दो, श्रीकृष्ण मेरे भरतार बने ।
भवसागर में तन नैया के, वे गिरधर खेवनहार बने ॥

*** गाना ***

विनय पै ध्यान जरा करना गजानन माता ।
शरण हूँ कष्ट सकल हरना गजानन माता ॥
पड़ी हूँ आपके चरणों में जानकी की तरह ।
दया का कर जरा सिर धरना गजानन माता ॥
भक्त हूँ चेरि हूँ दासी हूँ देवकी सुत की ।
अस्तु उनके सिवा हो वरना गजानन माता ॥
पूर्ण करदो मेरी करुणा पुकार करुणामई ।
इसके अतिरिक्त चहूँ वरना गजानन माता ॥

एवमस्तु के शब्द जब, पड़े रुक्मिणी कान ।
हर्षित हो कर विनय अति, चली लगा प्रभु ध्यान ॥
मंदिर के बाहिर आते ही चहुंदिशि अपनी दृष्टी डाली ।
पर कहीं दिखाई दिये नहीं दृगचोर परम प्रिय बनमाली ॥
हो गया हृदय व्याकुल पल में, भर आया नेत्रों में पानी ।
मन ही मन करने लगीं विनय, लीजिये वेगि सुधि सुखदानी ।
है यही समय हे प्राण नाथ, निज प्रण पूरा कर दिखलाओ ।
हे चकोर के प्यारे मयंक, तत्काल उदय अब हो जाओ ॥
इस तरह प्रार्थना करती हुई, रुक्मिणी कुछ ही आगे आई ।
इतने में देखा फुरती से, आ रहे प्राणप्रिय यदुराई ॥
है गरुड़ चिन्ह वाला स्यंदन, घंटियां शोर फैलाती हैं ।
अति वेग से चलने के कारण महि हिलती दृष्टी आती है ॥
जब कुछ आगे और भी आये लीलाधाम ।
चकित हो गई रुक्मिणि, शोभा देख ललाम ॥
हट गया वस्त्र आनन पर से, सुधि बिसर गई तन की सारी ।
उस रूप अनूप को लखते ही, रह गये ठगे से धनुधारी ॥
गिर पड़े हाथ से अस्त्र शस्त्र, मिट्टी के पुतले बने सभी ।
अवसर लख आगे रथ हकवा, आये रुक्मिणी ढिंग कृष्ण तभी ॥
भीष्मक कन्या ने पुलकित हो, प्रभु को प्रणाम करना चाया ।
पर हरि ने फुरती से इनको, रथ में बिठाय रथ दौड़ाया ॥
चल पड़े द्वारिका को जानिब, जय शंख बजाकर यदुराई ।
पीछे पीछे श्रीहलधर भी, हो लिये संग ले कटकाई ॥
शंखध्वनी श्रवणन पड़ी, चेते सारे वीर ।
हरी गई नृप की सुता, लख हो गये अधीर ॥
कुछ तो भागे प्रभु के पीछे, रुक्मिणी को वापिस लाने को ।
कुछ दौड़े जनवासे की तरफ, शिशुपाल को खबर सुनाने को ॥

सुन समाचार दमघोष सुवन, आपे से फौरन बाहर हुआ।
पांचो हथियार लगा करके, रण करने को तैयार हुआ॥
इतने में आये शाल्व आदि, लख इन्हें क्रोधकर फरमाया।
मित्रो अब तनिक न देर करो, जो सोचा था सन्मुख आया॥
जिस तरह तुच्छ मृग मृगपति से, अथवा भुजंग उरगारी से।
या मगर से जैसे क्षुद्र मच्छ, वा जिमि खद्योत तमारी से॥
करके शत्रुता कुशल चाहे, त्योंही वो नराधम यदुराई।
हम सरिस प्रबल क्षत्रियों से कर, शत्रुता को चाहता कुशलाई॥
धाओ धाओ वीरो धाओ उस ग्वाले का मद चूर्ण करो।
यदुओं को खंड खंड करके, सारी भूमी परिपूर्ण करो॥
दन्तवक्र कहने लगा, करो न भ्राता फिक्र।
क्या हाथी के सामने, नीच स्वान का जिक्र॥
अब तक तो मैं चुप चाप रहा, अब भुजा धनुष को तोलती है।
मालूम हो रहा है मुझको, उस कृष्ण की मृत्यु बोलती है॥
जिस तरह नाद पर मोहित हो, मृग अपने प्राण गमाता है।
या कमल की खुशबू लेने में, रह लीन भ्रमर मर जाता है॥
त्योंही रुक्मिणी की रक्षा कर, मोहन ने मृत्यु बुलाई है।
विधना की गति तिहुँ लोकों में, नहिं जान किसी ने पाई है॥
तुम आज देखना युद्ध मेरा, वो बरसाऊंगा शर धारा।
थरथरा उठेगी भूमि तुरत, कांपेगा नभ मंडल सारा॥
तजकर समाधि वे शमीशान, अतिशय आश्चर्य दिखावेंगे।
अकुलाय उठेंगे शेष नाग, दिग्गज भय पा चिल्लावेंगे॥
यों कह अपना शारंग चढ़ाय, फौरन रथ में बैठा जाकर।
लख उमंग छोटे भाई की, बोला शिशुपाला हरषाकर॥
धन्य वीर तुम धन्य हो, हुआ मुझे विश्वास।
निश्चय होगी पूर्ण अब, मम हृदय की आस॥

इतना कह चंदेरी नृप भी, अपने रथ पर असवार हुआ ।
मित्रों का मंडल भी ये लख, लड़ने के लिये तयार हुआ ॥
छा गया कुलाहल पल भर में, भर गये जोश में धनुधारी ।
चल दिये यान दौड़ाते हुये, छाई नभ में धूली भारी ॥
सब के आगे था दंतवक्र, धनुवां पर बाण चढ़ाये हुये ।
था दक्षिण दिशि शालव नरेश, सूरों सम साज सजाये हुये ॥
भूपाल विदूरथ बांये था, था बिल्कुल पीछे मगधेश्वर ।
चल रहा मध्य में शिशुपाला, अपने सब वीरों को लेकर ॥
इस तरह ये सब चलते चलते, यादव सेना के ढिंग आये ।
ये लख कर यदुवीरों ने भी, झट अपने शस्तर चमकाये ॥
रोहिणि सुत आगे हुये, दांये सात्यकि वीर ।
बांये कृतवर्मा रहे पीछे श्री यदुवीर ॥
इस ढंग से प्रभु की सेना ने, एक उत्तम व्यूह बनाय लिया ।
तीरों को धनुषों पर चढ़ाय, रिपु राह देखना शुरू किया ॥
इतने में शत्रु आ पहुंचे, रण के बाजों को बजवाते ।
कटु वाक्य सुनाते हुये और, अस्त्रों शस्त्रों को चमकाते ॥
आते हि एक दम टूट पड़े, शर बरसाना प्रारम्भ किया ।
यादव सेना ने भी अपना, बल दिखलाना आरम्भ किया ॥
गुथ गये दोउ दल आपस में, धनु की टंकोरें आने लगीं ।
अन गिनती हाथी घोड़ों की, पैदलों की जानें जाने लगीं ॥
दोनों सेना के योधा गण, तक तक कर तीर चलाते थे ।
आगे पीछे दांये बांये, हट रण कौशल दिखलाते थे ॥
यों युद्ध हुआ कई घड़ियों तक, पर निकला कुछ परिणाम नहीं ।
दोनों ही दल के वीरों ने, लीन्हा हटने का नाम नहीं ॥
तब क्रोधित हो रोहणि-नंदन, निज वीरों को कुछ समझाकर ।
जा पहुंचे दन्तवक्र सन्मुख अपने स्यंदन को हकवाकर ॥

इस तरफ सात्यकी दौड़ गया, संग्राम विदूरथ से करने।
जा पहुँचा कृतवर्मा भी झट, नृप शाल्व राज का जी हरने॥
सब ही थे रण बांकुरे, युद्ध केसरी वीर।
हांक मार कर छोड़ते, थे आपस में तीर॥
दंतवक्र अवलोक कर, निज सन्मुख बलराम।
बोला ग्वाले भी लगे करन क्षत्रि सम काम॥
हे हलधारी! अब भी है समय, क्यों वृथा हि प्राण गमाते हो।
किसलिये न रुक्मिणी को देकर, तुम द्वारावती सिधाते हो॥
इस हल और मूसल से तुमने, दो चार असुर मारे होंगे।
कुछ कालयवन के साथी भी, धोखा दे संहारे होंगे॥
पर हम से क्षत्री वीरों के, सन्मुख न चलेगी चतुराई।
है भला इसी में जो कुछ हम, चाहते पूरन कर दो भाई॥
मुस्काकर कहने लगे, रोहणि—नंदन राम।
वृथा बोलना युद्ध में, नहीं शूर का काम॥
जो कायर हैं कामिनियों सम, बस बात बनाना जानते हैं।
योधा तो शत्रू सन्मुख आ, रण करने की ही ठानते हैं॥
बल पौरुष से यदि हीन हो तुम, तो उत्तम है वापिस जाओ।
यदि क्षत्रीपन का गर्व है कुछ, तो बढ़ो शूरता दिखलाओ॥
ये सुनते ही कर लाल नेत्र, शर दंतवक्र ने संधाना।
बलराम के हृदय को तक कर, शारंग को कानों तक ताना॥
फिर छोड़ा तीर निशाने पर, हरि अग्रज ने दो खंड किया।
पुनि अपने धनुवां को चढ़ाय, एक तेज करारा तीर दिया॥
वो दंतवक्र ने काट दिया, फिर अपने तीर चलाने लगा।
अरु मुख से कई अनुचित बातें, प्रभु के भ्राता को सुनाने लगा॥
ये सुन रथ में रख दिया, दाऊ ने धनुबान।
हल मूसल कर में लिया, क्रोधित होय महान॥

फिर कूद पड़े अवनीतल पै, फौरन शत्रू सन्मुख धाये ।
जाते ही एक प्रहार किया, घोड़े मरते दृष्टी आये ॥
दूसरे वार में अग्रज ने, सारथि का कुचला बना दिया ।
कर दिये यान के भी टुकड़े, रिपु को पृथ्वी पर गिरा दिया ॥
गिरते ही मूर्छित हुआ, दंतचक्र बलवान ।
तब हलधर ने सेन वध, किया साफ मैदान ॥
इस जगह से कुछ ही दूरी पर, कृतवर्मा शालव नरराई ।
कर अरुण नेत्र दिखलाते थे, अपनी अपनी रण चतुराई ॥
हो रहे थे दोनों के शारंग, दुतिया शशि सम आकृति वाले ।
गर्जन तर्जन कर आपस में, लड़ रहे थे दोनों मतवाले ॥
कभि कृतवर्मा शालव नृप से, फुरती ज्यादा दिखला जाता ।
अरु कभी शाल्व अपने रिपु से, कौशल में आगे बढ़ जाता ॥
इस तरह युद्ध करते करते, जब देर हुई इनको भारी ।
तब धनुष बान को स्यंदन में, रख दिया हाथ में असि धारी ॥
अरु कूद पड़े दोउ पृथ्वी पर, पैदल ही युद्ध मचाने लगे ।
लख इनका कौशल दोनों दल, अतिशय अचरज दिखलाने लगे ॥
लड़ते लड़ते नृप शाल्व हुआ, कुछ थकित तभी अवसर पाकर ।
कृतवर्मा ने एक हाथ दिया, इसके मस्तक पर खिजला कर ॥
बच सका नहीं इससे शालव, घायल हो भूमी पर आया ।
हो गया असुध गिरते हि तुरत, ये लख इसका सारथि धाया ॥
फौरन मालिक को उठा, रथ में दिया लिटाय ।
भागा डेरों की तरफ, घोड़ों को दौड़ाय ॥
ये लख कृतवर्मा मुदित होय, आ बैठा अपने स्यंदन पर ।
अरु लगा छोड़ने तीव्र बान, शत्रुओं की सेना पर सत्वर ॥
इत तरफ नृपाल बिदूरथ को, सात्यकी वीर ने ललकारा ।
वो योधा भी क्रोधित होकर, झट लगा छोड़ने शर धारा ॥

हो गया भयानक युद्ध शुरू, दोउ तक तक तीर चलाने लगे।
आपस में एक दूसरे पर गहरी चोटें पहुँचाने लगे॥
कुछ समय तलक नहिं पता लगा, रण दुर्मुद कौन विजय पावे।
किस पर रण चंडी हो प्रसन्न, जयमाल गले में पहरावे॥
अर अंत में इक शर सात्यकि का, जा बैठा ठीक निशाने पर।
जिससे तत्काल चिदूरथ नृप, रथ में गिर गया विकल होकर॥
ये लख सारथि ने दिया स्यंदन शीघ्र घुमाय।
तब चंदेरी नृप बढ़ा लोचन लाल बनाय॥
आते ही बाण वर्षा करके, यादवों की सेना बिचलाई।
ये देख सात्यकी के तन में, बस गुस्से से लाली छाई॥
फ़ौरन निज धनुआं को चढ़ाय, कई तीर चलाये आतुर हो।
काई सम शत्रू सेन फटो, फिर भागो परम भयातुर हो॥
तब अविरल शर धारा द्वारा, शिशुपाल का यान छिपा डाला।
हो गये रथी सारथो विकल पड़ गया जिन्दगी का लाला॥
आखिर सब शर काट कर, करके क्रोध अपार।
लगा चलाने तीर झट, श्री दमघोष कुमार॥
अवसर पा वीर सात्यकी ने, शिशुपाल का धनु दो टूक किया।
हर लिया सारथी का जीवन, घोड़ों को यमपुर पठा दिया॥
तब अन्य धनुष ले ज्योंही ये, यादव सेना पति पर धाया।
हो गये खंड उसके भि कई खाली हाथों वापिस आया॥
फिर यत्न किया तीसरी बार, लेकिन फिर भी मुंह की खाई।
सात्यकी से वश चल सका नहीं मिल गई धूल में चतुराई॥
आखिर ले गदा कूद रथ से, ये दौड़ा अति झुंझला करके।
यदु सेनप भी तल उतर पड़ा, और मारी गदा घुमा करके॥
मूर्छित होकर गिर पड़ा, चंदेरी भूपाल।
मुख से खूं धारा बही, हुआ हाल बेहाल॥

तब डाल इसे सारथि रथ में, डेरों की जानिब लिवा गया।
भागी सब सेना भी फौरन, ये लख मगधेश्वर आतभया॥
उत्तेजित कर निज कटकाई, यादवों पै धावा बोल दिया।
लख नया विघ्न इन सब ने भी, शस्त्रों को कर में तोल लिया॥
फिर लगे वार पर वार करन, घनघोर युद्ध प्रारम्भ हुआ।
रथियों हथियों तुरंगों अरु. पैदलों का बध आरम्भ हुआ॥
बलवान मगधपति ने यहां पर, वो समर वीरता दिखलाई।
अवलोक जिसे यदुसेना के, वीरों की बुद्धी चकराई॥
कृतवर्मा सात्यकि आदिक ने, आगे बढ़ ये चित में धारा।
मगधेश को नीचा दिखलावें, पर व्यर्थ हुआ कौशल सारा॥
वो योधा निज कोदंड तान, रथ बढ़ा जिधर चल जाता था।
काई सी फटती थी फौरन, सन्मुख न कोई ठहराता था॥
अगणित रथ रथियों रहित बना, स्यंदनों का चकनाचूर किया।
हाथी घोड़ों को काट काट, मैदान युद्ध का पाट दिया॥
जहं देखो इस रण दुर्मुद के, शर ही शर दृष्टी आते थे।
घायल भूमी पर पड़े हुये, पानी पानी चिल्लाते थे॥

आमिष भक्षी पक्षिगन, आ पहुँचे हरषाय।
नोंच नोंच कर चोंच से, खाने लगे अघाय॥

योगिनियें भी खप्पर भर भर, पी शोणित प्यास बुझाती थीं।
मुंडों की माला धारन कर, अति मुदित दृष्टि में आती थी॥
ऐसा भयदायक दृष्य देख, यदु सेना के सब भटमानी।
भय विह्वल हो बोले दौड़ो, हे हलधर हे! शारंगपानी॥

सुन कातर आवाज को, धाये हलधर वीर।
बोले आकर क्रोध से, जरासंध के तीर॥

रे नृपाभिमानी मगध पते, यदि रखता हैं कुछ मनुसाई।
तो मेरे सन्मुख आ करके, दिखलाता क्यों नहिं चतुराई॥

शोभा है वीर की अपने सम, बलवानों से ही लड़ने में।
नहिं पात्र प्रशंसा का बनता, मृगपति मृग को जय करने में॥
ये सुनते ही नृप जरासंध, खिल खिला के यों फरमाने लगा।
निर्लज भगोड़े मम सन्मुख, आकर फिर बात बनाने लगा॥
उस दिन तो छल कर भाग गया, पर आज मिलेगा त्राण नहीं।
ये मगधपति निज बाणों से हर लेगा तेरे प्राण यहीं॥
यों कह अपना शारंग चढ़ाय, झट लगा छोड़ने शर धारा।
अग्रज भी उत्तर देने लगे, फौरन अपने धनुवां द्वारा॥
हो गया घोर संग्राम शुरू, दोउ बढ़ बढ़ तीर चलाने लगे।
संग्राम क्षेत्र में फुरती से, निज निज स्यंदन दौड़ाने लगे॥

दोनों थे रण बांकुरे, लड़े प्रचार प्रचार।
ओलों सम होने लगी, बाणों की बौछार।

कुछ देर भयंकर युद्ध हुआ, पर निकला कुछ परिणाम नहीं।
दोनों ही अक्षत बने रहे, लीन्हा हटने का नाम नहीं॥
ये देख रोहिणी-नंदन ने, स्यंदन में शारंग डाल दिया।
अरु कर में हल मूसल उठाय, शत्रु की जानिब गमन किया॥
ये देख मगधपति ने चाहा, अग्रज का बढ़ना रोकूं मैं।
अति तेज करारी जहर बुझी, बरछी को उर में भोंक दूं मैं॥
ये कर विचार बरछी फेंकी पर खंड हुई मूसल द्वारा।
तब जरासंध ने खिजलाकर, एक तेज करारा शर मारा॥
लेकिन हलधर रुक सके नहीं फौरन ही रथ के ढिंग आये।
आते ही एक प्रहार किया दोनों घोड़े भू पर छाये॥
फिर कुचला सारथि का बनाय, स्यंदन का खंडन कर डाला।
ये देख मगधपति फुरती से दौड़ा लेकर कर में भाला॥
पर सफल हुआ नहिं मन चीता, भाला भी चकनाचूर हुआ।
तब हो निरस्त्र नृप जरासंध, रण तज कर फौरन दूर हुआ।

सेना भी भागी तुरत जनवासे की ओर ।
शंख बजा हलधर चले थे जहं नंदकिशोर ॥

भागता दौड़ता जरासंध फौरन जनवासे में आया ।
चंदेरी नृप को हतोत्साह, हत तेज तहां बैठे पाया ॥
कर मुखाकृती गम्भीर तुरत, और अपना पन दिखलाते हुये
मगधादिपती यों कहन लगा, अति प्रेम भाव दरसाते हुये ॥
हे पुरुषसिंह ! क्यों म्लान हो तुम, किसलिये उदासी छाई है ।
संग्राम क्षेत्र में हार जीत आरम्भ से होती आई है ॥
कभि तो मनचीता काम होय कभि विरुद्ध फल दृष्टी आता ।
हरि इच्छावश ये जीव सदा, सुख दुख आनंद क्लेश पाता ॥
औरों की क्या निज बीती मैं कहता हूँ सुनो ध्यान देकर ।
अक्षौहिणी ले तेईस सदा, मैं पहुँचा हूँ मथुरा पुर पर ॥
फिर एकबार दो बार नहीं हे मित्र सप्तदश बार गया ।
लेकिन इन दोनों बच्चों से, हर वक्त मैं पिट कर आत भया ॥
आखिर अठारवीं बार मैंने निज विजय पताका फहराई ।
पर चिन्ता और खुशी कबहूँ नहिं हार जीत पर दिखलाई ॥
ये समय है अपने रिपुओं के अनुकूल, अस्तु जय मिली नहीं ।
दिखलाने पर भी कुल पौरुष, हृदय की कली कुछ खिली नहीं ॥
होने दो समय अपने माफिक, तब सारा बैर चुका लेंगे ।
जिनसे हारे हम बुरी तरह उनको भी पूर्ण हरा देंगे ।

* गाना *

मित्र चिन्ता मे नहीं कुछ सार है ।
जय पराजय युद्ध का एक कार है ॥
दो लड़े जहं एक तो हारे सही ।
बस यही संग्राम का व्यौहार है ॥

आज वे जीते कल अपनी जीत है।
इस समय तो धैर्य ही हथियार है ॥
घर चलो बस छोड़ के सारा फिकर।
इस जगह अब ठहरना बेकार है ॥

इस प्रकार मगधेश के कहने से शिशुपाल।
चला गया निज देश को, तज रुक्मिणि का ख्याल ॥
बाकी के नृप भी गये, निज निज भवन सिधाय।
जनवासा जन बिन हुआ, हर्षे भीष्मक राय ॥

रुक्मिणी हरन की सुधि ज्योंही हरि द्रोही रुक्मी ने पाई।
भृकुटी चढ़ गई धनुष सदृष्य आंखों में झट लाली छाई ॥
आतुर हो शीघ्र कवच पहिरा, फिर रख एक बान शरासन पर।
वो आया राज सभा में झट, अरु कहन लगा यों खिजलाकर।
हे सभासदों वो दुष्ट कृष्ण, मम भगनी लेकर धाया है।
हो काल विवश उस कायर ने, अहि फन पर पांव जमाया है ॥
अस्तू सुनलो सब कान खोल, मैं प्रण करता हुँ दिखा दूंगा।
उस कुल कलंक मनमोहन को, रण में मैं आज सुला दूंगा ॥
अरु ले आऊंगा रुक्मिणि को, यदि पूर्ण न ये प्रण कर पाऊं।
तो फिर जीते जी कभी नहीं कुंडिनपुर में मुख दिखलाऊं ॥

इतना कह कर चल दिया वो मदमाता वीर।
आ पहुँचा क्षण एक में, अपने रथ के तीर ॥

स्यंदन में चढ़ निज सारथि से, बोला बस फुरती दिखलाओ।
जितना जल्दी हो सके मुझे बसुदेव पुत्र ढिंग पहुँचाओ ॥
सब गर्व आज उस छलिया का, बाणों से नष्ट बनाऊंगा।
भगिनी को हर ले जाने का, पल भर में मजा चखाऊंगा ॥
उसने सोचा होगा यहां पर, है नहीं कोई बोलन वाला।
चुपचाप काम बन जावेगा, यदि करुंगा कुछ गड़बड़ झाला ॥

पर आज तुमे मालुम होगा, छल करनेका क्या फल मिलता।
शत्रुता क्षत्रि से करने मे खुद काल का भी हृदय हिलता॥
भगवान की महिमा का रहस्य, था जिसको बिल्कुल ज्ञात नहीं।
जो गिनता था निज हृदय में, हीरे से बढ़कर कांच कहीं॥
वो दुर्बुद्धी अल्पज्ञ रुक्म, यों बड़बड़ करता जाता था।
हंसता था सारथि मन ही मन, पर भय वश कुछ न सुनाता था॥

आखिर भीष्मक का कुंवर, श्रीकृष्ण के तीर।
पहुँचा अरु कहने लगा, क्रोध से होय अधीर॥

कौआ जैसे घृत ले भागे, त्योंहो मम बहन चुरा करके।
रे यदुकुल दूषण रण भीरू, जाता कहां जान छिपा करके॥
हे मंद सुना है ये मैंने, है चतुर कपट संग्राम में तू।
अल्पज्ञों को बहकाने में, चोरी करने के काम में तू॥
लेकिन मेरे सन्मुख तेरी, नहिं चलेगी कुछ भी चतुराई।
रुक्मी को रण में विजय करे, वो मूर्ति न विधि ने प्रगटाई॥
दो चार अल्प बल निश्चर हन, गिनता अपने को बलवानी।
पर आज मेरे शर कर देंगे, सब जोश तेरा पानी पानी॥
अब भी है समय रुक्मिणी को, यहां छोड़ भाग जा मंदमती।
कायर को वधने से मिलती, वीरों को कभी न उच्च गती॥

रुक्मी के दुर्वचन सुन मुस्काये भगवान।
बोले रे मरणोन्मुख, क्यों करता अभिमान॥

आ गया है तेरा काल निकट, अस्तू बुद्धी विपरीत हुई।
मानवता दूर हुई सारी, दानवता तन में आय छई॥
हे नीच! जम्बुकों के स्वर ने, क्या सिंह को विकल बनाया है।
या कभी स्वान के शब्दों से, मदमत्त हस्ति दहलाया है॥

जा चला जा फिर जा भाग जा तू, रहने दे रण उत्साह तेरा ।
सम्बन्धी गिनकर छोड़ता हूँ, जा मूर्ख मान जा कहा मेरा ॥
किसलिये पतंगा बनता है, ज्वाला में मेरे बाणों की ।
है अल्पावस्था अभी तेरी जा खैर मना निज प्राणों की ॥

रुक्मी को नंदलाल ने, समझाया इस तौर ।
लेकिन उस दुर्बुद्धि ने, किया नहीं कुछ गौर ॥

उलटा कर क्रोध धनुष ताना, और बोला हे हे यदुराई ।
कर रुक्मिणी हरण वृथा तूने, अपने सिर मृत्यू बुलवाई ॥
मैं फिर भी कहता हूं चल दे क्यों लड़कर प्रान गमाता है ।
क्या कभी क्षत्रियों को समता एक तुच्छ ग्वाल कर पाता है ॥
नक्षत्र गगन में तभी तलक अपना प्रकाश फैलाते हैं
जब तक वे नक्षत्राधिपती, राकेश को देख न पाते हैं ॥
हे पामर जैसे रामानुज, शत्रुघ्न ने निज बाणों द्वारा ।
लवणासर का मद भंग किया, कर प्राण हीन भू पर डारा ।
अथवा त्रिपुरारी ने जैसे, खल त्रिपुर को मार गिराया था ।
या बज्र पाणि बज्र फैंक, वृत्तासुर गर्व गमाया था ।
त्योंही मैं तेरा रणोत्साह सब अभी ठिकाने लाता हूं ।
क्षत्रियों का कैसा बल होता, वो अभी प्रत्यक्ष दिखाता हूं ॥

यों कह रुक्मिणी भ्रात ने, छोड़े वाण अचूक ।
लेकिन प्रभु ने सहज में, किये काट दो टूक ॥

पुनि नये बान संधान तुरत, रुक्मी ने शारंग को ताना ।
छोड़े फिर तीर निशाने पर, लेकिन न हुआ कुछ मन माना ॥
कारन, फिर देवकीनंदन ने, इसका प्रहार बेकार किया ।
पुनि मुस्काकर निज बानों से, इस पर एक हलका वार किया ॥

कट गया रुक्म का धनुष तुरत, घोड़ों का जीवन दूर हुआ ।
चल दिया सारथी भी यमपुर, स्यंदन का चकना चूर हुआ ॥
तब राजकुंवर कुंडिनपुर का, ले शक्ति पांव पैदल धाया ।
कर इसके भी टुकड़े प्रभु ने, खाली हाथों ही लौटाया ॥
बरछी भाला त्रिशूल से भी, जब चली नहीं कुछ चतुराई ।
तब ले तलवार भूप सुत ने, निज रण कौशलता दिखलाई ॥

हुआ खड्ग भी टूट कर, जब रण में बेकार
तब रथ से झट कूद कर, धाये जगदाधार ॥

फौरन रुक्मी को पकड़ लिया, फिर वध करने की ठहराई ।
ये लखते ही रुक्मिणी चीखी, अरु कहन लगी अति भयपाई ॥
हे योगेश्वर देवादिदेव, हे दीनजनों के हितकारी ।
हे शक्ति ईश कल्याण रूप, गोलोक अधीश्वर गिरधारी ॥
कर दया दयानिधि दयासिंधु, भय मुक्त करो मम भाई को ।
देखो भीष्मक की ओर भी तुम, विरथा मत करो सगाई को ॥
क्या आपसे नाता जुड़ने का, फल यही मिलेगा यदुराई ।
सुत शोक विकल हो वृद्ध पिता, दासो खोदे अपना भाई ॥
मतिमंद है वो दृगअंध है वो, किमि रूप आपका पहिचाने ।
भगवान अंशुमाली के गुण, जन्मांध कहो कैसे जाने ॥
जो थूकेगा ऊंचा मुंह कर, वो थूक उसी पर आवेगा ।
बस इसी तरह जो करेगा जस, वैसा ही वो फल पावेगा ॥

दीनबंधु अशरण शरण, कारण रहित कृपाल ।
शरण आपको हूँ प्रभो मेटो दुख जंजाल ॥

यों कहते कहते कंठ रुका, कापकी सकल तन में छाई ।
मुख सूख गया दृग बहने लगे, गिर गई असुध हो मुरझाई ॥

निज प्रिया की आरत बानी सुन, मन मुस्काये शारंगपानी।
बध तो न किया रुक्मी का पर, कीन्ही थोड़ी सी हैरानी॥
मूंडी दाढ़ी व मूछें कुछ कुछ, और रखी सात चुटियां सिरपर।
स्यंदन के पीछे बांध दिया, फिर आ बैठे रथ के भीतर॥

प्रभु पद पद्म स्पर्शकर, हुई कुंवारि चैतन्य।
भाई को जीवित निरख, बोली जय प्रभु धन्य॥

उत रुक्मी दल जीत कर, आये श्री बलराम।
देख दशा रुक्मेश की, बोले वचन ललाम॥

निज सम्बन्धी बध करो, या दो सिर मुंडवाय।
दोनों एक समान हैं, अस्तू दो छुड़वाय॥

पुनि कहा रुक्मिणी से बल ने, हे कुंवरि रोष मत दिखलाना।
है अति हि उग्र क्षत्री कर्तव, हमको न दोष कुछ दिलवाना॥
सुख दुख यश अपयश हार जीत, नहि हाथ मनुज के होती है।
जैसी इच्छा हो विधना की वैसा ही काज संजोती है॥
अब सारा दुख संताप कष्ट, उर से निकालकर अलग धरो।
और अति आनंद सहित झटपट, द्वारावति को प्रस्थान करो॥
सुन बचन हली के श्री रुक्मिणि, सब शोक मोह बिसराती है।
अरु नगर द्वारका चलने की, अति आतुरता दिखलाती है॥

रथा हांका गोपाल ने, जय का शंख बजाय।
इधर कथा जो रह गई, सुजन सुनो चितलाय॥

आती बिरियां रुक्मैया ने, ये कहा था शारंगपानी को।
करके परास्त ले आऊंगा, रुक्मिणी बहन गुणखानी को॥
यदि ऐसा मैं कर सका नहीं, वापिस न लौट यहां आऊंगा।
अपना हारा मुख कभी नहीं, कुंडिनपुर में दिखलाऊंगा॥

पर इसका प्रण पूरा न हुआ, प्रभु से लड़कर मुंह की खाई ।
हो गया प्रभाव नष्ट सारा, बस फकत जान एक बच पाई ॥
अस्तू जब प्रभु ने छोड़ दिया, तब मन में अति लज्जित होकर ।
ये चला और फिर रस्ते में एक नगर बसा था अति सुंदर ॥
उसका शुभ नाम भोजकट रख, ये अपना समय बिताने लगा ।
पत्नी पुत्रादिक को बुलवा आनंद की बंसि बजाने लगा ॥
इत यादव दल के साथ प्रभू, पा विजय लौट घर आते हैं ।
इस समाचार को सुनते ही आनंद चहूँ दिशि छाते हैं ॥
सज गये हाट बाजार चौक, पावन जल छिड़का जाने लगा ।
अपनी अपनी इच्छानुसार, घर हरएक व्यक्ति सजाने लगा ॥

जगह जगह होने लगे, सुंदर मंगलचार ।
सारे यादव वंश में, छाया हर्ष अपार ॥

मणिमय अति सुघड़ झरोखों पर, हो गईं इकट्ठी पुर बाला ।
अरु इकटक लखने लगी उधर, आ रहे जिधर थे नंदलाला ॥
अति प्रेम सहित दर्शन करके, सब पुष्पांजलि बरसाने लगी ।
भीष्मक की सुंदर कन्या का, रुक्मिणी का भाग सराने लगी ॥

* गाना *

मनमोहन अर्धांगिनि तुमको लाखो प्रणाम ।
तुम्हीं रमा, तुमही रुद्रानी, तुम्हीं हो सावित्री जगजानी ।
तुम्ही हो आदि शक्ति गुणखानी, तुम्ही हो जग उपजावनि ॥ तुमको० ॥
कृष्ण प्रिया जग सुख उपजावो, तिरियागनको धर्म सिखावो ।
स्वागत द्वारावति मे आवो, विष्णूलोक निवासिनि ॥ तुमको० ॥

इत पुत्रवधू लख कृष्ण मातु, फूली नहिं अंग समाती हैं ।
सुर दुर्लभ अति उत्तम घर में, आनंद से वास कराती है ॥

जिस तरह हुआ था पाणिग्रहण, वैदेही का रघुराई से ।
बस उसी तरह श्री रुक्मिणी का, हो गया विवाह यदुराई से ॥
भीष्मक ने शुभ संवाद पाय, यौतुक अपार यहां भिजवाया ।
लख जिसको नर की कौन कहे, अचरज में आये सुरराया ॥

इस प्रकार प्रभु का हुआ, रुक्मिणी संग विवाह ।
सुने इसे जो चित्त दे, दिन दिन बढ़े उछाह ॥
कई महीनों तक रहा, ये उत्सव "श्रीलाल" ।
अब द्वारका विहार का, सुनो कान दे हाल ॥

* श्रीकृष्णार्पणमस्तु *





श्रीकृष्ण चरित्र अथवा श्रीमद्भागवत

चौदहवां भाग

द्वारिका विहार

रचयिता—

श्रीलाल खत्री

प्रकाशक—महाभारत पुस्तकालय, अजमेर

मुद्रक—के. हमीरमल लूनिया, दि डायमण्ड जुबिली प्रेस, अजमेर.

प्रथम बार २,००० | सम्वत १९९१ विक्रमी सन् १९३५ इस्वी | मूल्य ।) आने

कृष्णस्तु भगवान् स्वयम्

स्तुति

(१)

तुम सुनलो हे गिरधारी, जगबन्धु दया अवतारी।
अजामील, गज, गणिका, तारन तुम्हीं ने हाथ बढ़ाया था।
भीष्म भक्त हेतू तुम ही ने, निज प्रण को ठुकराया था॥
हम पर भीड़ पड़ी जब मोहन, कहां की करी तयारी॥ तुम॥
तुमने वचन दिया गीता में, उसको आय निभावो ना।
सब तज शरण पड़े की शामा, आकर लाज बचावो ना॥
दीनदयाल कहे सब तुमको, दया करो बनवारी॥ तुम॥
मन, बुद्धी को नित बहका कर, अधम मार्ग ले जाता है।
कीन्हे यत्न कई मैंने पर, ये नहि वश में आता है॥
अस्तू सतगुरु वपु धारन कर, मिलो मुझे दुख हारी॥ तुम॥
तुमको त्याग बताओ मोहन, किसका अब मैं कहलाऊं।
कौन मिलेगा तुम सम मुझको, जिसका चाकर बनजाऊं॥
मार तार कुछ भी कर अब तो तजूं न तुझे बिहारी॥ तुम॥

मंगलाचरण

(२)

पीताम्बर धर पाप हर, गोकलेश गोपाल।
ताप हरन जन सुख करन, जय जय दीनदयाल॥
जय जलशायी जलदसम, सुभग सुहावन रूप।
सृष्टि रचन, पालन, हरन शिव अज विष्णु स्वरूप॥
तुम गुरु गणपति शारदा, सहस बदन तुम शेष।
विघन हरो मंगल करो, जग व्यापक अखिलेश॥
बंदहुं वेदव्यास सुत श्री शुकदेव सुजान।
गायो कलिमल हरन जिन, "कृष्ण चरित" गुणखान॥

* श्लोक *

वंशीविभूषितकरान्नवनीरदाभात्पीतांबरादरुणबिंबफलाधरोष्ठात् ।
पूर्णेन्दुसुन्दरमुखादरविन्दनेत्रात्कृष्णात्परं किमपितत्वमहं न जाने ॥

❀ कथा प्रारम्भ ❀

जिसके मस्तक पर रहे, तुम्हरा कर राधेश ।
अपने से बढ़कर गिने, उसे कुवेर सुरेश ॥
भक्तो का दरिया बहता है, जिन जनों के हिय चौगानों में ।
वे सदा लहलहाया करते, प्रभु कृपा बिहार उद्यानों में ॥
जल जलज सरिस जिनके नाते, व्यौहार में दृष्टा आते हैं ।
उनके हृदयासन पर आसन, हरदम गरुड़ासन पाते हैं ॥
है सफल उसी का जन्म यहां, नर तन पा वोही धन्य हुआ ।
ब्रज-वल्लभ की नित लीला में, जिसका प्रवेश सुख जन्य हुआ ॥
साधारण काष्ट व चंदन में, जितना अंतर है नरराई ।
उतना ही प्रभु से विमुख जीव अरु भक्त में देता दिखलाई ॥
अज्ञान अविद्या फंसा हुआ, ये मनुज छटपटाता भारी ।
हो जाय मुक्त सब कष्टों से, यदि हृदय में राजें बनवारी ॥
अच्छा अब नृपवर सुनो, हरि की कथा सप्रेम ।
कलियुग में बस है फकत, श्रेष्ट हरी पद नेम ॥
मोहन का जब से हुआ, रुक्मिणि संग विवाह ।
तब से वहां पर छा गया, अति आनंद उछाह ॥
बसुदेव, देवकी, उग्रसेन, देवक, रोहणि, रोहणिनंदन ।
यहां तक सब द्वारावति वासी, रहते थे नित आनंद मगन ॥
कारन लक्ष्मी स्वरूप रुक्मिणि, व्यवहार कुशल सब भांती थी ।
पुरजन, परिजन व स्वजन सब में, अति प्रेम भाव दरसाती थी ॥
मयके में जिस स्नेहांकुर को, इसने हृदय में जमाया था ।
उसके सुपल्लवित होने का, अति श्रेष्ट समय अब आया था ॥

रहती थी नित आनंद मग्न, आनंदकंद के दर्शन कर।
तन मन से पति सेवा रत थी न्योछावर थी श्री चरणों पर॥
यो कई दास दासियां थीं तहं, पर खुद दासी व्रत धारा था।
निश दिन प्रभु की परिचर्या कर, पत्नी कर्तव्य सुधारा था॥
प्रेमावतार नटवर का भी, सब प्रेम केन्द्रित प्रिया में था।
सहवास अधिक तर पत्नी संग, रखना प्रभु की नित क्रिया में था॥
आपस में पल भर का वियोग, दोनों को होता दुखदाई।
हो गई रुक्मिणी मोहन मय, रुक्मिणि मय बन गये यदुराई॥
मन रंजन के साथ ही साथ जनरंजन ने प्राणेश्वरि को।
श्रुति, शास्त्र, कला कौशल, गायन, सब बता दिये आनंदित हो॥
पहिले ही अति दक्ष थी, नृप की सुता ललाम।
स्वर्ण सुगंधी हो गई, प्रभु संयोग पा वाम॥
कुछ समय निकलने पर हे नृप, दंपति ने प्रेम का फल पाया।
शिव दृग से भस्म हुआ मन्मथ, प्रद्युम्न रूप में प्रगटाया॥
श्रोताओं किस प्रकार रति पति, शंकर द्वारा संहार हुआ।
वो गाथा तुम्हें सुनाते हैं, जिस हेतु रतो अपकार हुआ॥
सतयुग में एक असुर था "तारक" नाम प्रचंड।
जिसके भय से कांपता था सारा ब्रह्मंड।
इसने सब सुरपुरवालों को, एक समय बहुत हैरान किया।
इन्द्रादिक वीरों को हटाय, अधिकार स्वर्ग पर जमा लिया॥
तब दुखित होय कर सुर सारे श्री चतुरानन के पास गये।
आतंक असुर का अपना दुख, धाता को सब समझाते भये॥
ये सुन कमलासन कहन लगे, तुम से वो हार न खावेगा।
यदि जन्मे सुत शिव औरस से, तो निश्चय दुख नस जावेगा॥
पर सती ने तन त्यागा तब से, शिव नित समाधि में रहते हैं।
सब तज कर फकत निरंजन का, बस ध्यान रात दिन धरते हैं॥

उनको यदि किसी तरह से तुम शादी के हित प्रस्तुत करलो ।
तो मरे असुर अरु कष्ट टले, ये सत्य वचन हिय में धरलो ।
फिर सती ने पुनर्जन्म देवों, ले लिया हिमाचल घर जाकर ।
अरु किया है निश्चय तप कइ दिन, "शिव पति हों" ये चित में लाकर ॥
अस्तू सहमत करलो हर को, औ पार्वती संग विवाह करें ।
कर प्रगट एक रणधीर पुत्र, सुरपुरवालों का कष्ट हरें ॥

सुनकर धाता के वचन मुदित हुये सुर वृंद ।
शिव समाधि से हों विरत, रचन लगे अस फंद ।

कर सलाह बुलाया मनसिज को, अरु बोले श्रवण करो भाई ।
"तारक" दानव हम सब के लिये, हो रहा आजकल दुखदाई ॥
अपने हिस्से के भोगों को, निश्चिन्त हो निश्चर भोग रहा ।
हम छिपते फिरें कंदरा में, पाते हैं भैया दुःख महा ॥
विधि ने उपाय बतलाया है, इससे छुटकारा पाने का ।
पर बिना तुम्हारी मदद बंधु, हमरा बल काम न आने का ॥
कर दया जाहु तुम शंकर पे, पैदा उन हृदय विकार करो ।
जिससे वे श्यादी करने पर, राजो हों ये उपकार करो ॥
कारण शिव का ही पुत्र फकत, वध सकता है इस दानव को ।
अस्तू हम शरण तुम्हारी हैं मेटो मन्मथ इस आफत को ॥
हम सब सहायता करें तेरी, शिव कोप से तुझे बचा लेंगे ।
कर अनुनय विनय महेश्वर से अपराध को क्षमा दिला देंगे ॥

रतिपति ने मुस्काय कर, कही सुरों प्रति बात
शिव विरोध से होयगा, निश्चय मेरा घात ॥

तुम क्या विधि भी नहिं बचा सकें, कैलाशी को कोपानल से ।
तो भी मैं तुम्हरा काम करूं, अपने छल बल अरु कौशल से ॥
यदि हुई मृत्यु भी तो पर हित, सो मन में माना जावेगा ।
संतों की मंडलियां आगे, सन्तत मेरा गुण गावेंगी ॥

यों कह सबको करके प्रणाम, यों कामदेव कैलाश चला ।
अपना प्रभाव विस्तार किया, हो गया हृष्ट सब जगह भला ॥
ऋतुराज तुरत उत्पन्न हुये, मन हरन बयार लगी चलने ।
निर्मल जल युत सर कूप हुये, वृक्षों पर सुमन लगे खिलने ॥
हुये काम वश चर अचर, योगी यती समेत ।
डिगी न शंभु समाधि तब, कोपा "हृदय-निकेत" ॥
एक सघन वृक्ष पर जाय चढ़ा, शिव का उर भेदन अनुमाना ।
रख पांचों शर एक ही साथ शारंग को कानों तक ताना ॥
फिर छोड़े बान निशाने पर, लगते हि समाधी भंग हुई ।
क्षोभित हो गये ईश पल में, रिस से भृकुटी बदरंग हुई ॥
झुंझलाकर चहुं दिशि तकन लगे, तरु पर मन्मथ बैठे पाये ।
लख इनकी ही करतूत सकल त्रिपुरारि और भी गरमाये ।
खुल गया तीसरा नेत्र तुरत, भयभीत हुई सृष्टी सारी ।
उस महा अग्नि ने मनसिज की, क्षण भर में ढेरी कर डारी ॥
सुनते ही पति की गती, रती मूर्छा खाय ।
गिरी भूमि पर जोर से, कह कर हा पति ! हाय ॥
आते हि सुधी रोदन करती, पहुंची कैलास अधीश्वर पर ।
मृत्युंजय महादेव शिव पर, मन्मथ मद-मथन महेश्वर पर ॥
जाते हि शंभु के पांव पकड़, आंखों से अश्रु गिराती हुई ।
अति गिड़गिड़ाय कर कहन लगी, दुख से अतिशय बिलखाती हुई ॥
हा शोक ! हवन से हाथ जले, निःस्वार्थ काम का फल पाया ।
था चला बचाने देवों को पर अपना ही तन बिसराया ॥
हे नाथ मिला वैधव्य मुझे, इसका तो सोच नहीं भारी ।
पर सृष्टि चलेगी किस प्रकार, ये तनिक सोचिये त्रिपुरारी ।
जिसकी रक्षा हित बार बार, तन धर जगदीश्वर अवतरते ।
उस विश्व का होगा सर्वनाश, जहं प्रभु जन हित लीला करते ॥

इसलिये कृपा करके स्वामी, मम पति को जीवन दान करो ।
सारे ब्रह्मांड के साथ साथ, मेरा भी सब संताप हरो ॥
जितना एक पत्नीव्रत मनुष्य, प्रिय पत्नि गंमा दुख पाता है ।
उतना ही पतिव्रता को भी, निज पति का विरह सताता है ॥
कुछ सोचो और खयाल करो जब सती ने देह बिसारी थी ।
उस समय आपके हृदय की कैसी हालत कामारी थी ॥
बस वही व्यथा मुझ पर छाई, इसलिये दयालु दया कीजे ।
हे आशुतोष हूँ शरण तेरी, मम पति की शक्ल दिखा दीजे ॥
यदि मम जीवनधन दे न सको, तो मुझे भी इसके साथ करो ।
खोलो पुनि त्रतिय: नेत्र प्रभो, उपकार ये हाथों हाथ करो ॥
विना पती के पत्नि का, जीवन है धिक्कार ।
अस्तु पठा दीजे तुरत, पति के धाम पुरार ॥
रति की आरत वानी सुनकर, शंकर का कोप बिलाय गया ।
उन आशुतोष के हृदय में, फौरन करुणारस छाय गया ॥
आ गई याद उनको सत्वर, प्रिय पत्नी दक्ष कुमारी की ।
हो गये ध्यान में मग्न तुरत, अंखियां मिच गईं त्रिपुरारी की ॥
कुछ देर बाद चैतन्य होय, बोले बेटी मन धीर धरो ।
पति मिले तुझे कुछ काल गये, जो समझाऊं वो काम करो ॥
यदुकुल मे जब कृष्णावतार, होगा भू भार हटाने को ।
तब कृष्णपुत्र होकर तव पति जन्मेगा सुख पहुँचाने को ॥
उस समय बनाकर छद्म वेष, शंबरासुर के घर जा रहना ।
आ मिलेगा वहीं तुझे मन्मथ, जाओ करना मेरा कहना ॥
तब तक बिनु तन ही ये जब को, व्यापेगा कहता हूँ बानी ।
संसार का चर्चा चले योंही नहिं होवेगी कुछ भी हानी ॥
ये सुन रती चली गई, जब प्रगटे यदुराय ।
शंवर घर जाकर रही, अपना वेष दुराय ॥

ज्यों चातक अरु सीप दोउ, स्वांति बूंद की आस ।
करें लुवें नहि और जल, रटें पियास पियास ॥
त्योंही रति पति की आशा में, अपना मन समय बिताने लगी ।
इस तरफ कृष्ण सुत उत्सव में, द्वारावति शोभा पाने लगी ॥
घर. घर में वंदनवार बंधी, शुभ मंगलाचार दृष्टि आये ।
बसुदेव ने अगणित दान दिये, अवलोक पौत्र मुख हरषाये ॥
श्री नारद भी इस उत्सव में, फिर रहे थे आनंदित होकर ।
इतने में इन्हें याद आई सारी पिछली गाथा सत्वर ॥
सोचा रति का उपकार करूं, उसको पति जन्म वृतान्त सुना ।
भूमी का भार करूं हलका, उत्तेजित शंबर असुर बना ॥
ये सोच महामुनि शीघ्र चले, अपनी वीणा को खटकाते ।
पहुँचे दरबार में शंबर के, नारायण नारायण गाते ॥
था वैभव मे भरपूर दैत्य, बलशाली माया धारी था ।
सुर द्रोही शिव अनुगामी था स्वच्छन्द स्वेच्छाचारी था ॥
अवलोकते ही ऋषिराई को, दानव झट उठ सन्मुख आया ।
सिर झुका के दंड प्रणाम किया मुनि को आसन पर बिठलाया ॥
फिर बोला कैसे कृपा करी क्या हुक्म है मुनिवर बतलाओ ।
जो आज्ञा हो धर शीश करूं, सेवक हाज़िर है फरमाओ ॥
तब नारद कहने लगे, सुनो दैत्य महिपाल ।
रहो सम्भल कर अब तनिक, जन्मा तेरा काल ॥
यादव कुल पुरी द्वारका में, श्रीकृष्णचन्द्र के सुत जाया ।
उसके हाथों तव मृत्यू है, ले सोच समझ दानव राया ॥
इतला देना था काम मेरा अब लौट ब्रह्म पुर जाता हूँ ।
संसार नियन्ता के गुण गण, गाता हूँ समय बिताता हूं ॥
इतना कह मुनि तो विदा हुये, शंबर के चित का चैन गया ।
कर भेष विप्र का फौरन ही, वो द्वारावति पुर जात भया ॥

उपलक्ष में रुक्मिणि नंदन के, था महलों में उत्सव भारी ।
यहां आकर इस मायावी ने, फौरन निज माया विस्तारी ।
छा गया तहां पर अंधकार, तब ले प्रद्युम्न को खल धाया ।
भागता दौड़ता खुश होता, सागर के तीर चला आया ॥
पुनि डाल दिया गहरे जल में, सब दुःख भुलाय घर आता हुआ ।
मूरख, हरि माया से अजान, तन अमर मान हरषाता हुआ ।
उस बालक को एक मत्स्य लील, जल के अंदर घुस जाता है ।
होनी वश वो मच्छा आखिर, एक मगर के पेट समाता है ॥

शंबरासुर के वास्ते, मछुवे ने एक जाल ।
डाला तो फौरन तहाँ, फंसा वो मगर कराल ॥

इसको लेकर वो खुशी खुशी, दरबार दैत्यवर के आया ।
शंबर को आकर भेंट किया; तिन भोजनशाला भिजवाया ॥
श्रोताओं यहां की अध्यक्षा, इन दिनों मदन की नारी थी ।
पति की आशा में रात दिना, रहती थी दुख की मारी थी ॥
शंबर की आज्ञा से जिस दम, वो मत्स्य रसोई घर आया ।
रति ने चिरवाया तो उसमें, एक मच्छा और नजर आया ॥
जब उसको भी वो गती हुई, तो अचरज में भर गई रती ।
इतने में नारद आ पहुँचे, बोले संभाल "रति" अपना पती ॥
शंकर ने जो फरमाया था, वो दिवस आज आ छाया है ।
रुक्मिणी उदर से जन्म लेय, तव पति तेरे ढिग आया है ॥
कर प्रेम से लालन पालन तू, रख गुप्त इसे शिक्षा देना ।
शंबर को वध करवा सुख से, द्वारावती में जाकर रहना ॥

सुनकर नारद के वचन, शम्भु ध्यान उर धार ।
गद्‌ गद्‌ हो कहने लगी, काम नारि तेहि बार ॥

*** गाना ***

जय हो, जय हो जय शम्भु पुरारी प्रभो,
दीनो अबलाओ के हितकारी प्रभो ।
जटा मे गंग बहे भाल चन्द्रमा राजे,
गले मं सर्प हृदय मुंड की माला भ्राजे ।
हाथ मे डमरू व त्रिशूल निरंतर छाजे,
रूप लख रूप भी खुद अपने हृदय मे लाजे ॥
सोहे संग हिमालय कुमारी प्रभो ॥ जय हो ॥
करूं मै किस तरह गुणगान तुम्हारा स्वामी,
मूर्ख हूँ, दीन हूँ, अबला हूँ, हे अंतरयामी ।
करना अपराध क्षमा सब मेरे हिमगिरिवामी,
वर दो दिन रात रहूँ आपकी मै अनुगामी ॥
अब तो लीन्ही है शरण तुम्हारी प्रभो ॥ जय हो ॥

उस दिन से स्नेह सहित बाला, निज जीवनधन के संग रहे ।
अनुपम सुंदर मुख देख देख, अस मुदित हुई को कवी कहे ॥
जिस तरह किसान बीज बो कर, निशि दिन कृषि कर्म किया करता ।
खेती लहलाती देख देख चित मे अति हर्ष लिया करता ॥
बस उसी तरह वो मदन तिया, प्रीतम को पाले सुख पाकर ।
आलिंगन बारम्बार करे, मुख चूमे हरषा हरषा कर ॥
फिर समय देख संग्राम की भी, बतला दीनी सब चतुराई ।
दिव्यस्त्र सिखा सिखला दीनी, महा माया विद्या सुख दाई ॥
इस विद्या के सन्मुख कोई, माया न ठहरने पाती थी
असुरों की सारी करतूतें, बस नष्ट भ्रष्ट हो जाती थी ॥
द्रव्य पौष्टिक नित्य ही, देवे हरि सुत नार ।
थोड़े दिवसों में हुये, वीर बली तैयार ॥
अब तो रति का सब दुःख मिटा, कर हाव भाव पति पै आवे ।
कई तरह रिझावे प्रीतम को लख हाल प्रद्युमन सकरावे ॥

एक रोज कहा तेरे हृदय, विपरीत भाव क्यों आया है।
क्या भेद है इसमें हे जननी यह कैसा नेम निभाया है
तब रति ने सारी पूर्व कथा पुनि हरन कथा भी कह डाली।
सुनते हि कृष्ण सुत कुपित हुए झट आंखों में छाइ लाली॥
बोले इतने दिन तक तूने क्यों असली हाल छिपाया है
उस मच्छर तुल्य निशाचर से किस लिये प्रिये भय पाया है॥
हो चुका गुप्त रहना अब तो हो प्रगट शत्रु संघारता हूँ।
पुनि तुझे साथ में ले करके पितु मातु के ढिग पग धारता हूँ।
यदुवंश शिरोमणि नंदन हूँ छिप कर रहना नहिं भाता है।
दो प्राणवल्लभे आयसु झट, प्रद्युम्न शत्रु पै जाता है॥
यमराज तलक से डरूं नहीं, सामान्य दैत्य का बल कितना।
तव यत्न से शिक्षित हुआ प्रिये, बल में यकता हूँ पितु जितना
हो प्रसन्न वह कामिनी, बोली जीवननाथ।
मायावी शंबर असुर, बल से लगे न हाथ॥
इसलिये वैष्णवी माया को, हे नाथ काम में लाना तुम।
जब करे चाल कुछ रजनीचर, तत्काल इसे अजमाना तुम॥
जाओ महादेव सहायक हों, पा विजय लौट जल्दी आना।
पुनि साथ में ले मुझ दासी को द्वारावति नगरी में जाना॥
इतना कह अस्त्र शस्त्र सारे सन्मुख ला कर रक्खे रति ने।
रण साज सजाया हर्षित हो, झट गमन किया रति के पति ने॥
धनुवां को ताने कान तलक, प्रद्युम्न वीर रिपु पै आये।
बोले ओ दुष्ट पिशाच नीच, तव मृत्यु दिवस अब नियराये॥
मैं वही शिशू हूँ हे पामर, जिसका सिंधु में बहाया था।
हूँ उन्हीं कृष्ण का लड़का मैं छल से जिसको हर लाया था॥
कर ले अपने इष्ट को, याद तुरत रे दुष्ट।
आज करूंगा शर मेरे, तव खूं से संतुष्ट॥

सुन बाल वीर की अभय गिरा शंबर दानव चकराय गया।
इक बार तो दृष्टी के सन्मुख मृत्यु का अक्स खिचाय गया॥
पर उठा शीघ्र उर क्रोध धार, बोला चींटी के पर आये।
छूना चाहता बौना शशि को, पंगू गिरि लांघन चित लाये॥
मच्छर निज फूंक से गिरि उड़ाय, कंगाल कुबेर बना चाहे।
त्योंही तुझ सम एक तुच्छ जीव कर मुझ से युद्ध जिया चाहे॥
यों कहता हुआ दुष्ट दानव, ले गदा उछल सन्मुख आया।
गरजा तरजा कई बार नीच, लेकिन प्रद्युम्न नहिं घबराया॥
आखिर आयुध ऊंचा उठाय, उसने कई वार किये भारी।
तब कृष्ण पुत्र ने मुस्काकर, उसकी वो गदा तोड़ डारी॥

पद प्रहार से जिस तरह, क्रोधित होय भुजंग।
त्योंही झुंझला कर चला, दानव ले असि संग॥

पर तीक्ष्ण बाणों के आगे, तलवार भी चकना चूर हुई।
अरु शरीर की शर लगने से, बरबादी भी भर पूर हुई॥
तब लिया आसरा माया का, हो गया गुप्त वो दानव वर।
जा चढ़ा गगन में पुनि वहां से, बरसाने लगा रक्त पत्थर॥
कर दिया अंधेरा फिर पल में, चहुं दिशि में अग्नी फैलाई।
पुनि भूत, प्रेत, बेतालों की, एक भारी सेना प्रगटाई॥
इन सबों ने आकर पल भर में, झट घेरा मोहन-नंदन को।
ज्यों बादल घेरे दिनकर को, दानव घेरें रवि स्यंदन को॥

तब महामती प्रद्युम्न ने, करके रोष तुरंत।
निज महा माया से किया, खल माया का अंत॥
रवि प्रकाश से जिस तरह, अंधकार बिलगाय।
त्योंही खल का बल घटा, गिरा धरनि पर आय॥

अविलम्ब हरी सुत ने एक शर, मारा रिपु प्राण विहीन किया।
कट गिरा शिश मही पर फौरन, यों अरि कुल को छबि छीन किया॥

बज उठे गगन में नक्कारे, खुश हो सुर सुमन गिराने लगे ।
अपसरा नाचने लगीं तुरत, किन्नर निर्मल यश गाने लगे ॥
आ गया तुरत सुंदर विमान, रतिपति रति संग सवार हुये ।
चल दिये द्वारिका नगरी को, मग में शुभ सगुन अपार हुये ॥
यों गगन मार्ग से पल भर में, प्रद्युम्न वीर घर में आये ।
कीन्हा प्रवेश अंतःपुर में, लख दास दासियां चकराये ॥
दामिनि युत मेघ समान भूप, प्रद्युम्न की शोभा छाइ थी ।
आकृती थी बिल्कुल कृष्ण सरिस, मन हरन सुघड़ सुखदाई थी ॥
हो चकित दास दासी दौड़े फौरन मनमोहन ढिंग आये ।
बोले हे आरत हरन प्रभो, लख एक दृष्य अचरज पाये ॥
इक पुरुष आपके ही समान, अति सुंदर नारी संग लिये ।
आया है नभ के मारग से, रनवास गया मुस्कान हिये ॥
चल साथ हमारे लखें आप, रतिराज लजावन हारे को ।
सृष्टी के सुघड़ नमूने को, कजरारे नयनों वारे को ॥

इत प्रभु पर पहुँची खबर, उत रुक्मिनि के तीर ।
पहुँचे मुस्काते हुये, फौरन प्रद्युमन वीर ॥

इन पर दृष्टी पड़ते हि तुरत, भीष्मक कन्या ने अनुमाना ।
आ गये प्राण प्रिय प्राणनाथ, प्राणेश्वर प्राण सुखद कान्हा ॥
स्वागत को बढ़ी शीघ्र आगे, पर जब आनन या गौर लखा ।
सुत प्रेम उमड़ आया उर में, लज्जावश कुछ मुख से न भखा ॥
सोचा यदि जीवित होता वह, निश्चय इतना हि बड़ा होता ।
फिर कौन थी मुझ सम भाग्यवती, वात्सल्य का नित बहता सोता ॥
हैं ! बाम अंग क्यों फड़क रहा, क्यों स्तन दुग्ध बहाते हैं ।
उमड़ा आता है हृदय क्यों, क्यों दृग प्रेमाश्रु गिराते हैं ॥
मम स्वामी सम है स्वर चितवन, रंग रूप अकार प्रकार इसका ।
है भाग्यशालनी वो नारी, है पुत्र मनोहर ये जिसका ॥

हे विधि क्या ये वो ही सुत है जो बचपन मांहि अलक्ष हुआ ।
क्या यही सबब है जो पल में मम नेत्रों का प्रिय लक्ष हुआ ॥
ये सोच रही थी इतने में, आ गये तहां अंतरयामी ।
था इन्हें विदित सब कुछ लेकिन चुप चाप रहे जन अनुगामी ॥
इतने में नारद मुनी, कर वीणा खड़ताल ।
प्रभु के गुण गाते हुये, आ पहुँचे तत्काल ॥
अवलोक इन्हें स्वागत करने आगे बढ़ आये नंद कुंवर ।
कोमल वाणी से कहन लगे इक शुभ आसन पर बिठलाकर ॥
हे देव ऋषी तुम सब जग की, अगली पिछली पहिचानते हो ।
क्या कह सकते हो कौन है ये, इस नर को क्या तुम जानते हो ॥
हंस कर मुनि ने प्रभु पद पकड़े, बोले हो धन्य लीलाधारी ।
तुमने भी खूब कमाल किया, तुम पद पर जाऊं बलिहारी ॥
अच्छा रक्खो वपु मर्यादा मैं हो सब हाल सुनाता हूँ ।
जिस तरह हुआ ये नाटक प्रभु, वो सब गाथा समझाता हूं ॥
यों कह कमलज पुत्र ने कह दी कथा तमाम ।
चकित हुआ रनवास सब मुस्काये घनश्याम ॥
रुक्मिणि के हृदय हुआ, कथनातीत प्रमोद
बोली अति हरषाय कर, लेकर सुत को गोद ॥

* गाना *

हे विधी गति तेरी अपरम्पार है ।
जानना उसको बड़ा दुष्वार है ॥
एक दिन सुत के बिछोह का दुःख था ।
आज दिन आनंद की भरमार है ॥
अब ये दृग तारा न दृग से दूर हो ।
ये विनय हो जाय मम स्वीकार है ॥
आहा सुत भी क्या अनौखी चीज़ है ।
इस बिना जीवन सकल बेकार है ॥

आनंद बधाई बटने लगी, सुत जन्म महोत्सव आज हुआ।
हरषाय गये सब पुरवासी, हर जगह अनूठा साज हुआ॥
प्रभु ने निज कुल के माफिक सब, करवाये संस्कार सुत के।
पुनि शिक्षा दी अति प्रेम सहित, हो गया वो मानिंद विद्युत के॥
कुछ दिनों बाद महारथी का पद, मिल गया इन्हें यदु फौजों में।
हो गये कृष्ण सदृष्य प्रद्युम्न दिन लगे गुजरने मौजों में॥

इतना कह कर व्यास सुत, पुनि बोले हे भूप।
सतभामा के व्याह की, गाथा सुनो अनूप॥

सत्राजित नामी एक यादव, था रवि का पक्का अनुयायी।
जिसने कर कठिन तपस्या को, दिनमणि से एक मणी पाई॥
था नाम "स्यमंतक" मणि उसका, थी भानु समान प्रभा वाली।
देती थी स्वर्ण नित्य प्रति वो, सेवक की हरती कंगाली॥
फिर उसमें एक गुण और भी था, जहां उसकी पूजन की जाती।
उस पुर में महा मारी आदिक, व्याधियां न सूरत दिखलाती॥
हर समय सुभिक्ष हि रहता था, पड़ता था कभी अकाल नहीं।
अपमृत्यु अमंगल हरती थी, सर्पों की गलती दाल नहीं॥
उस द्वारा हेम प्राप्त करके, सत्राजित सुख से रहता था।
करता था सदा कर्म शुभ वह, नित दान का दरिया बहता था॥

एक दिवस इस रत्न को अपने गल में डार।
ये यादव जाता भया, उग्रसेन दरबार॥

छा गया चहुं दिशि महा प्रकाश, चौंधिया गये सब नर नारी।
सोचा बनवारी के दर्शन, करने आये हैं तम--आरी॥
शिव, अज, सनकादिक प्रभु सेवा, करते हैं अति ही सुख पाकर।
क्या बड़ी बात है जो आये, हरि दर्श हेतु दिनकर यहां पर॥
इतने में एक पुरुष ने जा, ये खबर कृष्ण को पहुँचाई।
हे कमलनयन—यादव नंदन, आ रहे आज यहां दिन राई॥

प्रभु बोले मंद मंद मुस्का, क्यों वृथा प्रलाप अलाप रहे।
ये तो सत्राजित यादव है, दिनमणि का सकल प्रताप रहे॥
इसको सेवा से तुष्ट होय रवि ने ये मणी दिलाई है।
उसका ही है सारा प्रकाश, सुर सेवा की प्रभुताई है॥
हो रही थी ये बातें यहां पर इतने में सत्राजित आया।
लख इसे हास्य करते करते, आनंदकंद ने फरमाया॥
हे यादववर इस मणि को तुम, नृप उग्रसेन की भेंट करो।
यश कीर्ति बड़ाई मान पाय, आनंद सहित घर पांव धरो॥

मोहन का प्रस्ताव सुन, सत्राजित चुपचाप।
उठ कर घर को चल दिया, करता मन संताप॥

यहां आकर चुप हो बैठ रहा, कुछ भी नहिं जिक्र किया उसने।
पर श्री कृष्ण ने मांगा था, ना दिया ये फिक्र किया उसने॥
लख इसे सोच वश एक दिवस, इसके भाई ने फरमाया।
हे भ्रात आपकी चिन्ता का, क्या कारन है न समझ पाया॥
यदि बात छिपाने योग्य न हो, तो कहो मिटे चिन्ता मन की।
हैं सर्व सौख्य सम्पन्न आप, कुछ चाह नहीं है धन जन की॥

सत्राजित कहने लगा, कर कुछ देर विचार।
दैवयोग से एक दिन, मैं पहुँचा दरबार॥

थी मणी गले में बंधी हुई इसको यदुराई ने माँगी।
मैंने नाहीं कर दी तब से, हृदय में व्याकुलता जागी॥
कारण वे वीर बला के हैं फिर नाती हैं नरराई के।
यदि क्रोधित कहीं हो गये तो, आजायगें दिवस बुराई के॥
हे भाई कुछ सोचो तो सही, क्या मणि देने के लायक है।
है इसका ही सारा प्रभाव जो घर सब विधि सुखदायक है॥
उनको कुछ कमी नहीं तो भी, मणि मांगत लाज नहीं आई।
सच है कितना भी धन होवे, धनवान न पाता थिरताई॥

मनमोहन के महत्व से, था जो निपट अज्ञात ।
वो प्रसेन क्रोधित हुआ, सुन सत्राजित बात ॥
आखिर बोला निज भृकुटि चढ़ा, तज दो सब सोच फिकर भाई ।
ये चीज हमारी है इसमें, कुछ कर सकते नहिं यदुराई ॥
यदि मणि ही चाहते हैं तो वे, श्री सूर्यदेव का भजन करें ।
मिल जायगी उनको भी ऐसी, पहिले दृढ़ हो कुछ यजन करें ॥
फिर भी यदि तुमको भय है कुछ, स्यमंतक के छिन जाने का ।
तो लाओ मुझे दो मेरे से, कोई नहीं आँख मिलाने का ॥
इतना कह मणि लेकर प्रसेन, गल डाल विपिन की ओर गया ।
था मृगया का अति शोक इसे, अस्तू कइ बनचर बधत भया ॥
आखिर एक मृग घायल होकर, भागा निज जान बचाने को ।
धाया पीछे पीछे ये भी, उसको यमपुर पहुँचाने को ॥
लेकिन वो तो नहिं हाथ लगा, पड़ गया एक सिंह से पाला ।
उसने घोड़े समेत पल में, परसेन का जीवन हर डाला ॥
वो केहरि लख मणि को अद्भुत, मुख माहि दबा आगे धाया ।
मिल गये राह में जाम्बवान, लख मणि मुंह में जल भर आया ।
एक थाप से मार मृगेन्द्र तुरत, मणि ले निज कंदरा पैठ गये ।
इस तरह एक मणि की खातिर, घोड़ा, प्रसेन, सिंह मरत भये ॥
शाम हो गई भवन को, आया नहीं प्रसेन ।
सत्राजित ये बात लख, हुआ बहुत बेचैन ॥
बोला अपनी तिय से यादव, अचरज मुझको अति भारी है ।
भैया नहीं मृगया से लौटा, ये कैसी हुई खुवारी है ॥
होता है मुझको वहम प्रिये, इसमें है हाथ मुरारी का ।
रच के षड़यंत्र बधा उसको, ये जाल है गिरवरधारी का ॥
मुझ से एक दिन मणि मांगी थी, लेकिन मैंने नाहीं करदी ।
पर उस छलिया ने छल करके, इस प्रकार उसको हथियाली ॥

है कपट कुशल वो देवकिसुत सब व्रज में नाम कमाया है।
भोले भाले ग्रामीणों को, कइ तरह का स्वांग दिखाया है॥
इस समय यदि उसके विरुद्ध मैं उठूं तो जीवन जायेगा।
उसके नाना की सत्ता है, चट घर शमशान बनायेगा॥
अस्तु चुपचाप रहो देवी, तज फिक्र हृदय को धीरज दो।
जो होगा देखा जावेगा, ये विषय यहीं ठंडा कर दो॥

पर, नारी के पेट में, टिके न कोई भेद।
इस सिद्धांत अनुमार ही, बढा बहुत सा खेद॥

उसने जाकर निज सखियों को, सारा वृत्तान्त सुना डाला।
मणि हेतु बधा मम देवर को, ऐमा सज्जन है नंदलाला॥
यों चुपके चुपके बात चली, श्री कृष्ण के कानों में आई।
अपने सिर धब्बा लगते लख हो गये सोच वस यदुराई॥
ले साथ नगर वालों को प्रभु, मणि को खोजन वन में धाये।
फिरते फिरते कुछ देर बाद, आखिर उस जगह चले आये॥
मारा था मृगपति ने घोड़ा, अरु यादव वीर प्रसेन जहां।
दोनों ल्हाशें थी पड़ी हुई, पर मणि का पता न लगा यहां॥
केहरि के पद चिह्नों को लख, सब लोगों को विश्वास हुआ।
सत्राजित के लघु भाई का, पंचानन द्वारा नाश हुआ॥
कुछ दूर पै मरा हुआ पाया, वो सिंह भी गिरि कंदर तट में।
अरु खून के छींटे चले गये उस गुफा के तमो मई पट में॥

ये लख बोले लोग सब, लौटो हे यदुवीर।
सिंह मार मणि ले गया, गुफा में कोई वीर॥

जहां तक था धर्म ढूंढने का, ढूंढा पीछे नहिं पांव धरा।
मिट गया नाथ तुम्हरा कलंक, सब दोष सिंह के शीश परा॥
पर कहा न माना नटवर ने, बोले मैं भीतर जाता हूँ।
तुम लोग रहो बाहिर ही सब, मणि का मैं पता लगाता हूँ॥

यों कह प्रकाश निज फैलाते, जग के प्रकाश अंदर धाये ।
तहं मणि से क्रीडित बालक लख, आनंदकंद मन हर्षाये ॥
जा पहुँचे बच्चे के समीप, लख इनको अनुपम बल रूपा ।
लड़के की धाय पुकार उठी, दौड़े आये तहं ऋक्ष भूपा ॥
आते हि प्रभू से लिपट गये, अरु चहा पटक दूं भूमी पर ।
छाती पर चढ़ कर प्राण हरूं, हड्डी पसली सब चूरन कर ॥
लेकिन हरि टस से मस न हुये, बल थकन लगा बलवानी का ।
इस तरफ लगा बढ़ने प्रभाव, पल पल में शारंगपानी का ॥

पर रिस के आवेश से, जाम्बवान का ज्ञान ।
लुप्त हुआ था अस्तु नहिं, चीन्ह सका भगवान ॥

उल्टा लेकर कई अस्त्र शस्त्र, मोहन पै वार अनेक किये ।
बेकार हुये ये भी सारे, फिर भी नहिं आया चेत हिये ॥
कुछ दम लेकर फिर ऋक्षराज, मल युद्ध के लिये तयार हुआ ।
यों बीत गये दिन अट्ठाइस, पर सब कौशल बेकार हुआ ॥
बल घटा इंद्रियां शिथिल हुईं, बह चली पसीने की धारा ।
तब विस्मित हो मन में सोचा, मम ईश्वर ने क्या तन धारा ॥
कह गये थे इक दिन नारद मुनि, मणि हेतु प्रभू यहां आवेंगे ।
तब धनुष बान धारन करके, तुझको शुभ दर्श दिखावेंगे ॥

अकस्मात इस बात का, आते ही जिय ध्यान ।
जाम्बवान चरणों गिरा, बोला जय भगवान ॥

हे अंतरयामी भक्त सुखद, अब मैंने तुमको पहिचाना ।
निश्चय तुम हो मम इष्ट देव, नहिं अन्य कोई है सुखदाना ॥
प्राणियों के नाथ प्राण हो तुम, बल हो तुम सब बलवानों के ।
हो धैर्यवान के तुम धीरज, गुण हो सारे गुणखानों के ॥
ब्रह्मा विष्णू शिव के भि तुम्हो, हे जनमनरंजन ! ईश्वर हो ।
जग सृजन पालना के कारण, पुनि जग संहार अधीश्वर हो ॥

त्रेता में नर तन धारन कर, तुमने ही रावण मारा था।
सिन्धू के वक्षस्थल पर प्रभु, एक रुचिर सेतु रच डारा था॥
करके असुरों से हीन मही, भूमी का हलका भार किया।
अब जान पड़ा मुझको स्वामी, द्वापर में फिर अवतार लिया॥
हे दीनबंधु ! तुमने मुझको, वर दिया था दर्शन देने का।
वो आज समय आया शायद, सेवाओं के फल लेने का॥
अस्तू करुणा कर करुणानिधि, अनुचर पर अब उपकार करो।
दशरथ सुत होकर दर्शन दो, निज वरद हस्त मम शीश धरो॥

नारद ने भी कही थी, यही बात हे नाथ।
मणि लेने यहां आयंगे, रामचन्द्र रघुनाथ॥
ऋक्षराज की लगन लख, हर्षे दीनदयाल।
यदुराई से बन गये, रघुराई गोपाल॥
इष्टदेव का दर्श पा, जाम्बवान हरषाय।
पुलकित हो कहने लगे, अपना शीश झुकाय॥

❋ गाना ❋

नित निर्गुण निर आकार हो तुम, हे राम तुम्हारी जय होवे।
भक्तों के लिये साकार हो तुम, हे राम तुम्हारी जय होवे॥
विधि रूप में जगकर्ता हो तुम्ही, विष्णू हो जगत भर्त्ता हो तुम्ही।
शिव बन करते संहार हो तुम, हे राम तुम्हारी जय होवे॥
सतयुग मे नरसिह रूप थे तुम, त्रेता मे अवध के भूप थे तुम।
कलियुग मे नंदकुमार हो तुम, हे राम तुम्हारी जय होवे॥
कर दया दयासागर मुझ पर, दो चरण भक्ति हे नटनागर।
सुनते भक्तों की पुकार हो तुम हे राम तुम्हारी जय होवे॥

हो खुश प्रभु ने जन के सिर पर, कर रख सब भांति सनाथ किया।
भक्ती का अनुपम वर देकर, वापिस मोहन का रूप लिया॥
फिर बोले इस मणि ने मुझ पर, ऋक्षेश कलंक लगाया है।
बस इसी को पाने की खातिर, ये कृष्ण यहां तक आया है॥
इसलिये मणी दे दो मुझको, अब शीघ्र लौट घर जाऊंगा।
मम विरह दुखी पुर वालों को, दे दर्शन कष्ट मिटाऊंगा॥
अच्छा अब तुम निश्चिंत होय, सप्रेम मेरे गुण गण गावो।
होते हि विसर्जन इस तन का, निश्चय मम श्रेष्ट धाम पावो॥
तब जाम्बवंत ने कर प्रणाम, कर जोड़ कहा सुनिये स्वामी।
करता है प्रार्थना दास एक, करिये स्वीकार गरुड़गामी॥
मम दुहिता जाम्बवती को प्रभु, पत्नी स्वरूप में अपनाओ।
ये करेगी नित सेवा तुम्हरी, इसके जीवनधन बन जाओ॥
हरि के हां भर देने पर झट, ऋक्षराज ने पुत्रि बुला लीन्ही।
कर दई समर्पण मोहन के, यौतुक में मणि भी धर दीन्ही॥

पत्नि और मणि को लिये, इधर चले गोपाल
बाहिर वालों का सुनो, श्रोताओं अब हाल॥

प्रभु को कंदरा में गये हुये, जब द्वादस दिन सम्पूर्ण हुये।
तब सब लोगों के वक्षस्थल, हरि विरह चोट से चूर्ण हुये॥
आखों से अश्रु बहाते हुये, वापिस द्वारावति में आये।
ड्यौढ़ी पर आ नरराई को, ये समाचार सब भिजवाये॥
हो गया व्यथित दरबार तुरत, कोहराम मचा अंतःपुर में।
बन गई सकल द्वारिका दुखित, छा गया शोक सब के उर में॥
भगवान कृष्ण का सुमिरन कर, सब कर मलते पछिताते थे।
सत्राजित पर दुर्वाक्यों की, बौछार भी करते जाते थे॥
आखिर वसुदेव देवकी भी, सब बंधु बांधवों को लेकर।
मय भीष्मक कन्या रुक्मिणि के, पहुँचे देवी के मंदिर पर॥

एकाग्रचित्त कर हाथ जोड़, सब अपना दुःख सुनाने लगे
जगजगनी असुर निकंदनि की, अति प्रेम से स्तुति गाने लगे ॥
बोले हे अम्ब दैत्य घालनि, हे पार्वती शंकर बामा ।
उपसुन्द, सुन्द, महिषासुर की, तनहरनी मुदिता अभिरामा ॥
हे जगतधात्री अनपूर्णा, हे दुर्गा विपति विदारनि मां ।
हे विजिया जया मंगला हे, हे चंड मुंड संहारनि मां ॥
हे महामाया हे आद्यशक्ति, मातंगि, जयन्ति, कलाकाली ।
हे गजमुख कार्तिकेय माता, हे स्ववश विहारनि मतवाली ॥

तू तारा तू मधुमती, त्रिपुरा सुन्दरि मात ।
महा सरस्वती लक्ष्मी, महाशक्ति विख्यात ॥

कर कृपा बता दे मातु हमें, यदुकुल भूषण कब आवेंगे ।
किस रोज हमारे नेत्र युगल, दर्शन कर आनन्द पावेंगे ॥
तू भूत भविष अरु वर्तमान, तीनों को है जाननहारी ।
टुक दया दृष्टि कर बतलादे, कब आवेंगे गिरवरधारी ।
हर समय हमारी पीर तुम्हीं, हरती आई हो शिवरानी ।
इस संकट से भी मुक्त करो, हम शरण हैं तुम्हरी महारानी ॥

यों कह सबने शिवा को, कीन्हा दन्ड प्रणाम ।
दुखी यादवों को निरख, मुस्काई शिव वाम ॥

सहसा गम्भीर अवाज एक, मंदिर के भीतर से आई ।
कर वचन श्रवण मम पुर वालों, हो जावो सुखी दुख विसराई ॥
करते हो शोक तुम उनके लिये, जो शोक का शोक मिटा सकते ।
जो काल हैं महाकाल के भी, जनहित नर तन धर अवतरते ॥
फिर हैं भय के भयदाई जो, वे किस व्यक्ती से भय पावें ।
संसार नियन्ता गोलोकी, जगदीश जगत्पति कहलावें ॥
जिनका दर्शन समाधि में भी, दुर्लभ है योगियों को पाना ।
रहते हैं तुम्हरे दृग सन्मुख, आठों हि पहर वे भगवाना ॥

तुम हो सबके सब भाग्यवान, किम तुम्हें छोड़ प्रभु जावेंगे ।
निश्चिन्त होय घर को धावो, मनमोहन शीघ्र हि आवेंगे ॥
गिरजा से इच्छित वर पाकर, यदुवंशी नगरी में आये ।
आगये प्रभू मणि को लेकर, ये समाचार सबने पाये ॥
हरि का स्वागत अति प्रेम सहित, कीन्हा सबने अति हरषाकर ।
रनवास में पहुँची जाम्बवती, गिर गई सास के चरणों पर ॥

देवकि ने अति हर्ष से, दीन्हा आशिर्वाद ।
फिर आ भीष्मक पुत्रि के, छुवे पांव हो शाद ॥

श्री रुक्मिणि ने हर्षित होकर, जाम्बवती को हृदय लगा लिया।
बोली हे बहिन चरण छूकर, पातक में मुझको फंसा दिया ॥
प्रीतम की गल की माला में, हम हैं पुष्पों से हे बहिना ।
हैं प्रेम रज्जु में गुथी हुई, को ऊंच नीच मानो कहना ।
मेरे पैरों पर सिर रख कर, क्यों मुझे वृथा लजवाती हो ।
सबका समान हक है प्यारी, क्यों इसमें फर्क दिखाती हो ॥
बस इसी तरह वे हंसी खुशी, आनन्द में समय बिताने लगीं ।
मनमोहन नटवर के द्वारा, आदर समान वे पाने लगीं ॥

फिर प्रभु ने एक दूत से, सत्राजित बुलवाय ।
मणी हवाले कर दई, पुनि बोले मुस्काय ॥

तुमने तो मुझको यादव वर, मणिचोर-हत्यारा ठहराया ।
पर आशिर्वाद से विप्रों के, सच्चा वृत्तान्त निकल आया ॥
जाओ मणि ले जाओ सुख से, है मुझे ये मिट्टी सम भाई ।
तव कृपा से रहती है हरदम, इस घर में रिद्धि सिद्धि छाई ॥
भय, ग्लानी, पछतावे में भर, सत्राजित घर को जाता है ।
अपनी पत्नी को फौरन ही, ये सारा हाल सुनाता है ॥
धोखा होगई बुरी घटना, श्रीकृष्णचन्द्र से बैर हुआ ।
मणि का मिलना हे प्राणप्रिये, मेरे खातिर तो ज़हर हुआ ॥

इक बात समझ में आती है, जो कहो तो वो कह डालूं मैं।
प्रिय पुत्रि सत्यभामा को ब्याह, हरि को दामाद बनालूं मैं॥
मिट सकती है बस इसी, तरह से मन की ग्लानि।
सिवाय इसके हे प्रिया, यत्न न कोई आन॥
अति प्रसन्न हो नारि वह, बोली हे भर्तार।
टीका भेजो आज ही, उग्रसेन दरबार॥
परणित होगया तुरत सारा, ये कार्य क्रिया में नरराई।
हरि ने भी ग्रहण किया टीका, आगये ब्याहने यदुराई॥
सुख सहित विवाह सम्पन्न हुआ, यौतुक में मणि भी धर दीन्ही।
अवलोक उसे नटनागर ने, थाली से तुरत अलग कीन्ही॥
बोले, अति श्रम करके तुमने, रवि से ये उत्तम मणि पाई।
भोगो तुम ही इसका अनन्द, होगी न हमें ये सुखदाई।
हम तो प्रसन्न हैं पूर्णतया, सम्बन्ध यहां हो जाने पर।
इसमें न ज़रा भी झूठ है कुछ, कहता हूँ सत्य सत्य यदुवर॥
सत्राजित ने सकुच कर, मणि लेली तत्काल।
महलों में आये तुरत, पत्नि सहित गोपाल॥
घर आते ही ये खबर मिली, पांडव लाखा ग्रह मांहि जले।
था ज्ञान प्रभू को सब, तो भी, मातम हित हस्तिनापुर को चले॥
लख राम कृष्ण से शून्य पुरी, अक्रूर व कृतवर्मा धाये।
कई तरह की बातें घड़ते हुये, शतधन्वा यादव पै आये॥
अरु कहन लगे सत्राजित से, तव मांग कृष्ण को दे डाली।
पर तुम चुपचाप हि बैठे हो, ये कहां की सज्जनता पाली॥
यदि हमरे साथ हुआ होता, ऐसा, तो हम बतला देते।
करने वाले को फौरन ही, करनी का मज़ा चखा देते॥
है समय अभी यदि चाहो तो बदला लो जाय कमीने से।
ले आवो वो उत्तम मणि भी, उस दगाबाज मति हीने से॥

हैं यहां अभी नहिं राम कृष्ण, जाकर उसको हत डालो तुम ।
पुनि हो निशंक आनंद करो, पहिले अरि दर्प गमालो तुम ॥

हरि प्रताप जाना नहीं, छाई सिर पर मीच ।
रैन अंधेरी में चला, वो शतधन्वा नीच ॥

निद्रित सत्राजित को पल में, इस पामर ने दो टूक किया
मणि को अपने कब्जे में कर, हो खुशी भवन का मार्ग लिया ॥
सत्राजित की पत्नी रो रो, पति शव पर अश्रु गिराने लगी ।
हा पती, प्राणधन, जीवनमणि, यों कह कह अति अकुलाने लगी ॥
सतभामा ने जब हाल सुना, रणवास से शीघ्र चली आई ।
रो धो कर पितु की लहाश तुरत, एक तेल पात्र में रखवाई ॥
फिर रथ मंगवा चलदी फौरन, कौरवगन की रजधानी को ।
पितु वध का सारा हाल कहा, जगदीश्वर हरि गुणखानी को ॥

दुखी हुये क्षण एक तो, दुःख नशावन ईश ।
फिर बोले बलराम से, नटनागर जगदीश ॥

भैया चलकर सब से पहिले, उस दुर्जन को हत डारें हम ।
फिर श्वसुर को अंतेष्टी किरिया, कर उसका लोक सुधारें हम ॥
कितने जीवों के जीव गये, इस मणी मनुज हत्यारी से ।
ना जाने आगे करेगी क्या, भय लगता इस भयकारी से ॥
यों कह सब द्वारावति आये, जब शतधन्वा ने सुन पाया ।
दौड़ा बोला कृतवर्मा से, लो भाई काल चला आया ॥
तुम्हरे उत्साह दिलाने से, मैंने ये अत्याचार किया ।
अब जान बचाओ तुम मेरी, आसरा तुम्हारा आय लिया ॥
बोले कृतवर्मा सुनो मित्र, बलहीन हैं हम मोहन आगे ।
उस महाबली रण रंगी से, वो लड़े मृत्यु जिसकी जागे ॥

तब ये सफलक सुत पर पहुँचा, बोला, कृतवर्मा ने टाला।
तुम तो कुछ मेरी सहाय करो अब आ पहुँचे हैं नंदलाला॥

गांदिन सुत कहने लगे, कर कुछ देर विचार।
हम से आशा मदद की, रखना है बेकार॥

हमको कुत्ते की मौत नहीं मरना है मित्र सुहाया है।
फिर कैसे साथ तुम्हार दूं, क्या यम ने मुझे बुलाया है॥
उस महावीर से कौन लड़े, जिसने उंगली पर गिरि धारा।
किसकी हिम्मत जो वैर करे, उससे, जिसने कंसा मारा॥
मगधेश चंदेरी नृप ने भी, लड़ जिससे पीठ दिखाई है।
किम उसके आगे अस्त्र गहें, क्या यम के घर पहुनाई है॥
तुमने बध करने से पहिले, आगा पीछा सोचा होता।
क्यों हमरी बातों में आये, हमरे कहने से क्या होता॥
तुमने अपने लाभ के लिये, हे भाई ये दुष्कर्म किया।
अब जाओ इसका फल भुगतो, नभ फैंक के पत्थर शीश लिया॥

निराधार हो दुष्ट तब, भागा जान बचाय।
देदी मणि अंक्रूर को छिपा जनकपुर आय॥

पर पता लगाते हुये तहां, आ पहुँचे हलधर नटनागर।
सिर काट मणी ढूंढने लगे, खल के कपड़ों में, ढिंग जाकर॥
लेकिन जब वो यहां मिली नहीं, तब आ बोले बलराई से।
हे भ्रात इसे विरथा मारा, मणि रख आया चतुराई से॥
दाऊ ने सोचा मुझ से मणि, रुक्मणीनाथ हैं छिपा रहे।
देंगे जाकर निज पत्नी को, इस हेतु बहाना बना रहे॥
अस्तु हो खिन्न मुरारी से, बोले तुम पता लगा लेना।
मैं मेरे शिष्य जनकपुर के, नृप को चाहता दर्शन देना॥

इतना कह विन कुछ और कहे, दाऊ विदेह के भवन गये।
अति हर्ष सहित स्वागत कीन्हा नृप ने हिय भर उत्साह नये ॥
सुन इनके रहने का वृतान्त, दुर्योधन यहां चला आया।
हो शिष्य गदा चालन सीखा, बन श्रेष्ट वीर घर को धाया ॥

इधर कृष्ण पुर को चले, रथ की रास सम्भार ।
की सत्राजित की क्रिया, यदुकुल के अनुसार ॥

अक्रूर व कृतवर्मा ने जब, शतधन्वा बध की सुधि पाई।
भागे दोनों द्वारका छोड़, गिन अपनी मृत्यू नियराई ॥
बलराम भी कुछ दिन में वापिस, आ गये लौट मिथलापुर से ।
लेकिन मणि का संदेह नहीं, नसने पाया उनके उर से ॥
कुछ और लोग भी शक में थे, मणि रखते हैं श्री यदुराई ।
दे रक्खी है सतभामा को, पर प्रगट न करते जगसांई ॥
अंतरयामी ने इन सबके अंतर भावों को जान लिया ।
इनका संदेह मिटा डालें, ये पक्का मन में ठान लिया ॥

था प्रभु को ये ज्ञात मणि, है सफलक सुत पास ।
करते हैं वे आजकल, काशीजी में वास ॥

जिस तरह बने उनको वापिस, नगरी में बुलवाना चहिये ।
मणि लेकर उनसे भ्रात आदि सब जनों को दिखलाना चहिये ॥
कर ये विचार बनवारी ने, अपनी कुछ माया फैलाई ।
बन गई द्वारका दुःख भवन, घर घर में बीमारी छाई ॥
फिर वृष्टी भी नहिं हुई तहां, पानी बिन सब दुख पाने लगे ।
हो गये खुश्क बन उपबन सब, सूखे तलाव दरसाने लगे ॥
चहुँदिश में हाहाकार मचा, सब लगे सोचने पुरवासी ।
उस जगह क्लेश दुख व्यापे किम, करते निवास जहं सुखरासी ॥

आखिर सब एकत्र हो, पहुँचे प्रभु के तीर ।
बोले दुख मोचन करो, त्राहि त्राहि यदुवीर ॥

लख अतिशय दुखित इन्हें बोले, आश्वासन देते मनमोहन ।
बन्धुओं वहां सुख चैन कहां, जहं से चल देते हैं सज्जन ॥
सफलक सुत सरिस द्वारका में, है नहीं कोई पंडित ज्ञानी ।
भगवान भक्ति करने वाला, सतवादि यती योगी ध्यानी ॥
है यही सबब जहं रहते वे, तहं नहिं अकाल का साया है ।
पुनि वर भी है कुछ ऋषियों का, ऐसा सुनने में आया है ॥

अस्तु यदी तुम चाहते, करना दुख को दूर ।
तो काशी में जाय कर, लाओ यहां अक्रूर ॥

ये सुनते ही कुछ लोग चले, श्री विश्वनाथपुर में आये ।
कर विनय गांदनी नंदन को, अति शीघ्र द्वारका में लाये ॥
इनके आते ही जल बरसा, पल में सारा दुख दूर हुआ ।
लीलाधारी की लीला से, अक्रूर "संत" मशहूर हुआ ॥
प्रभु ने इनको निज निकट बुला, यों कहा जरा मणि को लाओ ।
जो मिली तुम्हें शतधन्वा से, बस देर करो मत दिखलाओ ॥
केवल अग्रज का भ्रम हरने, मैं मणी देखना चाहता हूँ ।
दिखलाकर बन्धु बान्धवों को, तुमको वापिस लौटाता हूँ ॥

भयदायनि हत्यारनी, मणि से मुझे न नेह ।
केवल चाहता हूँ हटे, मम सिर से सन्देह ॥

अक्रूर ने मणि निज वस्त्रों से, फौरन निकाल कर दिखलाई ।
बन्धुओं का सारा शक मिटाय, प्रभु ने पुनि वापिस लौटाई ॥
देखो लक्ष्मी का बल देखो, जो इसके चक्कर में आता ।
वो हत्या, चोरी, झूँठ कपट, करता न जरा भी दहलाता ॥

बलदाऊ जैसे महागुनी, जब मैल हृदय में ले आवें ।
सामान्य जीव की क्या गिनती, फिर कैसे वे थिरता पावें ॥
जिनकी केवल इच्छा ही से, ऐसी असंख्य मणि पैदा हो ।
उनको क्या आवश्यकता है, जो तुच्छ वस्तु पर शैदा हो ॥
सारे अनर्थ की जड़ जग में, केवल दौलत कहलाती है ।
अपने दासों को श्रोताओं !, ये जी भर नाच नचाती है ॥

इस प्रकार मणि का हुआ, मित्रो पूर्ण वृतान्त ।
सुने पढ़े जो प्रेम से, उससे डरे कृतान्त ॥

कुछ दिनों बाद यदुराई ने, दूतों द्वारा ये सुधि पाई ।
नहिं दग्ध हुये लाखा ग्रह में, हैं कुशल पूर्वक सब भाई ॥
जा बसे हैं इन्द्रप्रस्थ में अब, पाते हि खबर ये बनवारी ।
चल दिये बन्धुओं से मिलने, लीलाललाम गिरवरधारी ॥
आगमन सुना जब नटवर का, पांडव सप्रेम उठकर धाये ।
मिल यथा योग्य सब से मोहन, फिर तुरत कुन्ति के ढिंग आये ॥
मस्तक झुकाय कर नमन किया, पुनि पूछी कुशल मुरारी ने ।
तुम्हरे बिन सकल कुशल छूछी, यों कहा पांडु की नारी ने ॥
फिर बोली प्रेमाश्रू भर के, हमरे तो तुम्ही सहारे हो ।
निर्बलों के बल हो तुम्ही हरी, जन्मांध के हिय उजियारे हो ॥

मुस्काकर प्रभु ने कहा, बूआ मैं किस योग ।
हुआ खुशी अति पाय कर, तुम्हरा दर्श संयोग ॥

कुछ देर ठहर फिर अर्जुन को, अपने संग ले घनश्याम प्रभू ।
पहुँचे मन बहलाने के लिये, यमुना तट जग आराम प्रभू ॥
तहं विद्युत छटा समान इन्हें, एक युवती दीन्ही दिखलाई ।
कर रही थी तप निश्चल होकर, सुधि तनोवदन की बिसराई ॥

प्रभु एक वृक्ष की छाया में, बैठे अरु भेजा पारथ को ।
बोले मालूम करो जाकर, ये तप करती किम स्वारथ को ॥
तब अर्जुन ने उसके ढिंग जा, पूछा किम लोक की हो रमणी ।
देवी हो, दानवी मानवी हो, किस कारन करो कठिन करनी ॥
मैं पान्डू का त्रितियः सुत हूँ, महारथी पार्थ है नाम मेरा ।
यदि समझो उचित कहो भगनी, मैं करूंगा पूरा काम तेरा ॥

गर्दन को नीची झुका, बोली वह सुकुमारि ।
मानो बीणा बज उठी, वर्षा ऋतू मंझारि ॥

हे अर्जुन यदि चाहते हो सुनो, मैं भानु सुता हूं कालिन्दी ।
करती हूं तप श्रीकृष्ण हेतु, वर हों मेरे वे आनंदी ॥
मम पितु ने मेरे हेतु यहां, जल भीतर भवन बनाया है ।
आ मिलेगा तेरा पती यहीं, तप कर तू ये फरमाया है ॥
बस तभी से हे कपिध्वज निशि दिन, धरती हूं ध्यान गुपाला का ।
जनमनरंजन, भवभयभंजन, नंदलाला दीनदयाला का ॥
हर्षित हो पांडव चले तुरत, मनमोहन को लेकर आये ।
लख निज चित चोर कन्हैया को, बाला के प्रेमाश्रू छाये ॥
तप छोड़ एकदम खड़ी हुई, पद मस्तक टेक प्रणाम किया ।
बोली मैं धन्य हुई भगवन, जो तुमने आकर दर्श दिया ॥
अब मम पितु की आज्ञा लेकर, मुझको अपनी दासी करलो ।
बस यही भावना मेरी है, अपनी अर्धांगिन को वरलो ॥

* गाना *

कर दिया धन्य मुझे धन्य मुरारी तुमने ।
लई जो आके खबर स्वयम् हमारी तुमने ॥
जब जहां टेर सुनाई है तुम्हे भक्तों ने ।
दिया है दर्श तुरत जाके बिहारी तुमने ॥

अधम हूँ दीन हूँ भक्ती से रहित अवला हूँ ।
सब तरह बिगड़ी दशा नाथ सुधारी तुमने ॥
वर दो विक्षेप न हो तुम से मेरा पलभर भी ।
सुनी है जन की सदा विश्व अधारी तुमने ॥

रवि से अनुमति मांगकर, दीनबंधु यदुवीर ।
कालिन्दी को संग ले पहुँचे कुन्ती तीर ॥

फिर मांग बुआ से विदा तुरत, निज प्रिय नगरी का मार्ग लिया ।
तहां आकर अति आनंद सहित, रवि सुता के संग विवाह किया ॥
फिर उज्जैयनी की राजसुता, हरकर लाये अंतरयामी ।
था नाम मित्रविंदा जिसका, कर विवाह करी निज अनुगामी ॥
एक अवध भूप थे नग्नजीत, तिनके घर एक कन्या जाई ।
था सत्या नाम सुंदरी का, हरि यश सुन तिन पद चितलाई ॥
लख इसको पाणि ग्रहण लायक, श्री अवध भूप ने प्रण ठाना ।
मंगवाये सात वैल फौरन, बेनथे हटीले, बलवाना ॥
विख्यात किया क्षत्रियों में पुनि, ब्याह उस संग कीन्हा जावेगा ।
जो नाथ के सातों वृषभों को एक ही साथ ले आवेगा ॥
ये सुन आये कई वीर बली, पर लौटे विफल मनोरथ हो ।
कर मल ते उर्ध स्वास लेते, यश मान बड़ाई कीरति खो ॥

प्रभु ने ये संवाद सुन, गमन अयोध्या कीन्ह ।
समाचार पा भूप ने, स्वागत में चित दीन्ह ॥

अति प्रेम सहित शुभ आसन पर, श्रीगरुड़ासन को विठलाया ।
दे अर्घ पाद्य पूजन करके, कर जोड़ प्रेम से फरमाया ॥
हे नारायण हे आदि पुरुष, हे अजर अमर अंतरयामी ।
मैं धन्य धन्य अति धन्य हुआ, जो दिया दर्श आकर स्वामी ॥

अब श्री मुख से हे भक्त सुखद, यदुवंश शिरोमणि यदुराई ।
किंकर हाजिर है कहिये जो, सेवा हो करूंगा चितलाई ॥

गगन गिरा सम वचन तब, बोले नंदकुमार ।
तव कन्या वरने नृपति, आया हूँ तव द्वार ॥

जाता हूँ बैल नाथने मैं, तुम विवाह की करलो तैयारी ।
आता हूँ अभी शीघ्र ही मैं, हरता हूँ तुम्हरा भ्रम भारी ॥
इतना कह सहज स्वभाव प्रभू, बैलों के निकट चले आये ।
एक ही समय में सातों को, तत्काल नाथ कर ले आये ॥
हो गया विवाह सत्या के संग, द्वारावति आये नटनागर ।
फिर पाणि ग्रहण भद्रा के संग, कीन्हा प्रभु ने अति हरषाकर ॥
पुनि हरी लक्ष्मणा को बल से, श्री आनंदकंद बिहारी ने ।
इस तरह से आठ विवाह किये, जनमनरंजन अघहारी ने ॥
आठों रहती थी हिल मिल कर, बहिनो सम उनके नाते थे ।
धर आठ रूप नटनागर भी, सब को नित सुख पहुँचाते थे ॥
इस प्रकार पालन लगे, प्रभू ग्रहस्थी धर्म ।
पर रहते जल कमल वत, जाने भक्त हि मर्म ॥
जिनके हिय दृग हैं खुले हुये, वेही लीला लख पाते हैं ।
हरि बिमुख जीव वादा विवाद, कर व्यर्थ हि समय गंमाते हैं ॥
अस्तू श्रोताओं सब तजकर, प्रभु के चरणों का ध्यान धरो ।
ये मनुज जन्म नहिं बार बार, मिल सकता ये अनुमान करो ॥
हरि कथा हि केवल कलिमल को, कर नष्ट है सुख देने वाली ।
पापों के मस्तक काटन को, है साक्षात् दुर्गा काली ॥
द्वारावती विहार का, हुआ वृतान्त तमाम ।
"श्रीलाल" अब प्रेम से, बोलो जय घनश्याम ॥

※ श्रीकृष्णार्पणमस्तु ※



श्रीकृष्ण चरित्र अथवा श्रीमद्भागवत

पंद्रहवां भाग

भौमासुर बध

रचयिता—

श्रीलाल खत्री

प्रकाशक—महाभारत पुस्तकालय, अजमेर

मुद्रक—के. हमीरमल लूनिया, दि डायमण्ड जुबिली प्रेस, अजमेर.

प्रथम वार २,०००	सम्वत १९९१ विक्रमी सन् १९३४ ईस्वी	मूल्य ।) आने

कृष्णस्तु भगवान् स्वयम्

स्तुति

(१)

मोहन राखि लेहु चरनन में

जन्म जन्म का दास तुम्हारा, वायस का जिमि पोत सहारा,
करुणानिधि हे त्रिभुवन जीवन, आन बसो मोरे मन में।
मोहन राखि लेहु चरनन में ॥
प्रेम पयोनिधि हे यदुनायक, पूरन ब्रह्म भक्त सुखदायक,
शरण पड़े की लज्जा राखो, भूल न हो जीवन में।
मोहन राखि लेहु चरनन में ॥

मङ्गलाचरण

(२)

पीताम्बर धर पाप हर, गोकलेश गोपाल ।
ताप हरन जन सुख करन, जय जय दीन दयाल ॥
जय जलशायी जलदसम, सुभग सुहावन रूप ।
सृष्टि रचन, पालन, हरन, शिव अज विष्णु स्वरूप ॥
तुम गुरु गणपति शारदा, सहस वदन तुम शेष ।
विघन हरो मंगल करो, जग व्यापक अखिलेश ॥
वंदहुं वेदव्यास सुत, श्री शुकदेव सुजान ।
गायो कलिमल हरन जिन, "कृष्ण नास्ति" गुनगान ॥

श्लोक

वंशीविभूषितकरान्नवनीरदाभात् पीताम्बरादरुणबिम्बफलाधरोष्ठात् ।
पूर्णेन्दुसुन्दरमुखादरविन्दनेत्रात्कृष्णात्परं किमपि तत्वमहं न जाने ।।

❀ कथा प्रारम्भ ❀

सात द्वीप चौदह भवन, तीन लोक चहुँ ओर ।
है प्रकाश तव ज्योति से, नटवर नंदकिशोर ।।
जेहि जन पर पूरन कृपा, हो तुम्हरी भगवान ।
उसको भव तारन सुगम, बिन केवट अरु यान ।।
हे करुणानिधि कष्ट हर, हे दीनन के मित्र ।
तव चरणाम्बुज शीशधर, वर्णन करों चरित्र ।।
रहे तुम्हरी भक्ति में, निशिदिन प्रीति अगाध ।
दे ऐसा बरदान प्रभु, पूरो मन को साध ।।

सतसंग तीर्थ जप तप आदिक, मुझ से न जरा बन पाया है ।
अज्ञान अविद्या के वश हो, नित पाप का बोझ बढ़ाया है ।।
पर कृपा तुम्हारी बिन कारन, मुझ पर होगई दिखाती है ।
जो तव गुणगायन में नटवर, मम इच्छा बढ़ती जाती है ।।
श्री रासेश्वरि को तुम समेत, आदर से शीश झुकाता हूं ।
तुम्हरी हि प्रेरणा से भगवन, तुम्हरा यश लिखता जाता हूं ।।
श्रोताओं ! गंगा के तट पर, हो रहा है कृष्ण चरित गायन ।
सुन रहे परिच्छित प्रेम सहित, कर रहे हैं शुकमुनि पारायन ।।
वर्णन आठों शादियों का कर, फिर कहन लगे श्रीमुनिराई ।
हे नृप अब सुन जैसे प्रभु ने, सोलह सहस्त्र एक सौ ब्याई ।।
एक दिवस नंदनंदन नटवर, मित्रों संग मन बहलाते थे ।
हो रहा था प्रेमालाप वहां, सब हर्षित हंसी आते थे ।।
इतने में आये इन्द्र वहां, अतिदीन मुखाकृति किये हुये ।
हृदय पर किसी महादुख के, अतिशय बोझ को लिये हुये ।।

आते ही प्रभु के चरणों में, गिर गये नयन में आँसू भर ।
बोले हे करुणासिन्धु सुनो, शरणागत वत्सल विश्वम्भर ॥
भूपाल प्राग–ज्योतिषपुर का, उत्पात इन दिनो मचा रहा ।
अति प्रबल राक्षसी सेना ले, सुरपुरवालों को सता रहा ॥
लेगया है मेरा छत्र छीन, अदिती कुंडल बिनु कीन्ही है ।
'शुभ मंदिर शिखर' नाम को जो, मणि थी वो भी ले लीन्ही है ॥

सब प्रयत्न कर थक गये, चली नहीं कुछ चाल ।
तब आया हूं शरण में, तुम्हरी हे नन्दलाल ॥

कर कृपा शीघ्र दानव वधकर दुख हरो हमारा यदुराई ।
जैसी इस समय मुसीबत है, वैसी विपता न कभी पाई ॥
मुस्काकर जनमनरंजन ने, अमरावति पति से फरमाया ।
हे इन्द्र प्राग-ज्योतिषपुर के, नृप भौमासुर का दिन आया ॥
मैं अभी उसे रण में वधकर, सब वस्तु स्वर्ग पहुँचाता हूँ ।
धर धीर भवन को गमन करो, पल में सब कष्ट मिटाता हूँ ॥
मम आश्रय में रहनेवाले, नहिं कभी सताये जाय सदा ।
जो निशिदिन मेरा नाम रटें, वे अंत में सुख ही पाय सदा ॥

* गाना *

सुरपति सुख से भवन सिधारो
चित में ग्लानि तनिक ना लाओ, निज कर्तव को चित मे धारो
मेरा कर्तव भवभय हरना, खल हित दण्ड व्यवस्था करना ।
मेरे वचन हृदय मे धारो ॥ सुरपति ॥
भौमासुर के दिन घिर आये, यम चाहत निज सदन बुलाये ।
मम कर उसकी मृत्यु विचारो ॥ सुरपति ॥
शरणागत वत्सल कहलाकर, गो, सुर, द्विज हित जग मे आकर ।
करतव दानव दलन हमारो ॥ सुरपति ॥

प्रभु को कर नमन नम्रता से, सुरराज अमरपुर को धाये ।
भगवान नंदनंदन फौरन, सतभामा के महलों आये ॥
बोले हे प्रिये सदा ही तुम, रणगमन की चाह जताती हो ।
जब भी ऐसा अवसर आता, तुम अति उत्साह दिखाती हो ॥
आ गया है आज संयोग एक, तैयारी करलो चलने की ।
इच्छा है दुष्ट दानव नरेश, भौमासुर के मद दलने की ॥
बिन तुम्हरे वहां पर गये, मरे न दानववीर ।
तुम जब चाहोगी तभी, तजेगा दुष्ट शरीर ॥
कारन ये खल है भूमि पुत्र, तप कर पृथ्वी ने पाया था ।
दे सुत का वर ब्रह्माजी ने, फिर आगे यों फ़रमाया था ॥
हे धरा ये होगा अति बलिष्ट, निश्चर कुल का पालक होगा ।
भगवान भक्त ऋषि मुनियों का, देवों का अति घालक होगा ॥
जब इसके अत्याचारों से, कपकपा उठेगा इन्द्रासन ।
तब इसे निहत करने के लिये, आवेंगे फौरन गरुड़ासन ॥
पर जब तक तू अपने मुख से, "मारो" ये नहिं फरमावेगी ।
तब तक तेरे सुत पर न कभी हे भूमि आंच कुछ आवेगी ॥
इतना कह विधि तो विदा हुये, तप छोड़ भूमि वापिस आई ।
मैं कहूँगी क्यों "सुत को मारो", ये सोच हृदय में हर्षाई ॥
अस्तु कहेगी भूमि कब, करो पुत्र विध्वंस ।
इसीसे ले चलता तुम्हें, तुम हो पृथ्वी अंस ॥
जिस समय तुम्हारा मन चाहे, कह देना मारो यदुराई ।
बस उसी समय वो दुष्ट नीच, जिन्दा नहिं देगा दिखलाई ॥
इतना कह सतभामा को ले, पुर बाहिर आये यदुनन्दन ।
बनिता के सुत को याद किया, वे भी आ पहुँचे उसही छिन ॥
हो गरुड़ सवार गरुड़ध्वज झट, भौमासुर पुर को जाते हैं ।
था दृश्य प्राग-ज्योतिषपुर का, कैसा ये प्रथम बताते हैं ॥

ये महि मंडल था घिरा हुआ, ऊँची दृढ़ गिरि मालाओं से।
पुनि गहरे जल की खाई में, विज्ञान की अमित कलाओं से॥
इसके समीप ही शस्त्रों की, थी विकट क़िलेबंदी तहां पर।
मानव शक्ती के बाहिर था, इसका भेदन करना नृपवर॥
कुछ आगे था अग्नी का कोट, लपटें नभ मंडल छाई थीं।
वायू चलती थी आँधी सम, नगरी देती न दिखाई थी॥
फेर पांच मुंह का यहां, था एक असुर विशाल।
देख जिसे खुद काल भी, डरता गिन निज काल॥
"मुर" नाम था इस रजनीचर का, था दुष्ट सकल पुर का रक्षक।
सेनापति था भौमासुर का, शत्रू के कुल का था भक्षक॥
इसने अपनी माया द्वारा, कुछ ऐसा जाल बिछाया था।
बंध गया था जल थल नभ सारा, सुर मंडल तक चकराया था॥
इस तरह अभय निज नगर बना, भौमासुर मौज उड़ाता था।
जो सन्मुख आता लड़ने को वो चट यमलोक दिखाता था॥
ले छत्र पुरंधर का इसने, निज सिंहासन पर लगवाया।
अदिती के कुंडल से अपनी, प्रिय पत्नी को था सजवाया॥
फिरता था चहुँ दिशि गर्व भरा, "भू" भार से दबती जाती थी।
पर सुत की ममता के कारन, ये सब कुछ सहती आती थी॥
मन के वेग समान सम, सतभामा के साथ।
आ पहुँचे पुर के निकट, खल गंजन यदुनाथ॥
प्रभु की आज्ञा से पल भर में, श्री चक्र ने रस्ता साफ़ किया।
मजबूत मोरचेबंदी को, तत्काल ठिकाने लगा दिया॥
कर दई अग्नि अदृष्य तुरत, आंधी भी सत्वर दूर करी।
खाई सूखी गिरि चूर्ण किये, यों सभी रुकावट तुरत हरी॥
मैदान साफ़ लख नटवर ने की 'पांचजन्य' की ध्वनि भारी।
सुनते हि जिसे दहलाय गई, पुर रक्षक की सेना सारी॥

भागी अरु मुर दानव पै जा, ये सकल माजरा समझाया ।
हरि प्रभाव से अज्ञात दुष्ट, ले शस्त्र तुरत सन्मुख आया ॥
थे रक्तवर्ण लोचन खल के, रंग कज्जल सदृष्य काला था ।
टुकड़ा था मानो भूधर का मदमत्त और मतवाला था ॥
लप लपा रही थी प्रति मुख में, दानव की जिव्हा भयदाई ।
चलने से भूमि धसकती थी, कंपित होते दिग्गजराई ॥
मोहन पर दृष्टी पड़ते ही, मुर गरजा तरजा ललकारा ।
पुनि उठा के एक त्रिशूल बड़ा, फौरन हरि वाहन के मारा ॥

सुमन छड़ी की चोट से, ज्यों करि पाय न क्लेश ।
त्योंही वनिता पुत्र को, हुआ न दुख लवलेश ॥

तन से टकरा त्रिशूल गिरा, तब हंसकर शारंगपानी ने ।
मुर दानव के पांचो आनन, शर विद्ध किये गुणखानी ने ॥
गुस्सा खा लेकर गदा बड़ी, तब असुर ने प्रभु पर वार किया ।
हरि ने तीक्ष्ण वानों द्वारा, कर चूर्ण उसे भू डार दिया ॥
ले 'असी' चला जब कालग्रास, भुज सहित भूमि पर आती है ।
दूसरी भुजा से गिरि लाया, देह भुजाहीन हो जाती है ॥
तब अपने पांचों मुख फैला, क्रोधायमान हो रिपु धाया ।
लख उसे भयानक सूरत में, सुर समूह सारा चकराया ॥

चक्र सुदर्शन को तभी, प्रभु ने आज्ञा दीन्ह ।
उसने फौरन ही किया, रिपु तन प्राण विहीन ॥
भौमासुर ने जब सुना, मुर का मरन वृतान्त ।
लाल लाल लोचन बने, दीखा मनो कृतान्त ॥

गुस्से से तन कांपने लगा, पीसा दांतों को रिसिया कर ।
बुलवाई असुर मंडली झट, अरु बोला अतिशय गरमा कर ॥
हे वीरो सावधान होकर सम्भाषण मेरा श्रवण करो ।
शत्रू पुर पर चढ़ आया है उसके फौरन ही प्राण हरो ॥

अपना बल पौरुष दिखला कर, मुर ने तो वीर गती पाई।
पर फिक्र नहीं तुम भी तो हो, निज कुल भूषण रिपु भयदाई॥
मातम तजकर हे वीर वरो, उत्साह नवीन हृदय भरलो।
चुन लो तुम में से श्रेष्ठ वीर, उसको अपना सेनप करलो॥
पुनि दौड़ जाउ ले अस्त्र शस्त्र, हौंसला करो पूरा दिल का।
इकले शत्रू को वधना है, कुछ काम नहीं है मुशकिल का॥
कर दूंगा मैं उसको निहाल, जो काट के सिर को लावेगा।
पर जिसने मुंह मोड़ा रण से, मुझ द्वारा जान गमावेगा॥

यातुधान मंडल तुरत, हुआ मंत्रणा लीन।
"पिठी" नाम के असुर को, निज सेनापति कीन॥

मुर दैत्य के सातों लड़के भी पितु के मरने की सुधि पाकर।
आ मिले तुरत इस सेना में, ले अस्त्र शस्त्र अति रिसिया कर॥
इस तरह सम्मिलित शक्ति बना आ कर घेरा यदुनंदन को।
कर क्रोध पिठी यों कहन लगा लेकर त्रिशूल वृजचंदन को॥
मातुल हन्ता, तिय लोलुप खल, अन्यायी, असुरों के दुश्मन।
सब कसर आज पूरी करके, भेजूंगा तुझे यमराज भवन॥
सन्मुख आ दुष्ट नीच ग्वाले, तेरा सब गर्व भुलाता हूं।
यदि जान बचा तू भगा नहीं, तो भू पर तुझे सुलाता हूं॥

प्रभु ने मुस्काकर कहा, विरथा बातें छोड़।
लड़ कर कुछ पौरुष दिखा, या रण में मुखमोड़॥

तुझ जैसे बलि पशुओं का हम, आखेट निरय ही करते हैं।
सिंहों के बच्चे मृग विलोक, क्या कभी हृदय में डरते हैं॥
अपने दोषों की ओर नहीं, कोई भी मनुज निहारता है।
औरों के छिद्र देखने में, अपना सब समय गुजारता है॥
तू तो टुक निज को देख जरा डूबा है चोटी तक अघ में।
दिन रात बिछाता रहा दुष्ट, कांटे अपने निर्मल मग में॥

अत्याचारी दुष्टों के लिये, हे रजनीचर बस काल हूँ मैं ।
निर्बल का बल हूँ अरु सुनले, दीनों का दीनदयाल हूँ मैं ॥
बस व्यर्थ की बक बक छोड़ मूर्ख, करले पहले प्रहार मुझ पर ।
ताके तेरे मन में न रहे फिर काल का धावा है तुझ पर ॥
हरि की निर्भय वाणी सुनकर, वो दानव रिसिया कर धाया ।
त्रिशूल प्रभू की ओर किया, बोला जा यम ने बुलवाया ॥
पर फैंक सका नहिं आयुध को, कर में ही प्रभु ने टूक किया ।
ले चक्र जिस समय बढ़ा दुष्ट, कर खंड उसे भी डाल दिया ॥
तलवार गदा आदिक से भी, कुछ दिखा सका नहिं चतुराई ।
शस्त्रों से हीन होगया जब, तब सेना भी सब घिर आई ॥
कर मध्य में यादव नंदन को, चहुँ दिशि से मार मचाने लगे ।
तलवार शक्ति तोमर त्रिशूल, पत्थर आदिक बरसाने लगे ।

तब प्रभु भी शारंग चढ़ा, लगे चलाने बान ।
जिससे घायल हो गये, बड़े बड़े बलवान ॥

निशचरों ने अपनी जान लड़ा जगजीवन को बधना चाया ।
पर हरि के कठिन शरों आगे, कोई भी सुभट न ठहराया ॥
खगपति आरूढ़ जगतनंदन, सेना बध भू पर डाल रहे ।
कुछ देर में अगणित असुरों के, बिन प्राण फकत कंकाल रहे ॥
सातों मुर सुत अरु पीठि दुष्ट, यम महमानी को चले गये ।
हो गया भयंकर समरक्षेत्र, अभिमान खलों के दले गये ॥

ये सुधि पा झुंझलाय कर, ले गज सेना साथ ।
भूमि पुत्र भी आ गया, थे जहँ दीनानाथ ।

आते हि कहा मुर, पीठि मार, शायद तू इतराता होगा ।
पर अब तयार होजा तुझको, यम संदेशा आता होगा ॥
तुझको मारे बिन कभी नहीं, घर को लौटूंगा यदुराई ।
कर इष्ट का अपने ध्यान जल्द, होनी तुझको यहां ले आई ॥

प्रभु बोले सच्चे शूरवीर, ज्यादा बकवाद नहीं करते।
जो बादल अधिक गरजते हैं, वे खेत का पेट नहीं भरते॥
अस्तु यदि कुछ ताकत है तो आगे बढ़ दिखला मनुमाई।
ये अभी ज्ञात हो जावेगा, किस की मृत्यू आकर छाई॥
ये सुनते ही दानव गरजा, ले भाला दांत किटकिटा कर।
सेना को जोश दिलाता हुआ, दौड़ा सत्वर मोहन ऊपर॥
जैसे काले भरे बादल, दिनराई पर छा जाते हैं।
वैसे हि गजारोही दानव, हरि के चहुँ ओर लखाते हैं॥
भौमासुर ने उस बरछे को, तक कर जगनायक पर फैंका
लेकिन प्रभु ने मारग ही में, कौशल द्वारा उसको छैका॥
खंजर तलवार त्रिशूल तीर शक्ती पट्टिस फरसा भाला
सब कुछ अजमाय चुका निश्चर, पर अक्षत ही रहे नंदलाला॥
तब अति खिसियाय दुराचारी ने आसुरि माया को फैलाई।
हो गया अदृष्य तुरत रण से, पहुँचा नभ मंडल में जाई॥
अरु लगा चलाने कठिन बान, पाहन से भी कई वार किये।
पर प्रभु ने सहज स्वभाव सहित, रिपु के प्रहार बेकार किये॥
नागारि जिस तरह नागों संग, क्रीड़ा करते हैं हरषाई।
त्योंही खिलवाड़ कर रहे थे, भौमासुर संग श्रीयदुराई॥
लख अस्त्र शस्त्र बेकार सभी, वो यातुधान अति रिसियाया।
महामायापति को एक बार, फिर दिखलाई अपनी माया॥
छा गया चहुँदिशि अंधकार, चंचल चपला चमकन लागी।
लग लगे बरसने अंगारे, हर तरफ दृष्टि आई आगी॥
धरु धरु धरु मार मार पकड़ो, आवाज दिशाओं से आई।
होगये हजारों भौमासुर, ये लख सतभामा घबराई॥

दोनों हाथों से किये, बंद तुरत दोउ नैन।
बोली क्रीड़ा हो चुकी, मारो करुणा—ऐन॥

मायेश ने फौरन मुस्काकर, शर अर्ध चन्द्र आकार लिया ।
पुनि शारंग पर रखकर उसको, धनु तान शत्रु पर छोड़ दिया ॥
जिसने जाते ही महिसुत को, सिर हीन कबंध बना डाला ।
होगई गुप्त माया तुरन्त, छागया सभी जां उजियाला ॥
जय जय ध्वनि नभ मंडल मे हुई, देवता पुष्प बरसाने लगे ।
नरकासुर के संगी साथी, भयभीत हो अति घबराने लगे ॥
आखिर एका करके सारे, भागे पर भाग नहीं पाये ।
खा चोट सुदर्शन चक्र की सब, मरकर गिरते दृष्टी आये ॥
महिसुत के तन से तेज निकल, प्रभु के पद माहि समाय गया ।
लख परम गती भौमासुर की, सुर मंडल अति चकराय गया ॥

सतभामा ने धीर धर, देखा नेत्र उघार ।
मृतक बिलोका दुष्ट को, छाई खुशी अपार ॥

इतने में भूमि नारि तन धर, कर जोड़ प्रभू सन्मुख आई ।
सुरपति का छत्र अदिति कुंडल, अरु महा मणी संग में लाई ॥
सिर झुका के दंड प्रणाम किया, फिर भेट करी चीजें सारी ।
नत मस्तक होकर खड़ी हुई, पुनि कहन लगी हे गिरधारी ॥
लख सुत के अत्याचार नाथ मैं अष्ट प्रहर घबराती थी ।
लेकिन ममता के वश होकर, इसके विरुद्ध नहिं जाती थी ॥
शुभ हुआ जो तुम्हरे हाथों से, ये महा दुष्ट निर्जीव हुआ ।
मेरा भी नित का फिक्र मिटा, त्रिभुवन को सुख निःसींव हुआ ॥
हे जन्म रहित आकार रहित, हे गुणा तीत हे जगसाईं ।
हे निराधार हे सब अधार, हे सवरूप हे वरदाई ॥
यद्यपि तुम सदा अलिप्त रहो, अव्यक्त अरु निर्गुण स्वरूपी हो ।
पर जन का दुख हरने के लिये, साकार सगुण बहुरूपी हो ॥
पृथ्वी जल वायू अग्नि गगन ये पंच तत्व तुमसे जाये ।
हे ज्ञान रूप मन बुद्धि अगम, जग हित करने जग में आये ॥

संसार क्रमागत हो पैदा, यह न्याय शास्त्र बतलाता है।
पर मनुज बुद्धि है कितनी सी प्रकृती तक उसका नाता है॥
योगी, ज्ञानी अरु सांख्य पढ़े. तत्वों का तत्व नहीं जाने।
निःसत्व बात उनकी सारी, जो नहीं आपको पहिचाने॥
मैं जड़ हूँ मतलब भरी हुँ मैं, जब दुख पाया था दुष्टों से।
दौड़ी आई ले साथ देव जब अन्त न पाया कष्टों से॥
लीला ही में तुमने मारे अघ बका, कंस आदिक निश्चर।
नृप काल यवन का अंत किया, हरलिये प्राण दुष्टों के पर॥
फिर भी गोद्विज हन्ताओं का है जोर अभी महि मंड़ल मैं।
निश्चय वे मारे जावेंगे, आवेंगे काल कमंडल में॥

*** गाना ***

जगदीश बिन आकार हो साकार हो सुखकार हो।
आधार बिन साधार हो निर्गुण व गुण आगार हो॥
विधि ईश शारद शेष सुर श्रुति शास्त्र भेद न जानते।
जिनपर तुम्हारी हो कृपा वे ही तनिक पहिचानते॥
पा दुख पुकारा आपको फौरन ही सुधि ली आनकर।
अरु भार हलका कर रहे दानवगणो को मारकर॥
यद्यपि सकल तुम्हरी प्रजा पर राग द्वेष न आप मे।
करते उचित ही योजना सम रहत सुख संताप मे॥
नत माथ हो यदुनाथ मै तुम्हरे चरण चित लारही।
हो भार हलका शीघ्र ही हे भक्तवत्सल चारही॥

जय जन दुखहारी प्रभो, जगरक्षक जगदीश।
शरण चरण की राखिये भक्ति करिय बकशीश॥
एक प्रार्थना और है सुनो गरीब निवाज।
भौमासुर सुत तब शरण, आया रखिये लाज॥

भगदत्त नाम इसका है प्रभु, मन वचन कर्म तव अनुचर है ।
इसको अपनी रक्षा में लो, ये दीन अनाथ सरासर है ॥
करके इसके पुर में प्रवेश, सब भूमी खंड पवित्र करो ।
पुनि सिंहासन पर बिठलाकर, कर तिलक नाथ सब दुःख हरो ॥

अभय किया भगदत्त को रखकर सिर पर हाथ ।
फेर चले पुर की तरफ दीनबंधु यदुनाथ ॥

नगरी की शोभा लखते हुये, चल रहे थे शोभा धाम प्रभू ।
आखिर कुछ देर बाद पहुंचे, महलों में जग आराम प्रभू ॥
भौमासुर सुत ने हर्ष सहित कीन्ही नटवर की पहुनाई ।
शुभ दिवस विलोक दयामय ने फिर इसको गद्दी दिलवाई ॥
इतने में इनको खबर मिली, नरकासुर ने भुजबल दिखला ।
कन्यायें सोलह सहस और, इकशत एकत्र करी घर ला ॥
वह इन संग विवाह रचाने की, तैयारी करने वाला था ।
पर नारद मुनि ने विघ्न डाल, सब गुड़ गोबर कर ड़ाला था ॥
मुनिराई को ये मालुम था, लड़कियां लक्ष्मि की छाया हैं ।
बस इनके पाणि ग्रहण लायक जग में केवल यदुराया हैं ॥
अस्तू इक दिन घर आ मुनि ने, भौमासुर से यों फरमाया ।
राजन ये समय नहीं अच्छा, पीछे कर लेना मन चाया ॥
इस तरह ये रही कुंवारी ही, इत दानव यमपुर चला गया ।
जगजीवन का जो हिस्सा था यों तहां पर अक्षत बना रहा ॥

अंतःपुर पहुँचे जभी, नटवर नंदकिशोर ।
सब कन्याओं के नयन, लगे इन्हीं की ओर ॥

अनुपम सांवरि मूरत लखकर, सब बाला चकित हुई भारी ।
मन प्रभु चरणों में लीन हुआ, सुधि बिसर गई तन की सारी ॥
संकोच विवश कुछ कह न सकी, मन ही मन विधना को ध्याया ।
बोली हे विधि हमरे पति हों, जनमनरंजन श्री यदुराया ॥

यदि हमरी चाह न पूर्ण हुई, हम सब कांरो रह जावेंगी।
श्री कृष्णचन्द्र को तज जग में, नहि किसी को पती बनावेंगी।
कर प्रण इस तरह लड़कियां सब नटवर का ध्यान लगाने लगी।
उर में प्रभु मूर्ति स्थापित कर, अति प्रेम सहित गुण गाने लगी॥
इनके अंतर भावों को झट, अंतरयामी ने जान लिया।
मुस्काकर अपने पास बुला, इनको इच्छा वरदान दिया॥
फिर सबको निलहवा धुलवाकर, शुचि वस्त्राभूषण पहिराये।
पुनि सबके लिये स्वर्ण मंडित, अति सुन्दर डोले मंगवाये॥
कर सवार सब को तुरत द्वारावति की ओर।
पठवा कर फिर भूप से, बोले नंदकिशोर॥
राजन् स्वधर्म अनुगामी रह, निजपुर का राज्य चलाना तुम।
रैयत को गिनना पुत्र सरिस, दीनों को मतो सताना तुम॥
अब मैं कुंडल आदिक लेकर, अमरावति नगरी जाऊंगा।
जिनकी चीजें हैं उनको दे, फिर लौट द्वारका आऊंगा॥
ये सुन भौमासुर के सुत ने, हर्षित हो दंड प्रणाम किया।
फिर अतुल द्रव्य गज अश्व सहित, लाकर गिरवरधारी को दिया॥
भेज इसे भी द्वारका, पुनि हो गरुड़ सवार।
शचिपति के दरबार में, आये जगदाधार॥
पड़ते हि दृष्टि गिरधारी पर, देवेश सहित सब देव उठे।
बोले प्रभु कृपा तुम्हारी से, हम सारे दुख द्वंदों से छुटे॥
है बारम्बार प्रणाम तुम्हें, हे भूमि भार हरने वाले।
सुर विप्र धेनु संतों के लिये, मानव शरीर धरने वाले॥
यों कह विधिवत् पूजन करके, इनको सिंहासन बिठलाये।
तब कुंडल और छत्र आदिक, प्रभु ने सुरपति को लौटाये॥
कुछ दिन नंदन कानन में रह, सतभामा सहित विहार किया।
पुनि विदा होय अति हर्ष सहित निज पुर आने में चित्त दिया॥

कल्पवृक्ष को देखकर हरि रानी मुस्काय ।
बोली इसको ले चलो, मम उपवन यदुराय ॥
प्रभु ने लीला ही में तरु को जड़ से उखाड़ बाहन धारा ।
ये लख सुरनायक कुपित हुआ, मग घेरा बुला कटक सारा ॥
शुक बोले राजन देखो तो, तामसि प्रकृति सुरराई की ।
जिन प्रभु ने इसके दुःख हरे उन्हीं से आय लड़ाई की ॥
अपने मतलब के समय जाय, द्वारावति में रोना रोया ।
होते हि प्रयोजन सिद्ध तुरत, अहसान सकल मन से खोया ॥
कर उत्तेजित निज सेना को मोहन पर शर बरसाने लगा ।
मानो एक नन्हा सपलोटा, खगपति संग युद्ध मचाने लगा ॥
प्रभु ने माया की महिमा लख, मुस्काकर सारे वार सहे ।
एक पवन अस्त्र ऐसा छोड़ा, सबके सब घर पर जाय रहे ॥
मैदान सुरों से रहित बना, द्वारावति में प्रभु आते हैं ।
सुरतरु को निज प्रभु पत्नी के, मंदिर में आन लगाते हैं ॥
पुनि जितनी थीं लड़कियाँ, उतने ही धर रूप ।
पाणिग्रहण एकदम किया, सब से त्रिभुवन भूप ॥
इस प्रकार सोलह सहस, इकशत आठ कुमारि ।
व्याही जगदाधार ने करने लगे बिहार ॥
श्रोताओं अब कुछ सुनो प्रभु अंतःपुर हाल ।
किस प्रकार हरि प्रेम पा, रानी हुई निहाल ॥
रुक्मणी सत्यभामा सदृष्य, थे सबके मंदिर बने हुये ।
रहते थे हर दम हरघर में, यदुनाथ प्रेम में सने हुये ॥
पाकर सनेह मनमोहन का, होगई धन्य सब सुकुमारी ।
आनंदित हो अनुराग सहित, भजती थी नित गिरवरधारी ॥
दासियाँ अमित होने पर भी वे खुद निज करकमलों द्वारा ।
भगवान देवकीनंदन की, सेवा कर पाती सुख भारा ॥

जिस समय प्रभू घर के भीतर, करते प्रवेश सब उठ धातीं ।
अति आदर मान सहित हरि को सुन्दर आसनपर बिठलातीं ॥
पदकमल धोय चरणोदक ले, करती पदचंपी अति सुख पा ।
सादर सुमनों की मालायें पहिरातीं देतीं पान लगा ॥
फिर पास बैठ पंखा करतीं उत्तम पकवान खिलाती थीं ।
प्यारी मीठी भोली बातें करके नित मन बहलाती थीं ॥
संगीत कला कोविद सब थीं, मोहन ने इन्हें सिखाया था ।
सुन जिसे चरअचर मोहित हो ऐसा अभ्यास कराया था ॥
संगीत सुधा लहरी निशिदिन हरि के भवनों में रहती थी ।
यों नटवर की सेवा में रत, सारी सुन्दरियां रहती थीं ॥
त्रिभुवन पति भी प्राकृत नरसम, इनके व्यौहार चलाते थे ।
इनके सुख से अति सुखी होय, उनका दुख लख दुख पाते थे ॥
जिनकी माया का पार नहीं सुर शेष शारदा पाते हैं ।
वे नर हैं निरे काष्टवत् जो, हरि लीला दोष लगाते हैं ॥
उन अजर अमर चिन्तना रहित, प्रभु को आवश्यक करम नहीं ।
ना ज्ञान भोग की इच्छा है, ना पास टिक सके भरम कहीं ॥
जो कुछ भी करने योग्य कहा, श्रुति शास्त्र आदि में मुनियों ने ।
नित नैमित्तक जप भोग यज्ञ, बतलाये हैं उन गुनियों ने ॥
कर्त्तव्य एक भी इनमें से, जगदीश्वर को नहिं करना है ।
वे हैं निर्लिप्त निरालम्बो, आदर्श जगत हित धरना है ॥
इसलिये ग्रहस्थी बने प्रभू, माया से खेल दिखाते हैं ।
कैसे इस आश्रम में रहना, संसार को ये बतलाते हैं ॥
जिस रस्ते से पहुँचे हैं बड़े, छोटों को वही सुखमय होता ।
जो मर्यादा वे बांध गये, उसमें चलना भवभय खोता ॥

अल किस्सा रहता सदा महलों में आनंद ।
उचित हि है जहां पर बसें, नित्य भक्त सुखकंद ॥

ऋतु बसंत में एक दिन, रुक्मणि महल मंझार ।
बैठे थे आनंद से, नटवर जगदाधार ।
लक्ष्मी स्वरूपिणी जगमाता, जगपति की सेवा करती थी ।
उनका वह अनुपम सुखद रूप, दृग द्वारा उर में रखती थी ॥
ग्रह में देदीप्यमान मणि की, थी तनी हुई सुन्दर माला ।
होरहा था कोने कोने में, जिनकी आभा से उजियाला ॥
थे पेड़ कई मल्लिका के तहां, भौंरे गुंजार कर रहे थे ।
खिड़कियां झरोखों से होकर, चन्द्रमा प्रसार कर रहे थे ॥
सुन्दर सुगंधयुत धूप और, उपवन की शुचि सौरभ मिलकर ।
मीठी मनहर भीनी खुशबू, फैलाय रही थी तेहि अवसर ॥
मंदिर में कोमल शैया थी, बिछ रहा सुफेद बिछौना था ।
तिसपर मनमोहन भक्त सुखद, सुन्दर सांवरा सलोना था ॥
पांवों के ढिग बैठी पत्नी, दासी से खुद पंखा लेकर ।
करती थी पवन वृजचंदन को, नत नयन चरण में चित देकर ॥
वस्त्राभूषण से सज्जित थी, सोलह सिंगार तिन धारे थे ।
रतनारे दिव्य सुघड़ भूषण, पहिरे कई न्यारे न्यारे थे ॥
थी कोट रती से भी बढ़कर, शोभा रुक्मणि महारानी की ।
नख से सिख तक थी अति अनुपम, प्रत्येक बात गुणखानी की ॥
किसी बात को सोचकर, मुस्काये वृजचंद ।
धीरे धीरे कह उठे, आखिरकार मुकुंद ॥
हे राजपुत्रि शायद तुमने, भ्रम वश मुझ से व्याह कीन्हा था ।
वरना भारत का एक एक रजवंशि रूप गुण भीना था ॥
इसमें से कई तो ऐसे थे त्रिभुवन में जिनका जोड़ नहीं ।
बल, वैभव, अरु उदारता में, कर सकता कोई होड़ नहीं ।
फिर मदन मस्त शिशुपाल तहां, आगया था व्याहने की खातिर ।
सुन लिया था तुम्हरे पितु ने भी टीका भिजवाया था सत्वर ॥

फिर भी क्या कारण था तुमने, मुझको पाती थी भिजवाई ।
हम नहीं तुम्हारे कुल समान, फिर क्यों ऐसी मति उपजाई ॥
हे सुन्दर भृकुटीवाली हम भूपालों से भय पाकर के ।
बस गये हैं आय समुंदर में, निज जीवन मान बचा करके ॥
फिर हम न कहीं के राजा हैं, नहि कोई उच्च पद अधिकारी ।
रैयत सम उमर बिताते हैं रह भूपति के आज्ञाकारी ॥
जिनके आचरण निराले हैं, तिरिया नहिं मोह सकें जिनको ।
उन संग नारी क्या सुख पावें, उल्टा बस कष्ट मिले उनको ॥

जो कुल में बल रूप में, हो निज वंश समान ।
उनसे शादी मित्रता, करते सदा सुजान ।

कर श्रवण साधुओं के मुख से, मम नाम हृदय में हर्षाकर ।
मुझको चुन लिया पती तुमने, सोचा न ननिक भी हिय अंदर ॥
असलियत में ठगी हुई हो तुम, लेकिन मन में मत फिक्र करो ।
अब भी है समय कहूँ जो कुछ, गिन उसे सत्यचित माहि धरो ॥
भारत में अपने कुल समान, क्षत्री को खोज निकालो तुम ।
मम अनुमति है उसके ढिंग जा, सुख सहित विवाह रचालो तुम ॥
यदि कहो तुम्हीं हरलाये थे, तो इसका उत्तर देता हूं ।
कुछ भी शंका न करो दिल में, संदेह अभी हर लेता हूं ॥
शिशुपाल दंत बक्रादिक का, था गर्व दूर करना हमको ।
बस इसीलिये हरलाया था, कुंडिनपुर से जाकर तुमको ।
संतों की सदा मदद करना, दुष्टों का दुष्टपन हर लेना ।
मेरा तो नियम है भूमी का, जैसे हो भार मिटा देना ॥
धन जन से उदासीन नित हूं, तिय सुतादिकों की चाह नहीं ।
जो रस्ता है जगवालों का, उनके समान मम राह नहीं ॥
अपने हि रूप में मस्त रहूं, निर्मोही हूँ जग के हित में ।
निर्लिप्त वासनाओं से सदा, रह निज आनंद मैं हूं रत मैं ॥

ऐसे सूखे हियवालों से, तुमको क्या सुख मिलनेवाला ।
जिनका मन लगे नहीं घर में, वो क्या निहाल करनेवाला ॥
बस यही सोचकर संसारी, रहते हैं मुझ से दूर सदा ।
माया को अपनाई जिनने, उनका है यही दस्तूर सदा ॥
देवी ! अब भी कुछ नहीं गया, अपनी इच्छा कह डालो तुम ।
जिस तरह प्राप्त हो सुख तुमको, बस वही काम कर डालो तुम ॥
भीष्मक कन्या के हृदय, था ऐसा अभिमान ।
मो सम गुण अरु रूप में, तिया न कोई आन ॥
बस इसीलिये मम महलों में, रहते हैं हरदम गिरधारी ।
हो रहे हैं मेरे वशीभूत, सुधि सब पत्नियों की तजडारी ॥
फिर सर्व प्रथम ब्याह होने से, पटरानी का पद पाया है ।
इस अखिल द्वारका नगरी में, मेरा ही मान सवाया है ॥
श्रोताओं ! कभी न देख सकें, भक्तों का मद, जनमनरंजन ।
होते हि प्रगट दर्पांकुर के, करते हैं तुरत उसको खंडन ॥
अस्तु प्रिया का मद हरन, कही कृष्ण ने बात ।
पुनि चुप्पी साधत भये, दीनबंधु जगतात ॥
जिसने बचपन से ही प्रभु को, अपना प्रीतम कर माना था ।
स्वपने में भी तज कृष्ण चरन, नहिं और किसी को जाना था ॥
जिसकी नस नस में कृष्ण छवी, थी समा रही अति सुखदाई ।
जिव्हा पर हरदम रहता था, हे मनमोहन हे यदुराई ॥
वर्षों से इक दिन भी न कभी, अस कटुक वचन थे सुन पाये ।
पर आज श्रवण करते हि तुरत, रुक्मिणी प्राण अति अकुलाये ॥
आंखों से आंसू रवां हुये, भीजी केसर युत शुभ चोली ।
पुनि चलने लगा ऊर्ध्व स्वांसा, वेणी खुल पड़ी मतो डोली ॥
धुक धुकी सकल हृदय मे हुई, बेहाशी झट तन पर आई ।
गिर गई पलंग से भूमी पर, हो गये दयावश यदुराई ॥

चार भुजा धारन करी, अंक लीन्ह सुकुमारि ।
आंसू पौंछे वस्त्र से, कीन्ही पवन मुरारि ॥
फिर अपने हृदय से लगाय, मुख चूम प्रभू ने फरमाया ।
मसखरी को सत्य समझ तुमने, ये कैसा हाल है करवाया ॥
मैं खूब जानता हूँ दिल में, तुम पतिव्रता वर नारी हो ।
मेरे अतिरिक्त किसी को भी, नहिं स्वप्न में भजने वारी हो ॥
मैंने ये लखना चाहा था, क्या उत्तर दोगी सुकमारी ।
तुमने तो सची समझ इसे, करली मृत्यू की तैयारी ॥
उस प्राण पियारी स्नेह भरी, दृष्टी को देखना चाया था ।
जिसमें हो कोप अरु मान भरा, बस इसी से ये फरमाया था ॥
ज्यों मृदु पकवानों के संग में, नमकीन चीज़ आवश्यक है ।
बस उसी तरह प्रेमालय में कुछ मानरीझ आवश्यक है ॥
पुरुष पत्नि में हो कभी, मान और कभि प्यार ।
मत्त समझो इसको बुरा हे सुन्दर सुकुमारि ॥
प्रभु के मुख से जब सुने, रुक्मणि ने ये बैन ।
कर धीरज धारन हृदय, खोले दौनो नैन ॥
पुनि उठी और मुस्कान सहित, हरि के ऊपर दृष्टी डाली ।
कर रूप सुधा का पान पूर्ण, बोली सुन्दर अंगोंवाली ॥
हे प्राणनाथ प्राणेश प्रभो, हे प्राण सुखद हे प्राणेश्वर ।
श्रा मुखसे जो कुछ बचन कहे, वे सत्य हैं रखते बड़ा असर ॥
मैं उन्हें यथार्थ न समझ सकी, बस इसीलिये घबराय गई ।
पर धैर्य आपके देने से, वापिस सुबुद्धि हिय आय गई ॥
अब सुनो शान्त हो मम उत्तर, जो अक्ल में मेरी आया है ।
तुम संग सहवासका फल है सब, जो भाग्य से मैंने पाया है ॥
फरमाया ये आपने, अम वश मेरे साथ ।
किया विवाह लेकिन प्रभो, नहीं है ऐसी बात ॥

माया मय नाशवान चीज़ें, हे कमलनयन भ्रम उपजाती ।
लेकिन अविनाशी के सन्मुख, इनकी न एक चलने पाती ॥
गुण रूप रंग शक्ती आदिक, भूपालों की सुन पाई थी ।
पर अवगुण रहित शक्ल कोई, मुझको न पड़ी दिखलाई थी ॥
बस फकत आप त्रिलोकी में, हो सर्व गुणों के धाम प्रभो ।
जगदात्मा जगकर्ता भर्ता, जगहरता जग आराम प्रभो ॥
फिर अजर अमर सच्चिदानंद, आदिक भी नाम तुम्हारा है ।
व्यापक हो तुम सारे जग में, तुम्हरे उर में जग सारा है ॥
फेर कहा था आपने, कई भूप बलवान ।
पति रूप में चाह रहे, थे तुमको गुणखान ॥
उनकी भी सुनो असलियत तुम, रासभ सम भार उठाने में ।
स्त्री की आज्ञा पालन में, अविवेकी साज सजाने में ॥
बैलों की भांति परिश्रम कर, स्वानों सब आयु विताते हैं ।
हैं कृपण बिडाल समान क्रूर विष सरिस विषय अपनाते हैं ॥
वे बेचारे शिशुपाल आदिक, किस गिनती में आ सकते थे ।
जिस नारि ने तव गुण सुने नहीं, उसके पति कहला सकते थे ॥
फेर कहा तुमने प्रभो हम नहिं तेरे समान ।
सच है कहां प्रकृति अरु, कहां पुरुष गुण खान ।
तुम पूजे जाते हो हरदम, शिव अज सनकादिक के द्वारा ।
तुम्हरे चरणों का आश्रय ले, पाते जन भव से निस्तारा ॥
मूरख मनुष्य ही रुते हैं, अज्ञान विवश हो माया को ।
हीरा दे कांच मोल लेते, खो देते व्यर्थहि काया को ॥
पुनि कहा आपने भूपों से, भय पा समुद्र में रहते हैं ।
ये भी है उचित हे दीनबन्धु, ज्ञानी नर भी यों कहते हैं ॥
राजसी तामसी प्रकृति रूप, राजाओं को तज विश्वम्भर ।
सात्विक वृत्ति के उदधि सरिस, जो जन हैं रहते तिन अन्दर ॥

फिर आगे तुमने कहा, हम न कहीं के भूप ।
इसमें भी है आपका, एक रहस्य अनूप ॥
हे नरपति पद अज्ञान रूप, इसको यदि ज्ञानी भी पाये ।
तो भी कुछ दिन में निश्चय वो, तज सुमति कुमति को अपनाये ॥
बस इसीलिये तुम्हरे पद में, दिन रात प्रीति रखनेवाले ।
चल दिये विपिन में छोड़ इसे, वरना पड़ते यम के पाले ॥
जब तुम्हरे भक्तों ने भगवन्, इस राज्य से प्रीती बिसराई ।
तब तुम्हरे हेतु कहूं मैं क्या, जिन सर्वेश्वर पदवी पाई ॥
फेर कहा दुर्बोध हैं, मम आचरन तमाम ।
इसमें भी नहीं झूंठ है, हे नयना अभिराम ॥
कारन ऋषि मुनि ज्ञानी ध्यानी, जो तुम्हरे भक्त कहाते हैं ।
उनके हि आचरन हे प्रियवर, नहिं समझ कोई भी पाते हैं ॥
हैं कर्म अलौकिक जन के जब, तब क्या कह सकू जनार्दन को ।
अस्तू है प्रार्थना यही नाथ, नित रहूँ निरखती चरनन को ॥
पुनि कहा नहीं हूँ मैं तिय के, वश में ये भी सब फरमाया ।
है पुरुष प्रकृति से परे सदा, ये विद्वानों ने बतलाया ॥
निष्कंचन रहता सदा, फेर कहा ये बात ।
प्रिय है निष्कंचन मुझे, धनी न तनिक सुहात ॥
ये भी सच है हे करुणानिधि, भोगों मे तुम हो लिप्त नहीं ।
इसलिये निकंचन कहते हो, निष्कंचन तुम्हरे भक्त सही ॥
कारन वे भी फल आश त्याग, निष्काम कर्म नित करते हैं ।
बढ़ता नहिं कुछ भी कर्म भार, अस्तू निष्कंचन रहते हैं ॥
धन वाले मद के अन्धे क्या, तव चरणों में चित लावेंगे ।
वे तो अति तुच्छ विषय रस को, गिन सत्य नित्य अपनावेंगे ॥
फिर फरमाया आपने, है ये जग की रीति ।
निभती सदा समान से, ब्याह वैर अरु प्रीति ॥

हे पूर्णरूप सच्चिदानन्द, सब पुरुषारथ के धाम प्रभो
सुन्दर बुद्धी वाले नर ही, भजते हैं तुम्हें घनश्याम प्रभो ॥
तुम सेव्य हो वे सेवक तुम्हरे, ये उत्तम भाव रहे उनका ।
तुम हित त्यागे अपना सर्वस्व, तव चरनन चाव रहे उनका ॥
वे कभी बराबर की दृष्टी, हरगिज न हृदय में लावेंगे ।
तुमको अंतिम आश्रय गिनकर, भक्ती में उमर वितावेंगे ॥
जो सुख दुख हर्ष विलाप करें, स्वारथ की प्रीति में सने हुये ।
वे पामर पा सकते न तुम्हें, नीची गति के हित बने हुये ॥
फिर कहा साधुओं द्वारा सुन, मिथ्या कीरति बौराय गई ।
ये बात नहीं प्रियवर क्योंकि, तुम में सब कीर्ति समाय रही ॥
ऋषि मुनि तुम्हरे प्रभाव ही से, जगजीत अभय कहलाते हैं ।
उनके द्वारा आश्वासन पा, नर भवसागर तर जाते हैं ॥
फिर कहा बिना जाने हि वरा, ये सुक्ती संगत बात नहीं ।
तुम हो तत्वों के तत्व प्रभो, ये रहस्य मुझे अज्ञात नहीं ॥
प्राकृत, नृप अरु धनवालों की, तो क्या बिसात है यदुराई ।
शिव, शेष गणेश सुरेश तलक तकते हैं तुम्हारा मुख सांई ॥
फिर कौन अबोध है जो तुम सम, अमृत का सिंधु विहा करके ।
दौड़े मृग तृष्णा के जल हित, अपनी सब बुद्धि गमा करके ॥

कहा अन्त में आपने ढूंढो और नरेश ।
इसमें भी हे प्राणधन भरा है रहस्य विशेष ॥

कारन यहां ऐसी भी हैं कई, जो गुणमंदिर पति को तजकर ।
पर पुरुष को जाकर भजती हैं, नित पाप वासना में चित धर ॥
पर दुराचारिणी तियायें ये करती हैं कलंकित दोनों कुल ।
दुहुँ लोक बिगड़ जाते इनके, अस ज्ञान है मम उर में उज्वल ।
इसलिये आपको किस प्रकार, हे नाथ छोड़ कर जाऊं मैं ।
क्यों जान बूझ कर स्वर्ग त्याग पद नर्क की ओर बढ़ाऊं मैं ॥

तुम मुझ से प्रेम करो न करो, मैं तो भजना नहिं छोड़ूंगी।
इस एक जन्म की बात हि क्या, नहिं प्रलय तलक मुख मोड़ूंगी॥
मैंने तो सब विधि तुम्हें नाथ, अपने से बड़ा पहिचाना है।
अस्तू तुम्हरे पद पंकज में, मम मन बन भ्रमर लुभाना है॥

❋ गाना ❋

जिस जां तुम्हरा नहीं निवास, ऐसी कोई ठौर नहीं है॥
तुम हो व्यक्त और अव्यक्त, जग मे रत हो और विरक्त।
मम मन है तुम मे अनुरक्त, दूजी इसको पोर नहीं है॥
तुम सम गुण सम्पन्न सुजान, दूजा कहां मिले भगवान्।
रखना दया हे दयानिधान, मुझको तुमसा और नहीं है॥
रवि तो एक है कमल अनेक राखें सारे अपनी टेक।
खिलते निज प्रियवर को देख, उनकी कोई खोर नहीं है॥
मेरे जीवन के आधार, प्यारे श्री व्रजराज कुमार।
राखो मुझ पै अविचल प्यार, वरना कोई जोर नहीं है॥

मैं दासी अविवेकनी, मत त्यागो यदुराय।
यों कह हरि की भामिनी, गिरी चरन में आय॥
भरली बाहों मैं उसे तुरत, निज वाम अंग में बिठलाया।
पुनि प्रेम सहित नट नागर ने, मुस्काकर ऐसे फरमाया॥
तुमसो प्यारी मम अनुरक्ता, नहिं कोई दृष्टि में आती है।
अस्तु मेरा असली स्वरूप, नित रहे तुम्हारी थाथी है॥
अंशों से अगणित रूप बना, दूजे महलों में जाऊंगा।
पर असल रूप में रह यहां पर तुम्हरा नित मन बहलाऊंगा॥
शादी के समय प्रलोभन तज केवल मुझ में प्रीती राखी।
बिक चुका तुम्हारे हाथों में, शशि सूर्य पवन इस के साखी।

इस प्रकार आनंदघन, करते हासविलास ।
अलख अगोचरसर्वहित बने सगुण सुख रास ॥
हर एक पत्नि ने दस दस सुत, अरु एक एक कन्या जाई थी ।
इस तरह श्याम गिरधारी ने यादव सृष्टी फैलाई थी ॥
प्रत्येक पुत्र बल पौरुष में, था नटवर सम शक्ती धारी ।
पा जिनकी मदद यदूवंशी, रण में बन गये अजय भारी ॥
यदि कोई भी शत्रू चढ़कर, द्वारावति पर आ जाता था ।
उसके मरने में कसर न थी, पर निश्चल गति पा जाता था ॥
एक रोज सभा में दूतों ने नृप उग्रसेन से हाल कहा ।
रुक्मी भूपाल भोजकट का, एक बृहत स्वयम्वर रचा रहा ॥
उसकी कन्या रुक्मवति, है विवाह के योग्य ।
पहुँचे हैं तहं नृप कई या ऐसा संयोग ॥
ये सुनते ही प्रद्युम्न वीर, आज्ञा लेकर नर राई से ।
चल दिये स्वयम्वर लखने को, कुछ कटक ले आतुरताई से ॥
लख इन्हें मदन सदृष्य सुन्दर, नृप कन्या का मन ललचाया ।
अस्तू हर्षित होकर इनको, वरमाल पिन्हा पति ठहराया ॥
रुक्मावति से अनगिनत भूप, चाहते थे स्वयम् शादी करना ।
पर जब ले चले प्रद्युम्न इसे, वे दुखी हुये न जाय बरना ॥
आखिर कर क्रोध शस्त्र लेकर, मोहन सुत का मारग घेरा ।
पर महारथी हरि नन्दन ने, पल में उन सब का मुख फेरा ॥
कुछ खेत रहे कुछ भाग गये सुख सहित प्रम्द्युन भवन आये ।
द्वारावति के पुरवासी मिल, कर स्वागत पुर में ले आये ॥
रुक्मनी का भाई रुकमैया इस अवसर पर चुपचाप रहा ।
निज भगनी खुश रह किसी तरह, इसलिये नहीं कुछ मुख से कहा ॥
कुछ दिनों बाद रुक्मावति ने, एक अति सुन्दर लड़का जाया ।
रनवास हर्ष में डूब गया, अनिरुद्ध नाम इनने पाया ॥

शिशु काल बिता आनन्द सहित, जब युवा हुये हरि सुत नन्दन।
तो रुक्मी ने निज पोती का, भेजा इनको टीका चन्दन॥
प्रभु ने अग्रज अरु शाम्ब आदि, यदुवीरों को एकत्र किया।
सुन्दर बरात सजवा करके, रुक्मी के पुर का मार्ग लिया॥
सुख सहित भोजकट में पहुँचे, रुकमैया ने अगवानी की।
करके विवाह शास्त्रानुसार उत्तमता से महमानी की॥
हो गया पुराना बैर दूर, दोनों कुल हर्ष मनाने लगे।
पर रुक्मणि व्याह में पिटे थे जो वे नृप मन में झुंझलाने लगे॥

रुक्मी को एकान्त में, बुलवा सकल नरेश।
बोले तुममें है नहीं, मित्र! बुद्धि लवलेश॥

शत्रुओं को कन्यायें देकर अति खोटा काम किया तुमने।
क्षत्री हो रिपु से नाता कर, दुनिया में अयश लिया तुमने॥
पर खैर हुआ सो हुआ दोस्त, पर अब इतना तो काम करो।
खेलो बलराम संग चौसर, छल से उनका सब द्रव्य हरो॥
कच्चे हैं वे इस खेल में पर है शौक खेलने का भारी।
इस तरह विजय करके इनकी, कर डालो पूर्णतया ख्वारी॥

हुआ था रुक्मनि व्याह में हमरा जो अपमान।
कर डालो परिशोध सब, आज सभा दरम्यान॥

कर पिछला बैर याद रुक्मी हो सहमत सभा भवन आया।
अरु हर्ष सहित चौपड़ बिछवा रोहणि-नन्दन को बुलवाया॥
बोला आजाने पर इनके, हे दाऊ मन बहलावें हम।
चौसर खेलें, आनन्द हेतु, कुछ दांव भी रखते जावें हम॥
मंजूर कर लिया हलधर ने, तत्काल खेल आरम्भ हुआ।
नौ दो ग्यारह छः पांच सात तहां पर आना प्रारम्भ हुआ॥
कई एक दांव रुक्मी जीता, कुछ बलदाऊ ने भी पाये।
पर द्वेष विवश रुक्मी बोला मेरे ही पौ बारह आये॥

तब दस सहस्त्र मुद्रा लेकर, रक्खी हलधर ने खिजलाई ।
जीते अग्रज तो भी रुक्मी, बोला मैं ही जीता भाई ॥
क्रोध रोक बलराम ने, फेर लगाया दांव ।
छल करने से रुक्म का, रहा फेर भी नांव ॥
अभिमानी कलिंग अधीश्वर ने, बलभद्र की हांसी शुरू करी ।
बोला ब्रज में जा गायों को, बस घास चराओ हरी हरी ॥
पासे और बाण चलाने में, तुमको अभ्यास नहीं लाला ।
यह तो है काम क्षत्रियों का, कब इसको कर सकता ग्वाला ॥
नृप के ताने हृदय में, लागे मानो तीर ।
फिर भी चुप साधे रहे, श्री हलधर मति धीर ॥
पुनि ले दस कोटि स्वर्ण मुद्रा, रेवतीनाथ ने दांव धरी ।
जीते खुद पर रुकमैया ने, अपने काबू में उन्हें करी ॥
उसके समक्ष जितने नृप थे, बोले दाऊ तुम हार गये ।
गर रुपये पास में रहे न हों, तो हमसे लेओ उधार नये ॥
लखकर भूपों की हठधर्मी, गम्भीर गगन से गिरा हुई ।
जीते हैं ओ बलदाऊजी, हारा रुकमैया बात सही ॥
पर काल विवश उस लुच्चे ने, आकाश गिरा को ठुकराया ।
गुस्से से लोचन लाल बना, रोहणि नन्दन से फरमाया ॥
तुम मूढ़ गाँव के ग्वाल भला, ये चौपड़ पासे क्या जानो ।
बन गये आज तुम यदुवंशी, इसको अच्छी किस्मत मानो ॥
ये खेल है फकत क्षत्रियों का, जाओ गौचारन ध्यान धरो ।
आयंदा कर में पांसों को, मत लेना ऐसी आन करो ॥
रुकमैया के वाक्य सुन, गरजे शेष अवतार ।
बोले कर में परिघ ले, दृग बनाय रतनार ॥
रे दुष्ट नारकी पापात्मा, तूने खुद ही सम्बन्ध किया ।
पर बैर पुराने को दिल से, रे खल अब तक जाने न दिया ॥

मैं तुझको रिश्तेदार समझ, अबतलक तरह देता आया ।
पर तेरी हट धर्मी लखकर, मुझको भी अब गुस्सा छाया ॥
जा दुष्ट जगह कर यम के घर, निज करनी का फल पाले तू ।
निज प्राण को यदि तू बचा सके, तो करके यत्न बचाले तू ॥

यों कह परिघ उठाय कर, दिया रुक्म के तान ।
जिसने पड़ते ही हरे, भीष्मक सुत के प्रान ॥

ये देख भूप भयभीत हुये, भागे पर भाग नहीं पाये ।
कुछ घायल हुये राम द्वारा, कुछ प्रान गमा भूपर छाये ॥
अंतरयामी ने घटना लख, चुप रह जाना समझा बेहतर ।
जो भला कहें रुक्मिन रूठे, जो बुरा कहें रूठें हलधर ॥
इसलिये बिना कुछ कहे सुने, अनिरुद्ध वधू को साथ लिये ।
आगये द्वारका में नटवर, मय यदुओं के हर्षाते हुये ॥

एक रोज हरि पौत्र सब, निज संगठन बनाय ।
मन बहलाने के लिये, पहुँचे वन के माय ॥

कुछ देर तलक मृगया कीन्हीं, कुछ काल विपिन में गश्त रहा ।
कुछ समय बिताया खेलों में, यों दिन भर ये दल मस्त रहा ॥
आखिर जब घर की ओर चले, तो प्यास लगी सब बालों को ।
तब लगे ढूंढ़ने सब मिलकर, तालाब कुए नद नालों को ॥
आखिर एक कूप निकट पहुँचे, पर उसमें जल का नाम न था ।
एक बृहत बदन चट्टान सरिस, गिरगट बैठा आराम में था ॥
लख अति अचरज कारक जंतू, भूले यदुबालक प्यास सभी ।
एक जाल डाल खींचा पर वो, नहिखिंचा हुये निरआस सभी ॥
इतने में एक बालक दौड़ा, पहुँचा मोहन के ढिंग जाकर ।
कर श्रावण हाल कौतूहल वश, हो गये साथ गिरधर नागर ॥
लख इन्हें सकल बच्चे खुश हो, श्रीकृष्णचन्द्र की जय बोले ।
आगये निकट मनमोहन के, सुकुमार सुघड़ बालक भोले ॥

जितने बच्चे थे उतने ही धर रूप मिले उनसे नटवर ।
कर दिया सभी को खुश पल में फिर पहुँचे कूप किनारे पर ॥
पड़ते ही प्रभु दृष्टि के, गिरगट देह बिसार ।
बना एक सुन्दर पुरुष, देवों के अनुहार ॥
आ गया कूप से बाहर झट, जय बोल देवकीनंदन की ।
गिर गया तुरत पद कमलों पर, रज शीश धरी जगवंदन की ॥
पूछा अजान से बन हरि ने, किस कारन अधोगती पाई ।
तुम हो देवों सम कांतिवान, किस लिये बने गिरगट भाई ॥
यदि कहने में कुछ हर्ज न हो, तो कुल वृत्तान्त सुना जाओ ।
हम सब इच्छुक हैं सुनने के अस्तू सब किस्सा कह जाओ ॥
श्रीकृष्ण के वाक्य सुन, शीश नवा वह वीर ।
हाथ जोड़ कहने लगा, सुनो नाथ मतिधीर ॥
मम जनक भानुकुल के भूषण, थे अवधपती यश के सागर ।
था नाम इक्ष्वाकू उनका, गुणयश कीरति बल में आगर ॥
मैं उनका सुत हूँ "नृग" नामी, जग में दाना कहलाता था ।
शुभ काम रातदिन करने में, अपना सब समय बिताता था ॥
था गऊ दान का शौक मुझे, लाखों ही गायें दान करी ।
शुभ संस्कार युत विप्रों को, हे मोहन मैंने प्रदान करी ॥
इसके अतिरिक्त भी और कई, शुभ कामों में धन व्यय कीन्हा,
पर हुआ एक अपराध नाथ, जिसका ये फल विधि ने दीन्हा ॥
एक दिवस भूल से एक गऊ, मेरे घर पर वापिस आई ।
वो थी पहिले की दान करी उसने ही दुर्गति करवाई ॥
मैंने अजान में फिर उसको, एक और विप्र को दे डाला ।
ले चला उसे जब भूसुर वो, तब आ पहुंचा पहिले वाला ॥
आते ही मग रोक कर, बोला अति रिसयाय ।
ये तो मेरी गाय है, लिये कहां तू जाय ॥

थे दोनों ही सच्चे व हठी, लड़ते लड़ते मुझ पर आगे ।
सुन उनका हाल भ्रांत होकर, ये वाक्य मैंने तब फरमाये ॥
तुम दोनों में से कोई भी, अपना हक यदि छोड़े भाई ।
तो सुघड़ दुधारू लाख गऊ, उसको मैं दूंगा हर्षाई ॥
पर दोनों अपने निश्चय से, तिल भर न हटे हे गुणखाना ।
तज गाय चले दिये दोनों ही, मैंने मन में अति भय माना ॥

देव देव इस भांति बन, साधन विप्र कलेश ।
जा पहुंचा यमराज गृह आयु हुई जब शेष ॥

दिनकर नंदन ने पास बिठा, मुझ से पूछा, हे यदुराई ।
कीन्हे हैं तुमने पुन्य बहुत, देता है छोर नहिं दिखलाई ॥
पर कछुक पाप भी सिर पर है, अस्तू निज मंशा बतलाओ ।
थी दान की हुई गाय मगर, फिर दीन्ही उसकाफल पाओ ॥
पहिले भुगतोगे सुख या दुख, जो कहो व्यवस्था वैसी हो ।
तुम पर ही रहा फैसला यह, झट कहो अवस्था तैसी हो ॥
मैं बोला मुझको लघु दुख ही, पहिले भुगताओ रविनंदन ।
फिर सुखमय दिवस बिताऊंगा, है यही मेरी इच्छा भगवन् ॥

धर्मराज कहने लगे, गिरगट बनो तुरंत ।
कृष्ण करें उद्धार तब, द्वापर युग के अंत ॥

हे केशव पूर्व सुकृतों वश, नहिं पूर्व ध्यान खोया मैंने ।
अब तक पछिताता हूं दिल में, पाया जो था बोया मैंने ॥
पर दर्श आपका पाते ही, सारे दुख दूर हुये स्वामी ।
मन रहे आपके चरणों में, ऐसा वर दो अंतरयामी ॥
इन्द्रिय प्रेरक देवादिदेव, गोविंद गरुड़ वाहन नटवर ।
गिरिराज धरन रुक्मनीनाथ, आनंदकंद गोलोकेश्वर ॥
हे नारायन नर वपुधारी, हे अविचल यश हे अविनाशी ।
हे अजर अमर चिद्रूप अनूप, हे मायापति हे सुखराशी ।

हैं भानु शशी तव नेत्र युगल, भृकुटी जग बसा नसा डारे ।
है पवन विश्व का स्वांस निश्च सब जीवों में जीवन धारे ॥
हैं आप विचित्रता के समूह, ज्ञानी भी चक्कर खाते हैं ।
जो समझ सके तुम्हरा स्वभाव, बस भक्त वे ही कहलाते हैं ॥
निष्काम कर्म की दीक्षा ले, सब त्याग तुम्हारी शरण लहें ।
है सफल उसीका मानव तन, तुम्ही कर्ता अरु कर्म कहे ॥
यद्यपि जप दान तपस्या से, मन मैल सफा हो जाता है ।
पर जब तक तुम नहिं सन्मुख हो, नर जग में आता जाता है ॥
अस्तू एक तुच्छ विनय मेरी, स्वीकार करो त्रिभुवन नायक ।
प्रारब्ध भोग क्षय होने पर, पद भक्ति मिले जन सुखदायक ॥

यों कह नृग हरि चरन छू गया स्वर्ग तत्काल ।
बच्चों को ले साथ में, लौटे दीनदयाल ॥

बोले रस्ते में मनमोहन, हे लड़को ध्यान इधर लाना ।
भूमी के सुर, विप्रों का अंश, नहिं भूल में भी तुम खा जाना ॥
कमलासन भी नहिं पचा सके, इस ब्रह्म अंश को हे भाई ।
फिर नरपतियों की क्या गिनती चाहे कितनी हो प्रभुताई ॥
इसलिये मुनासिब है तुमको, विप्रों का आदर मान करो ।
उनको न सताओ स्वप्न में भी, निज इष्ट सरिस सन्मान करो ॥
जिस पर है कृपा ब्राह्मणों की, दिन रात अभय वो रहता है ।
जो अकड़े द्विज कुल से वो नर, अति दारुण दुःख को सहता है ।
तुमने आंखों से देख लिया, किस योनि को पहुंचे नृगराई ।
भूले में पाप हुआ फिर भी गिरगट बन तकलीफें पाई ॥
उत्पन्न सतो गुण से होवें, ये विप्र लोग इस सृष्टी में ।
अस्तू सात्विक वृत्ती रहती कभि छैन न आता दृष्टी में ॥
पुनि श्रुति सम्मत करते हैं कर्म, नहि कष्ट किसी को देते हैं ।
तप करने कराने में तत्पर, केवल सात्विक धन लेते हैं ॥

रहते हैं सहज स्वभाव तुष्ट, गुस्सा न किसी पर दिखलाते।
ऐसे विप्रों के दास बनो बस यही तुम्हें हम बतलाते॥
लो चलो भवन अति देर हुई, मातायें तुम्हें बुलाती हैं।
बिन तुम्हरे वत्स रहित गोसम, मन ही मन में अकुलाती हैं।

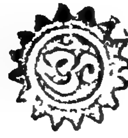
※ गाना ※

युवक गण मानो मम फरमान टेर०
ब्राह्मण जन का कभी स्वप्न में, मत करना अपमान॥ युवकगण०
इनको सदा समझना बच्चों, भू सुर सद्गुण खान।
इन्हे न व्यापे लोभ मोह अरु, राग द्वेष अभिमान॥ युवकगण०
चारो वर्ण समान समझते, करें ईश गुण गान।
गुमराहो को राह दिखाते, देते शुभ वरदान॥ युवकगण०
इनसे बैर किये दुख उपजे, राजा 'नहुष" समान।
नृप "वेणू" की कथा भी कहती, होय सुखो की हान॥ युवकगण०
क्षत्री धर्म सदा बतलावे, गोद्विज का सन्मान।
अस्तु बनो सब विप्रभक्त तुम परमेश्वर सम जान॥ युवकगण०



आनंदित सब हो गये, सुन प्रभु का उपदेश।
महीसुरों के चरण में, उपजी प्रीति विशेष।
घर में आ करने लगे, सब बच्चे आराम।
श्रोताओं तुम भी उठो, बोलो जय घनश्याम॥
गिरवरधारी की कथा, है अति मधुर रसाल।
आगे अनिरुध व्याह का, दृष्य लखो 'श्रीलाल'॥

※ श्रीकृष्णार्पणमस्तु ※



श्रीकृष्ण चरित्र अथवा श्रीमद्भागवत

सोलहवां भाग

अनिरुद्ध विवाह

रचयिता—

श्रीलाल खत्री

प्रकाशक—महाभारत पुस्तकालय, अजमेर

मुद्रक—के. हमीरमल लूनिया, दि डायमण्ड जुबिली प्रेस, अजमेर.

प्रथम बार ३,००० | सम्वत १९९१ विक्रमी सन् १९३४ ईस्वी | मूल्य ।) आने

कृष्णस्तु भगवान् स्वयम्

स्तुति

(१)

हम तो शरण में कृष्ण की निश्चय ही आयेंगे।
हृदय कमल में नाथ को सुख से बिठायेंगे॥
अज्ञान की नैय्या फंसी माया के भँवर में।
गीता के वक्ता कान्ह को खेवट बनायेंगे॥
जीवन की बागडोर को सोपेंगे उनके हाथ।
गोपाल माखन चोर के अनुचर कहायेंगे॥
मन बुद्धि अरु दस इन्द्रियें हों नंदलाल मय।
श्री कृष्ण कृष्ण नाम की हम रट लगायेंगे॥
मांगेंगे भक्ति दान हम राधा के प्राण से।
'श्रीलाल' सांवर रूप में बिलकुल समायेंगे॥

मंगलाचरण

(२)

पीताम्बर धर पाप हर, गोकलेश गोपाल।
ताप हरन जन सुख करन, जय जय दीन दयाल॥
जय जलशायी जलदसम, सुभग सुहावन रूप।
सृष्टि रचन, पालन, हरन, शिव अज विष्णु स्वरूप॥
तुम गुरु गणपति शारदा, सहस बदन तुम शेष।
विघन हरो मंगल करो, जग व्यापक अखिलेश॥
बंदहुं वेदव्यास सुत, श्री शुकदेव सुजान।
गायो कलिमल हरन जिन, "कृष्ण चरित" गुणखान॥

❋ श्लोक ❋

वंशीविभूषितकरान्नवनीरदाभात्पीतांबरादरुणबिंबफलाधरोष्ठात् ।
पूर्णेन्दुसुन्दरमुखादरविन्दुनेत्रात्कृष्णात्परं किमपितत्वमहं न जाने ॥

❋ कथा प्रारम्भ ❋

अज अनादि अव्यक्त प्रभु, असुर-निधन अखिलेश ।
तव मुख को निरखें सदा, ब्रह्मा विष्णु महेश ॥
शरण पड़ा हूँ आपकी, हे दीनों के नाथ ।
कृपा करो सब अघ हरो, धरो शीश पर हाथ ॥
जिस जन पर कृपा तुम्हारी हो, माया उसको न भ्रमा सकती ।
छा रही हो जहां रवि उजियारी, वहां अंधियारी नहिं आसकती ॥
लिखता हुँ आपका विमल चरित, बुद्धीनुसार हे यदुराई ।
वाणी, मस्तक, कर, लेखनि के, प्रेरक हो तुम्हीं त्रिभुवन सांई ॥
आओ निवास हृदय में करो, अरु लेखनि ले अपने कर में ।
लिखदो निज गुप्त प्रगट सारा, जो चरित किया था द्वापर में ॥
श्रोताओं अब प्रेम से, बोलो जय नंदलाल ।
आगे की गाथा सुनो, छोड़ सकल जंजाल ॥
हरगिरि के नजदीक में, था शोणितपुर ग्राम ।
नृप बाणासुर था वहां, शासक बल का धाम ॥
राजा बलि का वो लड़का था, दानव कुल का था उजियारा ।
फिर था शिव का अनन्य सेवक, उत्तर में राज था विस्तारा ॥
इनकी हि तपस्या के बल से, एक सहस्त्र भुजा तिन पाई थी ।
देवों व दानवों मानवों में, निज बल कीरति फैलाई थी ॥
जिस समय ये चलता था भू पर, फण शेषनाग थर्राता था ।
जिससे ये रण भिक्षा करता, तज देश भाग वो जाता था ॥
एक दिवस दिग्गजों से जाकर, इसने रण करने की ठानी ।
पर वे सब पद में आय गिरे, हो सकी न इसकी मन मानी ॥
तब अपना जोश निकालने को, ये निकट पर्वतों के आया ।
कई यक शिखरों का चूर्ण किया, लेकिन न जोश घटने पाया ॥

आखिर शिव के पास आ, कहा सुनो गुणखान ।
त्रिभुवन में कोई नहीं, मो समान बलवान ॥
रण तृषा मेरी मिटती हि नहीं, नित भुजा फड़कती है सारी ।
इसलिये कृपा कर शूलपाणि, तुम करो स्वयम् रण तैयारी ॥
शंकर मुस्काये मन ही मन, सोचा बल का अभिमान हुआ ।
आ गया पतन इसका समीप, बस तभी तो ये हतज्ञान हुआ ॥
आखिर प्रकाश में कहन लगे, तव शत्रु प्रगटने वाला है ।
तेरी रण प्यास बुझाने को, बस फकत एक वो नाला है ॥
फिर एक पताका दे इसको, कैलाशनाथ ने फरमाया ।
जा इसे लगा दे महलों पर, गिर पड़े तो गिनना रिपु आया ॥
वाणासुर अति हर्ष कर, आ पहुँचा निज द्वार ।
उच्च महल के शिखर पर, टांक दई तेहि वार ॥
थी इसके इक सुन्दर कन्या, था जिसका 'ऊषा' नाम सुखद ।
इसको शिव के समीप लेजा, बोला वाणासुर हो गदगद ॥
हे आशुतोष इसको अपनी, शिष्या बनाय शिक्षा दीजे ।
ताके ये स्त्री रत्न बने, इतनी किरपा मुझ पर कीजे ॥
शंकर आयसु पा गिरजा ने, इसको अति हित से शिक्षा दी ।
संगीत कला कौशल आदिक, सिखला आदर्श गृहणी की ॥
वीणा वादन में बनी, ऊषा परम प्रवीन ।
हुई युवा कुछ काल में, लता बसंत नवीन ॥
एक दिवस शंभु संग पार्वती, बन में विहार हित आये थे ।
गंगातट सुघड़ जगह लखकर, गिरजा युत तहां पौढ़ाये थे ॥
ऊषा लख प्रेमालाप इनका मन ही मन में अति सकुचाई ।
यदि मेरे भी पति होता तो, ऐसा ही करती चितलाई ॥
शिव तो मुस्का खामोश हुये, पर दयावंत गिरिबाला ने ।
पुचकार पास ऊषा को बुला, फरमाया शिव गलमाला ने ॥

पुत्री! मैं तेरी सेवा से, प्रमुदित हूँ हिय की जानती हूँ ।
वरदान जो तू लेना चाहती उसको भी मैं पहचानती हूँ ॥
अच्छा मम आशिष है तव पति देवेगा दर्श स्वप्न में आ ।
कर यत्न उसे ढुंढवा लेना, अच्छा अब अपने भवन सिधा ॥
यों कह ऊषा को बिदा, कृत गिरिराज कुमारि ।
हर्षित हो घर को चली, उमा चरन उर धारि ॥
घर आय पिता को नमन किया, माता की भी आशीष लई ।
पुनि निज निर्धारित गृह भीतर, सुख पा ऊषा पग धरत भई ॥
एक दिवस पहिर उत्तम कपड़े, नृप बाला पितु पै आती है ।
पुनि पाय स्थान वहां पर वह, कर नत दृष्टी टिक जाती है ॥
वाणासुर ने सोचा कन्या, अब युवा अवस्था में आई ।
इसका विवाह करना चहिये, वरना होगी जग रुसवाई ॥
ऐसा विचार कर वलिनंदन, ऊषा को घर भिजवाता है ।
पुनि कड़ा प्रबंध संत्रियों का, कन्या के महल कराता है ॥
हम उमर लड़कियाँ ऊषा की, मंत्री प्रधान की बालायें ।
रखदीं उसके मनरंजन को, पुनि करी और भी सुविधायें ॥
लगवायी रम्य बाटिका तहँ थे पुष्प वृक्ष अति मन भावन ।
चहचहा रहे थे पक्षीगन, मानो बसंत ऋतु आवाहन ॥
एक रात नृप की सुता, सोई सैया माय ।
अर्ध निशा के स्वप्न ने, जीवन बदला आय ॥
क्या देखा श्यामवर्ण आकृति, पीताम्बर तन में धारे हुये ।
नव यौवन युत एक दिव्य पुरुष, आया तहं हाथ पसारे हुये ॥
आते हि गले में बांह डाल, वामांग में इसको बिठलाया ।
आलिंगन बारम्बार किया, अत्याधिक प्रेम तिन दिखलाया ॥
ऊषा ने भी अति हर्षित हो, आगंतुक की पहुनाई की ।
निज प्राणनाथ प्रियतम गिनकर, हृदय से खूब बलायें ली ॥

पर ज्योंही इसने भी चाहा, आलिंगन सपना दूर हुआ।
लख सैया पर इकली निज को, दुख शोक रंज भरपूर हुआ॥
पुनि नयन मूंद कर लेट गई, चाहा वोही सपना आवे।
एक बार और मनहरन छवी, चित चोर आनकर दिखलावे॥
पर लख न सकी वो दृष्या पुनः, घबरा कर शैया को त्यागा।
जो सुख पाया था सुपने में, वो जागृत मंतजकर भागा।
आ बैठी बस भूमि पर, अनमनि हो नृप बाल।
लेत उसासें अति अधिक, निधिपति जनु कंगाल॥
नितनियम तो क्या दांतन तक भी, ऊषा ने उस दिन किया नहीं।
यहां तक कि कलेवा भी अपने, हाथों से बिल्कुल छुआ नहीं॥
बरसाय रहे थे नयन अश्रु, कुछ शून्य दृष्टि सी तकती थी।
हिचकियां आ रहीं थी पल पल, पद नखों से भूमि कुचरती थी॥
दासियों को भी अपने समीप, नहिं आने दिया क्रोध में भर।
तब आई तहां चित्ररेखा, मंत्री दुहिता अचरज हिय कर॥
कूष्मान्ड दानव सुता, नृप प्रधान की बाल।
ऊषा के थी प्राण सम, बोली यों तत्काल।
हे सखी प्राणप्यारी ऊषा, क्या हुआ तुझे जल्दी बतला।
किस कारन चहरा उतर रहा, क्या घटना घटी मुझे जतला॥
अपमान किया हो यदि तेरा, यहा किसी जीव ने आकर के।
तो नाम बता मैं अभी उसे, दूं दंड यहां से जाकर के॥
हा! चन्द्र लजावन मुख तेरा, किस राहू दुख ने ग्रस लीन्हा।
जो रहता मन स्वच्छंद सदा किस जाल मे सखी फंसा दीन्हा॥
होती थी कभी न बंद तेरी, मुस्काहट वो कित बिलागई।
चंचलता अरु भोली बातें, हे बहिन किस जगह सिधा गई॥
करनी होगी क्या खबर मुझे तेरी माता को हे प्यारी।
या किसी वैद्य के आने की, करनी होगी यहां तैयारी॥

क्या सात द्वार भेदन करके, वायू समान गति वाला यहां ।
आगया दृगों में धूल झोंक, करगया तुझे मतवाला यहां ॥
मैं अभी डाट प्रहरीगन को, हे राजसुता दिलवाती हूँ ।
करके नृपाल को खबर अभी, पहरेवाले बदलाती हूं ॥

अस्तु देर मत कर सखी, कहदे सच्चा हाल ।
सुख दुख की साथिन हुँ मैं, करूँ दूर जंजाल ॥
सुनकर निज सखि के बचन, ऊषा अति दुखपाय ।
बांह गले में डालकर, बोली यों बिलखाय ॥

हे बहिन न मुझे सताया है, कोई भी तनधारी ने आ ।
ना किसी ने कुछ अपमान किया, ना है कसूर प्रहरीगन का ॥
व्याधी भी कोई मेरे तन में, नहिं लगी वैद्य की चाह नहीं ।
जो वैद्य मेरी व्याधी का है, उसके मिलने की राह नहीं ॥
मुझ को हांसी रोना दोनों, सखि एक साथ ही आते हैं ।
विधना प्रारब्ध के दांव पेच, नहिं ज़रा भी समझे जाते हैं ॥
है सबब हंसी का यही बहन, जो कुछ देखा वो सपना है ।
अरु रोना तो अब जाय नहीं, दिन रात नाम वो जपना है ॥

जात पांति जानूं नहीं, नहीं नाम अरु ग्राम ।
कौन है वो रहता कहां, जाने केवल राम ॥

* गाना *

हे सखी सुनले मेरी गाथा हृदय को थाम कर ।
गर कर सके कुछ भी मदद तो शीघ्र ही मम काम कर ॥
आधी निशा के स्वप्न ने कीन्हा मेरा बद हाल है ।
जीवन बदलडाला तुरत कर श्रवण गाथा ध्यान धर ॥
शिर मोर पांख सुहावनी, पुनि वैजयन्ती भावनी ।
गल सोह माला, भामिनी, उसको दिखाकर कष्ट हर ॥

लख युवक की अनुपम छटा, सुन मधुर भाषण लटपटा ।
मेरा सखी धीरज छुटा, मन फंस गया बन कर भ्रमर ॥
अब प्राण अरु लज्जा सखी, सोंपी है तेरे हाथ में ।
भ्रम सिंधु में नाविक सुघड़, बन करके बेड़ा पार कर ॥

तू उपाय गर कर सके, तो कह दूं सब हाल ।
वरना कुछ पूछे मती, है ये स्वप्न जंजाल ॥
तब कूष्मांड की ललना ने, हिय से ऊषाको लगा लिया ।
फिर अतिशय प्रेम दिखाते हुये, एक स्वच्छासन पर बिठा दिया ॥
बोली बतला कुछ तो हवाल क्या गुजरा तुझपर रजनी में ।
रत्तीभर भी न छिपाना सखि, नहिं कहूं किसी से सजनी मैं ॥
ये सुन ऊषा ने किया, निशि का सकल बयान ।
बिहंसि चित्ररेखा तुरत, बोली सुन धर ध्यान ॥
तुझको प्राणों से भी बढ़कर, हे हृदय मणी मैं चाहती हूं ।
तुझको प्रसन्न करने वाली सूरत सन्मुख ले आती हूं ॥
है अपना कुल अति श्रेष्ट सखी, विज्ञान हमारा आला है ।
बसी इसीलिये ये आर्यवर्त, सारे जग की चटशाला है ॥
मुझको मेरे गुरु ने आली, छवि लेखन कला सिखाई है ।
जिसका मैं चित्र न खींच सकूं, ऐसा नहिं देत दिखाई है ॥
इस प्रकार दे सांत्वना, बैठी गुरू मनाय ।
चित्रकला साहित्य ले, पूरा चित्त लगाय ॥
पहिले उसने सुरपुर वासी, देवों के चित्र उतार लिये ।
उनमें न मिला जब चित्त चोर, पाताल चित्र तैयार किये ॥
गंधर्व, यक्ष, किन्नर आदिक, पुनि लेखनि के बाहिर आये ।
दानव कुल दीप शिखा ने फिर, निजकुल उजियाले दिखलाये ॥

पर ऊषा को मोहने वाला अब तलक न उसने लिख पाया ।
तब हो उदास नृप ललना ने, अपनी सजनी से फरमाया ॥
जिसने जीवन ही बदल दिया, जो नयनों मांहि बसा आकर ।
आपे से बाहिर हुआ हृदय, जिसके अनुपम दर्शन पाकर ॥
वो तो अब तक नहिं मिला सखी, क्या केवल एक छलावा है ।
अंधियारे गड्ढे में डाला, हे विधि क्या फकत भुलावा है ॥
क्या इन चित्रों के सिवा बहिन, कोई और वीर बच पाया है ।
जो लिखा जाय नहिं लेखनि से, ऐसा कोई जननी जाया है ॥

मंत्रि सुता झट हंस पड़ी, चमक गई नृप बाल ।
हिय से पुनः लगाय कर, बोली वह तत्काल ॥

धीरज धर मत घबरा प्यारी, अब मनुज लोक दिखलाती हूं ।
जितने हैं वीर प्रधान यहां, सब तेरे सन्मुख लाती हूँ ॥
यों कह कर ध्यान दिया पट पै, सिलसिले वार छवि आने लगी ।
तज एक दूसरे पर फौरन, लेखनी खुद ब खुद जाने लगी ॥
सारे नृप अरु नृप पुत्रों के, लिख दिये चित्र चतुराई से ।
दूजे वरणों के भी सूरत, जड़ दिये बड़ी गहराई से ॥
लिखते लिखते श्रोताओं जब, यादव कुल की वारी आई ।
सकुचाने लगी तभी ऊषा, लख भाव सहेली मुस्काई ॥
लिख उग्रसेन देवक आदिक पुनि सूरसेन पर ध्यान दिया ।
वसुदेव और संकर्षण के, चित्रों को फिर झट पेश किया ॥

ध्यान पूर्वक लख रही, निर्निमेष हो बाल ।
इतने में श्री कृष्ण की, छवि टपकी तत्काल ॥

लज्जा का दूना असर हुआ, मन ही मन प्रभु को नमन किया ।
हृदय में आस बंधी सोचा, प्रारब्ध ने मेरा साथ दिया ॥
प्रद्युम्न लाल भी आ धमके, लख इन्हें लाज कुछ और चढ़ी ।
हो गई हद्द जब लेखनि वो, अनिरुद्ध की छवि लेने को बढ़ी ॥

खिचते हि चित्र के ऊषा ने, उसको अपने कर मांहि लिया।
अति हित से हृदय लगा बोली ये ही है सखि मम प्राणप्रिया॥
जब चित्र बनाया है तूने, तब निश्चय नाम भी जानती है।
किस वंश का भूषण है कहदे, तू सब रहस्य पहचानती है॥

छवि लेखा ने तब कहा, धन्य धन्य नृप बाल।
ये यदुकुल में श्रेष्ट है, कृष्ण लाल का लाल॥

है इसका अनिरुद्ध नाम सखी, मोहन मम बली कहाता है।
यादव सेना का सर्वश्रेष्ट, महारथि ये माना जाता है॥
सुन्दर है स्वस्थ है अनुपम है, तेरी जोडी के लायक है।
इस ही से हो तेरा विवाह, सम्बन्ध यही सुखदायक है॥
यदुवंशी युवक सदा से ही, अति सुन्दर होते आये हैं।
पर सत्य समझ अनिरुद्ध वीर, उन सब में सदा सवाये हैं॥

ऊषा ने कर जोड़ कर, कहा सखी सुन बात।
प्रेम पिया से तृषित हित, बन तू सुधा प्रपात॥

जब तक शरीर से नाता है, हे प्यारी मेरे प्रानों का।
तब तक मानूंगी सदा बहिन, निशिदिन गुण तव अहसानों का॥
अब मिलादो मम जीवनधन को, इतनी किरपा तुम और करो।
मैं पावों पड़ती हूँ तेरे, मुझको आनन्द विभोर करो॥

मात उमा ने भी यही, दिया मुझे वरदान।
सुपने में आकर मिले, तेरा जीवनप्रान॥
कूष्मांड बाला तभी, बोली यों मुस्काय।
होय पवन असवार मैं, लाऊं पलंग उठाय॥

तुम उठो दंत धावन करके, स्नानादिक से निवटो प्यारी।
पुनि भोजन कर आराम करो, मैं करूं गमन की तैयारी॥
यदि अर्ध निशा तक जगी रही, निज प्रिय के दर्शन पावोगी।
फिर देखूंगी इस महनत का, क्या परितोषक दिलवाओगी॥

ऊषा ने अति हर्षित होकर, निज सखी को उर से लगा लिया।
बोली तन मन धन जो कुछ है, वो सभी तुझे हे बहिन दिया ॥
विहंस चित्र रेखा चली, बैठो व्योम विमान ।
द्वारावति की ओर को, कीन्हा तुरत पयान ॥
जा चुकी निशा थी एक पहर, तब ये द्वारावती पर आई ।
होकर अलक्ष ढूंढा आखिर, अनिरुद्ध महल की थाह पाई ॥
जा घुसी भवन में क्या देखा, प्रद्युम्न लाल आराम में है ।
सुख सैया पर पौढ़े सुख से, आनन्द मगन विश्राम में हैं ॥
हर्षाय चित्ररेखा ने झट, इनका पलंग कर धार लिया ।
पुनि आ बैठी निज वाहन पर, शोणितपुर जानिब गमन किया ॥
बन उपवन गिरि लांघती हुई, वायूसम गति से जाय रही ।
उत अर्ध निशा निःशेष देख, नृप सुता हृदय घबराय रही ॥
सोचा यामिनि तो बीत चली, पर सखी नहीं अब तक आई ।
मेरे अभाग से क्या वो भी, फंस गई द्वारका के मांही ॥
या द्वारावति पहुँची हि नहीं, कर दीन्हा केवल शान्त मुझे ।
पर नहीं बात की धनी है वो, निश्चय मिलायगी कान्त मुझे ॥
ये सोच रही थी इतने में, छत से एक हलका शब्द आया ।
झट कान लगाया ऊषा ने, पर आगे कुछ नहिं सुन पाया ॥
हो निराश फिर एक दम, बैठ गई मन मार ।
इतने में सहसा खुला, महल का पिछला द्वार ॥
राजनंदिनी का तुरत, खिला हृदय लख दृश्य ।
सोते साजन के किये, उसने चरण स्पर्श ॥
प्यासे नयना पिय दर्श सुधा, पीते पर नहीं अघाते हैं ।
चाहती ऊषा दृग बंद करे, पर वे न झाकने पाते हैं ॥
अकुलाय रहे हैं अंग सकल प्रिय का आलिंगन करने को ।
कानों ने कान खोल रक्खे, मनहर सम्भाषण सुनने को ॥

पर प्राणनाथ निद्रा में हैं, लज्जावश जगा नहीं सकती।
हो रही चित्रवत राजसुता, मुख से एक शब्द नहीं कहती॥
ये लख कर छवि लेखा बोली, ले सम्भाल अपने प्यारे को।
श्रीकृष्ण पौत्र प्रद्युम्नलाल, यदुकुल भूषण सुकुमारे को॥
अब जगा के इससे बातें कर, मैं घर की ओर सिधाती हूँ।
मेरा यहां रहना है फ़िजूल, बस विदा इसीसे चाहती हूं॥
यों कह वो तो हंस कर चल दी, ऊषा प्रीतम ढिंग आती है।
वीणा के मधुर सुरों द्वारा, यदुवंशमणी को जगाती है॥

वीणा की झन्कार से, नींद हो गई भंग।
अंगडाई लेने लगे, अनिरुध, पुत्र-अनंग॥

चैतन्य होय चहुंदिशि देखा, लख भवन दूसरा चकराये।
सोचा मैं कहां आगया आज, विधना ने क्या रंग दिखलाये॥
बस यही सोचते हुऐ कुंवर, होगये खड़े शैया तजकर।
इतने में इनकी नजर पड़ी, बाणासुर पुत्री ऊषा पर॥
क्या देखा नवयौवन सुन्दर, सोलह शृंगार सजाये हुये।
एक बाला खड़ी बजाय रही, बीणा, कर मांहि उठाये हुये॥
एकान्त रात का समय बहुरि, मुग्धा मृगनयनी सुकुमारी।
मिल जाय मन चले युवक को फिर, भय लज्जा की नहिं दरकारी॥
बस इसीलिये अनिरुद्ध तुरत, ऊषा के निकट चले आये।
कर पकड़ पलंग पर बिठा लिया, लख शशि सम मुख अति हर्षाये॥
कुछ देर एक टक लखते रहे, फिर कहा स्वप्नवाली वामा।
चेतन होने पर भी तुमको, पाता हूं हे दृग अभिरामा॥
कुछ भेद समझ नहि सका प्रिये, द्वारावति से क्यों कर आया।
बतला दे मनमोहनि प्यारी, किस भांति मुझे यहां बुलवाया॥
किस भाग्यवान की सुता हो तुम, मुझको क्या पहिले देखा है।
किसि मायावी का काम है ये, या पूर्व जन्म का लेखा है॥

शुभ अंग हैं मेरे फड़क रहे, भल होनी कुछ दृष्टी आती ।
बस देर करो मत कहो जल्द, सब भेद मुझे हे मदमाती ॥
ऊषा ने कर जोड़ कर, पहिले किया प्रणाम ।
फिर मुस्काकर के कहा, सुनिये शोभा धाम ॥
शोणितपुर नृप की सुता हूं मैं, ऊषा है नाम मम हे स्वामी ।
तव चरणों में मन रहे सदा, तन रहे आपका अनुगामी ।
कारन गिरजा ने दिया था वर, तू स्वप्न में साजन पावेगी ।
ढुंढवाय किसी से लेना फिर, उस ही संग व्याही जावेगी ॥
कल निशा मध्य मैंने तुमको, हे जीवनप्राण निहारा था ।
पर पता तुम्हारा लगेगा किम, इसको बिल्कुल न विचारा था ॥
इतने में चित्ररेखा नामी, मेरी एक सखी चली आई ।
उसने अपनी विद्या द्वारा, तस्वीर आपकी दिखलाई ॥
फिर वही गई द्वारावति भी, ले आई तुम्हें कौशल द्वारा ।
आनन्द पूर्वक रहो यहां, हे प्रीतम छोड़ फिकर सारा ॥
जब से देखा था तुम्हें, मिला न पल भर चैन ।
अस्तु मंगा तुमको यहां, सफल किये दोउ नैन ॥
सुन कर ऊषा के वचन, हंसे अनंगकुमार ।
बोले प्यारी जगत में, फकत प्रेम है सार ॥
ये प्रेम हि है जो दो मन को, कर देता है इक वरियाई ।
ये महिमा प्रेम हि की है प्रिया जो मैं यहां पहुँचा हूं आई ॥
विधि का विधान ही होगा यह, मैंने भी स्वप्न निहारा था ।
जिसके संग रहा रात भर मैं, वो तन वस यही तुम्हारा था ॥
तेरे सौंदर्य नम्रता के, हाथों विन मूल्य विकाना हूं ।
तू रमी अंग प्रत्यंग मेरे, मैं भी तुझ मांहि समाना हूं ॥
संसार में ऐसी शक्ति नहीं, जो तुमको मुझ से अलग करे ।
जो प्रेम में रोड़ा अटकावे, वो मूढ संयमनि चित्त धरे ॥

मुख से क्या शौर्य बखान करूं, यदि आया समय दिखा दूंगा ।
जिसने थोड़ा भि उठाया सिर, उसके सब होश भुला दूंगा ॥
आवो गंधर्व विवाह रचा, आनंद से समय बितावें हम ।
जो सही है अब तक विरह व्यथा, उसको निर्मूल बनावें हम ।

इतना कह विधि के सहित, विवाह कीन्ह तेहि बार ।
प्रेम सहित वामांग ले, बोले अनंग कुमार ॥

होते हैं आठ तरह के व्याह, शास्त्रों ने हमें बताया है ।
उनमें गंधर्व विवाह प्रिये, हमने इस समय रचाया है ॥
युवती व युवक का नेह पाश, बिन स्वजन आज्ञा जो होवे ।
वे करें यदि इस तरह यत्न, तो सदा पाप अघको खोवे ॥
अस्तू सारी शंका तज दो, हम नहीं प्रिये अपराधी हैं ।
कीन्हा है काम शास्त्रानुसार, जो हरे आधि अरु व्याधी है ॥

नृप बाला प्रमुदित हुई, शंकायं सब त्याग ।
हर्ष सहित करने लगी, निज पति संग अनुराग ॥

सुन्दर वस्त्राभूषण पिन्हाय, नूतन किसलय की माला ले ।
प्रीतम के गल में पहिराती, करती आरती उजाला ले ॥
छैः रस छत्तीस व्यंजनों से, भर थाल पिया पै लाती थी ।
खुद पंखा करती प्रेम सहित, प्यारे को नित्य जिमाती थी ॥
पीने के लिये सुगंधित जल अरु अन्य पेय भी मंगवाती ।
पति के हाथों से खुद पीती, निज कर से पति को पिलवाती ।
इस तरह व्यतीत किये कइ दिन, तिय प्रेम में अनिरुध घर भूले ।
मानो निशि भ्रमर जलद भीतर, होगये कैद सुख में फूले ॥
जिस समय कछुक होवें उदास, ऊषा मन बहलाने आवे ।
अपनी सखियों संग वीणा ले, रागिनी राग सुन्दर गावे ॥
दरवाजा ऊषा के घर का, अंदर से बंद रहे निशिदिन ।
दिन रात रहे पति के संग में, तज कहीं न जावे एक भी छिन ॥

माता मे मिले दिवस बीते, पितु के भी पास नहीं जाती।
बस केवल था पति का संयोग, यह किस्सा चलता दिन राती॥
एक दिवस कुछ कार्य से, ऊषा निकली बार।
पुनि फौरन घर में घुसी लाई ननिक न वार॥
ये हाल देख प्रहरीगण के, मन में एक दम शंका छाई।
बोले कुंवरी बाहिर निकली पुनि फौरन ही भीतर धाई॥
क्या सबब है जो कौमार्य छटा ऊषा के मुख पर रही नहीं।
बन गया है बदन लजीला अति, वो बाल सुलभता गई कहीं॥
क्या हम सब लोगों के रहते ऐसे कठोर पहरे भीतर।
आ पहुंचा कोई चोर यहां, छाया है कुंवरी घर अंदर॥
इतने में बोला एक प्रहरी, आश्चर्य मुझे भी आता है।
मेरा तो है विश्वास यही, अंदर कोई मनुज लखाता है॥
चंचलता की प्रति मूर्ति कुंवरि, अब ओझलसी दृष्टी से हुई।
जो एक जगह नहिं टिकती थी होगई वो यारों छुईमुई॥
तीजा प्रहरी बोला तुमको, इससे क्या लेना देना है।
जो करेगा जस फल मिलेगा तस, शास्त्रों का येही कहना है॥
चौथे ने डाटा इसे, कहा मूढ़ता छोड।
जान लिया नृप ने अगर देगा मस्तक तोड़॥
अस्तू अपना कर्तव्य है ये राजा को जा आगाह करें।
अपने सिर से जिम्मेदारी, हट जाय वही बस चित्त धरें॥
कुंवरी की जान मान लज्जा, वचने हित हमें बिठाया है।
नाजुक है काम अंतःपुर का, हे मित्र कहां भरमाया है॥
यों कर विचार संतरी सभी वाणासुर के दरबार गये।
पाकर आज्ञा दानववर को अपनी शंका समझात भये॥
बोले महाराज कछुक दिन से, ऊषा के रंग बदरंग हुये।
अवलोक हाल तव जाया के, हे स्वामी हम सब दंग हुये॥

नहिं कसर हमारे काम में प्रभु, हुशियारी से पहरा देते ।
जहां तक हम सब जा सकते हैं, वहां तक निगाह पूरी रखते ॥
हे नाथ हाल लखकर हमने, इतना तो दिल में जान लिया ।
कौमार्य नष्ट ऊषा का हुआ, ये भलि भांति पहचान लिया ॥
जो पहले बिजली के सदृष्य, चंचल दृष्टी में आती थी ।
जिसके चहरे की लूनाई, ऋतु शरद का चांद लजाती थी ॥
जिस देवी को लख गिरजा सम, चित शीश नवाना चाहता था ।
जिसके मुखड़े का सरल भाव, निर्दोष दृष्टि में आता था ॥
वो अब लज्जा युत चाल चले महिनों में बाहिर आती है ।
नयनों के नीचे श्यामलता, हे नाथ प्रत्यत्त दिखाती है ॥
रहती है शीश झुका कर वो नहिं भाव समझ हम पाये हैं ।
है दाल में काला कुछ अवश्य, बस इसीसे दौड़े आये हैं ॥

प्रहरी गण के वाक्य सुन, बाणासुर बल खाय ।
रिस से उछला तख्त पै बोला भृकुटी चढ़ाय ॥

जाओ तुम अपना कार्य करो, मैं अभी महल में आता हूं ।
करनी का फल अभियुक्तों को, फौरन ही आय चखाता हूं ।
यों कह इनको तो विदा किया, दरबार से उठ महलों आया ।
आकर बोला अर्धांगिन से, देखी तव कन्या की माया ।
विष भरी स्वर्ण की लुटिया को, नहिं स्वप्न में भी असजाना था ।
उस भोली भाली ऊषा का ये चरित न हिय कलपाना था ॥

बाणासुर की भामिनी, बोली आंसू डाल ।
सती धर्म अरु शील से, ऊषा हुई कंगाल ।

कई रोज होगये थे देखे, मन में जो मिलने की आई ।
तो बिना सूचना दिये हुये, कुंवरी के महलों में धाई ॥
जो देखा दृष्य उसे स्वामिन्, ये चर्म चत्तु नहिं बता सकें ।
ऊषा के संग जो रहे वीर, उसकी शोभा लख नयन थकें ॥

जल भरे बादलों सा स्वरूप, विद्युतसम छटा अंग की है।
पीताम्बर मोर मुकुट की छबि, लख आभा लजे अनंग की है॥
सुन्दर मनहरन युवक भोला, जनु विधि ने कर से ढाला है।
उसका मुख सच समझो प्रीतम, मद भरा छलकता प्याला है॥
ऊषा अरु वो परस्पर, डाले गल में हाथ।
टहल रहे थे महल में, मानो रति रतिनाथ।
मैं तो आशिष दे आई हूं, बस चिरंजीव हो ये जोड़ा।
अब तुम भी इसका विवाह रचो, खर्चा होवेगा अति थोड़ा॥
लज्जा का यही तकाज़ा है, चुपचाप विवाह कर दो स्वामी।
यदि कोप प्रदर्शित किया कहीं भरपूर होयगी बदनामी॥
उसकी आजानु भुजा दोऊ, बतलातीं वो भट भारी है।
जोड़ा मिल गया भवन बैठे, किस बात की सोच विचारी है॥
वचनश्रवण कर रक्तसम, हुये नयन तत्काल।
बोला घन सम नाद से, दुर्मति! हीन कंगाल॥
चोरी से छिपकर सुता रमी, व्यभिचारी नरक सिधारी ने।
मेरी छाती पर मूंग दले, उस दुष्ट हीन बदकारी ने॥
उसको अपनी कन्या दे दूं, होवेगी नहीं ये अनहोनी।
अब तो मम क्रोधाग्नि में उसे, बस अवश्य पड़ेगी जां खोनी॥
हो जाय बला से सुता सती, तू भी उसका अनुसरन करे।
लेकिन मैं प्रण से हटूं नहीं, चाहे विधि मेरा मरन करे॥
ढूंढ रहा बहु काल से, मो सम रिपु बलवान।
शायद येही हो वही, है अस मम अनुमान॥
अच्छा चुप चाप रहो घर में, मैं कन्या के ढिग जाता हूँ।
मनमानी करने का उसको, दण भर में मजा चखाता हूँ॥
इतना कह बाहिर आ देखा, शिव ध्वजा नहीं दी दिखलाई।
अनुमान सत्य में बदल गया, निश्चय मम रिपु प्रगटा आई॥

करके कुछ सेना एकत्रित, ऊषा निवास को घेर लिया ।
अनिरुध ने ये लीला लखकर, अपने बचाव का यत्न किया ॥
दिव्यस्त्रों की याद का, आ पहुँचे कर मांय ।
ऊषा को दे सान्त्वना, निकले धनुष चढ़ाय ॥
रिपुसेन सम्भलने के पहिले, बाणों की बरषा कर डाली ।
विजयी होने की इच्छा को, पहिली हि चोट में हर डाली ॥
कट गया कटक पल के अन्दर, बल लख बाणासुर घबराया ।
भागा पुनि और फौज लेकर, रणभूमि में वो वापिस आया ॥
ये देख विहंसि अनिरुद्ध वीर, फिर तीर पै तीर चलाने लगे ।
वीरों के अंग प्रत्यंगों में, गहरी चोटें पहुँचाने लगे ॥
मन्त्रों द्वारा मन्त्रित वे शर, रिपु सेना में घुस जाते थे ।
मैदान साफ कर फौरन ही, तरकस में आय समाते थे ॥
दो घरी तलक रण हुआ मगर, अनिरुद्ध न कबजे में आया ।
आखिर खुद बाणासुर रिस खा, ले धनु हमला करने धाया ॥
पहिले बाणों से युद्ध हुआ, फिर चले हाथ तलवारों के ।
लाठी बरछा वल्लभ फरसे से पेंच हुये जीदारों के ॥
जब किसी तरह नहिं जीत सका, तब अंतिम एक उपाय किया ।
ले ब्रह्म फांस अपने कर में अनिरुद्ध को इसमें बांध लिया ॥
पुनि पूछा रिस खाय के, बता कौन तू नीच ।
पीछे करना इष्ट का, ध्यान निकट तव मीच ॥
किस उज्वल कुल का है कलंक, रे चोर कुमारग गामी तू ।
क्या मेरा नाम न सुना कहीं, अघ के पुतले हंगामी तू ॥
हंस कर बोले प्रद्युम्न पुत्र, तुझको कुल से क्या करना है ।
इस समय हूँ मर्यादा वश मैं, शास्त्रों के मग पग धरना है ॥
वरना यमराज तलक मुझ से, रण करने में दहशत खाते ।
सुर असुर नाग नर किन्नर भी, डरते हैं मम सन्मुख आते ॥

मैं फंसा हुआ हूं हे दानव, कर मुक्ति देख ले जौहर तू ।
मम बचन सरासर झूंठे हैं, अथवा सच्चे लख, गौहर तू ॥
पापी वो जो चोरी से घुसे, मैं तो न्योते से आया हूँ ।
गंधर्व विवाह सम्पन्न किया, श्रुति शास्त्र सकल पढ़ धाया हूँ ॥
अच्छा कान लगाय कर, सुनो दैत्य कुल दीप ।
क्षत्री हूँ नवयुवक हूँ, चंचल असुर महीप ॥
दिखलाया हैं विक्रम मैंने, अब क्रोध तजो मोहि अपनाओ ।
मैं पती तुम्हारी सुता का हूं सुख सहित उसे मम संग ब्याहो ॥
बोला नृप अच्छा विवाह तेरा, बन्दीग्रह से करवाता हूँ ।
सुख से रहना तहां जाकर तू, मैं अभी हाल भिजवाता हूँ ॥
कैसे हिमायती हैं तेरे, उनका भी बल अजमाऊंगा ।
यदि मुझको रण में हरा दिया, तो अवश्य तुझे अपनाऊंगा ॥
यों कह बुलवाये तहां, प्रहरी गण तत्काल ।
भेज क़ैदखाने इन्हें, तब घर गया नृपाल ॥
ऊषा पति का हाल सुन, बेसुध हुई तुरन्त ।
ऊर्ध्व स्वांस चलने लगा, मानो आया अन्त ॥
ये लखते ही सखियां दौड़ीं, कर यत्न तुरत वा होश किया ।
ऊषा ने चेतन होते ही, इन सखियों पर अति रोष किया ॥
बोली तुमने क्यों नहीं मुझे, मृत्यू मुख में जाने दीन्हा ।
मैं करूंगी क्या जीकर बोलो, पितु ने मम जीवन-धन छीना ॥
पाकर कुबेर का सा पद गर, छिन में भिक्षुक का पद पावे ।
बतलाओ वो किम धीर धरे, किस तरह हृदय निज समझावे ॥
मंत्रि सुता ने आयकर, धैर्य दिया तेहि बार ।
बोली मत घबरा सखी, सबर करो दिन चार ॥
यादवदल बादलसम सजनी कोई आन में आने वाला है ।
यदुवंश से जो भी द्रोह करे, वो यमका होय निवाला है ॥

वैसे ही ढूंढ रहे होंगे, इस महारथी बलवानी को।
प्रभु के आंखों के तारे को, रतिराज लाल गुणखानी को॥
इसलिये सबर कुछ काल करो लख कुसमय धीर न छोड़ो तुम।
मैं जल्द शुभ खबर लाऊँगी, जीवन से मुख मत मोड़ो तुम॥

श्रोताओं यहां की कथा, जरा यहीं पर छोड़।
अल्प समय के वास्ते, चलो द्वारका दौड़॥

मचरही खलबली कैसी यहां, चकराय रहे सब यादवगन।
कुछ भी न समझ में आता था, कित छिपा जाय यदुकुलभूपन॥
दुख के मारे दरबार में भी चहुँदिशि सन्नाटा छाया था।
रोता था कोई मन ही मन में, कोई उदास दृष्टी आया था॥
इतने में कर वीणा धारी, श्री नारद मुनि तहां आते हैं।
लख शोक मग्न सब लोगों को, आश्चर्य सहित फरमाते हैं॥
जिस देश के रक्षक रामकृष्ण, उस पर क्यों रञ्ज छा रहा है।
जहां बास करें जन दुखभंजन, तहं दुख क्यों नजर आरहा है॥

सुनकर नारद के बचन उठे सभी पुलकाय।
नमन किया आसन मंगा दिया इन्हें बिठलाय॥

पुनि बोले प्रभु हे देव ऋषी, कृपया ये भेद तो बतलाओ।
अनिरुद्ध जिस जगह जाय छिपा वो स्थान मुनीश्वर समझाओ॥
मुनि बोले हे अन्तरयामी, क्यों भोलापन दिखलाते हो।
या नर समान लीला करते, जो ऐसी बात बनाते हो॥
या मान बढ़ाते भक्तों का, बोलो नटवर लीलाधारी।
अच्छा तव आज्ञा शीश चढ़ा, कहता हूँ कथा सुनो सारी॥

* गाना *

आकार रहित साकार हो तुम, निर्गुण और सगुण कहाते हो।
विपरीत भाव वाले गुण सब, अपने मे नाथ जनाते हो॥

हो गया, हो रहा, होगा जो, तुम से न जरा भी छिपा हुवा ।
फिर भी भोले बनकर मोहन, ठगते हो खूब बनाते हो ॥
भक्तों का सुयश बढ़ाने में, निज प्रण तक का नहि ध्यान करो ।
मग के कंकर का चिन्तामणि, सम जग में मान कराते हो ॥
हे इष्टदेव मम जीवनधन, नवनीत चोर राधिका रमण ।
तन मन से मै शरणागत हूँ, तुम जन वत्सल कहलाते हो ॥
सेवक तुम्हरी आज्ञानुसार, अनिरुद्ध का हाल बताता है ।
पर मन मन्दिर में तुम्हीं नाथ, बैठे सब खेल खिलाते हो ॥

शोणितपुर के भूप की, कन्या ऊषा नाम ।
तिसके संग अनिरुद्ध ने, किया बिहार ललाम ॥
बाणासुर ने ये सुध पाकर, लड़के पर हमला बोल दिया ।
पर धीरवीर यदुवंशी ने उस असुर से लोहा खूब लिया ॥
जिस तरह बाढ़ वर्षा ऋतु की, लेजाती है त्रण वृत्त बहा ।
त्योंही उसकी सर सरिता ने, आतंक फौज में दिया मचा ॥
लख उसे अजय बलिनंदन ने, धोखे से ब्रह्म फांस डाली ।
इस तरह किया काबू उस पर बन्दीग्रह में है बलशाली ॥
अस्तू ले साथ यादवों को, धावा बोलो शोणितपुर पर ॥
कुछ भूमि भार हलका होगा, ब्याह लावो लड़के को निज घर ॥
इतना कह नारद चले, पहुँचे बलि सुत तीर ।
बोले दानव वीर अब, क्यों बैठे धर धीर ॥
जिस वीर को तुमने कैद किया, मालुम है ? कौन दिलावर है ।
नहिं जाना हो तो सुन मुझ से श्रीकृष्ण पौत्र जोरावर है ॥
यादव छप्पन कोटी यहां पर, ले विजयी सेना आते हैं ।
कर प्रयत्न अपनी रक्षा का, दिन खोटे आते जाते हैं ॥
शत्रुता मोल ली घर बैठे, उसका अनिरुद्ध सुगनी नाई ।
अब भी दे सुता करो संधो वरना यमघर पहुँचो जाई ॥

ये सुन नृप कहने लगा, सुनो मुने चितलाय।
वाणासुर ऐसा नहीं, जो यम से भय खाय॥
मैंने अपने बाहूबल पर, सब काम किया है ऋषिराई।
यादव कुछ अमर नहीं जग में, देखूँगा उनकी मनुसाई॥
है धन्यवाद जो इतला दी, मैं अभी प्रबंध कराता हूँ।
शत्रू न बढ़ सके आगे को, ऐसा मोरचा जमाता हूँ॥
यों कह इनको तो किया विदा, फिर अपना सेनप बुलवाया;
अरु सुना था जो मुनि से किस्सा, इसके सन्मख सब दोहराया।
पुनि कहा शीघ्र सेना सजाय, हे वीर अगाड़ी बढ़ जाओ।
कर सके न पुर में रिपु प्रवेश, उसको बाहिर ही अटकाओ॥
सच्ची शक्ती है मेरी, शूलपाणि भगवान।
अभी जाय करता अरज, मत होना हैरान॥
यों कह चलदिया हिमालय को, नज़दीक रजतगिरि के आया।
अक्षय वट नीचे दृष्टि पड़े, मृत्युंजय शंकर सह माया॥
चरणों में दंड प्रमाण किया, फिर हाथ जोड़ कर यों बोला।
हो जावो सजग हे कृपा सिन्धु, शिव आशुतोष शंकर भोला॥
तुम्हरे हि आसरे आज तलक, निर्भय हूं जगदाधार प्रभो।
तुम्हरे ही बल पर कूद रहा, हे गिरिजा पति करुणान्द्र विभो॥
दुख का पहाड़ टूटा मुझ पर, यदुवंशी चढ़कर आते हैं।
द्रुतगती से मारग तय करते, कुछ क्षण में आये जाते हैं।
मेरे तो तन मन धन रक्षक, हे पार्वती स्वामी तुम हो।
हूं अति ही दीन दास तुम्हरा, घट घट अंतरयामी तुम हो॥
बल विक्रम उनके बालक का, कैलाशी नयन निहारा है।
पलकें झपकें इतने पल में मम सारा कटक संहारा है॥
हे नीलकंठ शत्रू अनंग, हे महादेव हे त्रिपुरारी।
हे दीनबन्धु हे दयासिन्धु, शरणागत वत्सल शुभकारी॥

अब उठो चलो ले गण सारे. सुरसेनप भी तैयार करो ।
हे मेरी नैया के रक्षक, यादवों का सारा गर्व हरो ॥
जो कीन्ही नहि रक्ष तो, चला चली का डौल ।
अयश तुम्हारा होयगा, दुनियां करे मखौल ॥

❊ गाना ❊

अब संकट से जान बचा भोला ॥
हे शिव शंकर भोले भाले, हे आशुतोष हर मतवाले ।
मेरे जीवन के है लाले, रक्षा कर मेरी शशि भाले ॥
हा विपता को दूर हटा भोला ॥
अमरावति सेनापति संग लो, गण नायक कर सेना सब हो ।
आरूढ आप वृष वाहन हो याचक को येही भिक्षा दो ॥
मम विनती पे ध्यान जमा भोला ॥

मृत्यूंजय मुस्कायकर, बोले हो निश्चिन्त ।
करूं मदद तेरी तुरत, व्यापे कीर्ति दिगन्त ॥
कर इसे विदा फिर गिरजा से, बोले महेश यों हरषाई ।
हे प्रिये बहुत दिन बाद कहीं, अति उत्तम आज घड़ी आई ॥
रासेश्वरि पति के सहज हि में, हे उमा मैं दर्शन पाऊंगा ।
मानव लीला करने वाले, हरि के संग युद्ध मचाऊंगा ॥
वाणासुर है प्रिय भक्त मेरा, है धर्म इसकी रक्षा करना ।
क्या खूब मजे की गुजरेगी, दोनों हाथों मोदक धरना ॥
मेरा अनुगामी दुनियां में, जी भरके सुख पा लेता है ।
पुनि मेरे खास अनुग्रह से. विष्णू के पद से लेता है ॥
अस्तु वाणासुर मद खण्डन, करवा हरि भक्त बनाऊंगा ।
खटराग जन्म अरु मृत्यू का, पल भर में दूर हटाऊंगा ॥

इच्छा हो तो चढ़ कर विमान, रणभूमि के ऊपर आ जाना।
प्रभु के प्रभुभक्त के दंगल को लखकर हिय आनंद उपजाना॥
इतना कह कर उमा से, उठे शम्भु साल्हाद।
रजत गिरी पर जोर से, कीन्हा श्रंगीनाद॥
गिरिराज एक दम गूंज उठा, हड़बड़ा उठे चट गण सारे।
धाये निज निज आयुध लेकर बलवान वीर भट मद वारे॥
आ पहुँचे शंकर के समीप देखा त्रिशूल उठाये हैं।
रण साज से हैं पूरे सज्जित, नयना आरक्त बनाये हैं॥
अचरज में सब गण हुये, शत्रु न दीखे कोय।
फिर रण का सामान क्यों, रहे शम्भु मुख जोय॥
देख गणों को सामने, बोले यों गिरिजेश।
शीघ्र चलो शोणित नगर, करो युद्ध का वेश॥
लड़ना है तुम्हें यादवों से, जिनके नायक यदुनन्दन हैं।
गो सन्त विप्र हितकारी हैं, पर दानववंश निकन्दन हैं॥
रण उत्सुक वीर सुभट के लिये रण आमन्त्रण है सुखदाई।
इसलिये चलो वीरो जल्दी, दिखलाओ अपनी मनुसाई॥
ले चलो साथ सब अस्त्र शस्त्र, डेरे डालो शोणितपुर में।
लो खूब मोरचा यदुवों से, भय मत आने देना उर में॥
शंकर का सम्भाषण सुनकर, वीरों में जोश अपार हुआ।
तत्काल हिमालय पर्वत पर, शिव नाम का जय जयकार हुआ॥
भूतनाथ की फौज का, था अति विचित्र समूह।
ऐसे तन बेडौल थे जिनसे कांपे रूह॥
था वृषभ ध्वजा का यान सुभग आरूढ़ थे जिस पर वृष वाहन।
चल रहे षड़ानन बांई दिशि, शोभित था सुघड़ मयूरासन॥
दक्षिण दिशि विघ्न विनाशन थे था अजब वेश एक छड़ी लिये।
कर रहे गणों का संचालन, चल रहे थे अति हर्षित हिये॥

इस तरह ये शोणितपुर पहुँचे, पा खबर भूप आगे आये।
मस्तक झुकाय कर नमन किया, अति सुन्दर डेरे लगवाये॥
अवलोकन शंकरगणों का कर, छोटे मोटे दहलाय गये।
अल्पायू बच्चों के तो झट, तन मांहि पसीने आय गये॥
वाणासुर ने भी अपना दल, एकत्र कर लिया हर्षा कर।
फिरता था चहुंदिशि फिकररहित, शिव को अपने शिर पर पाकर॥
जहं बंदी थे अनिरुद्ध वीर तहां दुगुना पहिरा बिठलाया।
पुर का भी दानव पुंगव ने, उत्तम प्रबंध था करवाया॥
तक रहे थे राह यादवों की, पुर से योजन भर आगे आ।
मजबूत मोरचे बन्दी थी, पक्षी तक पर न मार सकता॥

　　शोणितपुर का लखलिया, मित्रो हाल तमाम।
　　ध्यान द्वारका का धरो, क्या करते घनश्याम॥
　　बुला सात्यकी वीर को, बोले दीनदयाल।
　　अब विलम्ब क्यों कररहे, कूच करो तत्काल॥

आज्ञा मिलते हि प्रबन्ध किया, यादवों का धौंसा बजने लगा।
हरएक वीर अपने तन को अस्त्रों शस्त्रों से सजने लगा॥
छाया दल पल में बादल सम, वीरों की हांके आने लगी।
शस्त्रों की आभा विद्युत सम, तहं चमक दमक फैलाने लगी॥
ये लख तैयार हुये माधव, हलधर भी हल मूसल लेकर।
आये अरु रथ में जा बैठे, चलने का हुक्म हुआ सत्वर॥
सेना के अग्रभाग में थे, रोहिणिनन्दन श्रीबलरामा।
उनके समीप ही शोभित थे, गिरिराजधरन श्रीघनश्यामा॥
सारी सेना के मुख सेनप, प्रद्युम्न दृष्टि में आते थे।
सात्यकी वीर अरु कृतवर्मा, हाथियों पै बैठे जाते थे॥
निज पीठ पै रामकृष्ण को लख, सारी सेना हर्षानी थी।
तृणसम गिनती थी त्रिभुवन को, मदमत्त हो घर चमकानी थी॥

इच्छा हो तो चढ़ कर विमान, रणभूमि के ऊपर आ जाना ।
प्रभु के प्रभुभक्त के दंगल को लखकर हिय आनंद उपजाना ॥
इतना कह कर उमा से, उठे शम्भु साल्हाद ।
रजत गिरी पर जोर से, कीन्हा शृंगीनाद ॥
गिरिराज एक दम गूंज उठा, हड़बड़ा उठे चट गण सारे ।
धाये निज निज आयुध लेकर बलवान वीर भट मद वारे ॥
आ पहुँचे शंकर के समीप देखा त्रिशूल उठाये हैं ।
रण साज से हैं पूरे सज्जित, नयना आरक्त बनाये हैं ॥
अचरज में सब गण हुये, शत्रु न दीखे कोय ।
फिर रण का सामान क्यों, रहे शम्भु मुख जोय ॥
देख गणों को सामने, बोले यों गिरिजेश ।
शीघ्र चलो शोणित नगर, करो युद्ध का वेश ॥
लड़ना है तुम्हें यादवों से, जिनके नायक यदुनन्दन हैं ।
गो सन्त विप्र हितकारी हैं, पर दानववंश निकन्दन हैं ॥
रण उत्सुक वीर सुभट के लिये रण आमन्त्रण है सुखदाई ।
इसलिये चलो वीरो जल्दी, दिखलाओ अपनी मनुसाई ॥
ले चलो साथ सब अस्त्र शस्त्र, डेरे डालो शोणितपुर में ।
लो खूब मोरचा यदुवों से, भय मत आने देना उर में ॥
शंकर का सम्भाषण सुनकर, वीरों में जोश अपार हुआ ।
तत्काल हिमालय पर्वत पर, शिव नाम का जय जयकार हुआ ॥
भूतनाथ की फौज का, था अति विचित्र समूह ।
ऐसे तन बेडौल थे जिनसे कांपे रूह ॥
था वृषभ ध्वजा का यान सुभग आरुढ़ थे जिस पर वृष वाहन ।
चल रहे षड़ानन बांई दिशि, शोभित था सुघड़ मयूरासन ॥
दक्षिण दिशि विघ्न विनाशन थे था अजब वेश एक छड़ी लिये ।
कर रहे गणों का संचालन, चल रहे थे अति हर्षित हिये ॥

इस तरह ये शोणितपुर पहुँचे, जा नगर भूप आगे आये ।
मस्तक झुकाय कर नमन किया, आनि सुन्दर डेरे लगवाये ॥
अवलोकन शंकरगणों का कर, छोटे मोटे दहलाय गये ।
अल्पायु बच्चों के तो झट, नव भांति नवीने आय गये ॥
बाणासुर ने भी अपना दल, एकत्र कर लिया हर्षा कर ।
फिरता था चहुंदिशि फिकररहित, शिव को अपने शिर पर पाकर ॥
जहं बंदी थे अनिरुद्ध वीर तहां दुगुना पहिरा बिठलाया ।
पुर का भी दानव पुंगव ने, उत्तम प्रबंध था करवाया ॥
तक रहे थे राह यादवों की, पुर से योजन भर आगे आ ।
मजबूत मोरचे बन्दी थी, पत्ती तक पर न मार सकता ॥

शोणितपुर का लख लिया, मित्रो हाल तमाम ।
ध्यान द्वारका का धरो, क्या करते घनश्याम ॥
बुला सात्यकी वीर को, बोले दीनदयाल ।
अब विलम्ब क्यों कररहे, कूच करो तत्काल ॥

आज्ञा मिलते हि प्रबन्ध किया, यादवों का धौंसा बजने लगा ।
हरएक वीर अपने तन को अस्त्रों शस्त्रों से सजने लगा ॥
छाया दल पल में बादल सम, वीरों की हांके आने लगी ।
शस्त्रों की आभा विद्युत सम, तहं चमक दमक फैलाने लगी ॥
ये लख तैयार हुये माधव, हलधर भी हल मूसल लेकर ।
आये अरु रथ में जा बैठे, चलने का हुक्म हुआ सत्वर ॥
सेना के अग्रभाग में थे, रोहिणिनन्दन श्रीबलरामा ।
उनके समीप ही शोभित थे, गिरिराजधरन श्रीघनश्यामा ॥
सारी सेना के मुख सेनप, प्रद्युम्न दृष्टि में आते थे ।
सात्य की वीर अरु कृतवर्मा, हाथियों पै बैठे जाते थे ॥
निज पीठ पै रामकृष्ण को लख, सारी सेना हर्षाती थी ।
त्रणसम गिनती थी त्रिभुवन को, मदमत्त हो शर चमकाती थी ॥

घंटों तक युद्ध हुआ लेकिन, कुछ भी न नतीजा प्राप्त हुआ ।
केवल शस्त्रों की ध्वनि फैली, था आहत जन रव व्याप्त हुआ ॥
देख व्यर्थ संग्राम को, शंकर अति रिस खाय ।
बढ़ आये आगे तनिक, अपना धनुष चढ़ाय ॥
आते ही मोहन पर छोड़े, बड़े तीर भयंकर विषवाले ।
पर श्रीकृष्ण ने उन सबको, क्षण भर में शान्त बना डाले ॥
भोला ने तब ब्रह्मास्त्र गहा, पल में ही हरि ने हर डाला ।
इस घटना से त्रिपुरारी के, तन फैली गुस्से की ज्वाला ॥
इसके उपरान्त सदाशिव ने, वायव्य अस्त्र धारा कर में ।
फेंका मोहन के स्यंदन पर, रथ उड़ने लगा पलक भर में ॥
तब प्रभु ने नागास्त्र शर, लेकर तजा तुरन्त ।
हुई नाश आंधी सकल, उबले गिरजाकंत ॥
अग्निबाण संधान कर, छोड़ा गुस्सा खाय ।
अनिल देख यादव कटक, गया शीघ्र घबराय ॥
तब फौरन मेघ अस्त्र द्वारा, प्रभु ने सब आग निवारन की ।
ये लखकर शूलपाणि ने झट, पशुपति शक्ती को धारन की ॥
प्रभु पर फैंकी मारग ही मे, नारायन शर ने लौटाई ।
तब मोहन की मोहक शक्ती, श्रीशंकर के सिर पर छाई ॥
जिससे अति मोह को प्राप्त हुये, जमुहाई लेन लगे भोला ।
तब शत्रु सेन पर झुके प्रभू, वाणासुर दल भय से डोला ॥
ये लख दानव नृप राम को तज, आतुर हो हरि सन्मुख धाया ।
आते हि पंचशत धनुवों से, शर समूह एकदम बरसाया ॥
वाणों समेत उसके सब धनु, प्रभु ने कौतुक में काट दिये ।
रथ तोड़ा सारथि प्राण हरे, ल्हाशों से मारग पाट दिये ॥
वाणासुर जननी देख हाल, नंगी सिर खुली चली आई ।
आ खड़ी हुई हरि के सन्मुख, तब पीठ प्रभू ने दिखलाई ॥

जा रही थी सेना द्रुतगति से, मानो भयदाई आंधी है।
या है उस वृहत उदधि सदृष्य, मर्याद न जिसकी बांधी है॥
इस प्रकार चलते हुये शोणितपुर के पास।
आ पहुँचे यादव सकल चित में भरे हुलास॥
आते ही शस्त्र निकाल लिये, जय बोली हरि हलधारी की।
मैदान उस तरफ भी गूँजा, जय से शंकर कामारी की॥
कैलाशनाथ हरि दर्शन कर, हृदय में अतिशय हर्षाये।
मन ही मन में प्रणाम करते, केशव के निकट चले आये॥
अरु कहा नाथ हो धर्मयुद्ध, सम बल आपस में टकरावें।
जी खोल लड़ें उल्लास सहित, चाहे हारें या विजय पावें॥
देखें संसारी आँख खोल, भक्तों के संग विहारी को
अनुरक्त की इच्छा वरदाता भयहरन भव्य गिरधारी को॥
एवमस्तु प्रभु ने कहा, हुआ युद्ध आरम्भ।
निजनिज जोड़ी जामिले, लख सुर रहे अचम्भ॥
श्री हरि से शंकर जुटे, बाणासुर बलराम।
महारथी प्रद्युम्न से, सुर सेनप कर थाम॥
सात्यकी वीर से जाय भिड़ा, बाणासुर का नन्दन सत्वर।
कृतवर्मा से असुरों का मंत्रि, भिड़ गया वीर कुष्मांड प्रवर॥
पैदल सेना सन्मुख पैदल, गज सन्मुख गजवाले धाये।
घोड़ों के सन्मुख घुड़सवार, आतुर हो शीघ्र चले आये॥
गिरधारी कामारी की जय दोनों दल कहते जाते थे।
करते थे शस्त्रों की चोटें, कइ दांव पेच दिखलाते थे॥
इस तरह युद्ध आरम्भ हुआ, बाजे सब खड़के गाने लगे।
सुन जिसको वीरों के हृदय, दुगना उत्साह दिखाने लगे॥
प्राणों का मोह न था जिनको, जो तत्पर थे निज कर्तव पर।
चित में थी जिनके स्वामि भक्ति, वे आ पहुँचे घेरा देकर॥

घंटों तक युद्ध हुआ लेकिन, कुछ भी न नतीजा प्राप्त हुआ ।
केवल शस्त्रों की ध्वनि फैली, या आहत जन रव व्याप्त हुआ ॥
देख व्यर्थ संग्राम को, शंकर अति रिस खाय ।
वह आये आगे तनिक, अपना धनुष चढ़ाय ॥
आते ही मोहन पर छोड़े, कई तीर भयंकर विषवाले ।
पर श्रीकृष्ण ने उन सबको, क्षण भर में शान्त बना डाले ॥
भोला ने तब ब्रह्मास्त्र गहा, मग मे ही हरि ने हर डाला ।
इस घटना से त्रिपुरारी के, तन फैली गुस्से की ज्वाला ॥
इसके उपरान्त सदाशिव ने, वायव्य अस्त्र धारा कर में ।
फेंका मोहन के स्यंदन पर, रथ उड़ने लगा पलक भर में ॥
तब प्रभु ने नागास्त्र शर, लेकर तजा तुरन्त ।
हुई नाश आंधी सकल, उबले गिरजाकंत ॥
अग्निबाण संधान कर, छोड़ा गुस्सा खाय ।
अनिल देख यादव कटक, गया शीघ्र घबराय ॥
तब फौरन मेघ अस्त्र द्वारा, प्रभु ने सब आग निवारन की ।
ये लखकर शूलपाणि ने झट, पशुपति शक्ती को धारन की ॥
प्रभु पर फैंकी मारग ही मे, नारायन शर ने लौटाई ।
तब मोहन की मोहक शक्ती, श्रीशंकर के सिर पर छाई ॥
जिससे अति मोह को प्राप्त हुये, जमुहाई लेन लगे भोला ।
तब शत्रु सेन पर झुके प्रभू, वाणासुर दल भय से डोला ॥
ये लख दानव नृप राम को तज, आतुर हो हरि सन्मुख धाया ।
आते हि पंचशत धनुवों से, शर समूह एकदम बरसाया ॥
बाणों समेत उसके सब धनु, प्रभु ने कौतुक में काट दिये ।
रथ तोड़ा सारथि प्राण हर, लहाशों से मारग पाट दिये ॥
वाणासुर जननी देख हाल, नंगी सिर खुली चली आई ।
आ खड़ी हुई हरि के सन्मुख, तब पीठ प्रभू ने दिखलाई ॥

पा अवसर बलिनन्दन भागा, पुर में दल एकत्रित करने ।
पुनि ताजा हमला रिपु पर हो, अन्तिम गति मारे या मरने ॥
इधर शम्भु चैतन्य हो, हुये वृषभ असवार ।
आये सन्मुख कृष्ण के, नूतन आयुध धार ॥
पर अबके सब शस्त्र तज, भेजा ज्वर बलवान ।
तीन शीश पद तीन का, आया तट भगवान ॥
हरि ने अपने शीतः ज्वर को, स्वागत करने को विदा किया ।
दोनों दंगल में खूब लड़े, सुर मंडल का हिल गया हिया ॥
आखिर प्रभु के शीतः ज्वर ने, त्रिशिरा को भू पर पटक दिया ।
फिर छाती पर चढ़ कर बैठा, घूंसों द्वारा हैरान किया ॥
अपनी रक्षा का यत्न न लख, शिव का ज्वर अति ही घबराया ।
कर जोड़ प्रभू की शरण गही, अति सावधान हो यश गाया ॥
हे अनन्त शक्ती पते, ब्रह्मादिक के ईश ।
सर्वात्मा चैतन्य घन, त्राहि त्राहि जगदीश ॥
जग उत्पादक, थित, संहारक, श्रुति अगम शांत मूरति भगवन ।
अव्यक्त अनादि अगोचर हरि, मायापति सतचित आनंदघन ॥
भूमी का भार हटाने को, हो सगुण कई तन धारे हैं ।
दुष्टों के कर से शिष्टों को, तुमने हर बार उबारे हैं ॥
यद्यपि मैंने अपराध किया, जो तव ज्वर से लड़ने आया ।
वे बस था लेकिन अब तो प्रभु, हूं शरण हरो दुख यदुराया ॥
तुम द्वारा उत्पन्न हो, दुसह अजय ज्वर घोर ।
नाथ मुझे दुख दे रहा, धावो नन्दकिशोर ॥
हरि ने अपना शीत ज्वर, फौरन लिया दुराय ।
पुनि शिव के ज्वर से कहा, मन्द मन्द मुस्काय ॥
शरणागत की रक्षा करना, कर्तव्य हमारा है भाई ।
उन लोगों को मत व्यापना तू, जो सुने कथा ये चितलाई ॥

यों कह, कर दिया विदा उसको, जो कठिन सो शिव दल आया ।
इतने में बाणासुर ने फिर, नई कटक संग मुख दिखलाया ॥
आते हि शम्भु को नमन किया, फिर प्रभु सन्मुख निज मुंह मोड़ा ।
हंसकर लीलामय ने फौरन, तब चक्र सुदर्शन को छोड़ा ॥
उसने रख केवल चार भुजा, बाकी सब बलि सुत की काटी ।
मानो माली ने वृक्षों की, शाखायें काट भूमि पाटी ॥
अपने अनुगामी सेवक की, लख दशा त्रिलोचन चकराये ।
वध कर डालेंगे अभी कृष्ण, ये जान दौड़ हरि पै आये ॥

बोले दोउ कर जोड़ कर, आशुतोष भगवान ।
बिन जाने ही युद्ध में, आया ये गुणखान ॥

अज्ञानी है फिर तव महिमा, कैसे जाने हे जगधाता ।
ऋषि मुनि सुर विधि तक के दिल में, नहि रूप नाथ का जग पाता ॥
श्रुति शास्त्र तुम्हें परिपूरनतम, नहि पूर्णतया पहिचान सकें ।
श्री सहस बदन अरु शारद भी, गुण गाथा कर हिय मांहि थकें ॥
ज्ञानी तत्वज्ञी तुमको प्रभु, निर्गुण निर्लेप बखानते हैं ।
पर तुम्ही हो कर्ता कर्म क्रिया, ये पूर्णतया हम जानते हैं ॥
तुम्हरे असली विग्रह को हरि, माया प्रेरित नर क्या जाने ।
जो सगुण रूप तक की छाया, सुपने में भी नहिं पहिचाने ॥
अपने ही आप निज प्रकृति निरत, क्षण क्षण में लीला दिखलावो ।
जब संग त्याग दो माया का, तब कहीं नहीं दृष्टी आवो ॥
आकाश आप की नाभी है, अग्नी मुख जल वीरज बाजे ।
हैं शीश स्वर्ग अरु दिशा श्रवण, महि चरन, चन्द्रमा मन राजे ॥
दृग हैं दिनकर, शिव अहंकार, अरु उदर सिन्धु ब्रह्मा बुद्धी ।
है इन्द्र भुजा औषधी रोम, अरु धर्म हृदय जग की शुद्धी ।

वपु विराट की कल्पना, करे भक्त मन मांय ।
संत विप्र गो जन सदा, तुम से रक्षा पाय ॥

जाग्रत अरु स्वप्न सुषुप्ती में, तुमही रत्ता के कारण हो।
अपने हि रूप में रमो सदा, तुम ही महि भार उतारन हो॥
हम लोकपाल तव सत्ता से, दुनियां का पालन करते हैं।
हो जाय न गर्व हमें इससे, हर घड़ी नाथ हम डरते हैं॥
कारण तुम गर्व निकंदन हो, नहिं तनिक देर करते स्वामी।
होते हि गरूर हृदय भीतर, तुम फौरन हो हरते स्वामी॥
विष्णू, विधि, मैं, इन्द्रादि सदा, हे प्रभु तुम्हरा गुण गान करें।
जो लीला करो कृपासागर जग तरनि जान नित ध्यान धरें॥
सुत धन यश कीर्ति विजय के लिये, जो करते हैं तुम्हरा पूजन।
वे नीची ही गति पाते हैं, फल आश त्याग है श्रेष्ठ यजन॥
ये बलि का बेटा बाणासुर, है परम भक्त मेरा स्वामी।
कर दिया अभय मैंने इसको, तव सत्ता से अंतरयामी॥
अब तुम भी अभय करो इसको, जिमि हाटक करयप सुत कीन्हा।
लो इसे भक्ति में हे मोहन, मम लाज रखो हे गुणभीना॥
अब आज से आगे कभी नहीं, ये किसी को दुख पहुंचायेगा।
गर गर्व किया तो इक क्षण में, मृत्यू मुख मांहि समायेगा॥

* गाना *

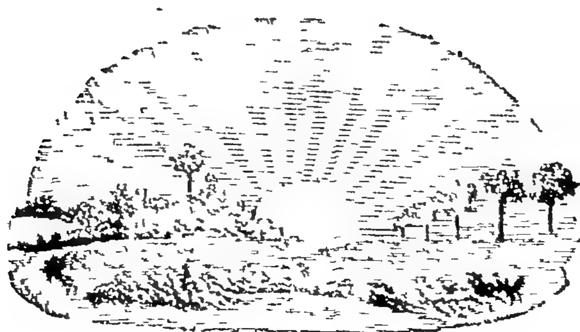
अब सुनिये अरज बनवारी, यह दानव शरण तिहारी॥
मम हित तप कीन्हा दिनराती, अभय हुवा था यह सब भांती।
गर्व न सका बिसारी॥ अब सुनिये॥
सब घंमड का चूर्ण हुवा है, अब यह जन तव पूर्ण हुवा है।
शरण मे लो गिरधारी॥ अब सुनिये॥
फिर भी जो दुष्कर्म करेगा, निज अघ द्वारा आप मरेगा।
पुनि सुधि लूं न अगारी॥ अब सुनिये॥
जीवनधन इसके बन जावो, व्याह निज पौत्र हि भवन सिधावो।
छायेगी कीरति भारी॥ अब सुनिये॥

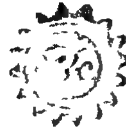
मृत्युंजय के वाक्य सुन, विहँसि उठे गोपाल ।
बोले शंकर भक्त को नन्द नन्द प्रति पाल ॥
हे आशुतोष जो कुछ तुमने बाणासुर के हित बात कही ।
करता हूं मैं स्वीकार उसे, तव वचन अमिथ्या होय नहीं ॥
अब इसे नहीं मारूंगा मैं, प्रह्लाद ने भी ये वर पाया ।
इक्कीस पीढ़ियों तक कुल के, हरगिज न पड़े मृत्यू छाया ॥
केवल इसके तन से बोझा हाथों का व्याज हटाया है ।
कर दिया चतुर्भुज इसे शंभु, मेरा ही रूप बनाया है ॥
जिसको जब भी जो वर तुम दो, उसको स्वीकार करूँगा मैं ।
तुम मेरी आत्मा हो शंकर, तव आयसु चित्त धरूँगा मैं ॥
यों कह बलिसुत शीशपर, धरा प्रभू ने हाथ ।
चरण गिरा यों दैत्यवर, कीन्हा उसे सनाथ ॥
बंद हुआ संग्राम भी, लौटे दोउ दल हर्ष ।
शंभु कृष्ण की जय कही हुआ अमित उत्कर्ष ॥
फिरबलिसुतअनुनय विनयसहित आनंदकंद को घर लाया ।
अति आदर मान किया इनका, एक सुघड महल में ठहराया ॥
पुनि तुरत बंदिगृह जा करके, अनिरुद्ध को बंदनमुक्त किया ।
ऊषा को भी स्नान करा, बधुके सिंगार के युक्त किया ॥
शुभअवसर देख विवाह की फिर, नृप ने तैयारी करवाई ।
शास्त्रानुसार सब विधि करके, शुभ लग्न में भांवर पड़वाई ॥
यौतुक में दिया अपार द्रव्य, हाथी घोड़े दासरु दासी ।
यादवों की भी अति प्रेम सहित नृप ने की पहुनाई खासी ॥
सन्मान गणों का करके पुनि, श्रीकैलाशी को नमन किया ।
बोला अपराध क्षमा करना हे नाथ तुम्हें अति कष्ट दिया ॥
हाथ शीश पर फेर कर, गमने भोलानाथ ।
चले द्वारका की तरफ तुरत द्वारकानाथ ॥

हंसते खुश होते यादव सब, कुछ दिन में द्वारावति आये ।
पा समाचार अति मुदित होय, वसुदेव आदि सन्मुख धाये ॥
विधिवत वधु को घर में लीनी, हर जगह मंगलाचार हुये ।
एक उत्सव सा तहां पर छाया, महलों सम सब घरबार हुये ॥
श्रोताओं ऊषा अनिरुध की यों प्रथम कथा हमने गाई ।
अब उठो और हित से बोलो, जय नटवर जय श्रीयदुराई ॥
जिस पर है कृपा जनार्दन की, वो कथा में मन बहलाते हैं ।
बाकी सब थोथे झगड़ों में, योंही निज आयु गमाते हैं ॥
कलिकाल में केवल कृष्ण कथा, भव बाधा हरनेवाली है ।
मोह काम क्रोध असुरों के लिए, साक्षात् खंगधर काली है ॥

इस प्रकार से सोलहवां, हुआ भाग इति आज ।
'श्रीलाल" आगे चलो, लिखो सुदामा साज ॥

* श्रीकृष्णार्पणमस्तु *





श्रीकृष्ण चरित्र अथवा श्रीमद्भागवत

सत्रहवां भाग

कृष्ण सुदामा

रचयिता—

श्रीलाल खत्री

प्रकाशक—महाभारत पुस्तकालय, अजमेर

मुद्रक—के. हमीरमल लूनिया, दि डायमण्ड जुबिली प्रेस, अजमेर.

प्रथम बार २,००० | सम्वत् १९९१ विक्रमी सन् १९३५ ईस्वी | मूल्य ।) आने

कृष्णस्तु भगवान् स्वयम्

स्तुति

(१)

हे मोहन प्यारे करदो ना कृपा गिरधारी ॥
तुम्हरी दया से श्यामा सब दुख छूटें ।
जायेगी मिट विपता सारी ॥ हे मोहन ॥
दीनों के रक्षक प्रभू भव भय के मोचन ।
मही प्रगटे हो अवतारी ॥ हे मोहन ॥
चंचल चित को केशव अचल बनादो ।
रम जाये चरण मंझारी ॥ हे मोहन ॥
लज्जा प्रभू जी राखो शरण पड़े की ।
विनय यही है बनवारी ॥ हे मोहन ॥
चरण कमल में मुझको राखो हे भगवन ।
संकट काटो असुरारी ॥ हे मोहन ॥

मंगलाचरण

(२)

पीताम्बर धर पाप हर, गोकलेश गोपाल ।
ताप हरन जन सुख करन, जय जय दीन दयाल ॥
जय जलशायी जलदसम, सुभग सुहावन रूप ।
सृष्टि रचन, पालन, हरन, शिव अज विष्णु स्वरूप ॥
तुम गुरु गणपति शारदा, सहस बदन तुम शेष ।
विघन हरो मंगल करो, जग व्यापक अखिलेश ॥
बंदहुं वेदव्यास सुत, श्री शुकदेव सुजान ।
गायो कलिमल हरन जिन, "कृष्ण चरित" गुणखान ॥

* श्लोक *

वंशीविभूषितकरान्नवनीरदाभात्पीतांबरादरुणबिंबफलाधरोष्ठात् ।
पूर्णेन्दुसुन्दरमुखादरविन्दुनेत्रात्कृष्णात्परं किमपितत्वमहं न जाने ॥

* कथा प्रारम्भ *

इस जीवन की हे हृदय, होने आई शाम ।
अब तो भज सब त्यागकर, देवकिनंदन श्याम ॥
श्याम रंग को जानले, रंगों का सिर मोर ।
जो इस रंग में रंग गया, चढ़ा रंग नहिं और ॥
है वाणी सफल वही जिससे, हरि के गुण गण गाये जावें ।
दिन रात प्रभू सेवा में रहें, बस हाथ सफल वे कहलावें ॥
है सफल वो मन जो प्रेम सहित, नित मनन करे मनमोहन का ।
जो पतित पावनी कथा सुनें, सौभाग्य गिनो उन श्रवनन का ॥
मस्तक की गिनो सफलता तब, जब झुके प्रभू के चरनों पर ।
वो नेत्र सफल हैं श्रोताओं, नटवर का दर्श करें जी भर ॥
मानव तन की सफलता, है इस ही में मित्र ।
करे प्रेम से कृष्ण को, नवधा भक्ति पवित्र ॥
कलियुग की कठिन करघातें, लेने देवेंगी चैन नहीं ।
जब तलक पृष्ट पोषक हरदम, होंगे वे राजिवनैन नहीं ॥
अस्तू तन मन से ध्यान धरो, उन आनंदकंद बिहारी का ।
फिर सुनो चाव से सुन्दर यश, कंसारी श्री गिरधारी का ॥
जब से गुरुकुल से विदा होय, श्री कृष्णचन्द्र घर पर आये ।
द्विज श्रेष्ठ सुदामा भी तब से, विद्या पढ़ अपने घर धाये ॥
निष्कंचन होते हुये भी ये, अति संतोषी सुविचारी थे ।
रहते थे अयाचक वृत्ती से, श्रुति शास्त्रानुसार अचारी थे ॥
नारी भी इनही के सदृष्य, थी लोभ रहित अरु शीलवती ।
शुभ नाम "सुशीला" था इसका, पति चरणों में रखती थी रती ॥

जो मिला उसी में तुष्ट होय, दंपति निज समय बिताते थे।
उपवास भी होते थे बहुधा, पर ईश सुधी न भुलाते थे॥
बस्ती से पृथक नदी तट पर, एक छान इन्होंने छाई थी।
थी वो भी टूटी फूटी सी, सब ऋतुओं में दुखदाई थी॥
जेवर तो क्या कपड़ा तक भी, तन ढकने को पर्याप्त न था।
मृत्तिका पात्र, वे भी खंडित, यहां तक कि तवा तक प्राप्त न था॥

दरिद्रता ने यद्यपी, कर रक्खा हैरान।
पर न याचना का कभी, किया इन्होंने ध्यान॥

जैसा होता है गरीबी में, वैसा ही यहां हुआ आकर।
हो गये चार सुत लगातार, बढ़ गई भूख घर के भीतर॥
निरहार रहें ठंड से कांपे पर हाथ पसारें कभी नहीं।
हो जायँ कड़ाके तीन तीन, पर जबां को हारें कभी नहीं॥
इनके दुःखों का मर्म भला, धनवान कहा से पहिचाने।
जिसके पग फटी बिवाई नहीं, वो पीर पराई क्या जाने॥
जो कुछ दे जाय कभी दाता, अति हर्ष सहित ले लेते थे।
कुछ खाते प्रभु के अर्पण कर, अतिथी हित कुछ दे देते थे॥
हर समय प्रभू का गुण गायन कीर्तन उनके यहां होता था।
हरि नाम ध्वनी में यह कुटुम्ब अपना सारा दुख खोता था॥
जब कभी ब्राह्मणी व्याकुल हो, फरियाद करे पति पै आकर।
मुस्काय सुदामा समझावे संसार है दुःखों का सागर॥

एक बार दिन तीन तक, मिला न इन्हें अहार।
बच्चे अति घबराय कर, करने लगे पुकार॥

ब्राह्मणी सुशीला के दृग में, लख दृष्य अश्रुकन भर आये।
आकर बैठी पति चरणों ढिग, रो रो कर वाक्य ये फरमाये॥
हे नाथ भूख की ज्वाला अब, बच्चों से सही न जाती है।
लख उनका विह्वल हाल पती, छाती भर भर कर आती है॥

ना सही मिठाई दुग्ध पान, सूखी रोटी तो जुड़वाओ।
तुम पिता चार पुत्रों के हो, कुछ करतब करके दिखलाओ॥
देखो है शीत काल सिर पर, तन ढकने तक को वस्त्र नहीं।
बालक हैं फटी लंगोटी में, जी जाने में नहिं कसर रही॥
याचक वृत्ती के सिवा नाथ, अब नही गुजारा होने का।
पुरुषार्थ रहित बैठे बैठे, नहिं दुख दरिद्र है खोने का॥
फिर खाली पेट न भजन बने, हद हुई दुखों के सहने की।
यदि गुजर गये दो दिवस और, तन में आत्मा नहिं रहने की॥

विप्र सुदामा हंस पड़े, बोले सुन नादान।
कर्म लिखा होता सदा, धैर्य धरो ये जान॥

भिक्षा हित हाथ पसारूँ तो ये हाथ दग्ध हो जायेंगे।
नस जायगा सारा ब्रह्म तेज, जप तप न काम फिर आयेंगे॥
दो पन हो गये व्यतीत मेरे, अब तीजे पन में आया हूँ।
प्रण रहा आज तक यही मेरा भिखमंगा नहीं कहाया हूँ॥
सामान्य धनिक की क्या गिनती, निज मित्र कृष्ण पै जाऊँ नहीं।
संतुष्ट हूँ इस ही हालत में, तृष्णा में हृदय फंसाऊँ नहीं॥
कारन बिन ही मांगे भगवन, दूजे तीजे दे देते हैं।
है भाग्य में जिनके जितना कुछ, उतना ही वो ले लेते हैं॥
पत्नी बोली क्या कहा नाथ क्या कृष्ण तुम्हारे प्यारे हैं।
वे तो गो द्विज सुर संतों के, सब कष्ट नशाने हारे हैं॥
उन हेतु सभी ये कहते हैं, परले पर प्रभु नरतन धरकर।
भूमी का भार हटाने को, प्रगटे हैं स्वयम् धरनी तल पर॥
यदि ये सच है तो वे अवश्य, दुखहरन भक्त वत्सल होंगे।
निर्धन के धन जन के जीवन, निर्बल के बल निर्मल होंगे॥

अब तक तो भक्ती करी, निर्गुण की हे नाथ।
सगुण ईश के पास जा, करिये अब साक्षात्॥

उस विपद विदारनहारे को, विपता की बात सुनाओना ।
लक्ष्मीपति के सन्मुख जाकर, कुछ लक्ष्मि मांग कर लाओना ॥
तुम जन हो कृष्ण जनार्दन हैं, सेवक मालिक का नाता है ।
जन मांगे अगर जनार्दन से, तो क्या अधर्म कहलाता है ॥
यदि मित्र समझते हो उनको, तो भी लज्जा की बात नहीं ।
दुख मित्र का हरते मित्र सदा होती आई है रीति यही ॥
अस्तू तज सब वादरु विवाद, आनंदकंद ढिंग गमन करो ।
द्वारावति नाथ अनाथन के, हैं नाथ, नाथ ! चित मांहि धरो ॥
वे देख तुम्हें इस हालत में, पल में सब कष्ट मिटावेंगे ।
तबियत कर देंगे हरी, "हरी", जब तुमको गले लगावेंगे ॥

संतोषी द्विज को नहीं, जची पत्नि की बात ।
बोले संकट ने किया, तेरा व्याकुल गात ॥

दिन सदा एक से रहें नहीं, सुख के दिन भी आजावेंगे ।
दुर्दिनों के पूरे होते ही, शुभ दिन झट शक्ल दिखावेंगे ॥
विपता में बुद्धीमान मनुज, नहिं दुःख प्रकाश किया करते ।
वे जानते हैं जनका यों ही, इमतिहां दयाल लिया करते ॥
अस्तू चुपचाप कु दिवसों को, काटो चित में धीरज धर कर ।
संकट के समय नहीं चहिये, जाना मित्रों के भी घर पर ॥
कारन यश, प्रेम, बड़ाई अरु, गरुआपन, मान, कीर्ति सारे ।
ये गये तुरत जब दोस्त के यहां, जा कहा "हमें कुछ दो प्यारे" ॥
वैसे तो वे हमजोली हैं, सहपाठी हैं गुरुभाई हैं ।
लेकिन इस समय सुरेश से भी, बढ़कर उनकी प्रभुताई है ॥
अनगिनती राजे महाराजे यहां तक गंधर्व यक्ष किन्नर ।
उनके दर्शन की आशा में, रहते हैं खड़े नित द्वारे पर ॥

तो भी होता है नहीं, उन प्रभु का साक्षात् ।
फिरमुझ दुखियाकी कहो, को पूछेगा बात ॥

तब कहा सुशीला ने स्वामी बातों में विषय न टालो तुम ।
लो लोटा डोर लकुटि कर में, मग द्वारावती सम्भालो तुम ॥
मैं तुम्हें पठाती नहीं यदी, भर पेट अन्न बच्चे पाते ।
तन ढकने को कपडा मिलता, तो निर्भय हो हरि गुण गाते ॥
पर यहां जो छान है वो भी पिय, बरसात में चलनी सी जानों ।
है टूटा तवा, मृतिका के, बर्तन वो भी खंडित मानों ॥
कंथा से बदतर है कमली, चिथड़े से बढ़कर टाट हुआ ।
है तीन पांव का तख्ता ये, जो सोने के हित खाट हुआ ॥
पुनि मेरी साड़ी की हालत, देखो कैसी सुन्दर सोहे ।
सो जगह लगे पेबन्द नाथ, जो दरिद्रता का मन मोहे ॥
बच्चे भी वस्त्र रहित रह कर, ज्यों त्यों कर समय बिताते हैं ।
पड़ गये ठंड से तन काले, रजनी भर दांत बजाते हैं ॥

परसों प्रातःकाल से, मिला न इन्हें अहार ।
इनकी हालत का जरा, चित में करो विचार ॥

फिर ये भी ख्याल तजो प्रीतम, तुम कैसे दर्शन पावोगे ।
वहां जाते ही अनुचर द्वारा, भीतर पहुँचाये जावोगे ॥
कारन नटवर की ड्योढ़ी पर ब्राह्मण नहिं रोके जाते हैं ।
लखते ही द्विज को, द्वारपाल, झटपट अंदर पहुंचाते हैं ॥
वर्षों हो गये दुःख सहते, पर मैंने कभी न जोर दिया ।
अष्टम षष्टम दिन बिता दिये, हृदय में कभी न ग़ोर किया ॥
पर आज ध्वनी अंतःहिय से, पिय बार बार ये आती है ।
पहुँचो द्वारावति कृष्ण निकट होनी कुछ भली लखाती है ॥

यों तिय द्वारा जब किये, गये विप्र लाचार ।
तब उट्ठे प्रभु ध्यानधर, लोटा डोर सम्भार ॥

पुनि चले, फेर ठिठके व कहा, मैंने तेरा कहना माना ।
पर एक बात तो बतला दे, क्या भेंट मित्र को पहुंचाना ॥

उस विपद विदारनहारे को. विपता की बात सुनाओना ।
लक्ष्मीपति के सन्मुख जाकर, कुछ लक्ष्मि मांग कर लाओना ॥
तुम जन हो कृष्ण जनार्दन हैं, सेवक मालिक का नाता है ।
जन मांगे अगर जनार्दन से, तो क्या अधर्म कहलाता है ॥
यदि मित्र समझते हो उनको, तो भी लज्जा की बात नहीं ।
दुख मित्र का हरते मित्र सदा होती आई है रीति यही ॥
अस्तू तज सब वादरु विवाद, आनंदकंद ढिंग गमन करो ।
द्वारावति नाथ अनाथन के, हैं नाथ, नाथ! चित मांहि धरो ॥
वे देख तुम्हें इस हालत में, पल में सब कष्ट मिटावेंगे ।
तबियत कर देंगे हरी, "हरी", जब तुमको गले लगावेंगे ॥

संतोषी द्विज को नहीं, जची पति की बात ।
बोले संकट ने किया, तेरा व्याकुल गात ॥

दिन सदा एक से रहें नहीं, सुख के दिन भी आजावेंगे ।
दुर्दिनों के पूरे होते ही, शुभ दिन झट शक्ल दिखावेंगे ॥
विपता में बुद्धीमान मनुज, नहिं दुःख प्रकाश किया करते ।
वे जानते हैं जनका यों ही, इमतिहां दयाल लिया करते ॥
अस्तू चुपचाप कु दिवसों को, काटो चित में धीरज धर कर ।
संकट के समय नहीं चहिये, जाना मित्रों के भी घर पर ॥
कारन यश, प्रेम, बड़ाई अरु, गरुआपन, मान, कीर्ति सारे ।
ये गये तुरत जब दोस्त के यहां, जा कहा "हमें कुछ दो प्यारे" ॥
वैसे तो वे हमजोली हैं, सहपाठी हैं गुरुभाई हैं ।
लेकिन इस समय सुरेश से भी, बढ़कर उनकी प्रभुताई है ॥
अनगिनती राजे महाराजे यहां तक गंधर्व यक्ष किन्नर ।
उनके दर्शन की आशा में, रहते हैं खड़े नित द्वारे पर ॥

तो भी होता है नहीं, उन प्रभु का साक्षात् ।
फिर मुझ दुखिया की कहो, को पूछेगा बात ॥

तब कहा सुशीला ने स्वामी बातों में विषय न टालो तुम ।
लो लोटा डोर लकुटि कर में, अग द्वारावती सम्भालो तुम ॥
मैं तुम्हें पठाती नहीं यदी, भर पेट अन्न बचे पाते ।
तन ढकने को कपड़ा मिलता, तो निर्भय हो हरि गुण गाते ॥
पर यहां जो छान है वो भी पिय, बरसात में चलनी सी जानों ।
है टूटा तवा, मृतिका के, बर्तन वो भी खंडित मानों ॥
कंथा से बदतर है कमली, चिथड़े से बढ़कर टाट हुआ ।
है तीन पांव का तख्ता ये, जो सोने के हित खाट हुआ ॥
पुनि मेरी साड़ी की हालत, देखो कैसी सुन्दर सोहे ।
सो जगह लगे पेबन्द नाथ, जो दरिद्रता का मन मोहे ॥
बच्चे भी वस्त्र रहित रह कर, ज्यों त्यों कर समय बिताते हैं ।
पड़ गये ठंड से तन काले, रजनी भर दांत बजाते हैं ॥

परसों प्रातःकाल से, मिला न इन्हें अहार ।
इनकी हालत का जरा, चित में करो बिचार ॥

फिर ये भी ख्याल तजो प्रीतम, तुम कैसे दर्शन पावोगे ।
वहां जाते ही अनुचर द्वारा, भीतर पहुँचाये जावोगे ॥
कारन नटवर की ड्यौढ़ी पर ब्राह्मण नहिं रोके जाते हैं ।
लखते ही द्विज को, द्वारपाल, झटपट अंदर पहुंचाते हैं ॥
वर्षों हो गये दुःख सहते, पर मैंने कभी न जोर दिया ।
षष्टम पष्टम दिन बिता दिये, हृदय में कभी न ग़ोर किया ॥
पर आज ध्वनी अंतःहिय से, पिय बार बार ये आती है ।
पहुँचो द्वारावति कृष्ण निकट होनी कुछ भली लखाती है ॥

यों तिय द्वारा जय किये, गये विप्र लाचार ।
तब उट्ठे प्रभु ध्यानधर, लोटा डोर सम्भार ॥

पुनि चले, फेर ठिठके व कहा, मैंने तेरा कहना माना ।
पर एक बात तो बतला दे, क्या भेंट मित्र को पहुंचाना ॥

ाशिर्वाद से राजी हो, ऐसा सीधा न उसे मानो।
पक्का ठग चंचल वृत्ती, पहले दरजे का चतुर जानो॥
सुन पत्नी अति सुख पाकर, कुछ चांवल मांग तुरत लाई।
क फटे चीथड़े में बांधे, बोली ले जाओ हरषाई॥
दाब बगल में पोटली, पांवों देव मनाय।
चले द्वारका की तरफ, दीन सुदामा राय॥
न उपवन गिरि लांघते कुछ, द्विजराज महर्ष पधार रहे।
जेह्वा से शुचि यश मोहन का, वे बारम्बार उचार रहे॥
गोपी जन वल्लभ केशव, हे राधारमण नंद लाला।
रासविहारी अघहारी, हे विपिन विनोदी गोपाला॥
घु वयस पूतना गति दीन्हीं, शकटासुर यमपुर पहुँचाया।
नि त्रणावर्त के प्राण गये, बक असुर का अंतिम दिन आया॥
र दिया अघासुर का चूरन केशो निज धाम पठाया है।
क्रादिक का मद हर डाला, अंगुली पर गिरी उठाया है॥
ज वालों के नित संग रहकर, वन वन में गाय चराई है।
माखन चोर चीर हारी लीलायें खूब दिखाई हैं॥
ौमासुर वीर प्रलम्ब हने, वृषभासुर प्राण निकाले हैं।
ाल यत्त को मणी विहीन किया, नंदराय के संकट टाले हैं॥
त डाला कंस दुराचारी, पुनि उग्रसेन नृप ठहराया।
गधेश को सैन्य विहीन किया बल से रुकमणि को अपनाया॥
र प्राण रहित भौमासुर को, वर डाली सोलह सहसतिया।
लीला पुरुषोत्तम यदुवर, है कौन कार्य तुमने न किया।
भूमि भार हलका करन, संत संवारन काज।
भूतल पर तुम अवतरे, अहो नाथ ब्रजराज॥
तुम्हरे बचपन का साथी, तव दर्श हेतु तहां आता हूँ।
ो जाय मनोरथ सफल मेरा, बस यह ही विनय सुनाता हूँ॥

अच्छा व बुरा जो हूं सो हूँ, पर दास आपका हूँ स्वामी ।
क्या मेरी सुधि लोगे न प्रभू, आनंदकंद अंतरयामी ॥
शास्त्रों की आज्ञा के माफिक, मैंने गृहस्थ स्वीकारा है ।
उसका सब योग अरु क्षेमवहन, करने का काम तुम्हारा है ॥
सब भरोस सब आशमम, फकत तुम्हीं हो श्याम ।
रहता तुम पर ही सदा, निर्भर भक्त सुदाम ॥

※ गाना ※

हे कृष्ण कृष्ण श्रीकृष्ण कृष्ण तुम्हरा बस एक सहारा है ।
दीनों हित भक्तों के कारण, मनमोहन महि अवतारा है ॥
हे दयानिधे तव दरशन को, पावन चरनों के परसन को ।
पातक दरिद्र के धर्पन को, तुम्हरी जानिब पग धारा है ॥
कोई श्याम कोई घनश्याम कहे, कोई दिल का आराम कहे ।
मेरा पवित्र अंजाम रहे, इस कारण तुम्हे पुकारा है ॥
तुम योग अरु क्षेम चलाते हो, सब भांति तुम्हीं अपनाते हो ।
भक्तों हित दौड़े आते हो, वेदों ने यही पुकारा है ॥



इस प्रकार हरि ध्यान में, मस्त हुये द्विज दीन ।
चले जाँय बढ़ते हुये, लखते दृश्य नवीन ॥
चलते चलते दिन तीन हुये, आधा रस्ता न निबट पाया ।
छाले पांवों में पड़े और, घुटनों का बल भी चुक आया ॥
तब होकर क्लान्त सुदामाजी एक वृक्ष तले आ जाते हैं ।
कर नेत्र बंद निज हृदय में, नटवर का ध्यान लगाते हैं ॥
मारे थकान के जल्दी ही, हो गये नींद वश द्विजराई ।
लख अबतर हालत निज जन की, उत लगे सोचने यदुराई ॥
इस समय मदद यदि की न गई, तो भक्त बहुत दुख पायेगा ।
द्वारावति तलक पहुँचने में, सम्भव है प्राण गमायेगा ॥

अस्तू निज महा माया द्वारा, अति शीघ्र उसे यहां बुलवाऊं ।
हो चुके दुःख के दिवस पूर्ण, अब पूर्णतया सुख पहुँचाऊं ॥
कर ये विचार महा माया को, मायेश ने फौरन पठा दिया ।
उसके द्वारा अपने जन को, अपने पुर के ढिग मंगा लिया ॥
प्रातकाल के होत ही, जगे सुदामा राय ।
देख दृष्य अद्भुत परम, गये तुरत चकराय ॥
सोचा ये कैसा अचरज है, निशि रचना कहां विलाय गई ।
रजनी में कौन महा शक्ती, मुझको यहां पर पहुँचाय गई ॥
हरि इच्छा नित्य नियम कर लूं तब राहगीरों से बात करूं ।
किस जगह आन पहुँचा हूँ मैं पा पता, हृदय का क्लेश हरूं ॥
ये सोच खड़े हो गये विप्र, पुनि सरिता जल में स्नान किया ।
फिर बैठ एक स्वच्छासन पर आनंदकन्द का ध्यान किया ॥
कर मनोमयी अर्चन पूजन, द्विज उठा पोटली चलते हैं ।
मन में श्री कृष्ण कृष्ण यदुवर, यदुनायक नाम सुमिरते हैं ॥
आगे मग में इन्हें इक, सज्जन मिला उदार ।
डरते डरते पूछने, लगे विप्र तिहि बार ॥
हे भाई थोड़ी कृपा करो, मुझ पर अरु इतना बतलाओ ।
ये जगह कौन है किसका पुर, सब हाल हकीकत समझाओ ॥
इस थल की शोभा को लखकर, आंखें ललचाई जाती हैं ।
सुर दुर्लभ रम्य प्रदेश देख, कल्पना गुलांचें खाती हैं ॥
सब नगर निवासी वृद्ध युवा, रतिराज लजावन हारे हैं ।
गलियें चौहट्टे चौक सुघड़, हाटक मय घर चौबारे हैं ॥
हरि रचित द्वारावती पुरी, किस राह से जल्दी आयेगी ।
किस दिशि में कितनी दूर मित्र, जाने से शक्ल दिखायेगी ॥
ये सुन उस सज्जन ने द्विज को, नख से शिख तक देखा हंसकर ।
फिर कहा कभी इस ओर नहीं, आये हो देवता विप्र प्रवर ॥

ये ही वो प्रभु की नगरी है, जहं तुमको जाना है भाई ।
आवो तुमको मैं बतला दूं, जिस जगह मिलेंगे यदुराई ॥
अब फिक्र तजो इस हालत का, सचमुच निहाल हो जावोगे ।
इस दरिद्र देवता से निश्चय, भू सुर छुटकारा पावोगे ॥

विप्र सुदामा के हृदय, अचरज हुआ महान ।
पुनि अति ही आनंद से, चले सुमिर भगवान ॥

शोभा पुर की पुरवासिन की, लखते चल रहे सुदामाजी ।
आखिर पहुँचे उस मंदिर तट, शोभित थे जहं छबिधामाजी ॥
उस पुरुष ने यहां आकर इनसे, मुस्काकर कहना शुरू किया ।
लो पंडितराज पधारो अब, श्रीकृष्ण निकेतन बता दिया ॥
बे रोक टोक जावो भीतर, यहां विप्र न रोके जाते हैं ।
प्रभु आज्ञा से सत्वर उनको, अनुचर अंदर पहुँचाते हैं ॥
अच्छा प्रणाम स्वीकार करो, अब निज कारज को जाता हूँ ।
तुम्हरे दर्शन कर प्रातकाल, बड़भागी निज को पाता हूं ॥

विप्र सुदामा ने इसे, दई सहर्ष असीस ।
फिर हरि मंदिर में घुसे ध्यान धार जगदीश ॥

जब लांघ चुके ड्योढ़ियां तीन, तब ठिठक गये श्री द्विजराई ।
रक्षकों से जाकर यों बोले, श्रीकृष्ण से जाय कहो भाई ॥
तुम्हरे बालकपन का साथी, इक विप्र सुदामा आया है ।
दर्शनों की खातिर द्वार खड़ा, आयसु लेने भिजवाया है ॥
अनुचर हंस पड़ा देख सूरत, पर डरा श्राप से अरु धाया ।
कर पार ड्योढियां बाकी की, मोहन के निकट चला आया ॥

बोला दोउ कर जोड़ कर, सुनिये दीनदयाल ।
द्वारे पर आया प्रभो, विप्र एक कंगाल ॥

है नंगे सिर तन वस्त्र रहित, कटि में एक जीर्ण लंगोटी है ।
कुछ पता नहीं पदत्राणों का, दारिद्र की पूर्ण कसौटी है ॥

केवल है चर्म हड्डियों पर, शोणित व मांस का नाम नहीं ।
है कमर झुकी टूटी लकुटी, अति दीन दशा नहिं जाय कही ॥
तन कांप रहा है वेंत सरिस, नहिं वचन भी बोले जाते हैं ।
मानों प्रत्यक्ष मूरति धर कर, दारिद्रदेव ही आते हैं ॥
इतने पर भी वो कहता है, मम सखा कृष्ण छबिधामा है ।
किस ग्राम का है कुछ ज्ञात नहीं, बतलाता नाम सुदामा है ॥
श्रोताओ ! अनुचर ने आकर, जिस समय खबर ये पहुँचाई ।
चौपड़ से मन बहलाते थे, रुक्मिणी संग तब यदुराई ॥
सुनते हि मित्र का नाम कृष्ण, आकुल व्याकुल हो उठ धाये ।
जा पड़ा दुपट्टा भूमी पर, पीताम्बर छोर लटक आये ॥
हो गया रंग सब छिन्न भिन्न, भागे अरु ड्योढी पर पहुँचे ।
उत से दौड़ा वो दीन विप्र, इत मोहन मुरलीधर पहुँचे ॥

प्रभु से प्रथम सुदाम या, द्विज से प्रथम दयाल ।
बता न सकती लेखनी, कौन मिला तेहि काल ॥

पर मिले खोल जी दोनों ही, देरी तक दोनों लिपटे रहे ।
दोनों मित्रों के प्रेमाश्रू, बस एक धार होकर के बहे ॥
आखिर कर पकड़ दीनबंधू, निज सखा को महलों में लाये ।
सुन्दर सिंहासन पर बिठला, अति हित से वाक्य ये फरमाये ॥
हे परम मित्र हे बालसखा, गुरुकुल के सहपाठी भाई ।
मम सुधि इतने दिन बाद तुम्हें, एकाएक कैसे हो आई ॥
मैं भी गृहस्थ में फँसा रहा, फिर लड़नी पड़ी लड़ाई भी ।
पापियों राक्षसों की भैया, कुछ करनी पड़ी सफाई भी ।
इसलिये बुला नहि सका तुम्हें, नहिं मैं खुद भी आने पाया ।
पर शोक है तुम दुख पाते रहे, संदेश तलक नहिं भिजवाया ॥
अच्छा अब बातें फिर होंगी, पद प्रक्षालन होना चहिये ।
आरहे हो इतनी दूर से तुम, रास्ते का श्रम खोना चहिये ॥

यों कह रुक्मणि आदि से मंगवा निर्मल वारि।
धर परात में पांव दोउ, धोने लगे मुरारि॥
पंकज सम हाथों से पहिले, झाड़ी सब धूल सुदामा की।
पुनि पीताम्बर से पोंछ करी, विपता निर्मूल सुदामा की॥
फिर जब पांवों को अवलोका, जी भर आया यदुराई का।
अध टूटे कंटक चुभे कहीं, कहिं पड़ा है घाव बिवाई का॥
लख मित्र की ऐसी दीन दशा, करुणा कर करुणानिधि रोये।
पानी इक ओर पड़ा हि रहा, आंसुओं से दोनों पग धोये॥
प्रभु चरणों दक तो गंगा बन, कलिमल को दूर हटाता है।
श्रद्धायुत न्हानेवाले को, शुचि स्वर्ग धाम पहुंचाता है॥
पर हरि नयनों के पानी की, महिमा नहि कहने में आवे।
उसका तो पात्र सुदामा सम, कोई श्रेष्ठ भक्त ही कहलावे॥
जिस तरह रसायन से तांबा, अपना सब मैल गंवाता है।
सुन्दर सोने का रूप धार, हाटक के भाव बिकाता है॥
बस उसी तरह प्रभु नयन अश्रु, द्विज दीन के दुख मिटाते हैं।
हरि सम वैभव दिलवा उसको, निश्चित निर्द्वन्द बनाते हैं॥
अल किस्सा पांव सुदामा के पोंछे पुनि निज पीताम्बर से।
फिर निर्मल जल से स्नान करा, तन भूषित किया सुअंबर से॥
षटरस व्यंजन हो गया, इतने में तैयार।
चले मित्र को साथ ले, जीमन जगदाधार॥
उत्तम आसन बिछ गये, लगे तुरत दो थाल।
करन लगे भोजन पुनी, द्विज युत दीनदयाल॥
श्रीकृष्ण सुदामा हंसी खुशी, भोजन कर रहे सुख पाकर।
झल रहीं चंवर पंखा आदिक पटरानी सारी तहं आकर॥
षट्रस व्यंजन के साथ साथ, श्रवणेन्द्रिय का भी भोजन था।
आदर्श गीत अरु नृत्यकला, का अद्भुत शुचि आयोजन था॥

भोजन कर चुकने पर इनके, कर धुला सुगंधित जल द्वारा ।
उत्तम ताम्बूल लगा फौरन, भीष्मक कन्या ने पग धारा ॥
दे पान महल में लाकर पुनि द्विज को सिंहासन बिठलाया ।
अरु लगे स्वयम् सेवा करने, आनंदकंद श्रीयदुराया ॥
सेवा में तल्लीन थे इधर कृष्ण यदुनाथ ।
उधर सकल पटरानियां करती थीं यों बात ॥
देखो बहिनों द्विज की किस्मत त्रैलोक्यनाथ सेवा करते ।
अपने हाथों से चरन धोय, अति प्रेम सहित पंखा झलते ॥
जिसने सारी जिन्दगानी में, कंचन देखा न नजर भर कर ।
वो आज स्वर्ण सिंहासन पै, बैठा डट के अति आनंद भर ॥
जिसको कपड़ा तक मिले नहीं, उसको रेशम पहिराया है ।
कट गई उम्र जिसकी दुख में उसको अति सुखी बनाया है ॥
सचमुच इन लीलाधारी के, हर एक आचरण निराले हैं ।
इनको वे अतिशय प्यारे हैं, जो जग में दरिद्र निवाले हैं ॥
इनका व्यौहार सदा से ही, बहिनों ये होता आया है ।
ठुकराते रहे अमीरों को निर्धनों को मित्र बनाया है ॥
रखते थे प्रेम अहीरों से बचपन में बन गोपाल यही ।
उनकी झूठन तक खाते थे, कह रही हैं हम ये बात सही ॥
फिर देखो दुर्योधन को तज, श्री विदुर के यहां सिधाये थे ।
पकवान की ऐवज में छिलका, खाकर भी खूब अघाये थे ॥
सही है सब कुछ पर मुझे, अचरज होत महान ।
बहिनो सुनलो ध्यानधर, बोली एक पटरानि ॥
नहिं आज तलक हरि मित्र सुना, ये कहां से टपक पड़ा आकर ।
सुर जिनकी सेवा हित तरसें, वे सेवा करते हर्षाकर ॥
मेरा तो है अनुमान यही, कुछ अवसि दाल में काला है ।
हे अंतरभेदी इसीलिये, खुश रखते दीनदयाला है ॥

बस इसी तरह की बातें सब, करती थीं आपस में नारी ।
उस तरफ सुदामा से बोले, जन मन रंजन गिरवरधारी ॥
हे सखा याद होगा तुमको, जब हम तुम गुरु सांदीपन के ।
यहां रहते विद्या पढ़ते थे, करते अध्ययन शास्त्रन के ॥
उस समय शुद्ध मन से मुझ पर, तुम सच्चा स्नेह दिखाते थे ।
जो काम गुरू मुझ से कहते, वो मित्र तुम्हीं करलाते थे ॥
तुम्हरे संतोषि स्वभाव ने अरु, सात्विक वृत्ती मृदुभावों ने ।
अनुगामी मुझ को बना लिया सच्ची भक्ती के चावों ने ।
नहिं भूले होगे वो दिन भी, लकड़ी लेने वन धाये थे ।
पीछे से वर्षा घोर गिरी, लख अंधकार घबराये थे ॥
उस समय तुम्हीं ने मित्र मेरे, प्राणों की रक्षा कीन्ही थी ।
तुम्हरी ही बुद्धीमानी ने, सब तरह सान्त्वना दीन्हीं थी ॥
वरना उस दिन जीव का, हो जाता अवसान ।
भूला हूँ नहिं आज भी, तुम्हरा वो अहसान ॥
इसकी ऐवज क्या भेट करूं, नहिं कोई वस्तु नज़र आवे ।
जब तलक जियेगा मोहन ये, बस ऋणी तुम्हारा कहलावे ॥
तुम केवल बाल सखाहि नहीं, तुमतो आत्मा हो तन मन हो ।
हो तुम्ही गुरु सांदीपन भी, मैं जनहूँ आप जनार्दन हो ॥
तुम्हरे मिलने से मित्र मुझे, इतनी प्रसन्नता छाई है ।
मानों व्रज की राधेरानी, धर रूप सुदामा आई है ॥
मुझ में राधे में पुनी, तुम में फरक न होय ।
मेरे हृदय में रखूं, भक्त सुदामा तोय ॥

* गाना *

हम मित्रो के मित्र हमारे ॥
सुनो सुदामा ध्यान लगाकर यह करतव निरधारे ॥ हम० ॥
जिसको मित्र बनाया द्विजवर प्राण तलक विसराऊं ।

अपना सर्वस्व भी देकर मैं उसका दुःख हटाऊं ॥
यह व्रत कोटि विघ्न आने पर कबहूं टरे ना टारे ॥ हम० ॥
सुख के साथी इस दुनयां मे मिले हमे बहुतेरे
हाँ मे हाँ करने वाले भी रहते चहुं दिशि घेरे
संकट पड़े मदद हित दौड़े अस बन्धू बलिहारे ॥ हम० ॥

प्रभु के ऐसे वाक्य सुन, पुलकाये द्विजराय ।
प्रेम सहित प्रभु चरन में, दीन्हा शीश झुकाय ॥
फेर दोऊ कर जोड़ कर, बोले विप्र कुमार ।
हे जगदीश्वर धन्य हो, धन्य भक्त आधार ॥
मुझ में न योग्यता नाम को है, क्यों लज्जित करते यदुराई ।
मैं तो बस भक्त तुम्हारा हूं, है तुम्हरी ही सब प्रभुताई ।
है देव आपकी सदा से यह, भक्तों का मान बढ़ाते हो ।
कर्ता धर्ता हो तुम्हीं नाथ, जगको न मगर दरसाते हो ॥
त्रैलोक्य उजागर दिनकर को दीपक के द्वारा लखना क्या ।
जिसकी स्वासों से वेद बने, उसको गुरु के गृह पढ़ना क्या ॥
सांदीपन होकर खुद तुमने, अपने को आप पढ़ाया है ।
नर लीला हेतु शिष्य बनकर गुरु का सन्मान बढ़ाया है ॥
आंखें मेरी खुलगईं बन्शीधर घनश्याम ।
परदा माया का हटा, हुआ प्रकाश ललाम ॥
घर से चलने से प्रथम प्रभू, मैं दिलमें अति सकुचाया था ।
जाने प्रभु चीन्हेंगे या नहीं, ऐसा विचार हिय आया था ॥
गुरुकुल के द्रोण द्रुपद की तरह कहिं मेरा हाल न होजावे ।
खातिर करना तो दूर रहा, उल्टे धक्के नहिं दिलवावें ॥
लेकिन मेरा हो गया दूर सकल भ्रम आज ।
सचमुच दीनदयाल हो, हे नटवर यदुराज ॥

वैसे तो तुम हे लीलाधर, यदुनायक रहते रूखे हो।
पर भक्तों के वश निश्चय हो, तुम सदा भाव के भूखे हो॥
दुर्योधन के षट्रस व्यंजन, तज साग विदुर गृह खाया है।
पांडवों का थोड़ा अन्न खाकर, दुर्वासा कोप मिटाया है॥
जब भीड़ पड़ी पंचाली पर, तुम्हीं ने लाज बचाई थी।
गज का जो ग्राह से त्राण हुआ, वह सब तुम्हरी प्रभुताई थी॥
कर्मों का फल भुगताने में, तुम पूरे कट्टर हो भगवन।
भूलों को मग दिखलाने में, तुमही रहबर हो जीवनधन॥
हे अंतरयामी दुख हारी, घट घट में वास तुम्हारा है।
ये दीन सुदामा चरण पड़ा, भव कष्ट हरोगे सारा है॥

यों कह भावों से भरा, दीन विप्र अकुलाय।
कृष्ण चरण में गिर गया, कहि जय श्रीव्रजराय॥

प्रभु ने इसको हृदय से लगा, पुनि मुस्काकर यों फरमाया।
ये कैसी बातें करते हो, मम प्राण सरिस हो द्विजराया॥
अच्छा वर्षों के बाद कहीं, हे सखा आज तुम आये हो।
फरमाओ अपने मित्र हेतु, सौगात कौनसी लाये हो॥
भाभी से ऐसी आश नहीं, जो खाली हाथ पठाया हो।
अस्तू दे डालो भाग मेरा, जो कुछ उसने भिजवाया हो॥
पहिले भी गुरु पत्नी ने हमें जो चने दिये थे हे भाई।
वो भी तुम स्वयम् खा गये थे, पर अब न चलेगी चतुराई।
लाओ दो शीघ्र मेरा हिस्सा, क्यों बगल में अपनी दबा रहे।
छलबल से जीत न सको मुझे, छलदक्ष सकल संसार कहे॥
असमंजस में पड़ गये विप्र, पोटली छिपाना चाहते थे।
पर प्रभु भी जिद के पक्के थे, निज हाथ बढ़ाते आते थे॥

आखिर प्रभु ने बगल से, लई पुटरिया छीन।
नत मस्तक द्विज हो गये, आभा बदन विहीन॥

बोले सोने की लंका को, मुद्रिका दिखाना है स्वामी ।
क्या रक्खा है इस चिथड़े में, जो उत्सुक हो अंतरयामी ॥
मैं आता खाली हाथों ही, ब्राह्मणी ने तंदुल बांध दिये ।
शरमाता हूँ तिय करनी पर, लज्जा समुद्र भर गया हिये ॥
सूरज प्रकाश जिस जगह करे, जुगनू की वहां हकीकत क्या ।
जहां भरे रहें भंडार सदा, वहां इस कनकी की इज्जत क्या ॥
प्रभु बोले कनकी कहो नहीं, है भेंट मेरी भौजाई की ।
जो भाव सहित भिजवाई है, पर तुमने वृथा सफाई की ॥
बातों में रत थीं हरि रानी, लख भेंट यहां पर आय गईं ।
घेरा आकर दोउ मित्रों को, हरि लीला देखन मगन भईं ॥

प्रभु ने गठरी खोल कर, तन्दुल लीन्हे हाथ ।
मुट्ठी भर मुख में धरी, फिर बोले यदुनाथ ॥

रुक्मणी आदि प्रिय ललनाओं, क्या कनकी स्वाद बखानूं मैं ।
त्रिभुवन में इससे बढ़ कोई, नहिं वस्तु यही अनुमानूं मैं ॥
जीवन भर में बस एक बार, स्वादिष्ट पदारथ खाया था ।
जो दिया था विदुर भामिनी ने, जब मैं हस्तिनापुर धाया था ॥
या अब किरपा से सुदामा की, ये मिली है कनकी मन चाही ।
होगईं इन्द्रियां तृप्त मेरी, सौगात भवन बैठे आई ॥
इतना कह द्वितियः मुट्ठी भी, फौरन प्रभु ने मुख में डाली ।
और लगे तीसरी भी भरने, तब बढ़ आई भीष्मक लाली ॥
कर थाम देवकीनंदन का, बोली क्या करते बनमाली ।
दो मुट्ठी चावल खाकर के, दो लोक सम्पदा दे डाली ॥
अब तृतियः मुट्ठी भी खाकर, कित रहोगे जाकर जीवनधन ।
कर दिया सुदामा को निज सम, खुद रहना चहत सुदामा बन ॥

मनमोहन कहने लगे, सुनो प्रिया चितलाय ।
भक्त विप्र त्रैलोक्य में, सब से अधिक सुदाय ॥

नको यदि सर्वस भी दे दूं, तो भी नहिं अनुचित कर्म है ये ।
|सको ये बात रुचे न रुचे, लेकिन मेरा तो धर्म है ये ॥
जेस तरह सुखी द्विज देव रहें, बस काम वही मैं करता हूं ।
नेर्गुण से सगुण इन्हीं के लिये, होकर भू पर अवतरता हूं ॥
केर केवल बाल सखा हि नहीं, परिपूर्णतया मम भक्त है ये ।
iतोषी है अरु रात दिना, रहता मुझ में अनुरक्त है ये ॥
1 रहा है दुख कइ वर्षों से, पर कभी न हाथ पसारा है ।
पत्नी ने जब मजबूर किया, तब कहीं यहां पग धारा है ॥
फिर भी मुख से नहिं मागेगा, अपने प्रण का कट्टर जानो ।
ऐसे भक्तों को जो भी कुछ, दे दिया जाय थोड़ा मानो ॥
है द्रव्य सार्थक वही प्रिया, सत्पात्रों को जो दिया जावे ।
जो प्यास बुझावे औरों की, वो ही जल निर्मल कहलावे ॥
फिर ध्यान करो कुछ त्रिभुवन का, क्या कहेगा मुझ को हे भामा ।
"फिरता है दरिद्रावस्था में, जिसके हैं सखा प्रभु अभिरामा" ॥

यही सोच दो लोक को, दे दी लक्ष्मि तमाम ।
बाकी तुम्हरा भाग है, करो जाय आराम ॥
हुई बात जो कुछ यहां, प्रभु रुक्मणि दरम्यान ।
समझ सके नहिं अर्थ कुछ, उसका विप्र सुजान ॥

बस इसी तरह से हंसी खुशी, बातों में दिन छिपने आया ।
भगवान भास्कर अस्त हुये, चहुं दिशि में अंधकार छाया ॥
मणिमय दीपक की आभा से, आलोकित भवन हुये सारे ।
विश्राम भवन में तब द्विज वर, विश्राम करन हित पग धारे ॥
सुखदायक सैया पर द्विज को, आनंदकंद ने सुला दिया ।
पुनि चरन मित्र के दाबन हित, हरपाय पलंग पर दखल किया ॥

थका थकाया विप्र था, मिला जो अति आराम ।
मगन घोर निद्रा हुआ, सोचन लागे श्याम ॥

मुख से मांगेगा कभी नहीं, बिन मांगे धन देना चहिये ।
मम आश्रित का नित योग क्षेम, मुझको सिर पर लेना चाहिये ॥
इतनी दे दूं सम्पदा इसे, व्यय कीन्हे क्षय नहिं पावेगी ।
सत्पात्र है ये इसके द्वारा, सन्मार्ग में बांटी जावेगी ॥
हो गया है भाग्योदय इसका, अब कभी न दुख पावेगा ये ।
धन वस्त्रहीन कंगालों का, रक्षक माना जावेगा ये ॥
यों कर विचार सर्वेश्वर ने, चट विशकर्मा को बुलवाया ।
उसके आजाने पर अपना, आदेश इस तरह समझाया ॥
जावो तुम स्थान सुदामा के, वहां से दरिद्र को हटवाओ ।
द्वारावति सदृष्य परम सुघड़, एक नगरी वहां बसा आओ ॥
दो लोक सम्पदा को लेकर, इस द्विज के घर में पहुंचाना ।
नव निद्धी अष्ट सिद्धियों को, मुस्तकिल रूप में रख आना ॥
बस निशा रहे जब तक सारा होजाय काम कुछ भूल न हो ।
छा जाय महा सुख द्विज के घर, तहं किसी तरह का शूल न हो ॥
ये सुन तत्काल विश्वकर्मा, द्विज के निवास को चल दीन्हा ।
प्रभु की आज्ञानुसार फौरन, सारा सुन्दर कारज कीन्हा ॥

कुछ देरी में आनकर, खबर दई पहुँचाय ।
तब हर्षित होकर हृदय, शयन कीन्ह यदुराय ॥

देखो दाता की प्रभुताई, चुपचाप उसे धनवान किया ।
घर आये विप्र सुदामा का, जी खोल खूब सन्मान किया ।
पर लीलाधर की लीला को, वो भोला द्विज क्या जानता था ।
वो तो निज को अपने मन में, परिपूर्ण दरिद्री मानता था ॥
था घोर सुषुप्ति अवस्था में, पिछली निशि एक स्वप्न आया ।
मानो प्रभु ने किरपा करके, उसको कुवेर पद दिलवाया ॥
तब हर्षित हो दोउ हाथों से, सत्पुरुषों को धन बांट रहा ।
हरि नाम कीर्तन में रत रह, मृत्यू का हृदय उचाट रहा ।

चारों बच्चे अरु धर्मपत्नि, तेजस्वी दृष्टी आते हैं ।
हाथी घोड़ों का पार नहीं, कइ अनुचर इतउत धाते हैं ॥
मानों आ पहुँची ब्रह्म घड़ी, बंदीजन गुनगन सुना रहे ।
सुचि प्रातकाल का समय जान, नित नियम हेतु हैं जगा रहे ॥
उठा तुरत द्विज नींद से, नित्य नियम कर पूर्ण ।
पहुँचा दर्शन हेतु झट, थे जहं खलमद चूर्ण ॥
करवा कर प्रात कलेवा पुनि रथ में अपने ढिंग बिठला कर ।
चल दिये सैर करने के लिये, गिरि प्रवर्षण पर सुखसागर ॥
प्रभु के प्रबंध से पहिले ही, तहं पर सब ठाठ जमा पाया ।
गायन वादन अरु नृत्यकला, का सुघड़ दृष्य दृष्टी आया ॥
आनंद में दिवस तमाम हुआ, जब आई संध्या सुखदायक ।
तब जल बिहार करने के लिये, पहुँचे जलनिधि में यदुनायक ॥
तैयार थीं अनगिनती नावें, निज सखा को तुरत सवार किया।
पुनि बैठे प्रभु रानियों सहित, मन माना खूब बिहार किया ॥
यों जल में थल में वायु में, कई दिवसों तलक सुदामा ने ।
आनन्द किया घर सुधि भुला, अस सौख्य दिया छविधामाने ॥
मित्र सुदामा को यहीं, करने दो आराम ।
देवऋषी की अब जरा, सुनो कथा सुखधाम ॥
जब से भौमासुर बधा, ब्याही राजकुमारि ।
तब से नारद सोचते, चलें हरी के द्वार ॥
कारन प्रभु की प्रभुता में शक, श्री देवऋषी को हो आया ।
किस तरह एक होकर रहते, नारी अनेक में यदुराया ॥
आखिर इकरोज सुमिर श्री हरि, वीणा के तार बजाते हुये ।
विधि-नंदन द्वारावति पहुँचे, मनमोहन का यश गाते हुये ॥
सब से पहिले रुक्मणि महलों, श्री नारद मुनी चले आये ।
यहां भीष्मक कन्या के संग में, चौसर खेलत नटवर पाये ॥

नारद को लखते ही केशव, उठकर पुनि सन्मुख आते हैं ।
शुचि जल से हाथ पांव धुलवा, शुभ आसन पर बिठलाते हैं ॥
यहां से उठकर जब ऋषीराज, सतभामा के मंदिर आये ।
अतिथी सत्कार विप्र भोजन, करवाते श्री हरि दरसाये ॥
यहां से भी चले और पहुँचे, श्रीजाम्बवती सुकुमारी के ।
यजमान बने यज्ञस्थल में, दर्शन पाये गिरिधारी के ॥
सत्या के महलों में मोहन, शैय्या आराम कर रहे थे ।
कालिन्दी के घर में भगवन, मुरली में राग भर रहे थे ॥
भद्रा गृह क्रीड़ा बच्चों संग, करते थे श्री शारंगपानी ।
लक्ष्मणा को चित्रकला सिखला, आनंद मुदित थे सुखदानी ॥

मित्रविंद के महल में, करते हास विलास ।
नाट्यकला दिखला रहे, पुलकित जगतनिवास ॥

इस तरह वायुसम गति वाले, श्री नारद महल विचरते थे ।
प्रत्येक भवन में हरि को पा, हिय में अति अचरज करते थे ॥
पुनि राजसभा में भी देखा, मित्रों संग मन बहलाते हैं ।
जिस जगह ऋषीश्वर जाते हैं, मोहन को आगे पाते हैं ॥
अनुभवी गृहस्थी के सदृष्य, प्रत्येक रङ्ग में रंगे हुये ।
हरि को नारद ने जहं देखा, देखा कारज में लगे हुये ॥
पहिले भी कितनी बार मुनी, हरि माया में लिपटाने थे ।
पर अबकी बारी जो देखा, उससे वे बने दिवाने थे ॥
यहां तक जल थल नभ में कोई, थल कृष्ण के बिना नहीं पाया ।
भर नजर जिधर देखा ऋषिने, मुरलीधर वहीं नजर आया ॥

आखिर फिर महलों गये, रुक्मिणि के विधिनंद ।
हाथ जोड़ हरि से कहा, जय सतचितआनंद ॥

मम तुच्छ बुद्धि को तो देखो, प्रभु तुम्हरी थाह लेने आया ।
जनु लवण सिन्धु की थाह लेने, एक लवण का ही पुतला धाया ॥

हे योगीशों के परम ईश, हे महाशक्ति के अधिनायक ।
हे महा मसखरे यदुनंदन, हे सब कुछ कर सकने लायक ॥
मुझ जैसे बाल प्रवृत्ती की, शंकायें खूब हटाई हैं ।
अज्ञान उदधि में डूब रही, प्रतिमा को दई रिहाई है ॥
मुस्काय कृष्ण ने फरमाया, क्या बात है जो चकराय रहे ।
क्या अद्भुत दृश्य देख डाला, जो होश हवाश भुलाय रहे ॥

हाथ जोड़ मुनिराज ने, किस्सा कहा तमाम ।
सब सुन पुनि मुस्कायकर, बोले लीलाधाम ॥
भक्तों के वश में सदा, रहूँ सुनों मुनिराय ।
जैसा भक्त विचारले, वैसा मुझको पाय ॥

तुमने मुझको महलों ढूंढा, संकल्प किया सच्चा उर में ।
उसका ही फल ये प्राप्त हुआ, जो मैं दीखा प्रत्येक घर में ॥
संकल्प एक चित वाले का, मिथ्या नहिं होने पाता है ।
जो जैसा ध्यान किया करता, वैसा ही जग बन जाता है ॥
इसमें न मेरा कुछ कौशल है, तव भावों ने सब खेल किया ।
जो तुम्हें मिला मैं प्रति घर में, तुम्हरी कल्पना ने मेल किया ॥
तब हाथ जोड़ नारद बोले, हे मायापति मायास्वामी ।
तुम सम तुमही हो, बस वर दो, नित रहूं आपका अनुगामी ॥

एवमस्तु प्रभु ने कहा, नारद चले तुरंत ।
वीणा तार बजावते, गाते गुण भगवंत ॥

सतभामा के मंदिर आगे, जैसे ही आये मुनिराई ।
सुन वीणा की ध्वनि कृष्ण प्रिया, फौरन महलों बाहिर आई ॥
कर विनय देवऋषि को भीतर, लेगई लिवा हरि की रानी ।
एक शुभ आसन पर बिठलाकर, बोली विनीत कोमल बानी ॥
हे त्रिकाल दर्शी महामुने, सब शास्त्रों के तुम ज्ञाता हो ।
तुमसे कुछ भी नहिं छिपा हुआ, विद्वानों में विख्याता हो ॥

कृपया उपाय अस बतलाओ, श्री बृजकिशोर बनवारी को ।
पतिरूप में पाऊँ जन्म जन्म, मनमोहन गिरिवरधारी को ॥
इनका वियोग क्षण भर का भी, मुनि मुझ से सहा न जाता है ।
बिन देखे श्याम सलोने को, हृदय से रहा न जाता है ॥
हैं नारि हजारों कहीं कृष्ण, मुझको न छोड़ कर चल देवें ।
बातों में आ न और को कहिं, अपने हृदय में बिठा लेवें ॥
अस्तू मैं चाहती हूं मुनिवर, एक ऐसा यत्न किया जावे ।
जिससे जन्मान्तर में भी कभी, नहिं प्रभु बिछोह होने पावे ॥

सतभामा के वाक्य सुन, पुलके व्रजकिशोर ।
बोले सत्राजित सुता, धन्य प्रेम है तोर ॥

जब पूर्णतया लगरही लगन, चरणों में शारंगपानी के ।
तब प्रभु वियोग में कभी नहीं बीतेंगे दिन जिन्दगानी के ॥
है शक्ति नहीं सर्वेश्वर में, सच्चे प्रेमी को ठुकरावें ।
दिन रात जो उनका नाम जपे, तज उसको और कही जावें ॥
तो भी उपाय बतलाता हूँ, जो ध्यान में है मेरे आया ।
यदि उसे पूर्ण कर डालोगी, नहिं कभी तजेंगे यदुराया ॥
यों कह नारद ने छिपी हुई एक दृष्टि भवन भीतर डाली ।
देखा होठों ही होठों में, मुस्काय रहे हैं बनमाली ॥
प्रभु के हृदय गत भावों को, श्री नारद ने पहिचान लिया ।
गंभीर बना चहरा फौरन, हरि प्रिया से कहना शुरू किया ॥

शास्त्रों में उल्लेख है, जो प्रिय तुमको होय ।
करो दान इस जंन्म में, पावो आगे सोय ॥

अस्तू यदि चाहती हो चित से होवे न वियोग मुरारी का ।
तो खोज एक सत्पात्र कहीं कर डालो दान बिहारी का ॥
फिर जबतक रवि शशि तारागन, सृष्टी में दृष्टी आयेंगे ।
तबतक नटवर नागर तुमको, अपनी ही प्रिया बनायेंगे ॥

हर्षित हो सत्राजित कन्या, बोली धनधन हो मुनिराई ।
तैयार हूं मैं वो करने को, जो बात आपने बतलाई ॥
सत्पात्र आपके सिवा मुने, दूसरा कहां मैं पाऊँगी ।
इसलिये दान जीवनधन का, तुम ही को ऋषी दिलाऊँगी ॥
हर्षित हो सहमत हुये, दान लेन विधिनंद ।
सतभामा ने हाथ में भरा नीर सानंद ॥
संकल्प मंत्र उच्चारन तब, फौरन ही मुनिवर ने कीन्हा ।
हंसते हंसते हरि रानी ने, झट दान में श्रीहरि को दीन्हा ॥
तब दौड़ के कमलज सुत ने जा, भीतर नटवर का कर थामा ।
गदगद होकर बोले सुनिये, लीला ललाम जन अभिरामा ॥
दे दिया दान में तुम्हें मुझे, विधि सहित आज महारानी ने ।
अस्तू मम संग चलो शुभ दिन, भेजा तकदीर भवानी ने ॥
मंत्र मुग्ध की भांति प्रभु, चले ऋषी संग धाय ।
ये लख हरि की रानि ने, रस्ता रोका आय ॥
अरु कहन लगी हे देव ऋषी, ये कैसा जाल बिछाया है ।
अपने मतलब की सिद्धि हेतु मुझ से अस दान कराया है ॥
आगे के सुख की खातिर तुम, मेरा ये सुख ले जाते हो ।
आबाद कर रहे घर अपना, चौपट मम भवन बनाते हो ॥
बाज आई ऐसे दान से मैं, कर दया सिधारो मुनिराई ।
जीते जो हरगिज कभी नहीं, जाने दूंगी श्री यदुराई ।
तब कहन लगे लीलाधारी, कृत दान जो पीछा लेते हैं ।
बनते हैं अयश के भागी वे, यम उसे नरक ही देते हैं ॥
मुख से निकली वाणी, धनु से, छोड़ा शर लौट न आता है ।
जो करे बिना सोचे समझे, वो निश्चय ही पछताता है ॥
सोच विवश रानी हुई, तब नारद मुस्काय ।
बोले जो तुम कर सको, तो है एक उपाय ॥

मानो मृत देह में प्राण पड़े, यों रानी कुछ चेतन्य हुई।
बोली फरमाओ हे मुनिवर, मन वचन आपके धन्य हुई॥
तब कहा देवऋषि ने प्रभु के तन भार सरिस सोना लाओ।
मणि माणिक हीरे मोती भी, भंडार से जाय निकलवाओ॥
एक पलड़े में हरि को बिठाय दूजे में द्रव्य धरो सारा।
कर डालो प्रभु का तुला दान, बस इसके सिवा नहीं चारा॥

उठी तुरत हरि भामिनी, खुलवाया भंडार।
लगो प्रभु को तौलने, भर हिय हर्ष अपार॥
खबर पड़ी रनवास में, दौड़ी नारि तमाम।
लगीं तमाशा देखने, हंसे ऋषी अरु श्याम॥

जितना गहना अरु नकदी थी रखदी सबकी सब पलड़े पर।
पर वो न उठा तिल भर ऊंचा, बैठे थे जिस पर नटनागर॥
मुंह उतर गया सतभामा का, रानियों ने जब ये हाल सुना।
वे भी हरि का वियोग होते, लख घबराई चट हृदय भुना॥
धाई सब निज निज महलों में, जेवर अरु द्रव्य उठालाई।
रक्खा पलड़े में पर तो भी, ऊंचे न उठे त्रिवभुन सांई॥
मुंह फेर के हरि मुस्काते थे, मुनि कहते थे लावो लावो।
यदि तुला दान पुरा न किया, तो फेर न प्रभु को यहां पावो॥
ये सुन सौभाग्य चिन्ह तक भी, धर दिये रानियों ने घबरा।
पर सम नहिं हुई तराजू वह, तब बोले मनमोहन मुसका॥

भक्त सुदामा से कहो, हरे कष्ट झट आय।
तुला दान पूरा करे, सब झंझट मिट जाय॥

बुलवाया गया सुदामा तहं, फौरन ही दासी के द्वारा।
आकर देखा जब दृष्य सकल, चकराया ब्राह्मण बेचारा॥
बोला कर जोड़ मुरारी से, कर रहे खेल कैसा स्वामी।
किस लिये किया है याद मुझे, क्या करूं कहो अंतरयामी॥

इतने में सतभामा बोली, हरिको कुछ हलका कर डालो।
ये भारी बहुत हो गये हैं, इनका कुछ बोझा घटवालो॥
सब मतलब समझ सुदामा ने, यों कहा सुनों श्री हरिरानी।
किम होयं भार में इतने से धन के समान शारंगपानी॥
बोझे में इनके सम भारी, इनका ही नाम बताया है।
लाओ एक कागज कलम मसी, हरि ध्येय समझ में आया है॥

कागज में द्विज ने लिखा, "राधा-कृष्ण" ललाम।
रक्खा पलड़े में उसे, उतरा द्रव्य तमाम॥

ज्योंहो वह कागज रखा गया, प्रभु का पलड़ा सम में आया।
मच गया कहकहा तुरत वहां, नारद को बड़ा हर्ष छाया॥
धन गया ठिकाने जहां का तहां जय बोल देवकीनंदन की।
ले कागज मुनिवर बिदा हुये, रानियों ने द्विज को पूजन की॥
ऋषि के जाने पर कई बार, प्रभु के मुख से "राधा" निकला।
प्राणेश्वरि, रासेश्वरि, ईश्वरि, हृदयेश्वरि, आराधा निकला॥

श्री राधा के नाम से, अचरज हुआ महान।
जा इकान्त करने लगी, बात परस्पर रानि॥

देखो बहिनो हम कहती थीं, ये मित्र नहीं प्रभु भेदी है।
तब ही तो इसे मुरारी ने, दो लोक सम्पदा दे दी है॥
हो भला सत्यभामा तुम्हरा, अरु साथ ही श्रीमुनेश्वर का।
यदि ये नाटक न रचा जाता, किम मिलता भेद सुरेश्वर का॥
लेकिन इस समय न प्रगट करो, है भला चुप्प रह जाने से।
खांसी कस्तूरी गुप्त प्रेम, छिप सके न लाख छिपाने से॥
कर थे सलाह रानियां सभी, अपने अपने महलों धाई।
इस तरफ सुदामा को संग ले, निज मंदिर आये यदुराई॥
यहां आकर दीन ब्राह्मण ने, पद परसे देवकि-नंदन के।
पुनि हाथ जोड़ अति प्रेम सहित, गुण गाये श्रीब्रजचंदन के॥

फिर कहा नाथ कई दिवस हुये, घर जाने की आज्ञा दीजे ।
ब्राह्मणी सोच करती होगी, मुझ को पठाय आशिष लीजे ॥
प्रभु बोले जैसी इच्छा हो, पर कभी कभी आते रहना ।
अपने सुख दुख के समाचार, हे भाई पहुँचाते रहना ॥
सेवा न आपकी बनी है कुछ, दुख इसका है अत्यन्त मुझे ।
पर क्षमा की मूरत हो द्विजवर, कर क्षमा करो निश्चिन्त मुझे ॥

सेवक तीनों काल में, है तुम्हरा घनश्याम ।
कृपया स्वीकारो प्रभो, करता कृष्ण प्रणाम ॥

कह यों, कर बारम्बार नमन, हरि ने सुंदर रथ मंगवाया ।
निज बाल सखा से प्रेम सहित, उस पर बैठन को फरमाया ॥
फिर बोले ये रथ तुम्हें सखा, तुम्हरे घर तक पहुँचावेगा ।
होगा नहिं कष्ट तुम्हें मग में, पुनि लौट यहां पर आवेगा ॥
भाभी से पालागन कहना, बच्चों को करना प्यार सखा ।
रखना चित में कुछ याद मेरी, हे मित्र परम दिलदार सखा ॥
द्विज बोले तुम्हरी कृपा से हरि, पैदल ही घर को जाऊंगा ।
जब डोरी खीचो दीनबंधु, तब ही आ दर्शन पाऊंगा ॥
कह इतना नेत्रों के द्वारा, चित में चितचोर का चित्र लिया ।
तज दिया द्वारका नगर तुरत, अपने घर जानिब गमन किया ॥
प्रभु ने नहिं आनाकानी की, नहिं कुछ प्रत्यक्ष माधव दीन्हा ।
संतोषी द्विज ने यह सोचा, दर्शन फल क्या कुछ कम लीन्हा ॥
पर रस्ते में ये ध्यान हुआ, किमि समझाऊंगा नारी को ।
दीना दुर्बला दरिद्रनि को, दुख की मारी बेचारी को ॥

कहदूंगा उसको यही, ऊंच नीच बतलाय ।
बिना भाग्य मिलता नहीं, रंक बचो या राय ॥

यों करते हुये कल्पना द्विज, आगे को बढ़ते जाते थे ।
कभि होते खिन्न उदास कभी, कभि प्रसन्नता दिखलाते थे ॥

थे खिन्न उदास सोचकर ये, आया अरु खाली हाथ चला ।
कुछ भी न दिया लक्ष्मी पति ने, वापिस दरिद्र ही साथ चला ॥
अरु थी प्रसन्नता इस कारण, कुछ मांगा नहीं मुरारी से ।
याचक वृत्ती नहिं गृहण करी, नहिं चाहा कुछ बनवारी से ॥
आखिर पहुँचे जब पुर समीप, लख तबदीली चकराय गये ।
सुर पुर से अधिक छबी लखकर, भयराय गये घबराय गये ॥
जिस जगह झोंपड़ी थी द्विज की, वहां पर नभ चुम्बित महल बने ।
जहं बन था किसी समय दुस्तर, वहां लगे बाग वृक्षादि घने ॥
द्वारावति के सदृष्य सुन्दर, हाटक की बनी अटारी थी ।
चौड़ी सड़कें सुन्दर बजार, मणियों की बंदन वारी थी ॥
कहि घुड़शाला कहि गज समूह, अन गिनती रथ ये धरे कहीं ।
सुन्दर वस्त्रों से सजे हुये, अनुचर दासी फिर रहे कहीं ॥
जो स्वप्न द्वारका में देखा, हूबहू वही दृष्टी आया ।
दिग् भ्रम होगया सुदामा को, हिम्मत कर एक नर बुलवाया ॥
अरु पूछा भैया कहो मुझे, किस भाग्यवान की नगरी है ।
सुर दुर्लभ भोग यहां पर हैं, किसकी माया ये सगरी है ॥

देख सुदामा की तरफ, गिरा चरन में आय ।
नाथ तुम्हारा ही नगर है सुन्दर सुखदाय ॥
पर न सुदामा के जची, ऐसी अद्भुत बात ।
बोला प्रभु का ध्यान धर, वाह वाह यदुनाथ ॥

* गाना *

प्रभू तुम कीन्ही खूब भलाई ॥
दर्शन का फल खूब मिला है कुटिया तलक गंवाई ।
चारो बच्चो संग ब्राह्मणी जाने कहां बिलाई ॥ प्रभू० ॥
टूटा तख्ता फूटी तूंबी नहीं नजर म आई ।
यह तो बसा नगर अति सुन्दर मनो द्वारका छाई ॥ प्रभू० ॥

दीन दरिद्री होना जग में पातक है दुखदाई ।
धन वालों के हाथों नित प्रति पाता कष्ट सवाई ॥ प्रभू० ॥
हरि इच्छा जो हो वह सही है मिटा विघ्न सब भाई ।
अब सुख से हरि भजन करूंगा वन में जा हरषाई ॥ प्रभू० ॥

इस प्रकार से कह रहे, भक्त सुदामा राय ।
उधर दौड़ कर मनुज वो, पहुँचा घर पर जाय ॥
जाते ही फौरन खबर करी, भू देव लोट कर आय गये ।
सुन हाल दासियां दौड़ पड़ीं, स्वागत हित साज सजाये गये ॥
आकाश से भू पर आनगिरे, ऐसा अचरज द्विजने माना ।
अपने को स्वप्न अवस्था में, परिणित द्विजराई ने जाना ॥
इतने में सुन्दर रथारूढ चारों सुत स्वागत हित आये ।
उनको लख लदे जेवरों से, हरि भक्त सुदामा चकराये ॥
रथ से उतरे बाल सब, निज माता के साथ ।
चरण गिरी पुनि भामिनी कहि जय जीवन नाथ ॥
फिर कहा फिक्र तज भवन चलो, वहां पर सब कुछ समझाऊंगी ।
किस तरह से रचना बदल गई, वो सारा रहस्य बताऊंगी ॥
इतना कह इन्हें सवार करा, रथ महलको जानिब हांक दिया ।
घर पहुंच एक शुभ आसन पर, सादर निज पति को बिठा लिया ॥
बोली इक रैन भूख वश हो, हम सभी झौपड़ी में सोये ।
तुम्हरे वियोग में जीवनधन, हमसब अति बिलख बिलख रोये ॥
पिछली रजनी में जगा दिया, मुझको एक देव दूत ने आ ।
अरु कहा, द्वारका स्वामी ने, कर दी तुम लोगों पर किरपा ॥
लक्षाधिक दास दासियों ने, आकर मुझको मुजरा कीन्हा ।
पुनि विशकर्मा ने आकर के, पल में ये सब कुछ रच दीन्हा ॥
वह टूटा तख्ता फटे वस्त्र, क्या जाने कहां बिलाय गये ।
होतेहि प्रात जब महल चढ़ो, शोभा लख नयन थकाय गये ॥

तुम्हरी महनत होगई सफल, मेरी ज़िद बहस न व्यर्थ गई ।
चुपचाप हमें धनवान किया, प्रभु की मरजी नहिं जाय कही ॥

अब वे फ़िक्री से करो, पूजन भजन अघाय ।
बांटो धन सत्पात्र को, कभी कमी ना आय ॥
सुनकर पत्नी के बचन, बोले द्विज रिसखाय ।
तेरी गाथा भामिनी, तनिकसमझनहिंआय ॥

किस तरह से ये विश्वास करूं, नटवर ने यह पहुंचाया है ।
जिसने ब्रज में घर घर जाकर, चोरी कर माखन खाया है ॥
मुझको तो फूटी कौड़ी भी, आती बिरियां नहिं दान करी ।
चुपचाप यहा धन पहुंचावे, ऐसा दाता मत जान हरी ॥
सच बतला कैसे धन पाया, क्या चरित कलंकित कर डाला ।
हो भूख विवश निज शील तजा, कैसा है ये गड़बड़ झाला ॥
मुझ को तव बचनों पर श्रद्धा, जब ही हो दाता खुद आवे ।
यदि सच्ची है तो बुला उसे, प्रत्यक्ष आन कर समझावे ॥

पति के ऐसे वाक्य सुन भर नैनों में नीर ।
हाथ जोड़ कहने लगी, सुनिये श्री यदुवीर ॥

संदेह पती को उपजा है, मम शील पै हे शारंगपानी ।
अब बिना आपके यहा आये, नहिं मिटेगी हरगिज हैरानी ॥
सतियों की लज्जा रखने का, ब्रजराज आपना बाना है ।
गुमराहों का तू राही है, आरत का तु ही ठिकाना है ॥
कृष्णा की चीर बढ़ाया जिमि, ग्राह से जिमि गजहि उबाराथा ।
रुक्मणी की टेर श्रवण करके, उसको जिमि दिया सहारा था ॥
तैसे हि नाथ मम विनती सुन, आतुर हो दौड़ चले आवो ।
जब ठाठ तुम्ही ने किया है सब, तब नाथ काहे को शरमावो ॥
पति प्रेम बिना धन मिट्टी है मुझ को न चहै प्रभुताई है ।
मेरे हित तो बस है मोहन, पति का ही प्रेम सवाई है ॥

* गाना *

आवो आवो हे नटवर प्यारे सति की लाज बचावो ॥
इतने वर्ष हम दुख मे काटे, चहो ओर भुगताना ।
पर प्रीतम का भ्रम तुम मेटो, हे मनमोहन धावो ॥ आवो ॥
ना चहिये ऐसा धन स्वामी, जो कलंक सिर लावे ।
फकत जरूरत पति सेवा की, इसमे मुझे लगावो ॥ आवो ॥
महा दुखी थी तो भी भगवन, कभी न चित्त विचलाया ।
रही सदा पति सेवा मे रत, अब क्यो असति बनावो ॥ आवो ॥
जो नहि आये तुम गिरधारी, अपना तन बिसराऊं ।
नाम तुम्हारे पर जग थूके, सोचो दरस दिखावो ॥ आवो ॥

**सति के विलाप से प्रभु डोले, इक ज्योति महल में आ छाई ।
उसमें से मंजुल श्याम छबी, उतपन होती दी दिखलाई ॥
कर पकड़ सुदामा का, पल में, समझाया सारा रहस तहां ।
बोले हे मित्र न फिक्र करो, मैंने हि हाल बदला है यहां ॥
बे सबब न दरिद्र मिला तुमको, गुरुकुल की याद दिलाता हूं ।
मम भाग के चने चबाये थे, वर्षों का हाल बताता हूं ॥
जितने ही चने चबाये थे, उतने दिन भूख निकाली थी ।
ये तुम्हरा ही सौभाग्य था सब, अपराध से मिली कंगाली थी ॥
त्रहि त्राहि कह प्रभु चरन, गिरा सुदामा आय ।
फिर जो सिर ऊंचा किया, गायब थे यदुराय ॥
पर उपकारी द्विज हुये, कीन्हा जग उपकार ।
"श्रीलाल" आगे चलो, कहि जय नंदकुमार ॥**

*** श्रीकृष्णार्पणमस्तु ***



श्रीकृष्ण चरित्र अथवा श्रीमद्भागवत

अठारहवां भाग

वसुदेव अश्वमेध यज्ञ

रचयिता—

श्रीलाल खत्री

प्रकाशक—महाभारत पुस्तकालय, अजमेर

मुद्रक —के. हमीरमल लूनिया, दि डायमण्ड जुबिली प्रेस, अजमेर.

प्रथम बार	सम्वत १९९१ विक्रमी	मूल्य
२,०००	सन् १९३५ ईस्वी	।) आने

कृष्णस्तु भगवान् स्वयम्

स्तुति

(१)

जय अनंत बलवंत हरी के अग्रज वीरा ।
जय रोहणि के लाल, जयति गोपाल गंभीरा ॥
जय भक्तन प्रति पाल, शीघ्र तुष्टी ब्रज नायक ।
जय जय दीनदयाल राम तुम तुम्हरे लायक ॥
थाह नहीं मिलती तेरे शौर्य्य वीर्य्य की हे बली ।
पृथ्वी भार उतारने प्रगटे हो दुष्टन दली ॥

मंगलाचरण

(२)

पीताम्बर धर पाप हर, गोकलेश गोपाल ।
ताप हरन जन सुख करन, जय जय दीन दयाल ॥
जय जलशायी जलदसम, सुभग सुहावन रूप ।
सृष्टि रचन, पालन, हरन, शिव अज विष्णु स्वरूप ॥
तुम गुरु गणपति शारदा, सहस बदन तुम शेष ।
विघन हरो मंगल करो, जग व्यापक अखिलेश ॥
बंदहुं वेदव्यास सुत, श्री शुकदेव सुजान ।
गायो कलिमल हरन जिन, "कृष्ण चरित" गुणखान ॥

❋ श्लोक ❋

वंशीविभूषितकरान्नवनीरदाभात्पीतांबरादरुणबिंबफलाधरोष्ठात् ।
पूर्णेन्दुसुन्दरमुखादरविन्दनेत्रात्कृष्णात्परं किमपितत्वमहं न जाने ॥

❀ कथा प्रारम्भ ❀

प्रात दुपहरी सांझ में, रजनीतम परकास ।
जपो निरंतर कृष्ण को, सांवल तन मृदुहास ॥
"हो छबि त्रिभंगी मन रंगी, मुख पर मुरली हो लगी हुई ।
गल बैजन्ती माला वाला, मोहन" यह रट हो जगी हुई ॥
हरियश सुनने में श्रवण लगें, जिव्हा से होता जाप रहे ।
बनजाय चित्त एकाग्र तुरत, जब हृदयमें वो नित आप रहे ॥
अस्तू श्रोताओं पाठकगण, मन की सब शंकायें धोलो ।
अरु एक बार सब प्रेम सहित, राधिका रमन की जय बोलो ॥
भक्त सुदामा की श्रवण, करके कथा ललाम ।
भूप परिच्छित कह उठे, धन्य मुनी गुणधाम ॥
मैं करूं प्रशंसा किस मुख से, किस प्रकार तुम्हरी मुनिराई ।
श्रीकृष्ण कथा रूपी अमृत, पिलवा कर तृप्ती करवाई ॥
पुनि और कहो रह गये जो हों, गुणगण नयना अभिरामा के ।
गोकुलानंद आनंदकंद, अरु रोहणि सुत बलधामा के ॥
शुक बोले धन्य धन्य भूपति, तुमसा श्रोता जब मिल जावे ।
फिर कथा गुप्त या प्रगट होय, रत्ती भर भी ना छुट पावे ॥
मनमोहन अरु बलदाऊ में, कुछ भेद न चितमें लाओ तुम ।
हैं दोनों वपु इक शक्ती के, बन भावुक शीश झुकाओ तुम ॥
इक दिवस रेवती रमण गये, जहं बैठे थे शारंगपानी ।
आते लख जेष्ट भ्रात को उठ, आगे आ कीन्हीं अगवानी ॥
सादर एक आसन पर बिठाय, बोले यदुनन्दन यदुराई ।
हे भैया कहां सिधाने को, तुमने हृदय में ठहराई ॥

यात्रा के सब सामान से तुम, तैयार दृष्टि में आते हो ।
रोमांच हो रहा है तन में, किससे मिलने को जाते हो ॥
लघुभ्राता के वाक्य सुन, रोहणि नंदन राम ।
गद्गद् हो कहने लगे, सुनो ध्यान धर श्याम ॥
हमने जिस उत्तम भूमी पर, निज शैशव काल बिताया है ।
कर बाल सुलभ क्रीड़ा निशिदिन, पितुमातु का मन बहलाया है ॥
कीन्हा है हरदम गो चारन, ग्वालों बालों संग हिलमिलकर ।
कई तरह के खेले खेल जहां, सुख पहुँचाया सबको जीभर ॥
उस क्रीड़ास्थल का सुप्रेम, आकर्षित मुझे बनाता है ।
अस्तू उसको लखने के लिये, बल वृंदावन को जाता है ॥
यद्यपि मुझको इस जगह, तनिक नहीं संताप ।
तो भी मेरी आत्मा, करती व्रज का जाप ॥
वो कालिन्दी का सुघड़ तीर, निर्दोष बालकों की टोली ।
तहां पर कदंब की छांह तले, निशिदिन खेला करते होली ॥
माता प्रकृति की पवित्र गोद, हमरा नित मन बहलाती थी ।
जिस तरफ दृष्टि जा पड़ती थी, बस हरी भूमि दिखलाती थी ॥
कुछ फिक्र न था नित मौजें थीं, दिन भर मुरली वादन होता ।
ग्वालों के संग विविध विधि के, भोजन का रस स्वादन होता ॥
व्रजवालों का हम पर कितना, था प्रेम किस तरह समझाऊँ ।
जब कभी याद आजाती है, नयनों में अश्रू भर लाऊँ ॥
यदि तुम भी चलना चाहो तो, आओ दोनोहि पयान करें ।
पितुमातु ग्वाल ग्वालिनियों को, दे दर्श विरह का दुःख हरें ॥
हरि के नटने पर तुरत, रोहणि के सुकुमार ।
रथ पर चढ़ व्रजको चले, मन में करत विचार ॥
कितने अरसे के बाद आज, मैं जन्मभूमि में जाता हूं ।
क्या कहेंगे संगी साथी अरु, व्रजराज समझ नहिं पाता हूँ ॥

कह दूँगा भूला तुम्हें न था, लाचार था घरकी उलझन में ।
आ सका नहीं तो भी हरदम, करता था याद तुम्हें मन में ॥
यों सोच मग्न बलदाऊ का, रथ फौरन ही ब्रज में आया ।
लख इन्हें भूमि लहलहा उठी, मानो चकोर ने शशि पाया ॥
तज यान तुरत हरि के अग्रज, नंदराय भवन को जाते हैं ।
माता व पिता के चरणों में, आ सादर शीश झुकाते हैं ॥
मानों खोया धन प्राप्त हुआ, या शव में प्रान चले आये ।
बस इसी तरह से नंद और, नंदरानी मन में हरषाये ॥
यसुमति ने खूब बलायें लीं, ब्रजराज हृदय चिपटाते हैं ।
आशिष देने तैयार हुये, रुक गया कंठ रह जाते हैं ॥
आखिर कर हिम्मत धीरधार, श्री ब्रजाधीश ने फरमाया ।
भैया अच्छे तो हो तुम अरु, वसुदेव देवकी यदुराया ॥
वर्षों में आज याद हमरी, जो तुम्हें पुत्र यहां लाई है ।
इसमें सत प्रेम सिवाय और, नहिं किसीकी भी प्रभुताई है ॥
बल ने सारा अहवाल बता, भोजनकर पुनि विश्राम किया ।
होतेहि प्रात निज मित्रों से, मिलने में अपना चित्त दिया ॥

आ बैठे चौपाल में, सारे इनको घेर ।
अरु ताने देने लगे, सुधि क्यों ली हम केर ॥

क्या नाता प्रजा व राजा का, दोनों का धनियों से भाई ।
वो तो शैशव की क्रीड़ा थी अब बड़े हुये तुम बलराई ॥
किस तरफ को रस्ता भूल गये, ये नहीं द्वारका है भैया ।
है ये ब्रजभूमि गरीबों की, है दूध मठा ग्वाले गैया ॥
तब कहा एक ने डाट इसे, देना उलाहना बंद करो ।
आओ खेलें पुनि वही खेल, बाकी सब धंधे मंद करो ॥
हा ! निर्मोही सांवरिया ने, अपना नहिं दर्श दिखाया है ।
केवल दाऊ को भेज दिया, खुद यहां तलक नहिं आया है ॥

हलधर की जानिब रुखको कर, बोला एक ग्वाल हंसी हंसकर ।
कहदे भैया अच्छा तो है, नवनीत चोर गिरधर नागर ॥
कुछ दिवस हो गये जब यहांपर, उद्धव संदेशा लाया था ।
उस जाली ने धोखा देना, उस द्वारा हमको चाया था ॥
वो आते ही बोला हरि ने, यों कहा ज्ञान को अपनाओ ।
तज डालो प्रेम सगुण से तुम, निशिदिन निर्गुण के गुण गाओ ॥
मृगछाला पर आसन जमाय, स्वस्थिर चित प्राणायाम करो ।
हृदय में कोटि दिवाकर सम, एक तेज बिम्ब का ध्यान धरो ॥
पर तेरी सौगंद बलदाऊ, उद्धव का ज्ञान भुला दीन्हा ।
श्रीकृष्णचन्द्र की भक्ती में, उसको हमने तत्पर कीन्हा ॥
ये सुना है कई असुर बधकर, मोहन द्वारावति धाया है ।
वर्षों में तुम्हरे द्वारा उस, कपटी का वृत सुन पाया है ॥

चाहे वो भूले हमें, तनिक नहीं परवाह ।
हमरे तो दिल में बसा, सांवल कुंवर कनाह ॥
बलदाऊ कहने लगे, सुनो गोप अरु ग्वाल ।
तुम्हरे सच्चे प्रेम को, भूल न सके गुपाल ॥

बेशक द्वारावति वास करे, बच्चों से घर भर लीन्हा है ।
पर तुम्हरी सौगंद उसने तो, व्रज को ही निजघर चीन्हा है ॥
गिरधारी, नंदसुवन, गोविंद, यशुमति का लालहि कहलाता ।
जो व्रज की चर्चा करे उसे, खुश हो हृदय से लिपटाता ॥
क्या करे फसा है गृहस्थी में, दुष्टों से घिरा हि रहता है ।
असुरों का बध करने ही में, रहता वियोग भी सहता है ॥
हम दोनों जब एकत्र होंय, व्रज चर्चा अवसि चलाते हैं ।
हिचकियां शुरू होजाती हैं, प्रेमाश्रू नेत्र बहाते हैं ॥
पर फिक्र तजो निश्चय मोहन, तुम सब को दर्श दिखायेंगे ।
भूमी का भार उतरते ही, वापिस व्रज में आजायेंगे ॥

अब चलो तीर कालिन्दी के, कर क्रीड़ा मन को बहलावें ।
जो किये खेल बचपन में, एक बार उन्हें फिर दोहरावें ॥
कर सलाह पहुँचे सभी, श्री यमुना के तीर ।
मनमानी क्रीड़ा करी, न्हाये निर्मल नीर ॥
सांझ पड़े घर को चले, ब्यालू की बलराम ।
सुधि आई गोपीन की, चले तुरत सुखधाम ॥
बल दर्श पियासी सखियों ने, पाते ही खबर घेरा आकर ।
बोली आँसू ढरका कर सब, क्यों नाथ किया हृदय पत्थर ॥
सुन्दर सुहावनी नगरी की, नारियों में जी लपटाना है ।
तब दीन गवालिनियों का फिर, बतलाओ कहां ठिकाना है ॥
रविविरह कमलनी सम हमरा, हे इष्टदेव बस हाल हुआ ।
तुमने तो घट रुख फेर लिया, यहां जीना तक जंजाल हुआ ॥
तब मुस्काकर रेवतीरमण, बोले क्यों जी छोटा करतीं ।
तुम्हरी ही प्रेम भरी यादें, हमरा सारा संकट हरतीं ॥
सारा बल मैंने कान्हा ने, ब्रज प्रेम ही से तो पाया है ।
तुम्हरे सनेह ने ही हमरा, जगजीत नाम धरवाया है ॥
अस्तू अब सब शोक तज, करो चित्त आह्लाद ।
कुछ दिन मेरे साथ रह, पावो प्रेम प्रशाद ॥
इतने में देखा दाऊ ने, कुछ चली आ रहीं बालायें ।
है भेष वियोगिनियों का सा, है हाथ में सब के मालायें ॥
जप रही हैं सब मिल कृष्ण कृष्ण, नटवर दामोदर बनवारी ।
मन मोहन, मुरलीधर, माधव, गोकुलानंद गिरवरधारी ॥
सब के आगे एक तेज पुंज, पतली दुबली नत नयन किये ।
हैं अस्त व्यस्त जिसके कपड़े, आरही है हरिपद चित्त दिये ॥
जब ढिंग आई संकर्षण के, बल ने पहिचाना राधा है ।
गोलोक निवासिनि रासेश्वरि, मनमोहन की आराधा है ॥

शेषावतार अंतर—यामी, राधा का पद पहिचानते थे ।
श्रीकृष्णचन्द्र अर्धांगिनि को, अपने से ऊँचा मानते थे ॥
अस्तु श्रद्धा से आगे बढ़, सुन्दर आसन पर बिठलाकर ।
बोले, "जगजननी" अच्छी हो, अति प्रेम सहित निज सिर नाकर ॥
तब बोली हरि प्रिया सत्वर, वे तो अच्छे ही रहते हैं ।
जिनके हृदय प्रेमास्पद के, गुण गण नित गाया करते हैं ॥
हे हलधर एक एक करके, दिन तो बीते ही जाय रहे ।
अब आते होंगे प्राणनाथ, ये शुभ संवाद सुनाय रहे ॥
मेरे तनको तो कभी नहीं, घनश्याम वियोग सताता है ।
क्योंकि जिस समय याद आती, चट नटवर दर्श दिखाता है ॥

फिर भी मन का धरम तो, चंचलता ही होय ।
प्रीतम संग सुख यादकर, धीरज देता खोय ॥

अब कहो व्रज के आराम वहां, आराम सहित तो रहते हैं ।
भूले से भी हम लोगों की, गाथा कभि तुम को कहते हैं ॥
पृथ्वी का भार हटाते हैं, हम पर वियोग का भार धरा ।
प्रेमास्पद ने प्रेमी जन हित, अच्छा बिछोह भंडार भरा ॥
तब नयनों में आँसू भर कर, बोले बलराम सुनों राधा ।
अवतार कार्य करने पर भी, मन में नित तुम को आराधा ॥
जब से व्रज छोड़ गये तब से, फुरसत न तनिक भी पाई है ।
अनगिनती दुष्टों की अब तक, माधव ने करी सफाई है ॥
योगेश्वर नाथ चित्त दृढ़ कर, संसार का कार्य चलाते हैं ।
एकान्त में याद तुम्हारी कर, नयनों से नीर बहाते हैं ॥
गिरि पर्वर्षण पर नित जाकर, तुमरे हि नाम का जाप करें ।
हे राधे, रासेश्वरि रानी, यों कह चित का संताप हरें ॥

सुनते ही राधा गिरी, हो अचेत मुरझाय ।
सखियें लाईं होश में, बैठी कह व्रजराय ॥

पुनि हृदय थाम हलधर से कहा, मैंने सब शोक भुलाया है ।
हृदयेश्वर का संदेश सुना, चित में अब धीरज आया है ॥
अब फिक्र नहीं यदि प्रीतम का, दर्शन प्रत्यक्ष नहिं पाऊँ मैं ।
तो भी मन में दर्शन करके, अपने चित को बहलाऊँ मैं ॥
तब दाऊ बोले बहुत शीघ्र, रविग्रहण पर्व आने वाला ।
कुरुक्षेत्र की पावन भूमी में, यादवदल सब जाने वाला ॥
तुम भी सब व्रजबासियों संग, आना जरूर राधेरानी ।
उस जगह मिलेंगे अवसि तुम्हें, मनमोहन श्री शारंगपानी ॥
ये सुन खुश हो राधा चलदी, कुछ स्वस्थ हुये श्री बलरामा ।
पुनि वन विहार कर सखियों को, पहुँचाया सुख पूरनकामा ॥

हरि अग्रज की चाह लख, सकल वस्तु गइ आय ।
हुआ सौख्य सबके हृदय दुख सब गया विलाय ॥
कालिन्दी से राम पुनि, बोले तुरत पुकार ।
भानुलली आ शीघ्र ही, कर अभिषेक हमार ॥

नहिं करी सुनाई यमुना ने, तब हलधर तन लाली छाई ।
हल द्वारा खैंची रवितनया, बल अवलोकन कर चकराई ॥
धर रूप नारि का चरन गिरी, बोली हे संकर्षण स्वामी ।
करदो अपराध क्षमा मेरा, शेषावतार अंतरयामी ॥

❊ गाना ❊

अहो धन धन अनंत भगवान ।
मेरी हठ धर्मी तो देखो नहि मानी तव कान ॥ अहो० ॥
तुमरे वल से निपट अनारिन दिया नहीं कुछ ध्यान ।
रेवती नाथ, रोहिणी नंदन, हरि अग्रज गुण खान ॥ अहो० ॥
भलो कियो मम गर्व गंवायो हे महा वीरजवान ।
तुम्हरे सम भारत मे हलधर नहीं वीर कोउ आन ॥ अहो० ॥
अव तुम्हरी मर्यादा राखूं वढे जगत मे मान ।
वहूँ हमेशा यहां पर टेढ़ी करूं नित्य गुण गान ॥ अहो० ॥

हो गये प्रसन्न हरी अग्रज, कर जल क्रीड़ा श्रम खो डाला ।
ब्रज बालाओं को अति सुख दे, लौटे घर को रोहणि लाला ॥
इस तरह से रोज नई क्रीडा, कर बल सबको सुख पहुँचाते ।
क्या हाल था उत द्वारावति का, इस समय मे बतलाना चाहते ॥
था करुष देश का नृप पौंड्रक अपने को ईश बताता था ।
मैं ही हूँ सच्चा वासुदेव, यों दुनिया को दिखलाता था ॥
हरि के समान आयुध उसने, निज हाथों में गह लीन्हे थे ।
अरु वैनतेय की ध्वजा चिन्ह, सम आडम्बर रच दीन्हे थे ॥
लख इसका ठाठ काशी नरेश, भी आन मिला अरु बहकाया ।
बोला तुम हो वैकुण्ठ नाथ, विष्णू हो हरि हो नृप राया ॥

यदुवंशी श्रीकृष्ण ने, झूँठा जाल बिछाय ।
तुम्हरी सब कीरति हरी, देहु दण्ड तेहि जाय ॥

ये सुनकर झट एक दूत बुला, इस तरह भूप ने फरमाया ।
जाओ तुम शीघ्र द्वारका में, जाकर कहना हे यदुराया ॥
निजको अवतार बता करके, क्यों दुनियां को बहकाता है ।
तज दे कहलाना वासुदेव, यदि भला आपना चाहता है ॥
गिन मुझको सच्चा लक्ष्मीपति, बस शरण हमारी आजा तू ।
हो जायेगा तेरा जन्म सफल, कर दर्शन पाप गंमाजा तू ॥
यदि इसमें आनाकानी की, दंड मिलेगा हाथो हाथ तुझे ।
निज चक्र सुदर्शन से तेरा, काटना पड़ेगा माथ मुझे ॥

कहा दूत ने जायकर, ज्यौंका त्यौं सब हाल ।
जिसको सुन हंसने लगे, यदुओं सहित गुपाल ॥

आखिर फरमाया दूत से ये, अपने राजा से जाय कहो ।
हम आते हैं रथ पर चढ़ कर, देने को दर्श तैयार रहो ॥
यदि सत्य ही है वो जगदीश्वर, सादर हम शीश झुकायेंगे ।
जिस तरह मुनासिब समझेंगे, उनकी सेवा कर आयेंगे ॥

इतना कह चर को विदा किया, पुनि फौरन अपना रथ मंगवा ।
चल दिये पौंड्रक नगरी को, रण की सब सामग्री रखवा ॥
वहां जाते ही यदुराई ने, धनु की टंकोर करी भारी ।
पुनि पांच जन्य की ध्वनि कीन्ही, थर्राय गई नगरी सारी ॥
सुरपुर वासी भी सुधि पाकर, लेले विमान नभ में छाये ।
प्रभु की जयकार सुनाने लगे, हो हर्षित पुष्प अति बरसाये ॥

पौंड्रक नृप अतिक्रोध कर, ले अक्षोहणि तीन ।
श्री हरि से लड़ने चला, सिंह सन्मुख मृगदीन ॥

प्रभु के से आयुध तन धर कर, वह खल यों शोभा पाय रहा ।
मानों वायस धर मोर पंख, शिवसुत बाहन जतलाय रहा ॥
पाखंडी जन मद मत्त होय, आगा पीछा नहिं सोचते हैं ।
जब पोल निकलती है उनकी, नयनों से आँसू पौंछते हैं ॥
दधि के धोखे खाकर कपास, अति दुख पाते हैं दुष्ट सभी ।
बतलाओ कागज की नैया, तैरा करती नद माहिं कभी ॥
आकर ललकारा मोहन को, बोला रे धूर्त खूब आया ।
निज इष्ट का अपने सुमिरन कर, आ गई मौत तव यदुराया ॥
ये सुन बोले शारङ्गपानी, रण में निज कीरति यश गाना ।
है काम कायरों का भूपति, झूठे मद से जी बहलाना ॥
गर तेरे हाथों मृत्यु मेरी, है तो फिर इसमें डरना क्या ।
क्षत्री कुल में है जन्म मेरा, मृत्यू से भय को करना क्या ॥

पर तव मनमें लड़न की, रह नहिं जाये चाह ।
अस्तु खोल जी प्रथम तू, कर प्रहार नर नाह ॥
सुन हरिके निर्भय बचन, रिस व्यापी तन मांय ।
तान शरासन तीर इक, शीघ्रहिं दिया चलाय ॥

हरि ने सारा रिपु का कौशल, क्षण भर में खंडन कर डाला ।
सेनापतियों को नष्ट बना, सेना का जीवन हर डाला ॥

पुनि मुस्काकर ब्रज के जीवन, बोले पौंड्रक नरराई से ।
हे विष्णु अंश हे वासुदेव अब मम बध कर मनुसाई से ॥
कित गया सुदर्शन चक्र तेरा, शारंग धनु भी न दृष्टि आता ।
मिथ्या प्रलाप बकने वाले, जा शीघ्र तुझे यम बुलवाता ॥
यों कह इक अर्ध चन्द्र शर ले, निज धनु पर रखकर चला दिया ।
जाते ही जिसने पौंड्रक का, सिर तनसे फौरन अलग किया ॥
द्वितियः शरने काशी नृप को, अति शीघ्र वीर गति दिलवाई ।
हरि इच्छा से इसका मस्तक, पहुँचा काशी नृप घर जाई ॥

शीश गिरा जा महल में, हुये दंग नरनारि ।
पहिचाना मृत भूप को, छाया शोक अपार ॥
जय का शंख बजाय कर, लौटे श्री भगवान ।
पीछे से वहां क्या हुआ, सुनों सुजन धर ध्यान ॥

काशी नृप के मर जाने की, जब उसके सुत ने सुधि पाई ।
दब गये होठ दांतों नीचे, आँखों में झट लाली छाई ॥
पर कुछ उपाय नहिं सूझ पड़ा, बदला लेने का नटवर से ।
तब हो अति दुखी बिकल बेकल, चल दिया ये वन में निज घर से ॥
तहां जा चित को संयम में रख, ये शंकर का तप करने लगा ।
खाना पीना तक छोड़ दिया हरदम शिवनाम सुमरने लगा ॥
कुछ दिनों बाद श्री गिरिजापति, होकर प्रसन्न सन्मुख आये ।
बोले किस कारन करते हो, ऐसा तप तुम तन मन लाये ॥
तपसी बोला हे आशुतोष, मम पितु हन्ता से बदला लूँ ।
ऐसा उपाय कुछ बतलाओ, करुणानिधान तव सेवक हूँ ॥
तब शूलपाणि यों कहन लगे, द्विज युक्त यज्ञ का यजन करो ।
दक्षिण अग्नी है मुख्य देव, करप्रसन्न उन्हें निज दुःख हरो ॥
पर याद रहे अभिचार कार्य, गो द्विज भक्तों पर चले नहीं ।
करना सब काम चतुरता से, उल्टा वो तुम्हें कहिं दले नहीं ॥

शिवकी आज्ञा शीश धर, सामग्री जुटवाय ।
करन लगा झट यज्ञ को, मृत्यु ग्रास हरषाय ॥
देतेहि पूर्ण आहूती के, विकराल अग्नि तहं प्रगट भई ।
हूँकार शब्द कर मूर्तिधार, अति शीघ्र द्वारका ओर गई ॥
हरिपुरी के वन उपवनों को जब, वो लगी जलाने क्रुराई ।
तब प्रभु के पास पुकार हुई, सुन कहन लगे ब्रज के सांई ॥
हे पुरवासीगण धीर धरो, क्षण में सब विघ्न मिटाता हूँ ।
जिस जगह से अग्नी आई है, उसको वापिस लौटाता हूँ ॥
यों कहकर चक्र सुदर्शन को, दी अयुस जाकर काज करे ।
जिसने यहां आफत ढाई है, उसका सब शौर्य व वीर्य हरे ॥
आज्ञा पा गोपाल की, चला चक्र तत्काल ।
प्रलय अग्नि का जायकर, कीन्हा हाल विहाल ॥
हरि चक्र सुदर्शन से पिटकर, कृत्यानल अतिशय घबराया ।
कुछ वस न चला हत तेज होय, वापिस काशीपुर को धाया ॥
इसके द्वारा ऋत्विजों सहित, नृप भी ज्वाला में भस्म हुये ।
दुष्टों के द्वारा किये कर्म, उनको ही मृत्यू धर्म हुये ॥
अब बारी हरि व्यायुध की थी पुर को क्षण मांहि जला डाला ।
आ गया लौट कर वापिस झट, जहं बैठे थे श्री नन्दलाला ॥
जिन की भृकुटी विलास से जग जन्मे, पोषित हो नस जावे ।
उनके शस्तर की महिमा को, है को समर्थ जो गा पावे ॥
जिस तरह प्रज्वलित अग्नी मे जल मरते शलभ स्वयं आकर ।
त्योंही दुर्जन होते विनष्ट बलका घमंड उर में लाकर ॥
पृथ्वी का भार हटाना ही जिसने निज कर्तव्य धारा है ।
उसने हरविधि से हर प्रकार, चुन चुन दुष्टों को मारा है ॥
पर जिनके हित प्रभु महि प्रगटे, उनका यह धर्म है नरराई ।
भक्ती में निशि दिन लीन रहें कामादि रिपुन को विसराई ॥

करुणा वरुणालय प्रभो गऊ लोक के नाथ ।
दुष्टों को भी मुक्ति दें. निज लीला के साथ ॥
ह योग यज्ञ अति ही दुस्तर, कलियुग में बन नहिं आवेंगे ।
वेही हरि के प्यारे होंगे, जो भक्ति मे उमर वितावेंगे ॥
निष्काम होय फल आश त्याग, प्रभु में जो हृदय लगाते हैं ।
वे होते जीवन मुक्त सदा, नहिं कभी अटकने पाते हैं ॥

※ गाना ※

जहां देखता हूं, तहां हर ही हर है ।
उधर है कन्हैया, इधर मुरलीधर है ॥
हे मोहन मुरारी, सदा व्रज विहारी ।
तू गोपाल गोविन्द, श्री श्यामावर है ॥
हे भक्तो के मालिक, हे दुनिया के खालिक ।
करूं क्या वड़ाई, तू सुन्दर सुघर है ॥
हे गीता के वक्ता, समय निज के यक्ता ।
मेरी टूटी नोका, यह तेरी नजर है ॥

हे कौरवेश सच कहता हूँ, धन धन सौभाग्य तुम्हारा है ।
जो प्रभु के विमल चरित्रों को, नित सुनना हृदय विचारा है ॥
अच्छा अब बहुत समय बीता, बलदाऊ के गुण गाये हुये ।
रहते हैं वे व्रज मे हि अभी, आनन्द मग्न हरषाये हुये ॥
बलराम कृष्ण हैं एक तत्व, लीलाहित दो वपु धारे हैं ।
धारी धारी से दोने ने, लक्षाधिक दुष्ट संघारे हैं ॥
उन सुन्दर लीलाओं में से, हम तुमको एक सुनावेंगे ।
कर मनन भक्त जन पावन हो, कलि प्रपंच से बच जावेंगे ॥
त्रेतायुग में श्री पुरुषोत्तम, रघुनाथ लंक चढ़ धाये थे ।
उनके संग बानर थे असंख्य, टिड्डी दल से तहां छाये थे ॥

सुग्रीव थे बानर भूप तहां, अरु द्विविद मंत्रि कहलाता था ।
ये बानर छल बल कौशल में, बस यकता माना जाता था ॥
जब लंका नगरी फतह हुई, आज्ञा निकली रघुराई की ।
यदि किसी भी बानर ने पुर में, जा कुछ भी तहां बुराई की ॥
तो उसे मिलेगा दण्ड बहुत, दल बाहर कर दिया जावेगा ।
पुनि उससे कोई भी बानर. बर्ताव न रखने पावेगा ॥
अवधेश की आज्ञा के विरुद्ध, ये लंक से नारि पकड़ लाया ।
तब क्रोधित हो रघुराई ने, रामादल बाहिर कढ़वाया ॥

तब मे ये फिरता रहा, बन खंडों के बीच ।
भौमासुर का मित्र पुनि, बना समय पा नीच ॥
जब पृथ्वी सुत का सुना, इसने मरन वृतान्त ।
रिस व्यापी सब बदन में, गरजा मनो कृतान्त ॥

द्वारिका के निकट प्रदेशों में, ये खल उत्पात मचाने लगा ।
अग्नी लगाय पुर ग्रामों में, दुख प्रलय सरिस ये लाने लगा ॥
था बल, दस सहस्र हाथियों सा, ऋषि आश्रम कई उजाड़ दिये ।
मल मूत्र हवन कुण्डों में भर, मुनियों के यज्ञ बिगाड़ दिये ॥
गिरिशिखर से अगणित पुरुषों को, लुढ़का कर नष्ट बनाता था ।
नारियों व बच्चों को लेजा, कन्दराओं में रख आता था ॥
होनी वश हो ये एक दिवस, रैवतगिरि ऊपर चढ़ आया ।
सुख सहित राजते थे जहां पर. हरि अग्रज हलधर बलराया ॥
ये लौटके व्रज की भूमी से अभि हाल हि में यहां आये थे ।
दो एक दिनों के लिये यहां, इनको हरि ने ठहराये थे ॥
जम रहा था युवतिन का समाज, संगीत लहर थी छाय रही ।
कई तरह की अद्भुत नृत्यकला, दाऊ का मन बहलाय रही ॥

देख मत्त बलवीर को, तिरियाओं के संग ।
उचक चढ़ा खल वृक्ष पै. भर के हिये उमंग ॥

किटकिटा दांत आँखें मटका, मारी एक किलकारी भारी ।
हिल उठा रैवतक पर्वत सब, दहलाय गईं तिरयाँ सारी ॥
बल ने मामूली वानर गिन, एक शिला खंड से वार किया ।
उस खल ने चोट बचा फौरन, मदिरा पात्रों को तोड़ दिया ॥
नहिं रहा ठिकाना गुस्से का, गरजे हरि अग्रज बलराई ।
बोले रे दुष्ट ठहर तो जा, तव मृत्यु तुझे यहां ले आई ॥
कई दिनों से दुख पहुँचाय रहा, निर्बलों को हे बल अभिमानी ।
सब गर्व तेरा खंडित होगा, बचने न पायगी जिन्दगानी ॥
इतना कह बल ने हल मूसल, अपने हाथों में धार लिये ।
कपि ने भी कइ यक शिला खण्ड पर्वत से तुरत उखाड लिये ॥
फैंका वानर ने प्रथम, तुरत एक गिरिखंड ।
बल ने रज सम कर दिया छाया कोप प्रचंड ॥
पुनि द्वतिय वार के पहिले ही, दाऊ ने मूसल दे मारा ।
कपि गिरा भूमि पर मूर्छित हो, सिर से निकली खूं की धारा ॥
पर फौरन ही चैतन्य होय, ले शाल वृक्ष बल पर धाया ।
पर इन्होंने झट दो टूक किये, तब खिसिया कर दूजा लाया ॥
जितने भी वृक्ष क्रोध करके, कपि कुल कलंक ले आता था ।
अरु कटकटाय रोहणि सुत पर, वर्षा समान बरसाता था ॥
वे क्षण भर में त्रण के समान, होकर भू पर गिर जाते थे ।
रहते थे अक्षत हलधारी, ये लख कपि अंग जलाते थे ॥
यों सब बन वृक्ष विहीन किया, पर चली नहीं कुछ चतुराई ।
पर देख महा रण नारि सभी, अपने मन में अति घबराईं ॥
ये लख बलराम कुपित होकर कपि के तट झटपट आते हैं ।
तन मर्दन कर खल का फौरन, अंतिम मारग दिखलाते हैं ॥
नभ से पुष्पों की वृष्टि हुई, सुर अतिशय हर्ष मनाने लगे ।
द्वारावति वाले उत्सव कर, बल का जयकार सुनाने लगे ॥

इतने में आई खबर, कौरव कुल अवनेश ।
करें स्वयंवर पुत्रि का, बुला अनेक नरेश ॥
ये सुनते ही जाम्बवती पुत्र, अपने रथ पर चढ़ कर धाया ।
अति वेग पूर्वक चलता हुआ इकला ही कौरवपुर आया ॥
फिर रही थी वर माला लेकर सखियों के संग लक्ष्मणा तहां ।
बे खौफ़ उसे कर में उठाय, ले चला खड़ा स्यंदन था जहां ॥
पुनि फौरन ही रथ में बिठला, द्वारावति ओर पयान किया ।
श्री भीष्म, द्रौण, कर्णादिक के, बल पै न हृदय में ध्यान दिया ॥
ये हाल देख कौरव सारे, कर कोप सदल बल चढ़ि धाये ।
घेरा आकर हरिनंदन को, कोदंडों से शर बरसाये ॥
पर साम्ब ने पुरुषारथ दिखला, पल में सब को घायल कीन्हा ।
अवलोकन कर इसका साहस, कुरुओं ने अति अचरज लीन्हा ॥
आखिर चहुँदिशि से घेर इसे, सब मिलकर मार मचाने लगे ।
शर द्वारा अंग प्रत्यंगों में, अतिशय पीड़ा पहुँचाने लगे ॥
कुछ देर में शारथि अश्व मरे, स्यंदन का चकनाचूर हुआ
हो गया धनुष भी टूकटूक, तब साम्ब वीर मजबूर हुआ ।
लाये कौरव नगर में इसको बन्दि बनाय ।
नारद ने ये हाल सब, कहा द्वारका जाय ॥
सुना हाल जब साम्बका, कोपे सब यदुवीर ।
रण करने तत्पर हुये, तब बोले बलवीर ॥
यादव वीरों कुछ धीर धरो, मैं हस्तिनापुर को जाता हूँ ।
कुरुओं से रिश्तेदारी है रण टले उपाय कराता हूं ॥
यों कह उद्धव को संग लेकर, बलराम हस्तिनापुर आये ।
जब समाचार कुरुओं ने सुना हृदय में अतिशय हरषाये ॥
आगे आकर अगवानी की, सादर उपवन में ले जाकर ।
ठहराया अति सन्मान किया, तब बोले दाऊ सुख पाकर ॥

उग्रसेन महाराज का, हुक्म सुनो धर ध्यान ।
तदनुसार कारज करो, कौरव वीर सुजान ॥
यदुवंश भूप ने कहा है ये, तुमने अधर्म का काम किया ।
कइ जनों ने मिलकर इकले को, संग्राम में बंदि बनाय लिया ॥
अस्तू फौरन ही बालक वह, सन्मान सहित छोड़ा जावे ।
लक्ष्मणा का ब्याह उसके संग हो, पुनि वधू सहित वो यहां आवे ॥
माफी मांगे सब कौरवगण, अपने दुष्कर्मों की सिर ना ।
वरना यदुवों की क्रोधाग्नी, पल भर में देगी भस्म बना ॥
अपमान साम्ब का हुआ नहीं, यदुवीरों का अपमान है ये ।
पर मिट न जाय रिस्तेदारी, हमको थोड़ासा ध्यान है ये ॥
हे कुरुपति ऐसी बात देख, मैं संधी करने आया हूँ ।
आपस में बैर न बढ़े कहीं, ये फिक्र हृदय में लाया हूँ ॥
बलदेव के बल प्रभावशाली, वचनों से कौरव कुपित हुये ।
बोले विधना की गति देखो, पदत्राण शीश पर अजित हुये ॥
हमरी हि कृपा से भोग रहे, नृप पद अब मद हो आया है ।
देखो उन तुच्छ यादुवों ने हम ही पर हुक्म चलाया है ॥
कुन्ती से श्यादी मात्र हुई, बस ये सम्बन्ध दबाता है ।
वरना यदुकुल है कितना सा, हम से त्रिभुवन थर्राता है ॥
पैर धूलि सिर पर चढ़ी, करेंगे शीघ्र उपाय ।
भीष्म द्रोण चाहें अगर, यादव क्या कर पाय ॥
यों बकते झकते कौरव सब, अपने अपने घर लौट गये ।
शेषावतार बलदाऊ के, गुस्से से लोचन लाल भये ॥
बोले जिनकी आज्ञा सुरपति, अरु लोकपाल सिर पर धारे ।
वे उग्रसेन इन लोगों की, दृष्टी में हीन हैं बेचारे ॥
अवतार अवनि पर ले प्रभु ने, जिस वंश का मान बढ़ाया है ।
जिन हित समुद्र वक्षःस्थल पर, मणियों का नगर बसाया है ॥

पुनि अमरावति का कल्पवृक्ष, जिनके महलों में राज रहा ।
उन अंधक वृष्णि यादवों को, गिनते हैं कौरव तुच्छ महा ॥
वे कृष्ण भी इनकी बुद्धी में, सामान्य मनुज ही हैं भाई ।
विधि शेष, महेशादिक जिनकी, तरसे करने को सेवकाई ॥
लक्ष्मी जिन चरनन की दासी, अणिमादिक चंवर ढुलाती हैं ।
इन नीच कौरवों को दृष्टी, उन प्रभु की कला न आती है ॥
बलवानों को अभ्यास नहीं, होता अपमान के सहने का ।
अब मेरी कोपानल में गिर, कुरुकुल अक्षत नहिं रहने का ॥
इनका हि भला करने के लिये घर से चल यहां आया हूँ मैं ।
पर दुष्ट और मति मंद हैं ये, इस समय जान पाया हूं मैं ॥
जैसे पशु बिन ताड़ना मिले, आते नहिं सीधे रस्ते पर ।
त्यौं ही बिन पिटे कौरवों के, होगा नहिं ज्ञान हृदय अंदर ॥

कौरव हीन करूं मही, उचित है येही दंड ।
ले दल हलधारी चले, छाया क्रोध प्रचंड ॥

हल अग्र भाग से नगर खींच, गंगा में आज डुबा दूंगा ।
हरि द्रोही नास्तिक जीवों का, दुनिया से नाम मिटा दूंगा ॥
यों कर विचार बल सागर ने, हल अड़ा के जोर लगा ही दिया ।
घूमा गजपुर झट नाव सरिस थर्राय गया कुरुओं का हिया ॥
लक्ष्मणा साम्ब को आगे कर, आबाल वृद्ध कौरव आये ।
गिर पड़े चरण में दाऊ के, स्तुति कीन्ही अति भय पाये ॥
हे शेष अनंत पराक्रम धर, रोहिणि नंदन हे बलधामा ।
रेवती रमण हरि के अग्रज, हे संकर्षण हे श्री रामा ॥
हे सहसफणी हे नारायण, हे वासुदेव व्रज रखवारे ।
हे धरणीधर बलभद्र प्रभो, दुष्टों का मद गंजन हारे ॥
तुम्हरे अपार बल की महिमा, हम तुच्छ बुद्धि कैसे गावें ।
जब थके सुरासुर लोकपाल, दिग्गज तक तुम से भय खावें ॥

सारा ब्रह्मांड एक फण पर, हे त्रैलोकेश्वर धारा है ।
धेनुक प्रलंब आदिक खलगण, को मौत के घाट उतारा है ॥
हो रहे थे मद में अंधे हम, तुम्हरा प्रभाव पहिचाना नहीं ।
तुम साक्षात् जगदीश्वर हो, ये तत्व आज तक जाना नहीं ॥
तुम से कर सम्बन्ध हम हुये धन्य अति धन्य ।
नृप तनया ये लक्ष्मणा, स्वीकारो चेतन्य ॥

* गाना *

बलराम शरण मे हम है तुम्हरी आये ॥
तुम सम वीर नहीं कोई आना, सत्य सत्य है कृपानिधाना ।
ठाडे है शीश नवाये ॥ बलराम० ॥
माफ करो तकसीर हमारी, हरि अग्रज हल मूसल धारी ।
करनी पर है पछताये ॥ बलराम० ॥
बाल सुलभ लख क्रिया हमारी, दया करो दीनन हितकारी ।
वर वधु आगे लाये ॥ बलराम० ॥

यों कह कुरुनृप ने पुत्री का, यदु श्रेष्ठ साम्ब संग ब्याह किया ।
जो खोल हस्ति हय रथ दासी, अति स्नेह सहित दायजा दिया ॥
पुनि हरि अग्रज के हाथ जोड़, बोले कुरुपति हे बलराई ।
करना अपराध क्षमा हमरा, हम दास तुम्हारे जगसांई ॥
अभय दान चल दिये हली, सुख सहित द्वारका में आये ।
आकर संवाद कहा सब को, घर घर आनंद मंगल छाये ॥
बैठे थे हरि एक दिन, सभा सुधर्मा आय ।
इतने में एक दूत आ, बोला शीश झुकाय ॥
कीन्हे हैं मगधेश ने, कैद अमित भूपाल ।
उन्होंने भेजा है मुझे, यहां पर दीनदयाल ॥

अरु कहलाया है हे केशव, तुम विपति विदारन हारे हो ।
हो भयदाई दुष्टों को सदा, भक्तों के नित रखवारे हो ॥
ये दुष्ट जरासंध हम सब की, यज्ञ में बलि देने वाला है ।
कर कृपा करो रक्षा स्वामी, पड़ गया नीच से पाला है ॥
उत्तर देने ही वाले थे, गोबर्धन धारी यदुराई ।
इतने में श्री नारद मुनि ने, निज झलक सभा में दिखलाई ॥
अरु कहन लगे हे चक्र पाणि, हम इन्द्रप्रस्थ से आते हैं ।
यज्ञ राजसूय हित सलाह लेन, श्री धर्मराज बुलवाते हैं ॥
मुस्काकर उद्धव से बोले, अंतरयामी, क्या करें कहो ।
हैं काम दोनों ही आवश्यक पहिले किसमें चित धरें अहो ॥

श्री उद्धव कहने लगे, प्रभु का रुख पहिचान ।
इन्द्रप्रस्थ चलिये प्रथम, मधुसूदन गुणखान ॥

आस्वासन दे भूपालों के, चरको माधव ने विदा किया ।
पुनि इन्द्रप्रस्थ की भ्रात सहित, यात्रा करने में चित्त दिया ॥
किस तरह यज्ञ वो पूर्ण हुआ, किम भूपों ने मुक्ती पाई ।
ये कथा श्री महाभारत के, सातवें भाग में है आई ॥

नगर द्वारका जब हुआ, राम कृष्ण से हीन ।
तेहि अवसर छाई तहां, आपत्ति एक नवीन ॥

रुक्मणी विवाह के समय प्रभू, जब कुण्डिनपुर को धाये थे ।
भूपालों का मद चूरन कर, रुक्मणि को हर ले आये थे ॥
उस समय साथ शिशुपाला के, शाल्व नरेश भी आया था ।
जिसको श्री रोहणिनन्दन ने, संग्राम में खूब छकाया था ॥
उस हार से दुखी होय खल ने, अपने मन में ये प्रण ठाना ।
यदुवंश का सत्यानाश करूँ, तब होवे मेरा मन माना ॥
कर ये विचार वन में जाकर, श्री आशुतोष का ध्यान धरा ।
एक मुट्ठी राख फांक करके, जीवित रहना स्वीकार करा ॥

यों करी तपस्या एक वर्ष, तब दिया दर्श कैलाशी ने ।
वर मांग मांग भूपाल तुरत, यों फरमाया अविनाशी ने ॥
हाथ जोड़ नृप ने कहा, चहिये एक विमान ।
सुदृढ़ अजय अरु फेर जेहि, तोड़ न सके जहान ॥
एवमस्तु कह चल दिये, गिरजापति हरषाय ।
पा विमान द्वारावती, खल ने घेरी आय ॥
थी सेना भी संग में भारी, अतिशय उत्पात मचाने लगी ।
पुर के वन उपवन नष्ट किये, मंदिर प्राशाद ढहाने लगी ॥
खुद शाल्व यान में चढ़ा हुआ, कइ अस्त्र शस्त्र कंकर पथ्थर ।
बेदर्दी से बरसाने लगा, पुनि आंधी चलन लगी सत्वर ॥
चहुँ दिशि धूली के उड़ने से, छा गया गगन में अंधियारा ।
फिर लगी चमकने विद्युत तहँ, अरु गिरने लगी जल की धारा
मच गया शोर द्वारावति में, पुर वाले जब अति घबराये ।
रतिनाथ प्रद्युम्न फौज ले तब, अति शीघ्र नगर बाहिर आये ॥
आते ही ललकारा खल को, बोले ले मजा चखाता हूँ ।
तेरा सारा छल बल कौशल, मिट्टी में अभी मिलाता हूँ ॥
यों कह कर शर संधान किया, अरु लगे चलाने यदुनन्दन ।
ऐसी बाणों की मार करी, मचगया शत्रुओं में क्रंदन ॥
पर मायामय वो शाल्वयान, नहिं ठीक नज़र में आता था ।
भूतल पर कभी दृष्टि पड़ता, कभि नभऊपर चढ़ जाता था ॥
एक रूप होता कभी बहु रूप कभि होय ।
कभी छिपे प्रगटे कभी, गति नहिं जाने कोय ॥
जिस जगह जिस दशा में विमान, जब कभी दृष्टि आजाता था ।
बस उसी समय उसके ऊपर, प्रद्युम्न बाण बरसाता था ॥
बाकी अवसर में सेना वध, शत्रुओं के छक्के छुड़ा रहे ।
अरु अन्य यादवो सेनप भी, अपना बल रिपु को दिखा रहे ॥

आखिर हरिसुत हाथ से, शाल्व हुआ बेहोश ।
मंत्री सुत द्यूमान तब, आया भर हिय रोश ॥
रण छिड़ते ही हरिनन्दन ने, इसको बेहोश बनाया था ।
जब शाल्व हुआ मुर्छित तब ही, वह दुष्ट होश में आया था ॥
उसने आते ही धोखे से, प्रद्युम्न पे गदा प्रहार किया ।
बे होश हो गये, सारथि ने, रथ को तब रण से हटा लिया ॥
चेतन्य होय वापिस आये, बाणों की ऐसी मार करी ।
द्यूमान मृत्यु का ग्रास हुआ, सेना पर भी अति भीड़ परी ॥
पर रण से विमुख न हुआ कोई सब मिल जुल युद्ध मचा रहे ।
यदुवंशी भी निज भुजबल से, रिपुओं को त्रास दिखाते रहे ॥
यों सात दिवस अरु सात रात संग्राम भयंकर भयकारी ।
होता हि रहा पर किसी ने भी, नहिं की भगने की तैयारी ॥
अष्टम दिन होकर विदा, इन्द्रप्रस्थ से श्याम ।
आ पहुँचे द्वारावती, लखा आय संग्राम ।
बल को पुर का रक्षक बनाय, दारुक सारथि से फरमाया ।
ले चल मेरा रथ शाल्व निकट, मत घबराना लखकर माया ॥
यों कह करमें शारंग धनु ले, रण में आये शारंगपानी ।
यादव लख इन्हें प्रसन्न हुये, कइ बार कही जय की बानी ॥
कुछ देर में श्री मधुसूदन ने रिपु सेना नष्ट बना डाली ।
ये देख शाल्व मायावी ने, माया एक नई रचा डाली ॥
एक पुरुष द्वारका नगरी की, जानिब से आता दृष्टि पड़ा ।
अरु बोला आ मधुसूदन से, महाराज गजब हो गया बड़ा ॥
वो दुष्ट शाल्व प्रासाद में जा, वसुदेव को हर ले आया है ।
लो छुड़ा उन्हें यह ही कहने, देवकी ने मुझे पठाया है ।
इतने में आई तहां, नभ से एक अवाज ।
देख कृष्ण तव पितृ का, जी लेता हूं आज ॥

यदि कुछ भी बल तू रखता है, तो आकर पितु की रक्षा कर ।
वरना मैं अभी भेजता हूं, इसको फौरन यम द्वारे पर ॥
इतना कह धड़ से अलग किया मरनि का सिर अरु मुस्काया ।
सारा प्रपंच उस निश्चर का, भगवानकी समझ मांहि आया ॥
बोले कायर की तरह नीच, क्या जाल मुझे बताय रहा ।
कर ध्यान इष्ट का अपने तू हो सजग कृतान्त बुलाय रहा ॥
यों कह एक शर मे किया, नष्ट तुरत विमान ।
दूजे शर मे शाल्व को, पटका भू दरम्यान ॥
तब उठा त्रिशूल चला भूपति हरि ने फौरन दो टूक किया ।
पुनि चक्र सुदर्शन के द्वारा, हर प्राण यमालय पठा दिया ॥
सुन शाल्व राज की मृत्यु कथा, नृप दंतवक्र अति गरमाया ।
ले एक बड़ी सेना संग में लड़ने के लिये चला आया ॥
प्रभु ने अपना रथ उधर फेर, मुस्काकर शारंग को ताना ।
उत दंतवक्र ने भी फौरन, रिसिया धनु पर शर संधाना ॥
कुछ देर वार तीरों के हुये, तलवार की फिर बारी आई ।
नटवर ने नटवत खेल किया, भूपति की तबियत बहलाई ॥
पुनि उस शठ ने जब कटुक वचन, बोले प्रभु को गुस्सा आया ।
एक अर्धचन्द्र शर को तज कर, ले प्राण यमालय भिजवाया ॥
भ्रात विदूरथ दंत को, आया करन सहाय ।
हरि द्वारा वह भी अधम, गया शरीर गंवाय ॥
इस भाँति भूमि का भार हटा, अमृत दृष्टी सब पर डाली ।
जी उठे तुरत यादव सारे, तब पुर में आये बनमाली ॥
अति हर्ष सहित पुर वालों ने, प्रभु की अगवानी कीन्ही है ।
महलों पर चढ़ी रानियों ने, डारी दृष्टी रंग भीनी है ॥
एक दिवस राम ने ये सोचा, महाभारत होने वाला है ।
जिसमें कौरव कुल अपने कुल, यश मान को खोने वाला है ॥

उत दुर्योधन है शिष्य मेरा, पांडवों से रिश्तेदारी है ।
किसको दें मदद नटें किसको, इस बात का सोच अति भारी है ॥
इसलिये यही उत्तम होगा, अब तीर्थ यात्रा को जावें ।
ताके दुविधा से प्राण बचें, कोई न मदद मांगन आवें ॥
ये विचार बलराम ने, तुरत यात्रा कीन्ह ।
दान में धन इतना दिया, धनी हुये सब दीन ॥
पुनि आये निमिषारन में बल, देखा हो रही है प्रभु गाथा ।
व्यासासन पर द्विज की बजाय, एक सूत पुत्र दृष्टी आता ॥
अवलोक इन्हें ऋषि मुनियों ने, उठ सादर कीन्ही अगवानी ।
पर सूत उठा नहि ये लखकर, गरमाये अतिशय बलवानी ॥
बोले व्यासासन मिलने से, इस सूत को गर्व अति छाया है ।
सब तो स्वागत करने को उठे, ये बैठा दृष्टी आया है ॥
है पढ़ा लिखा विद्वान मगर, पशुवत है व्यास पद योग्य नहीं ।
बाघाम्बर धारन करने से, रासभ होता है सिंह कहीं ॥
तज दिया मैंने खल बध करना, पर कर्तब आज निभाऊंगा ।
इस शिष्टाचार रहित नर का, दुनिया से खोज मिटाऊंगा ॥
यों कह कर एक कुशा द्वारा, बध किया सूत का रिस खाकर ।
"अन्याय हुआ तुम्हरे हाथों", कह उठे ऋषी सब सिर नाकर ॥
शुचि मंत्रों से आमंत्रित कर, हमने ही व्यास बनाया था ।
कर द्विज स्वरूप इसको हमने, हरि चर्चा हित बिठलाया था ॥
था प्रण इतने दिन कथा सुनें, बलराम वो टूटा जाता है ।
किस तरह निभावें वचनों को, बस यही सोच हिय आता है ॥
बल बोले धीरज धरो, इसका पुत्र बुलाय ।
सुनो कथा उसको तुरत, दूंगा योग्य बनाय ॥
इतना कह सूत पुत्र बुलवा, बल ने उसको विद्वान किया ।
हो गया निपुण पल में, ये लख, ऋषि मुनियों का हरषाया हिया ॥

पुनि एक राक्षस को मारा, जो मुनियों को तंग करता था ।
जिस समय वे यज्ञ शुरू करते, मल मूत्र कुंड में भरता था ॥
पुनि ब्रह्महत्या के पातक का, प्रायश्चित करने बलरामा ।
कर ब्रह्मचर्य व्रत को धारन, चल दिये तीर्थों सुखधामा ॥
जिस जगह पहुँच जाते अनंत, दीनों का दरिद्र नसा जाता ।
बतलाओ सूर्य निकलने पर, कहिं अंधियारा भी टिक पाता ॥
कोशिकी में मज्जन कर पुनि वे, सरयू उद्गम थल में न्हाये ।
पुनि तीरथ राज प्रयाग मांहि, बलभद्र विप्र गण युत आये ॥
ऋषि पुलस्थ के आश्रम में जा, सादर मुनिवर को सिर नाया ।
गंडकी गोमती जानिथ पुनि, श्री हलधारी का दल धाया ॥

शोण नदी में न्हाय कर, गया धाम गये आय ।
पितृ श्राद्ध तर्पण किये, दीन्हा दान अघाय ॥

यहां से गंगासागर पहुँचे, पुनि गिरि महेन्द्र भी नियराया ।
कर नमन भृगूनंदन को फिर, आगे बढ़ना हो मन भाया ॥
पम्पापुर गोदावरी जाय, पुनि भीमरथी में न्हा धोकर ।
श्री शैल गिरी के दर्शन कर, वंकट गिरि पहुँचे खुश होकर ॥

काम, कोष्टी, कांची, कावेरी में न्हाय ।
रंगनाथ दर्शन किये, बल ने अति सुखपाय ॥

ऋषिमूक व दक्षिण मथुरा हो, पुनि सेतु बन्ध तीरथ आये ।
यहां हलधर द्वारा सहस गऊ, अन वस्त्र ब्राह्मणों ने पाये ॥
पुनि ताम्रपर्णि कृतमाला में, कर स्नान मलयगिरि जाते हैं ।
कुम्भज ऋषि के दर्शन करके, ले आज्ञा आगे आते हैं ॥
दक्षिण सिन्धू में जा पहुँचे, कन्यादेवी का दरस किया ।
फाल्गुन तीरथ में दाऊ ने, विष्णू दर्शन में चित्त दिया ॥
केरल त्रिगर्त आदिक होते, गोकर्ण तीर्थ दर्शन पाया ।
यहां आशुतोष की छबि लखकर, हो गये अनंदित बलराया ॥

श्री निवासमनि आर्या, देवी को सिर नाय ।
सूर्यादिक तीरथ चले, सकल दुःख बिनसाय ॥
ताम्री पयोष्णी निर्विन्ध्या, नदियों में न्हाते बलराई ।
आ गये दण्डकारण्य मध्य, पुनि आगे गमने सुखपाई ॥
फिर महिष्मती नर्वदा सरित, में न्हाये श्री रोहिणि नंदन ।
मनु तीरथ में होकर आये, परभास क्षेत्र में जगवंदन ॥
यहां आ दाऊ ने सुना, महाभारत का हाल ।
पहुँचे होय उदास कुछ, कुरुक्षेत्र तत्काल ॥
जिस समय ये कुरुक्षेत्र पहुँचे, कुरुपति व भीम लड़ते पाये ।
हो रहा था गदा युद्ध तहां पर, ये लखकर दाऊ नियराये ॥
बोले दोनों ही यकसा हैं, है भीम शक्ति में बढ़ा हुआ ।
पर कला में सच मानों तुम सब, श्री दुर्योधन है चढ़ा हुआ ॥
इस युद्ध में हार जीत मुझको, नहिं जरा नजर में आती है ।
रोको इस निष्फल झगड़े को, हो चुकी खूब बरबादी है ॥
पर इनकी सलाह किसी ने भी, नहिं मानी तब ये चल दीन्हें ।
होनी अवश्य होकर रहती, ये ध्यान हृदय में धर लीन्हे ॥
द्वारावति में आ गये, हर्ष सहित बलराम ।
उग्रसेन आदिक मिले, स्वागत किया ललाम ॥
कुछ दिनों बाद मधुसूदन भी, महाभारत का रण पूरण कर ।
आ गये द्वारका नगरी में, दुष्टों के मद का चूरन कर ॥
भूमि का बोझा हलका हो, ये था प्रभु ने चित में धारा ।
हो गई इति श्री कर्तब की, सुर विप्र धेनु संकट टारा ॥
बलराम कृष्ण में फरक कभी, हे राजन मन चित में लावो ।
हैं दो शरीर अरु एक प्राण, ये जान प्रेम से सिर नावो ॥
आनंद मूर्ति श्री बलदाऊ, अवतार शेष भगवान के हैं ।
क्रोधी निर्दयी खलों हित हैं, भक्तों को अपना मानते हैं ॥

पुनि अंत रहित हैं श्री अनंत इनके चरित्र सुखदायक हैं ।
जो पढ़ें सुनावें भक्तों को, उनको हर समय सहायक हैं ॥
दुनिया की दंत कथा तो नित चौगानों बंटे जारी है ।
जो चित दें हरियश गायन में, केवल उनकी बलिहारी है ॥
गर पुनर्जन्म की चाह न हो, तो आवो श्रद्धा युत भाई ।
पकड़ो पद हरि बलदाऊ के, लो इन्हें हृदय में बिठलाई ॥
अब आगे रविग्रहण की, सुनो कथा कुरुराय ।
कुरुक्षेत्र में मख किया, हरिपितु ने हरषाय ॥
एक समय सुधर्मा सभा मध्य, श्री देवऋषी नारद आये
देखा मित्रों से घिरे हुये बैठे हैं नटवर छविछाये ॥
दर्शनी मूर्ति के दर्शन कर, विधि के नन्दन हरषाते हैं ।
पद वन्दि प्रभु के मन ही मन, झट तहां मांहि टिक जाते हैं ॥
बातों ही बातों में चर्चा, श्री सूर्य ग्रहण की भी आई ।
बोले मुनि कुरुक्षेत्र चलना, इस अवसर पर है सुखदाई ॥
स्यमंत पंचक नाम का, है तहां तीर्थ महान ।
न्हाने से होती तुरत, कोटि जन्म अघहान ॥
कुछ दिन बाकी रवि ग्रहण के हैं, पर पहिले ही चलना चहिये ।
ताके अच्छी सी जगह मिले, सुस्ती न कभी करना चहिये ॥
नारद के उपदेशानुसार, यदुवंश ने चलने की ठानी ।
सहमत हो गये मुरारी भी, पा खबर चली आईं रानी ॥
पुर की रक्षा करने के लिये, अनिरुध को सैन सहित रखवा ।
चल दिये सकल कुरुक्षेत्र ओर, अपने अपने वाहन सजवा ॥
श्री कृष्णचन्द्र भी पहुँचेंगे, जब खबर मिली पांडवदल को ।
चलदिये कुन्ति अरु पति सहित, झट कुरुक्षेत्र के जंगल को ॥
कई अन्य और अवनी पति भी, निज निज दल संग लिये सारे ।
आ पहुँचे कुरुक्षेत्र सब मिल, शुचि ब्रह्मचर्य व्रत को धारे ॥

श्री नन्दराय नन्दरानी औ, वृन्दावन से यहां पहुँचे आ ।
थे संग में ग्वाल बाल सारे, हलधर व कृष्ण के परम सखा ॥
राधेरानी भी सखियों संग, अतिहर्ष सहित यहां आई थी ।
प्रीतम का दर्शन मेला हो, ये आश हृदय में लाई थी ॥

डेरे चहुँ दिशि लग गये सुन्दर सुखद सुवेश ।
आगे का वर्णन सुनों, चित दे कुरु नरेश ॥

अनगिनती ऋषि मुनि संन्यासी, मोहन का दर्शन करने को ।
आगये तहां आशान्वित हो, प्रारब्ध कर्म क्षय करने को ॥
लखकर इन लोगों का समूह, प्रभु, स्वागत हित आगे आये ।
दे करके अर्घ पाद्य आदिक, सुन्दर आसन पर बिठलाये ॥
पुनि बोले श्री गिरिराजधरन, है आज भाग्य हमरा भारी ।
संसार को जो पावन करते, वे यहां पधारे अघहारी ॥
मुस्काय कहा तब ऋषियों ने, तुमतो योंही फरमावोगे ।
दुनियाँ को शिक्षा देने हित, सारे प्रपंच रचवावोगे ॥
विधि, शेष, शिवादिक तक तुम्हरा, नहि पार नाथ जब पा सकते ।
कहते हैं वेद नित नेति नेति, वेदांग शास्त्र भी जा थकते ॥
तब क्षुद्र जीव का जिक्र हि क्या, जो तुम्हरी थाह लगावेगा ।
जो निशिदिन तुम्हरा ध्यान धरे, बाजी वो ही लेजावेगा ॥
पृथ्वी का भार हटाने को, मानुज तन तुमने धारा है ।
अन्यायी असुर क्षत्रियों को, हे नाथ सदा संहारा है ॥
कर धर्म व्यवस्था दृढ़ यहाँ पर, नूतन मग जग को दिखलाया ।
कलियुग में जिमि तब भक्तों को, सुख उपजे वोसब समझाया ॥

निशिदिन तुम्हरे चरन में, रहे हमारा ध्यान ।
धर्म मार्ग छोड़े नहीं, दो प्रभु अस वरदान ॥

* गाना *

विप्रों की अरज मुरारी, दुखहारी, सुन लो हे गिरवरधारी ॥
तन अभिमान न जाये हमारा, कर्मकाड में जीवन वारा ।

भक्ति न की सुखकारी अनुरागी सुन लो हे गिरवरधारी ॥
गीता ज्ञान प्रचार किया है कलि हर धर्म्म तैयार किया है ।
भव के संकटहारी भयहारी सुनलो हे गिरवरधारी ॥
हम है शरण तुम्हारी भगवन, पद मे राखो हमरे तन मन ।
भ्रम को देवो विडारी तनधारी, सुनलो हे गिरवरधारी ॥

यों कह जब वे चलने को हुये, तब प्रभु के जनक यहां आये ।
बोले हे मुनि पुंगव ठहरो, शंकाओं में हम भटकाये ॥
अब तलक ऐश इशरत ही में, मैंने सब समय गुजारा है ।
सोचा भविष्य के लिये नहीं, होवेगा किम निस्तारा है ॥
अस्तू उपाय कुछ बतलाओ, ताके जी में थिरता आवे ।
परलोक सुधर जावे मेरा, आगे न आत्मा भटकावे ॥
ऋषि बोले कैसा अचरज है, श्रीराम कृष्ण से सुत पाकर ।
कहते हो "किम परलोक बने, मैं कहीं नहीं भटकूं जाकर" ॥
तुम्हरे क्या तुम्हरे कुल भर के, पातक क्षय प्रभु ने कर डाले ।
हो बड़े भाग्यशाली तुम सब, जिन घर प्रगटे जग उजियाले ॥
हरिसन्मुख हम कुछ कह न सकें, तव इच्छा लख बतलाते हैं ।
रहते हैं तीन ऋण सब के सिर, गुरु पितृ देव कहलाते हैं ॥
पित्रों के ऋण से उऋण हुये, पाकर बल कृष्ण सरिस नंदन ।
गुरुवर का ऋण भी चुका दिया पढ़कर श्रुति शास्त्र जगतवंदन ॥
अब रहा देव ऋण उसके हित, यदुनायक यज्ञ रचावो तुम ।
जो सामग्री आवश्यक हो, उसको सत्वर मंगवावो तुम ॥
तव पुत्रों द्वारा हुये, लाखों खल संहार ।
उसके प्रायश्चित निमित, अश्वमेध है सार ॥
ऋषि आयसु सिर धार कर चुन एक विप्र प्रवीन ।
सामग्री एकत्र कर, यज्ञ कार्य चित दीन ॥

कुछ दिनों में स्वस्ती वाचन से, ले सब कारज सम्पन्न हुये ।
हर्षित थे सारे यादव गण, वसुदेव अतीव प्रसन्न हुये ॥
अनगिनती याचकगण तहां पर, हरिजनक यज्ञ सुन आये थे ।
यदुकुल के सगे सनेही भी, पुलकित हो तहां पर छाये थे ॥
द्रौपदी रुक्मणी आदि सभी, मंगलमय गीत सुनाती थीं ।
नभ से सुरयानों की पंक्ती, चहुँ ओर पुष्प बरसाती थीं ॥

आखिर निज नारिनसहित, कर अवभृथ स्नान ।
हरषा कर वसुदेव ने, दीन्हा वित्त महान ॥

जो जिस लायक था वैसा ही, सन्मान द्रव्य तहं पाता था ।
ले लेकर सारे पुलकित थे नाराज न कोई दिखाता था ॥
पुनि रिश्तेदारों को बुलवा, हरिपिता ने सबका मान किया ।
राजाओं से ले रैयत तक, कह उठे खूब सन्मान किया ॥

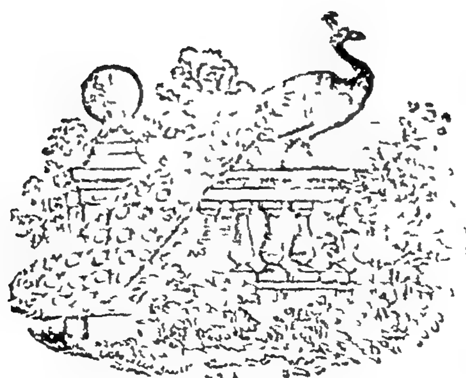
हंसी खुशी से हो गया, यज्ञ कार्य का अंत ।
सब निज निज डेरे गये, आज्ञा पाय तुरंत ॥

एक दिवस कृष्ण वामाओं से, पूछा कृष्णा से हरषाकर ।
किस भांति तुम्हें ब्याहकर लाये, आनंदकंद गिरधरनागर ॥
रुक्मणि बोली मुझ से विवाह, शिशुपाला करना चाहता था ।
ये काम था पितु इच्छा विरुद्ध. पर भ्राता चाह जताता था ॥
अरु मेरा मन था अटक रहा, श्री मधुसूदन असुरारी में ।
गोविंद हरी पुरुषोत्तम में, सुखदायक विपिन विहारी में ॥
अस्तू संदेशा पा मेरा तहां यादव कुल भूषण धाये ।
उन सब के खट्टे दांत किये, कर हरन द्वारका ले आये ॥
पुनि जाम्बवती सुकुमारी ने, अपने विवाह का हाल कहा ।
किस तरह यशोदानन्दन ने, मणि ढूंढन में मम हाथ गहा ॥
सतभामा भी बोली सत्वर, हरिको मिथ्या बदनाम किया ।
अस्तू मम पितु ने शरमाकर, मुझको हरि के कर मांहि दिया ॥

इस तरह सभी वामाओं ने, बारी बारी से हाल कहा।
बोली थे हमरे भाग्य प्रबल जो जगजीवन ने हाथ गहा॥
अब तो हमरी इच्छा है यही, मन प्रभु पद पंकज लगा रहे।
हम दासी हरि की रहें सदा, चित पिय सेवा में पगा रहे॥

द्रुपद सुता हर्षित हुई, पहुँची डेरे आय।
सोचा बोली धन्य है जो प्रभु पद चितलाय॥
पुनि आगन्तुक नारिना, तिन में भरे उछाह।
सूर्य ग्रहण के दिवस की, लगे देखने राह।
मानवतन तब सफल है सुनो सुजनवर ध्यान।
"श्रीलाल" जब रातदिन धरो कृष्ण का ध्यान॥

※ श्रीकृष्णार्पणमस्तु ※





श्रीकृष्ण चरित्र अथवा श्रीमद्भागवत

उन्नीसवां भाग

कृष्ण गोलोक गमन

रचयिता—

श्रीलाल खत्री

प्रकाशक—महाभारत पुस्तकालय, अजमेर

मुद्रक—के. हमीरमल लूनिया, दि डायमण्ड जुबिली प्रेस, अजमेर.

प्रथम बार २,०००	सम्वत १९९१ विक्रमी सन् १९३५ ईस्वी	मूल्य ।) आने

कृष्णस्तु भगवान् स्वयम्

स्तुति

(१)

हे कृष्ण कृष्ण मुरारि मधुसूदन व्रजेश्वर ईश्वरं ।
करुणानिधान सुजान परते पर विभो जगदीश्वरं ॥
हो वैष्णवों के चतुर्भुज, शैवों के कैलाशी हो तुम ।
अरु बोद्ध लोगों के लिये, श्रीबुद्ध अविनाशी हो तुम ॥
कहें सांख्यवादि पुरुष तुम्हें, अरु कर्म मीमांमक कहें ।
बतलाके तुमको ब्रह्म नित, वेदान्ति नर अति सुख लहें ॥
होते हो देवी भक्त हित तुम आद्य शक्ति अधीश्वरी ।
नैयायिकों के न्याय अणु हो नास्तिकों के हे हरी ॥
"श्रीलाल" हित राधेश तुम चित चोर जीवनधन बनो ।
रक्खो चरण की शरण में, कर कृपा ये बिनती सुनो ॥

मंगलाचरण

(२)

पीताम्बर धर पाप हर, गोकलेश गोपाल ।
ताप हरन जन सुख करन, जय जय दीन दयाल ॥
जय जलशायी जलदसम, सुभग सुहावन रूप ।
सृष्टि रचन, पालन, हरन, शिव अज विष्णु स्वरूप ॥
तुम गुरु गणपति शारदा, सहस वदन तुम शेष ।
विघन हरो मंगल करो, जग व्यापक अखिलेश ॥
बंदहुं वेदव्यास सुत, श्री शुकदेव सुजान ।
गायो कलिमल हरन जिन, "कृष्ण चरित" गुणखान ॥

* श्लोक *

वंशीविभूषितकरान्नवनीरदाभात्पीतांबरादरुणबिंबफलाधरोष्ठात् ।
पूर्णेन्दुसुन्दरमुखादरविन्दुनेत्रात्कृष्णात्परं किमपितत्त्वमहं न जाने ॥

❀ कथा प्रारम्भ ❀

हे मन यदि तू चाहता, प्रभु वियोग नहिं होय ।
गुण गा नित श्रीकृष्ण के, सारे संशय खोय ॥
श्यामा अरु श्यामबिहारी का, है नाम क्लेश हरने वाला ।
कलियुग के सकल प्रपंचों को, तत्काल नष्ट करने वाला ॥
जितना भी समय मिले प्रभु की, महिमा गाना कर्तव्य करो ।
झूंठे झगड़ों से चित्त हटा, प्रभु के चरणों में लाय धरो ॥
पुष्पों की जगह पंखुरियां भी, यदि प्रेम सहित हम लावेंगे ।
तो भी भगवान भक्त वत्सल, अति हर्ष सहित अपनावेंगे ॥
अच्छा अब चित एकाग्र बना गुण सुनो देवकीनंदन के ।
श्री चक्रपाणि गिरिधरनागर, गोकुलानंद बृजचंदन के ॥
महाराज परीक्षित गंगातट, योगिन्द्र व्यास नंदन द्वारा ।
सुन रहे विमल यश केशव के, दुनियवी फिक्र तज कर सारा ॥
कहते कहते शुक मुनी, बोले सुन कुरुराय ।
सूर्य ग्रहण के पर्व का, दिन पुनि पहुँचा आय ॥
जिस समय वो सुन्दर सुखदायक, अघनाशक शुचि बेला आई ।
तीरथ स्यमंत पंचक में जा, न्हाये सब संग त्रिभुवन सांई ॥
हो गये अयाचक याचक गण, प्रभु द्वारा इतना धन पाया ।
सब एक हि स्वर से बोल उठे, जय कृष्णचन्द्र जय यदुराया ॥
आखिर ऋषि मुनि एकत्र होय, प्रभु के दर्शन करने आये ।
लखकर छबि, छबि के सागर की, हो गये अनंदित पुलकाये ॥
पुनि स्तुति कर मस्तक नवाय, धर हृदय मूर्ति गिरधारी की ।
गमने निज निज आश्रमों को सब, फिर औरों ने भी त्यारी की ॥

पांडव भी हस्तिनापुर पहुँचे, ले विदा प्रेम से कुरुराई ।
लेकिन व्रजाधिपति को रोका, वसुदेव ने कह ठहरो भाई ॥
तुमने संकट के समय हमें, हे मित्र मदद पहुँचाई थी ।
हो गये थे शत्रु स्वजन सारे तब तुमने करी भलाई थी ॥
हो सकूं न तुम्हरे ऋण से उऋण, यदि चाम पन्हैयां पहिराऊं ।
जो कुछ भी करूं वो थोड़ा है किम मुख से तुम्हरा यश गाऊं ॥
तुम्हरी हि सुजनता का फल है, जो राम कृष्ण का मुख देखा ।
पित्रों के ऋण से उऋण हुआ, अद्भुत आनंद सन्मुख देखा ॥
अस्तू महमानी स्वीकारो, कुछ दिन हम सबके संग रहकर ।
पालें सहवास का आनंद कुछ तब जाना व्रज को विरजेश्वर ॥
इस तरह प्रेम से भरे वाक्य सुन नंदराय अति पुलकाये ।
आनंद सहित निज टोली संग, वसुदेव के यहां कुछ दिन छाये ॥
जब से प्रभु यहां पर आये थे नहि मिल पाया अवकाश इन्हें ।
इसलिये प्राप्त हो सका न था, व्रजवालां का सहवास इन्हें ॥
अब यज्ञ और ग्रहण का पर्व, हो गया पूर्ण तब बनवारी ।
सब से मिलने भेंटने चले, ले अपने संग श्री हलधारी ॥

व्रज वालों के प्रेम की, करते सुधि हरषाय ।
पहुँचे बैठे थे जहां, नंदरानी नंदराय ॥

ज्यों सद्य प्रसूत बछड़े के हित, वन से गउ भागी आती है ।
त्योंही इन दोनों को विलोक, व्रजरानी सन्मुख धाती है ॥
दोनों को हृदय से लगाय, हो गई असुधिसी नंदरानी ।
लख अनुपम प्रेम यशोदा का, पुलकाये श्रीशारंगपानी ॥
पुनि होश में आ ले गोदी में, सिर सूंघ बलायें लेने लगी ।
मुख चूम कृष्ण बलदाऊ का, माखन अरु मिश्री देने लगी ॥
ये दोनों भी अनुराग सहित, ले कोर को मुख में धरते थे ।
माता से मिलकर राम कृष्ण, शिशु काल सा आनंद करते थे ॥

पुनि माता के चरन छू, पितु को शीश नवाय ।
मिले साथियों से प्रभू, हृदय लीन्ह लिपटाय ॥
साथी बोले क्यों रे गुपाल, तूने तो हमको भुला दिया ।
नहिं लौट के आया वृन्दावन, जब से मथुरा को गमन किया ॥
रहता है महलों में नृप बन, तियगण वचों से घिरा हुआ ।
हमरी सुधि क्यों लेता सच है, नृप का रैयत का साथ हि क्या ॥
है रूखा निर्मोही निर्मम, मुख देखी बातें करता है ।
इतने दिन तक तो सुधि न ली, अब शीश हृदय में धरता है ॥
पर प्रेम का फंदा बड़ा सुदृढ़, तूने हमरे गल में डाला ।
अब बात न तू पूछे तो भी, हम तो जपते हैं तव माला ॥
तब हरि ने मुस्काय कर, कहा नहीं यह बात ।
मेरे हिय में बस रहे, व्रजवासी दिनरात ॥
संयोग वियोग हाथ में है, केवल विधि के सुन लो भैया ।
पर इस जीवन में जाय नहीं, तुम्हरा सनेह व्रज अरु गैया ॥
आओ अब तुरत जमा डालें, वोही बचपन की रंगत ।
यमुना तट पर जो खेल किये, खेलें पुनि मिले न ये संगत ॥
इतना कह कुरुक्षेत्र को झट, प्रभु ने वृन्दावन सरिस किया ।
हो गई प्रगट गायें अरु वन, कालिन्दी ने भी दर्श दिया ॥
इसके सिवाय सब गोपों के तन बचपन के अनुहार हुये ।
ले वेणु कदम की छांह तले खुद हाजिर जगदाधार हुये ॥
जी भर के खेल खिलाड़ी ने, साथियों के संग में किये तहां ।
क्षण में वियोग की व्यथा हरी, हो गये अनन्दित सभी वहां ॥
इतने में व्रजबालाओं की, सुधि आई गिरिवरधारी को ।
रासेश्वरि से मिलना चहिये, ये ध्यान हुआ बनवारी को ॥
बलदाऊ को गोपां तट रख, चल दिये अकेले यदुराई ।
कुछ देर में सखियों के समीप, जा पहुँचे श्री त्रिभुवनसाँई ॥

गोपियों को दीन अवस्था में, लख हृदय कृष्ण का भर आया ।
नयनों से आंसू रवां हुये, जी खोल के रोये ब्रजराया ॥
देखा सच के मध्य में, है वृषभानु दुलारि ।
दीन मीन जिमि नीर बिन, बैठी हो मन मार ॥
जप रही है मोहन की माला, मोहन का कीर्तन करती है ।
हे नाथ, हृदयमणि जीवनधन, यों कहकर स्वासें भरती है ॥
कुछ देर तलक नटनागर ने, प्रेमियों का प्रेम भजन देखा ।
प्रेमास्पद में परिपूर्णतया, लवलीन सभी का मन देखा ॥
गद्गद् हो मुरलीधर मुरली धर अधर पै मधुर बजाने लगे ।
जो राग रास में गाई थी, उसको फिर से दोहराने लगे ॥
जिस तरह स्वांति जल को पाकर, पपिहा निहाल हो जाता है ।
त्योंही मनहरन वेणु का रव, इन सबका हाल बनाता है ॥
हड़बड़ा के सारी उठ धाईं, मोहन पद मे माथा टेका ।
इन सब के मिलने की छवि का, को कवी जो बतलावे लेखा ॥
जितनी थीं सखियाँ वहां, उतने ही वपु धार ।
सबसे इक साथ हि मिले, नटवर नंदकुमार ॥
पुनि इक सुन्दर आसन पर टिक, यों कहन लगे शारंगपानी ।
अच्छी तो हो व्रज बालाओं, अरु हे रासेश्वरि गुणखानी ॥
मेरे वियोग में तुम सबने पाया है नित संकट भारी ।
लेकिन उसका सब ध्यान तजो, आगया समय अब सुखकारी ॥
तुमको तज कर जब से मैं गया, नहिं जरा भि फुरसत पाई थी ।
रिपुगण से लड़ता रहा सदा, इससे न शक्ल दिखलाई थी ॥
अब मिटा भूमि का भार सकल, दुष्टों ने कर्म का फल पाया ।
तब हो निश्चिंत तुरत ही मैं, तुम से मिलने दौड़ा आया ॥
तब कहा राधिका ने हे हरि, जब से व्रज छोड़ सिधारे तुम ।
पृथ्वी का भार हटाने में, आयुध जब से कर धारे तुम ॥

तब से लेकर प्रभु आज तलक, नहिं तनिक वियोग सताया है।
जब चहा तभी तुव दर्श मिला, ये कृपा तेरी यदुराया है॥
तुम्हरे कहने से आज हमें, कुछ सुधि वियोग की आई है।
पर अब इसकी परवाह नहीं दृष्टी आगे व्रजसाई है॥
कह दो हे नाथ छोड़ कर अब, हमको न कहीं पर जावोगे।
अब तन में इतनी शक्ति नहीं, जो तजा, मरी ही पावोगे॥
आशा में काटा समय बहुत, अब पद में नाथ रखना होगा।
बालकपन की साथिनियों को, यदुराज साथ रखना होगा॥
पाया है खोया हुआ द्रव्य हिय गुहा छिपा कर राखेंगी।
छाया की तरह तुम्हारे संग, रह कर जीवन फल चाखेंगी॥
हो गया काम तुम्हरा पूरन, कर कृपा हमारे साथ चलो।
घर बार सौंप दो पुत्रों को, व्रज को हे व्रज के नाथ चलो॥

※ गाना ※

हे दीनबंधु भक्त सुखद सांवरे हरी।
अब त्यागना हमे न कभी शरण मे परी॥
अब तक सहा विछोह था मिलने की आश मे।
यदि अब दगा दिया तो सत्य पावोगे मरी॥
अब क्या सबब है जो नहीं चलते हो व्रज प्रभो।
बोझे से पापियों के हलकी भूमि को करी॥
बोलो क्या करना चाहते हो भक्त सुखद आप।
चलते हो या रहोगे यहीं कहदो सब खरी॥

कहा कृष्ण ने अब नहीं, होगा पलक वियोग।
चलूं तुम्हारे साथ व्रज, तजो हृदय का सोग॥
अच्छा अब चाहता विदा, होना मैं इस काल।
एक बात पुनि और है, सुन लो उसका हाल॥

है आज चांदनी रात सुभग निशि होते ही मैं आऊंगा ।
तुम्हरे संग वोही व्रजवाला, अति सुन्दर रास रचाऊंगा ॥
तुम भी अब सारी व्यथा छोड़, स्नानादिक से छुट्टी पावो ।
अनुचर भोजन लाते होंगे, सुख सहित उसे अब अपनावो ॥
दो तीन मास यहां रहने का, हमने प्रबंध करवाया है ।
होवेगा नित्य मिलन तुम से, क्यों शोक में चित्त फंसाया है ॥
इतना कह माधव विदा होय, हलधर के पास चले आये ।
ले इन्हें साथ निज डेरे पर, आये कर भोजन सुख पाये ॥
पुनि सैया में आराम किया, कुछ देर नींद में मग्न हुये ।
रानियें लगी पंखा झलने, आखिर नटवर चेतन्य हुये ॥

मुख से "श्रीराधा" कहा, पुनि अंगड़ाई लीन ।
रानी गण की नाम ने, कीन्ही व्यथा नवीन ॥

रुक्मणी दौड़ कर जल लाई, पुनि नटवर का मुख धुलवाया ।
जल पिला चरन दाबन बैठी, फिर बोली सुनिये यदुराया ॥
यदि बुरा लगे नहिं आपको तो, एक बात बता दीजे स्वामी ।
शंका एक चित में उपजी है, कर कृपा मिटा दीजे स्वामी ॥
मेरे और अन्य रानियों के, यह भेद समझ नहिं आया है ।
"श्रीराधे" कौन सुभागिन है, जिन स्थान आप हिय पाया है ॥
लक्ष्मी तक जिनकी पद रज को, तज अन्य कहीं नहिं जाती है ।
उन लक्ष्मीपति के हृदय में, ये देवी कौन बसाती है ॥
उस महा भाग्यशालिनी के हम, चाहती हैं प्रभू दर्शन होवें ।
उत्पन्न हुआ जो हृदय में, संदेह उसे सत्वर खोवें ॥
हरि बोले पर्व नहाने को, सारा व्रज मंडल आया है ।
उसके संग रासेश्वरि का भी, दल यहां आन कर छाया है ॥
जिस समय हो उनसे मिलने की, इच्छा बस तभी चली जाना ।
ठहरेंगी वो कइ रोज यहां, जाकर डेरे पर मिल आना ॥

यों कह बाहिर आ गये, तज शैया यदुनाह ।
आपस में सब रानियाँ, करने लगीं सलाह ॥
रुक्मणि ने सब से प्रथम कहा, बहनो री अचरज भारी है ।
हम जिनकी सेवा करती हैं, उनने हिय और बिठारी है ॥
निद्रा में आज अचानक ही, "श्रीराधे" ऐसा नाम लिया ।
जागृत में जब मैंने पूछा, बातों में योंही टाल दिया ॥
पर मैंने भी जिद तजी नहीं, तब प्रभु ने पता बताया है ।
आई है पर्व नहाने को, डेरा एक अलग जमाया है ॥
इसलिये आज हम सब मिलकर, श्रीराधे जी के पास चलें ।
अपनी सुन्दरता दिखलाकर, उस ग्वालिन का सब दर्प दलें ॥
सतभामा बोली बहिना तुम, नृप कन्या हो अति सुन्दर हो ।
ये सत्य कभी नहिं हो सकता, वो गोपी तुम से बढ़कर हो ॥
पर चलो चित्त की शंका को, मेटें उससे मिल आवें हम ।
द्वारावति का कैसा वैभव, राधा को आज दिखावें हम ॥
यों कह राधा ढिंग तुरत, दासी दई पठाय ।
आती हैं हम भेंटने कहलाया हरषाय ॥
इसके उपरान्त सभी मिल कर, निर्मल पानी में न्हाने लगीं ।
चुन चुन कर गहने कपडों से, अपना तन बदन सजाने लगीं ॥
थीं पहिले से ही अति सुन्दर, पटरानी श्रीपदुराई की ।
पुनि वस्त्राभूषण से मिलकर सुघराई और सवाई की ॥
अंतरयामी की लीला ये, नहिं समझ किसी के आती हैं
माया प्रेरित रानियाँ सभी, मायावश गोने खानी हैं ॥
अलकिस्सा मणिमय रथ पर चढ़, सब राधा के डेरे आईं ।
लख कोटि सूर्य सम चकाचौंध, यादव बाला अति चकराईं ॥
रासेश्वरि रासविहारी की, अंतर इच्छा पहिचानती थी ।
चाहते प्रभु गर्व रानियों का हो शमन ये नित ने जानती थी ॥

अस्तू अपने प्रभाव द्वारा, डेरों की छबि बदली छिन में ।
गोलोक बन गया कुरुक्षेत्र, ये लख सब चकित हुई मन में ॥
छा गया सभी पर रूआब महा तज यान प्रथम द्वारे आई ।
देखा पहिरा दे रही यहां, गोपियां कई अति छबि छाई ॥
प्रहरी गन का रूप लख, कहन लगी सब नारि ।
जिसकी दासी अस सुभग खुद कैसो करतार ॥
आखिर रुक्मणि इक अनुचरि से, बोली तुम राधे पर जावो ।
हम लोगों के आने की खबर, उनको फौरन ही पहुँचावो ॥
गोपी इक गई तुरत लौटी, अरु सबको सादर लिवा चली ।
दूसरे द्वार की छबि लखकर, हो गई अचंभित भीष्म लली ॥
इस तरह ये ज्यों ज्यों आगे को, जानिब को बढ़ती जाती थीं ।
अद्भुत अनुपम सुन्दरता लख, हृदय में चक्कर खाती थीं ॥
आखिर जब आ रानियां सभी, सप्तम द्वारे पर खड़ी हुईं ।
रह गईं ठगी सी रचना लख, अपने वैभव को भूल गईं ॥
यहां अवलोकी इक सखी, नवयौवन सुकुमारि ।
समझ उसे श्रीराधिका, कर जोड़े हरिनारि ॥
तब उसने कहा रोक इनको, क्या गज़ब ढारही हो रानी ।
मुझ अनुचरि सन्मुख नमती हो, हो कर तुम पढ़ी लिखी ज्ञानी ॥
हमरी मालिक तो आगे है, मैं तो सामान्य सी दासी हूं ।
वृषभानु दुलारी की लघुसी, बस फकत एक विश्वासी हूँ ॥
लज्जा से सिर नीचा करने, भीष्मक कन्या ने फरमाया ।
ले चलो हमें रासेश्वरि ढिंग, दर्शन हित जी अति ललचाया ॥
हंस, किया दूर दासी ने इक, परदा जो था वहां लगा हुआ ।
क्या देखा सबने इक अनूप, सिंहासन है तहां बिछा हुआ ॥
बैठी हैं उस पर रासेश्वरि, वृषभानु सुता राधेरानी ।
जप रही हैं प्रेम सहित मुख से, हे मनमोहन शारंगपानी ॥

तन की आभा से आलोकित, हो रहा वहां का थल सारा ।
लख ऐसा दृष्य रानियों ने, अपना घमंड सब तज डारा ॥
जिस तरह चन्द्रमा के आगे, नच्छत्र ज्योति छिप जाती है ।
त्योंही राधा सन्मुख इनकी, आभा फीकी पड़ जाती है ॥
आखिर लज्जित सी होकर सब, वृषभानु सुता सन्मुख आई ।
चाहा पद छूना, ये लख कर, श्रीकृष्ण प्रिया चट उठ धाई ॥
अरु बोली मम प्रिय की प्रिय हो, अस्तू मम प्राण पियारी हो ।
मैं तुमसे मिल ऐसी खुश हूँ, मानों आ गये मुरारी हो ॥
इतना कह मणिमय आसन पर, इन सबको सादर बिठलाया ।
कुछ कह न सकी रुक्मणी आदि, ऐसा कुछ अजब रोब छाया ॥

पुनि रासेश्वरि हो गई, लीन ध्यान भगवंत ।
होने लगे समाधि के, लच्छण प्रगट तुरंत ॥

ये लख हिम्मत कर रुक्मणि ने, यों कहा भेंट स्वीकार करो ।
हम सुन्दर भोजन लाई हैं, कर ग्रहण देवि उपकार करो ॥
तब बोली कीरति कुंवरि तुरत, जब से मोहन प्यारा छूटा ।
बस उसी दिवस से मेरा अरु, भोजन का भी नाता टूटा ॥
उनके दर्शन की आशा कर, मैं रोक रही हूँ प्राणों को ।
कर लेती हूँ कुछ दुग्ध पान, तज दिया है सारे खानों को ॥
सुन हाल रानियाँ चकित हुईं, सोचा क्यो नहिं प्रभु प्रेम करें ।
जब विरह में सब कुछ त्याग दिया, क्यों नहीं कृष्ण उर माहि धरें ॥
आखिर रुक्मणि ने फरमाया, तो थोड़ा दुग्ध हि पान करो ।
वो भी हाजिर है हे देवी, उसका ही कुछ सन्मान करो ॥

सहमत राधा हुईं तब, मंगा दुग्ध तत्काल ।
कृष्ण प्रिया ने दे दिया, स्वर्ण पात्र में डाल ।

था दूध अभी अत्यन्त गरम, पी गईं तदपि राधेरानी ।
पुनि बोली हरि की इच्छा में, हो सके नहीं आना कानी ॥

रासेश्वरि की बातों का मर्म, नहिं समझ सकीं हरि की रानी।
कुछ देर ठहर पुनि कहन लगी, आज्ञा दीजे अब महारानी॥
हो सका तो फिर तुम्हरे दर्शन, करने हम सादर आयेंगी।
किस तरह किया जाता है प्रेम, इसकी कुछ शिक्षा पायेंगी॥
इतना कह आयुस ले करके, यदुपति भामा डेरे आई
देखा करवटें बदलते हैं, सुख शैया पर श्रीयदुराई॥
पड़ गये बदन भर में छाले, बेचैन विकल दृष्टी आते।
गम्भीर है मुख मुद्रा प्रभु की, कुछ भी नहिं मुंह से फरमाते॥
लख सबके चहरे उतर गये, रुक्मणि दौड़ हरि पै आई।
क्या हुआ नाथ कुछ तो बोलो, ये है कैसी आफत छाई॥

आह भरी यदुनाथ ने, पुनि खोले दोउ नैन।
बोले तुमने ही किया, मुझे विकल बेचैन॥

कुछ याद है गर्मागरम दूध, तुमने जिसको पिलवाया है।
उसने मुझको निज हृदय में बस अष्ट पहर बिठलाया है॥
जो जन मम निशिदिन ध्यान धरें, मैं भी उनको ही रटता हूँ।
रहता हूँ उनके ढिंग सदैव, नहिं एक पलक भी हटता हूं॥
ज्यों ही वो दुग्ध मुख के द्वारा, है प्रियाओं हृदय पर आया।
तत्काल बदन सब झुलस गया, छालों ने चट मुख दिखलाया॥
अब तो इसकी है दवा एक यदि कोई निज पद की रज दे।
तो मिटे सकल तन की पीड़ा, सुख उपजे, वो भारी यश ले॥

हरि के वचनों से हुआ, अचरज सब हिं अपार।
देने को रज चरन की, हुई न कोई तयार॥

नारद मुनि भी तहं आ पहुँचे, लख हाल कृष्ण का चकराये।
उपचार सुना तो घबरा कर, लेने त्रिलोकी में धाये॥
जिन चरणों की रज को छूकर, पापी पवित्र हो जाते हैं।
रजकण गंगा का रूप धार, सृष्टी को सुखी बनाते हैं॥

उस महा पवित्र विभूती हित बोलो को निज पद रज देवे ।
अनहोनी सी है बात ये सब, को देकर सिर अपयश लेवे ॥
सारी सृष्टी में भटक, आये ब्रह्मकुमार ।
पर न मिली औषधि कहीं, बोले हो लाचार ॥
हे प्रभु त्रिभुवन में फिर आया, पर कोई भी तैयार नहीं ।
हरि हित निज पद की रज देवे, है ऐसा नर अरु नारि नहीं ॥
तब बोले श्री शारंगपानी हे देवऋषी कुछ कष्ट करो ।
राधा से मांगो शायद वो, दे देवें तो सब कष्ट हरो ॥
नारद पिछले पावों लौटे, रासेश्वरि से जा फरमाया ।
चाहते हैं एक वस्तू नटवर, लेने हित तुम्हरे ढिग आया ॥
राधा हर्षित हो तुरत, बोली मुनि फरमाउ ।
प्राणतलक हरि हित अगर, चाहो तो ले जाउ ॥
बोले नारद प्राणों को तो, इस समय चाह माधव को नहीं ।
वे तो चरणों की रज चाहते, जो मुझे न जग में मिली कहीं ।
सुर, नाग, यक्ष, किन्नर आदिक, तत्पर हैं जीवन देने पर ।
पर हीन वस्तु पद रज जैसी, आमादा हैं प्रभु लेने पर ॥
तब मुस्काकर रासेश्वरि ने, फौरन दे दी रज चरणों की ।
पुनि बोली कहना मोहन से, प्रेमियों की खूब परीक्षा ली ॥
हे मुनि सच्चा प्रेमी है वही प्रेमास्पद की चाह पूर्ण करे ।
जो कुछ भी वो मांगे दे दे, शुभ अशुभ न कुछ चित माहि धरे ॥
नारद के अंतरनयन, खुले हुआ परकास ।
गिरे चरन कहि धन्य हो, कृष्ण प्रिया गुणरास ॥
चल दिये यों कहकर पुनि रज कण कुछ अपने तन में रमा लिये ।
कर भस्मीभूत शुभाशुभ सब, लाये हरि पे रोमांच हिये ॥
बोले यह सच्चा प्रेम तो प्रभु, है राधे ने नहिं अन्य कहा ।
हे प्रेम मूर्ति प्रेमावतार वृषभानु लली जग माहि सही ॥

प्रभु ने चरणों की रज लेकर, अपने सब तन में लगालई ।
आंसू नयनों से निकल पड़े, सब व्यथा बदन की दूर भई ॥
बोले प्रभु शुभ व अशुभ सारे, दुनिया तक ही रह जाते हैं ।
सच्चे प्रेमी प्रेमास्पद के, मग में नहि आने पाते हैं ॥
जो त्याग कल्पना बुद्धी की, प्रियतम आज्ञा सिर धारता है ।
वोही सच्चा प्रेमी कहला, प्यारे को वश कर डारता है ॥

रानी सब शरमा गईं, देवऋषी सिरनाय ।
चले बीण खटकावते, नूतन दिक्षा पाय ॥

मनमोहन हरदम राधा ढिंग एक रूप से छाये रहते थे ।
दूजे वपु से सब काम करें, सबको भरमाये रहते थे ॥
एक रोज अचानक उद्धवजी, श्रीराधे के डेरे आये ।
देखा नटनागर बैठे हैं, सिंहासन पर अति हर्षाये ॥
कर रही है सेवा रासेश्वरि, सखियां भी परिचर्या रत हैं ।
हो रहा है मृदु आलाप तहां, सब हरि भावों के अनुगत हैं ॥
लख सुन्दर श्याम मूर्ती को श्रीभक्त राज उद्धव फूले ।
इक टक दृष्टी से लखते रहे, निज तनोवदन की सुधि भूले ॥
आखिर आगे आकर पहिले, वृषभानु सुता को नमन किया ।
पुनि कृष्णचन्द्र के पावों में, निज को उद्धव ने डाल दिया ।।
कुछ देर बाद कर जोड़ कहा, हे राधानाथ अरज मेरी ।
सुनलो अरु संशय दूर करो, शंका रहती हरदम घेरी ॥
रह कर तुम्हरी छाया में प्रभु, अपना कल्यान कर लिया है ।
शरणागत होकर के तुम्हरा, पव पद में चित्त धर लिया है ॥
पर आगे आने वाले जन, कलियुग के वश हो जावेंगे ।
अल्पायू अरु पापी होंगे, दुख रोग में उमर बितावेंगे ॥
उनके हित कुछ उपदेश करो, ताके तव धाम चले जावें ।
कलियुग की कठिन काराघातें, उनको विचलित नहिं कर पावें ॥

* गाना *

प्रभो अब फरमाओ सतज्ञान ॥
कलि में सब अल्पायू होंगे पायेंगे कष्ट महान ।
ऐसे समय करेंगे कैसे निज स्वरूप का भान ॥ प्रभो० ॥
सत्य, धर्म, तप, दया जगत से होंगे अंतरध्यान ।
अहंकार, मद, गर्व का होगा पूर्णतया उत्थान ॥ प्रभो० ॥
ऐसी सुगम राह बतलादो मुक्ति होय आसान ।
संचित अरु प्रारब्ध कर्म का हो बिल्कुल अवसान ॥ प्रभो० ॥
तुम्हरी तनिक दया से केशव होगा परम कल्यान ।
उद्धव शीश झुकाय खड़ा है मांगे ये वरदान ॥ प्रभो० ॥



मुस्काकर कहने लगे, ब्रजजीवन हरषाय ।
सुनो कान दे आज तुम, कलियुग केर उपाय ॥

ये सब है थोड़े दिनों बाद, कलियुग अवश्य ही आवेगा ।
चींटी से ले हाथी तक पर, अपना प्रभाव फैलावेगा ॥
होंगे अल्पायू नर नारी, पापों में उमर बितावेंगे ।
झूंठी इज्जत तुच्छ धन के हित, आपस में कट मर जावेंगे ॥
नृप से लेकर कंगाल तलक, अपनी मर्यादा त्यागेंगे ।
दिन को सोवेंगे मदमत हो, रजनी भर वे खल जागेंगे ॥
संघर्ष प्रजा अरु राजा का, बढ़ता जावेगा भूमी पर ।
विग्रह धनवान गरीबों में, छावेगा कुछ दिन में घर घर ॥
मिथ्या प्रपंच रत होय यती धन से निज धाम संवारेंगे ।
बिधवाओं को बहका करके वर्णाश्रम धर्म बिगारेंगे ॥
शारिरिक परिश्रम से घबरा, सब वर्ण भीख की झोली ले ।
घर घर नित भिक्षा मांगेंगे, संग में भूखों की टोली ले ॥
जो चाहेंगे जप यज्ञ करें उनकी सब हंसी उड़ावेंगे ।
पाखंडी बगला भगत बता, हर तरह से उन्हें सतावेंगे ॥

हर वक्त पड़ेगा काल यहां, कभि पानी अधिक बरसने से।
अरु कभी खेत मुरझावेंगे, पानी के हेतु तरसने से॥
कलि के प्रभाव से भारत में, अज्ञान तिमिर छा जावेगा।
ऋषि, मुनि, सिद्धो, संतो में से, कोई न यहां दरसावेगा॥

विकल फिरेंगे नारि नर, मनोहर घर अरु द्रव्य।
यह होनी मिटनी नहीं, युग प्रमाण होतव्य।
तो भी एक उपाय है, सुनो सखा चितलाय।
चलेगा जो उस मार्ग पर, उनको कलि न सताय॥

ये तो तुम को मालुम होगा, जिसलिये मैंने अवतार धरा।
वो काम पूर्ण कर चुका हुँ मैं, यानी भूमी का भार हरा॥
सुर विप्र धेनु अरु संतों को, मैंने अति सुखी बनाया है।
अब मेरे अरु राधाजी के, जाने का दिन नियराया है॥
रह गया है केवल यदुकुल अब, छप्पन कोटी में बटा हुआ।
मेरे प्रताप से अलग हो, है भरा धाम में डटा हुआ॥
पर मम समीप रह कर भी वे, मुझको अब तक न जान पाये।
दुनिया के झगड़े ही उनको, लगते हैं रात दिन सुखदाये॥
हैं ये भी भू के भार रूप, गृह कलह में मारे जावेंगे।
वे दिन भी हे प्रिय मित्र मेरे, जल्दी ही शक्ल दिखावेंगे॥
यदुकुल में सच्चे भक्त एक, बस तुम ही हो उद्धवराई।
मैं जो उपाय बतलाता हूँ, करना प्रचार भू पर जाई॥
इसके अनुसार चलेगा जो, उसको कलियुग न सतावेगा।
निर्भय हो जीवन पूरा कर, मुझ में आकर मिल जावेगा॥

रस्ते केवल तीन हैं, कर्म भक्ति अरु ज्ञान।
जिन से मुक्ती मार्ग का पाता मनुज ठिकान॥

यज्ञादिक कर्म शास्त्रों के, श्रद्धा से जो नित करते हैं।
वे पाकर देवों सरिस भोग, निर्भय सुरलोक विचरते हैं॥

पर भोग के फल निज कर्मों का, वापिस ले जन्म यहां आते ।
पुनि कर्म करें बैकुण्ठ जायँ, योंही रहते आते जाते ॥
फिर जितने कर्म किये जाते उनके भी दो हिस्से जानों ।
है नाम एक का क्रियःमाण, दूजे को संचित पहिचानों ॥
हो चुके हैं जितने कर्म पूर्व, संचित के खाते आये हैं ।
जो करते रहते हो निशिदिन, वो बस क्रियमाण कहाते हैं ॥
उन संचित कर्मों में से ही, प्रारब्ध शरीरी का बनता ।
वो तो भोगा ही जावेगा, उसमें नहिं कुछ उपाय चलता ॥
प्रारब्ध भोग के साथ मनुज, यदि निज स्वरूप का भान करे ।
तो होते ही ये भोग पूर्ण, सारे कर्मों से जीव टरे ॥

निजस्वरूप का भान किम, होवे सुनो सुजान ।
तिस पीछे कुछ और भी, बतलाऊँगा ज्ञान ॥

जब नित नैमित्तिक कर्मों को, करते करते नर थक जाता ।
तब कर तलाश एक सद्गुरु की, जा शरण ज्ञान भिक्षा पाता ॥
करना पड़ता अभ्यास उसे, चंचल मन को वश करने में ।
अष्टांग योग का साधन नित, चलता चंचलता हरने में ॥
स्थिरता चित में आते ही, सिद्धियां उसे ललचाती हैं ।
कई तरह के चमत्कार दिखला, ज्ञानी की मती भ्रमाती हैं ॥
फंस जाता पुनि अविवेक में वो, निज जीवन ध्येय भुला देता ।
मंदा पड़ जाता ज्ञान सूर्य, कर्मों को पुनि अपना लेता ॥
है ज्ञान भी मुक्ती का साधन, गर दृढ़ हो उसमें लगा रहे ।
तो निश्चय आवागमन मिटे, मरने जीने से बचा रहे ॥
तलवार की धार पै चलना है ज्ञानी को सच समझो भाई ।
पद पद पर जो हुशियार रहे, वो मुक्ती पाता सुखदाई ॥

तुम हो अनुगामी मेरे, ऊधो अस्तु बताऊँ ।
किस उपाय से सहज में, मुक्ती हो वो सुनाऊँ ॥

दुनिया भर के तुम कर्म करो, कुछ रोक न टोक नहीं भाई ।
चाहे जिस तरह जिन्दगी को, करलो व्यतीत तुम हरषाई ॥
फिर भी मुझको आ मिलोगे तुम, नहिं जरा भटकने पावोगे ।
ऐसा उपाय बतलाता हूं, सुनते ही खुश हो जावोगे ॥
अल्पायू वाले जीव कहो, कैसे यज्ञादिक कर सकते ।
जिनके पल्ले नहिं द्रव्य होय, किस भांति सहजमें तर सकते ॥
हर समय कमाई करने पर, जब उदर पूरणा हो न सके ।
किस तरह योग साधन होवे जब गृहस्थी में ही प्रान थके ॥
इनको तो मेरा मारग ही, मेरे तक लाय मिलावेगा ।
जो इस रस्ते से धावेगा, वो कभी न गोते खावेगा ॥
सब जावेंगे तीनों उपाय, मुक्ती के इस मग में ऊधो ।
कलि भी सहाय को आवेगा, निर्विघ्न रहे जग में ऊधो ।

वह उपाय बस है यही, सर्वस मुझको जान ।
सब में मेरा रूप लख, धरे हमेशा ध्यान ॥

हे सखा सकल यज्ञादिक का, फल निर्मल मन हो जाना है ।
सब मैल दूर होकर इसका, शुचि मारग मांहि समाना है ॥
जिस तरह गगन वर्षा का जल, आखिर समुद्र को जाता है ।
बस उसी तरह सब कर्मों का, फल मेरे ही ढिंग आता है ॥
पर कर्म वही होते हैं श्रेष्ट, जिनके फल की इच्छा न कभी ।
कर्ता अपने मन मांहि करे, जो करे मम अर्पण करे सभी ॥
जिसने फल आशा को त्यागा, वो कृत्य कृत्य हो जावेगा ।
फिर उसको अच्छा बुरा कर्म, नहिं कभी फंसाने आवेगा ॥
जिस तरह अग्नि में भुना बीज, उत्पादन शक्ती खो देता ।
बस उसी तरह फल आशा बिन, कृत कर्म सकल मल धो देता ॥
प्रारब्ध सिवा बाकी के कर्म, यह 'त्याग' मूल से नष्ट करे ।
निर्द्वन्द करे नर को जग में, उपदेश जो ये चित मांहि धरे ॥

मेरे जीवन को ही देखो, किस तरह पूर्ण कर्तव्य किया ।
पर फंसा नहीं हूँ कर्मों में, सारा भू भार उतार दिया ॥
इसलिये सदा ये ध्यान रहे, दुखदाई फल इच्छा ही है ।
इस जीव को भटकाने वाली, हरजाई फल इच्छा ही है ॥
ज्ञानी हो कर्म कांडी हो, हो भक्त किसी भी मत वाला ।
जिसने फल आशा को त्यागा, है वही मनुज सब से आला ॥
माता व पिता गुरु की सेवा, तिय सुत आदिक पालन-पोषण ।
मित्रों के संग मन बहलाना, दुष्टों के छल बल का शोषण ॥
जितने भी कर्म बताये हैं, कर्तव्य समझ कर अवश्य करे ।
पर फंसे न ममता माया में, हर समय मेरा ही ध्यान धरे ॥
उस पर समझो कलि का प्रभाव, नहिं स्वप्न तलक में छा सकता ।
जो नर है दृढ़ इन भावों में, दुर्दैव न उन्हें सता सकता ॥

हाथ जोड़ उद्धव तभी, बोले सुनो दयाल ।
कर्म, ज्ञान का आपने, बता दिया सब हाल ॥

पर नाथ कृपा करके मुझ को, इतना तो और बताओ तुम ।
किस तरह आपका ध्यान करे, जो शीघ्र हाथ में आओ तुम ॥
ये सुना, कर्म फल त्यागी को, तुम ऊँची गती दिलाते हो ।
दुनिया का आवागमन छुड़ा, निज रूप में उसे मिलाते हो ॥
पर तुम्हरी भक्ती का भगवन् मुझको उपाय नहिं बतलाया ।
कर कर्म ज्ञान व्याख्या तुमने, मुझको इस तरफ हि उलझाया ॥
क्या कारन है जो ब्रजवासी, तुम्हरे दिल से नहिं उतर सके ।
हृदय में श्रीराधेरानी, बस गईं न तुम भी उधर सके ॥
मैंने निज आँखों देखी है, राधा माता की प्रभुताई ।
ब्रज में जब ज्ञानी बन धाया, नहिं चली मेरी कुछ चतुराई ॥

प्रकट दीखते थे मुझे, जो मति मूढ़ गंवार ।
उनके अनुपम प्रेम ने, दीन्हें होश बिगार ॥

तब हंस कर बोले मनमोहन वो भी रहस्य समझाऊंगा ।
फंस गया भक्त के फंदे में, बिन कहे न मुक्ती पाऊंगा ॥
प्रेमी प्रेमास्पद के चित्त में, जब कोई जग जंजाल न हो ।
हो भक्त और भगवान फक्त दूजा कोई भी ख्याल न हो ॥
भगवान को ही निज ध्येय जान. सच्चे मन से शरणे आवे ।
उनको ही परम गती समझे, नहिं और तरफ मन भटकावे ॥
अति क्षुद्र वस्तु से प्राण तलक, शुध चित से मुझको अर्पण कर ।
मेरे ही में रति रखे सदां, शुभ अशुभ में मम आवाहन कर ॥
मेरे ही सुमिरन ध्यान भजन, गायन, कीर्तन में चित लावे ।
रख दास्य सख्य का भाव सदा, मेरी लीला हरदम गावे ॥
पद सेवन में अनुराग रखे. मेरे ही नाम का जाप करे ।
जागे जब तक मम नाम रटे, तो सकल दुःख संताप हरे ॥

इसी भांति जब तक जिये, रक्खे मेरा ध्यान ।
उसके सारे कार्य मैं, करूं सत्य यह जान ॥

इतने दिन तक ब्रजवालों का, और मेरा कड़ा बिछोह रहा ।
चुपचाप सहा इन लोगों ने, मुखसे किंचित कुछ भी न कहा ॥
हृदय में सदा मेरी लीला, ये परम भक्त जन गाते थे ।
मुझको हि जान जीवन सर्वस, आनंद में समय बिताते थे ॥
इन सबकी कड़ी तपस्या अब, ऊधो फल लानेवाली है ।
संसार में कोई शक्ति नहीं, जो मुझे छुड़ाने वाली है ॥
जब तक ब्रजभूमी गऊ ग्वाल, पृथ्वी पै रहेंगे हे भाई ।
तब तक इनका यश दृढ़ होकर, तारेगा भक्तों को आई ॥
जो नर सच्चा हृदय रखकर, ब्रज में निज वास बसायेगा ।
राधा व कृष्ण का जाप करे, हमको नित सन्मुख पायेगा ॥
श्रद्धा से ब्रज रज शीश चढ़ा, मम लीलायें जो गायेगा ।
उसका सब मल हो जाय दूर, आखिर मम ढिग आजायेगा ॥

जपेगा बारह क्रोड़ जो, नाम मेरे चितलाय ।
राधे की आयुस सहित, बसे धेनुपुर जाय ॥
तुम मम अनुगामी हो ऊधो, कर्तव्य हमेशा कीन्हा है ।
संतो की सेवा में चित दे, निज मन को थिर कर लीन्हा है ॥
बस कसर है केवल इतनो सी द्वादस करोड़ मम नाम जपो ।
पुनि विचरो भूतल अभय होय गउलोक धाम अपना करलो ॥
सुख दुख मान अपमान में, सदा रहो सम होय ।
रखो लच्च मुझ में सदा, सारे संशय खोय ॥
ज्ञानो जितना हि किरकिरा है, मति भिन्न हर इक की होती है ।
तज सकल आस मम ढिंग आवे वोही पाता बस ज्योती है ॥
अस्तू सब भ्रम संशय तजकर, मेरे में चित दृढ़ कर डालो ।
है सार यही उपदेश का सब, मृत्यू जीवन को हर डालो ॥
मुझ में से विष्णू अंश निकल, अब द्वारावति को जावेगा ।
यदुवंश नष्ट होगा तब तक, मम रूप में ही थित पावेगा ॥
मैं तो अब श्रीरासेश्वरि संग, बस सीधा व्रज को जाऊंगा ।
करके कुछ दिनों बिहार तहां, फिर धेनूलोक सिधाऊंगा ॥
इतना सुन विदा हुये उद्धव हर्षित हो अपने घर आये ।
कर गृहस्थो का सब इन्तजाम, व्रज मंडल को जानिब धाये ॥
इस तरफ राधिका से बोले, आनंदकंद गिरवरधारो ।
अब करो शीघ्र सखियां लेकर, व्रज को चलने की तैयारी ॥
गुप्त रूप से कुछ दिनों, रहूँ तुम्हारे पास ।
पुनि हम तुम सब जायेंगे गोपुर सहित हुलास ॥
यों कह प्रभु ने निज तन में से इक परम ज्योति को अलग किया ।
धर चार भुजा सांवल शरीर, क्षीरोदधिपति ने दरस दिया ॥
पुनि आज्ञा ले मनमोहन को, श्रीकृष्णचन्द्र मम तन धर कर ।
आ गये यादवी डेरों में, विष्णू, श्रीपति, शोभासागर ॥

हो गया पूर्ण ये गुप्त काम नहिं भेद किसी ने भी पाया ।
केवल बलदाऊ समझ गये, सोचा चलने का दिन आया ॥
विष्णु रूप से कृष्ण ने, विदा किये व्रज लोग ।
कई तरह की भेंट दी जो थी जिसके योग ॥
नंदराय यशोदा गोप ग्वाल, अति हर्ष सहित व्रज को धाये ।
मिल प्रथम यादवों से सारे, पुनि प्रभु को उर से चिपटाये ॥
यशुमति बोली प्यारे लाला फिर तुम से कब मिल पाऊँगी ।
वर्षों में अब के मिलन हुआ, विधि जाने कब हिय लाऊँगी ॥
राधे बोली नंदरानी से अब कहां छोड़ कर जावेंगे ।
पड़ गया गले में मोह फंद चाहेंगे तभी बुलावेंगे ॥
घर छोड़े इतने दिवस हुये, अब चलकर सुधि लेना चहिये ।
अपनी अनदाता गायें हैं, पालन में चित देना चहिये ॥
इधर तो व्रजवासी गये, नंद सहित व्रज ओर ।
उधर देवकी ने कहा, प्रभु से दोउ कर जोर ॥
ऋषि मुनियों से तुम्हरा प्रभाव, सुन कर मेरा भ्रम दूर हुआ ।
तुम साक्षात् जगदीश्वर हो, चित में यकीन भरपूर हुआ ॥
अस्तु तुम्हरी इस जननी को, वरदान एक दिलवाओ ना ।
मेरे छः मृत पुत्रों को ला, हृदय को सुख पहुँचाओ ना ॥
कह एवमस्तु बलदाऊ संग, करुणानिधान गरुड़ासन हो ।
चल दिये यमपुरी की जानिब, जहां पर दुष्टों का शासन हो ॥
यमराज ने अति आदर समेत अगवानी कीन्हीं हरषा कर ।
पुनि कहा हुक्म कीजे स्वामी, लीलाललाम शोभासागर ॥
तब बोले प्रभु श्रीदेवकी ने, छः सुत जो पहिले जाये थे ।
थे शाप विवश ये वसू जिन्हें, खल कंस ने मार गिराये थे ॥
उनको लाकर सौंपो मुझको, उद्धार समय तिन नियराया ।
वसुदेव देवकी को दिखला, कर दूँगा उनका मन चाया ॥

यम ने ला बालक दिये, चले हर्ष यदुराय ।
दिये लायकर मातु को, ललक उठी पुलकाय ॥
बह चली स्तनों से दुग्ध धार, जिसको पीकर सारे भाई ।
हो गये मुक्त चढ़कर विमान, पहुँचे गो पुर अति सुख पाई ॥
इसको भी नटवर का प्रताप, लखकर जननी हर्षाती है ।
कर नमन कृष्ण को प्रेम सहित, स्तुती प्रभू की गाती है ॥
कृत कृत्य हुये वसुदेवजी भी, हृदय में सच्चा ज्ञान हुआ ।
निज सुत को परमेश्वर समझा, मिट गया सकल अज्ञान धुवां ॥
प्रभु से सच्चा उपदेश पाय, मुक्ती के साधन में लागे ।
हो गया सकल भ्रम छिन्न भिन्न, मानो गहरी निद्रा जागे ॥
पुनि उग्रसेन ने भी हरि से, यों विनय करी है जगसाईं ।
तुम्हरे मामा की भी सूरत, दिखलादो मुझको यदुराई ॥
कह एवमस्तु पुनि कंस को भी, प्रभु ने फौरन ही बुलवाया ।
एक झलक दिखा निज नाना को, तत्काल धेनुपुर भिजवाया ॥
उग्रसेन को भी हुआ इस प्रकार सतज्ञान ।
करन लगे कर जोड़ कर, प्रभु के गुण गण गान ॥

※ गाना ※

कृपा तुम्हारी से नष्ट मेरा हुआ है मोह सब हे किरपासागर ।
भंवर के चक्कर से जहाज फौरन निकल के अब आ लगा है तटपर ॥
ज्यों अग्नि छिपती है राख भीतर उसी तरह तुम छिपे हुये थे ।
पर अब तुम्हारी दया से जाना हो परते पर तुम हे कृष्ण नटवर ॥
करूँगा तव यश का गान नित मैं धरूंगा तुम्हरा ही ध्यान चित में ।
तमोमयी निशि मिटी है आखिर हुआ प्रगट अब हृदय में दिनकर ॥
गिने था रिपु तुमको कंस तो भी हुआ है ऊंची गती का मालिक ।
भटकता जग में रहेगा कैसे फिर तुम्हरा नाना सदा का अनुचर ॥

पुनि आये सब द्वारका, कुरुक्षेत्र को त्याग ।
रहन लगे आराम से, तज कर मद अरु राग ॥
प्रभु शक्ती द्वारा निर्भय हो कुछ दिनों बाद यादव सारे ।
कर मद्य पान नित रहन लगे, अपने घमंड में मतवारे ॥
नटवर के समझाने पर भी, कुछ ध्यान इन्होंने दिया नहीं ।
आखिर परभास क्षेत्र में जा, आपस में कट मर गये वहीं ॥
किस तरह कलह उपजी इनमें, पुनि किस प्रकार मृत्यु पाई ।
ये कथा पढ़ो महाभारत में, बाईस भाग में है आई ॥
यदुकुल नाश विलोककर, चढ़ा के प्राणायाम ।
बल भी चोला त्यागकर, पहुँचे अपने धाम ॥
बल के जाने पर व्याध बाण, खा विष्णु भी अंतरध्यान हुये ।
पा ये सुधि वसुदेव आदिक भी एक पल भर में गत प्राण हुये ॥
हो गईं सभी स्त्रियाँ सती, केवल एक बालक बच पाया ।
पा सुधि उसको श्री पांडु पुत्र, अर्जुन हस्तिनापुर में लाया ॥
इसके उपरान्त द्वारका भी, जल निधि में तुरत बिलाय गई ।
कुछ दिवस पूर्व जो शोभा थी, हरि के जाते हि नशाय गई ॥
इन्साफ लखो जगदीश्वर का, निज वंश तलक भी नष्ट किया ।
जिसने जैसा कारज कीन्हा, फल उसको तदनुसार दिया ॥
देवों के अंश थे यदुवंशी, तन को तज सब निज धाम गये ।
अब श्रोताओं व्रज चले लखें, गिरधर क्या करते खेल नये ॥
जग की आँखों से छिपे, रह कर तहां मुरारि ।
राधा संग करने लगे, बन में नित्य बिहार ॥
कुछ दिन योंही बीते आखिर, अपने संग ले राधेरानी ।
भारत के हरएक तीरथ में, घूमे सुख से शारंगपानी ॥
पुनि आये पुरी सुदामा में, सुन विप्र तुरत दौड़ा आया ।
कीन्ही अगवानी प्रेम सहित, मस्तक प्रभु चरणों में नाया ॥

फिर रासेश्वरि के पांव गहे, कर स्तुति महलों में लाकर ।
विधिवत पूजन की दोनों की, मणिमय आसन पर बिठलाकर ॥
माधव का दिया हुआ वैभव, जिस तरह काम में लाता था ।
हर्षित होकर उसको पुनि पुनि, हरि राधे को दिखलाता था ॥
उत्तम जाती की गउएँ ला, गौशाला वृहत बनाई थी ।
उसमें साधू संतों की नित पय से होती पहुनाई थी ॥
बेकार युवाओं के हित तहां, विज्ञान कला शालायें थीं ।
थे कई कला कोविद तहां पर, जिन पर भविष्य आशायें थीं ॥
अनगिनत खुल रहे औषधि गृह, भेषज जहं मुफ्त बंटाती थी ।
अन के भंडारों से निशिदिन, भूखों को भीख दी जाती थी ॥

विप्रदेव का जेष्ठ सुत, था धर्मालंकार ।
अतिथि सेवा का दिया, उसको काम विचार ॥

बाकी के तीनों लड़के भी, शुभ काम में आयु बिताते थे ।
एक अपाहिजों की टहल में था, दो धर्मज्ञान सिखलाते थे ॥
द्विज पत्नि सुशीला का मन भी, स्त्री सेवा में तत्पर था ।
वो पुरी सुदामा की क्या थी, मानो पृथ्वी का सुरपुर था ॥

हुये अनंदित देखकर, सब रचना गोपाल ।
राधे ने भी हर्ष कर, दी आशिष तत्काल ॥
नित्य नई सेवा करे सादर भक्त सुदाम ।
रहें मग्न सत प्रेम लख, निशि दिन श्यामाश्याम ॥
इक दिन हरि को साथ ले, गया सिन्धु में न्हान ।
प्रभु को राजी देखकर, बोला विप्र सुजान ॥

हे मनमोहन, हे इष्टदेव, करुणानिधान हे भगवाना ।
तव विश्व विमोहनि माया की, एक झलक मुझे भी दिखलाना ॥
प्रभु ने मुस्काकर टाल दिया, आखिर दोनों तट पर आये ।
घुस गये नीरनिधि में न्हाने, दोउ बालसखा अति हर्षाये ॥

ज्योंही ली डुबकी सुदामा ने, रंगत माया ने दिखलाई ।
बह चला विप्र आगे की तरफ, होशो हवास सब बिसराई ॥
हरि इच्छा वश बहता बहता, एक नगर निकट द्विज जाता है ।
वहां के भूपति की कन्या से, अपना शुभ विवाह रचाता है ॥
इस शहर में था एक नियम कड़ा, दंपति में जो मृत्यू पावे ।
तो दूजा जीता हुआ जीव, शव के संग जला दिया जावे ॥
छत्तीस वर्ष द्विज रहा तहां, बेटे पोतों से घर छाया ।
होनी वश इसकी औरत का, बस अंतिम समय चला आया ॥

उसके मरते ही चले, रिश्तेदार तुरंत ।
बोले विप्र सुदाम से, आया तेरा अंत ॥

घबराकर द्विज ने कहा तुरत, मैं तो परदेशी हूँ भाई ।
क्यों नियम बद्ध करने की मुझे, तुमने खोटी मति उपजाई ॥
तब लोग हंसे अरु बोल उठे, बरसों तक मजे उड़ाये हैं ।
अब बनते हो परदेशी तुम, यमराज दृष्टि जब आये हैं ॥
राजा से लेकर रंक तलक, नहिं बचे नियम के पंजे से ।
अब तो भैया जलना होगा, बच सको न बिकट शिकंजे से ॥
यों कह इसको सबने मिलकर, उस शव के साथ हि बांध लिया ।
पुनि नदी किनारे पर लाकर, लकड़ियों में चुनना शुरू किया ॥
लख सचमुच अपनी मृत्यु निकट, बोला द्विज दुख से चिल्लाई ।
सरिता में अंतिम स्नान करूँ, ये चाह पूर्ण कर दो भाई ॥
आज्ञा पाते ही फुरती से, सरिता में एक गोता मारा ।
पुनि सिर निकाल कर देखा तो, हो गया अदृश्य दृश्य सारा ॥
नहिं चिता रही, नहिं भाई बंधु, नहिं सरिता कहीं दृष्टि आई ।
देखा जलनिधि तट बंसि लिये, कर रहे मधुर ध्वनि व्रजराई ॥

मुस्काकर प्रभु ने कहा, तजो नीर से प्रेम ।
सरदी का मौसिम सखा, तन की होय न क्षेम ॥

सुन प्रभु के वचन सुदामाजी, आकाश से महि पर आन गिरे ।
एक शब्द भी मुख से कहा नहीं, वाहिर आ चट कपड़े पहिरे ॥
घर को चल दिये साथ प्रभु के, पर मन में था अचरज भारी ।
कहाँ था आगया किधर पल में, वो दृष्य छोड़कर भयकारी ॥
क्या मोहन ने छत्तीस वर्ष, यहां रह मम बाट निहारी है ।
बच्चों ने क्या समझा होगा, किमि रही पत्नि बेचारी है ॥
यों उधेड़ बुन में लगे हुये, द्विज आगे बढ़ते जाते थे ।
लख दशा भक्त की भक्त सुखद, मन ही मन में मुस्काते थे ॥
कुछ अरसे में आगया, भवन सुदामा केर
पहुँचा झट ये पत्नि पै, करी न पल की देर ॥
इस रोज प्रभू की आज्ञा से, द्विज पत्नि ने दाल बनाई थी ।
जिस समय नहाने गये दोऊ, चूल्हे पर उसे चढ़ाई थी ॥
आते हि सुदामा ने देखा, बस फकत दाल तैयार हुई ।
गुंध रहा है आटा फुलकों हित, ये लख बुद्धी द्विज में रही ॥
इतने में इसकी दृष्टि कहीं, जा पड़ी खड़े थे जहं नटवर ।
उनको मुस्काते हुये देख, द्विज को खयाल आया सत्वर ॥
दौड़ा अति आतुरताई से, जा कर माधव के पांव गहे ।
बोला भर गया उदर मेरा, तव माया से हे जगतमये ॥
सचमुच तुम्हरी माया मोहन, संसार बनानेवाली है ।
जो इसके फंदे फंसा उसे, अति नाच नचानेवाली है ॥
क्षण भर पहिले था मृत्यु मुखी, द्वितिय क्षण सुखी बनाया है ।
तुम सम इसका भी पार नहीं, अति ही दुस्तर तव माया है ॥
कृपा करो सब दुख हरो, रखो शरण में ईश ।
चलो साथ लेकर मुझे जगजीवन जगदीश ॥
सारे लड़के हुशियार हुये, अपना सब काम सम्भालेंगे ।
यदि तुम्हरा भजन करेंगे तो, सुन्दर गति को वे पालेंगे ॥

तब हंस कर बोले कृपासिन्धु, ये चाह तुम्ही ने जतलाई ।
जग मोहने वाली माया को, एक झलक मुझे दो दिखलाई ॥
अच्छा अब फिक्र तजो सारा, बच्चों को घर की कुञ्जी दो ।
हो गये पूर्ण शुभ अशुभ कर्म, मेरे स्वलोक का मारग लो ॥
व्रज चलो हमारे साथ सखा, वहां पर पुनि रास रचायेंगे ।
सबको गोलोक पठा करके, फिर अंत में हम भी जायेंगे ॥
सुन वचन ये नारि सुशीला भी, लड़कों को घर सम्भला करके ।
बहुओं को कई उपदेश सुना, हो गई खड़ी चट आकरके ॥
दोनों ने प्रभु चरन में, रक्खा अपना माथ ।
चले त्याग वैभव सकल, श्रीकृष्ण के साथ ॥
चलते चलते श्री चक्रपाणि, मिथिलापुर के नजदीक आये ।
सुधि पा यहां के भूपाल तुरत, अगवानी हित सन्मुख धाये ॥
थे ये अनन्य भक्तों में से, प्रभु को घर ले जाना चाया ।
इतने में एक विप्र ने आ, अतिभक्ति सहित मस्तक नाया ॥
पुनि दोनों ही यों कहन लगे, मम धाम प्रथम चलिये नटवर ।
थे दोनों भक्त अस्तु प्रभु ने दो रूप धरे तेहि अवसर पर ॥
अरु प्रेम सहित एक ही साथ, दोनों के घर को गमन किया ।
आतिथ्य गृहण कर अति हित से, दोनों को शुभ उपदेश दिया ॥
प्रभु के सतसंग को पाकर के, शुभ अशुभ तुरत तिन बिसराये ।
कृत कृत्य हुये चट देह त्याग, चढ़कर विमान गोपुर धाये ॥
जाती बिरियां प्रभु ने ये कहा, गोलोक जाय मम यश गावो ।
कुछ दिनों बाद हे द्विज हे नृप, मुझको अपने बिच में पावो ॥
यों कह पुनि आये तुरत व्रज में व्रज के नाथ ।
गोप गोपियां से मिले, क्षण में एकहि साथ ॥
हरि इच्छा से पुनि यमुना तट, एक शुभ मंडप तैयार हुआ ।
हो गया रास का सब सामां, मुरली में रव संचार हुआ ॥

भर गई तमाम विश्व भर में, वो विश्व विमोहनि ध्वनि सत्वर ।
हो गये भक्त सब दिव्य रूप शुभ अशुभ कर्म सारे त्तय कर ॥
आ गये दौड़ व्रजमंडल में, थे जहां सुशोभित व्रजराया ।
कई ऋषि मुनि सन्यासियों ने भी, अपना उज्जवल मुख दिखलाया ॥
यानी जितने भी थे भू पर, हे नृप गोपुर के अधिकारी ।
सुन वंशी ध्वनि आ गये तुरत, कालिन्दी तट सब नर नारी ॥
गिरजापति गिरजा को लेकर, गिरिराजधरन ढिंग आते हैं ।
संग में गो रूपी पृथ्वी थी, दर्शन कर अति सुख पाते हैं ॥
सुरपुरवासी भी हर्ष उठे, कह उठे गिरा यों शुभकारी ।
"कर दिया भूमि का भार हरन, जय हो जय श्री गिरवरधारी" ॥
हो गये पुरुष सब कृष्ण रूप, सखियाँ सब राधा रूप हुई ।
इस वक्त कालिन्दी के तट की, शोभा मनहरन अनूप हुई ॥
थी रैन पूर्णिमा की सुखदा, अति स्वच्छ चाँदनी छाई थी ।
थे ऋतु वसंत के दिन इससे, चल रही हवा सुखदाई थी ॥

सखियोंने मिलकर किया, राधे का श्रृंगार ।
लगे वाद्य बजने तहां, शोभा हुई अपार ॥
देख ठाठ उपयुक्त सब व्रजजीवन घनश्याम ।
लगे रास करने तहां, सुन्दर सुखद ललाम ॥

जिस तरह किया था रास प्रथम उससे भी कई गुना बढ़कर ।
इस समय किया व्रजराई ने हरलिया विरह का दुख सत्वर ॥
कुछ देर बाद फिर जल क्रीड़ा, मनमोहन ने आरम्भ करी ।
सब को सब विधि संतुष्ट किया, तबियत हो गई सभीकी हरी ॥
लेकिन ये अनुपम दृश्य भूप, भक्तों को ही दिखलाई दिया ।
जो थे गोपुर के अधिकारी, बस फकत उन्होंने सुख लिया ॥

पूर्ण रैन के होत ही हुआ रास का अंत ।
त्रिभुवन में रव छा गया, जय जय राधाकंत ॥

इतने में अनगिनती विमान, आकाश से तहां उतर आये ।
सारे प्राणी हरि आज्ञा पा, बैठे उसमें अति हर्षाये ॥
पुनि एक साथ चल दिये सकल, गोलोक की जानिब नरराई ।
जय बोल प्रभू की देवों ने, नभ से पुष्पाञ्जलि बरसाई ॥
पुनि भक्त सुदामा भी पहुँचे, निज पत्नि सहित गोपुर में जा ।
धाये श्री नंद यशोदा भी, कई बार कृष्ण को शीश नवा ॥

राधे के संग रह गये, इकले राधानाथ ।
तब उद्धव ने आयकर, इन्हें नवाया माथ ॥
आज्ञा पा श्रीकृष्ण की, बदरीवन की ओर
गये तुरत उद्धव सखा, रटते नंदकिशोर ॥

तब रासेश्वरि की तरफ देख, बोले ब्रजनाथ कृपासागर ।
वृषभानुनंदिनी अपना भी, चलने का दिन पहुँचा आकर ॥
लेकिन इस ब्रज की भूमी से, हो गया है इतना प्यार मुझे ।
रह सकूंगा क्यों कर गोपुर में, आता है यही विचार मुझे ॥
अस्तु अलख इक रूप से मैं, यहां रहूंगा ये निरधारा है ।
अब तुम भी सोच विचार हृदय, कह दो क्या ख्याल तुम्हारा है ॥

हाथ जोड़ कहने लगी, रासेश्वरि शिर नाय ।
भला बिचारा आपने, हे ब्रजपति ब्रजराय ॥

हम दोनों रहें सदैव यहां, नहिं तजेंगे ब्रज हे जगसाईं ।
पत्ते पत्ते में भक्तों को, देगी अपनी छवि दिखलाई ॥
अपने क्रीड़ा स्थानों में, जो नर श्रद्धा से आवेंगे ।
हो जायंगे उनके पाप नष्ट सीधे गोलोक सिधावेंगे ॥
तब बोले मोहन भी हर्षा, यमुना गिरराज रहें जब तक ।
वृंदावन गोकुल बरसाना, नंदग्राम रहें कायम तब तक ॥
मैं अरु तुम यहीं बिराजेंगे, भक्तों का कारज करने को ।
ब्रज कण जिनके अंग मांहि लगें, उनके कलिमल के हरने को ॥

दुनिया वालों की दृष्टी में, हम भारत छोड़ सिधावेंगे ।
पर अंतरदृष्टी वाले नित, हमको व्रज में ही पावेंगे ॥
गर सच पूछो तो कहीं से हम. ना आये ना कहिं जाना है ।
संकल्प है केवल भक्तों का, जो दिखता जाना आना है ॥

यों कह राधे रानि को, लेकर अपने साथ ।
गोवर्धन पर चढ़ गये इक क्षण में व्रजनाथ ॥
राधा माधव की छबी, लख कलिमल नस जाय ।
आवो श्रोताओं करें, स्तुति कुछ सिर नाय ॥
करुणासिंधो परम धन, परिपूरन भगवान ।
भक्तों के प्रण पालने, महि प्रगटे हो आन ॥

हे कृष्ण कृपाल दयासागर, हे अशरणशरण जगत स्वामी ।
हे निराकार साकार विभो, हे आशुतोष अंतरयामी ॥
हे शरणागत वत्सल मोहन, हे सचराचर पालनकर्ता ।
हे दीनबंधु अघहरन प्रभो हे सृष्टी के कर्ता हरता ॥
हे राधाप्राण राधिका पति, हे कमलनयन गोपीरमणा ।
हे रासबिहारी दुखहारी, हे असुरारी हम हैं शरणा ॥
तुमने भू भार उतारन हित, अवतार मनुज का धारा है ।
सुर विप्र धेनु संकट हरकर, सत धर्म जगत परचारा है ॥
तुम्हरी हि कृपा से हे गुपाल, तव लीला कछुक सुनाई है ।
है तुम्हरे ही अर्पण नटवर, जैसी भी कुछ बन पाई है ॥
कर कृपा कृपासागर चित से, माया का जाल हटा दीजे ।
अपने चरणों में अष्ट पहर, इस दास की बुद्धि लगा लीजे ॥
भक्ती मुक्ती के दाता हो, श्रोताओं की चाह पूर्ण करो ।
हे मधुसूदन शारंगपानी, इनके सारे दुख कष्ट हरो ॥

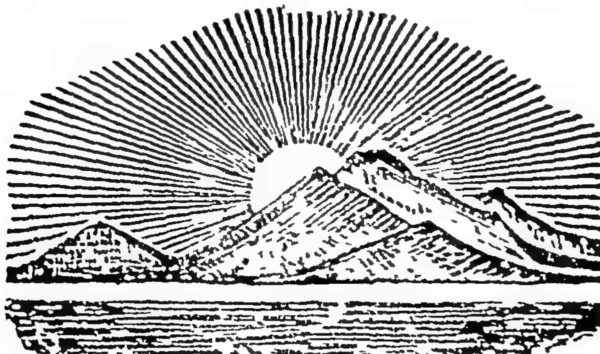
कर लकुटी मुख वेणुधर, रासेश्वरि संग आय ।
बसो हृदय "श्रीलाल" के हे नटराज अघाय ॥

परम पियारे प्रेमनिधि, जगजीवन व्रजराज ।
रखो चरन की शरण में, जग में राखो लाज ॥
जैसा मेरा भेख है, राखो उसकी टेक ।
बुद्धि मेरी निर्मल करो, नाशो सब अविवेक ॥
जय जीवन के सारथी, पार्थ बंधु यदुराय ।
कथा रूप को धार कर, घर घर बसिये आय ॥

* गाना *

हमें अस वर दो दीनदयाल ॥
संचित अरु क्रियमाण करम सब, हो विनष्ट तत्काल ।
तव पद में मन लगा रहे नित, त्याग जगत जंजाल ॥ हमें० ॥
जिह्वा निशिदिन रटे कृष्ण, हरि, दामोदर, गोपाल ।
निर्मल चरित श्रवण कर हरदम, होवें श्रवण निहाल ॥ हमें० ॥
लोचन तृप्त बने नहि कबहूँ, लख तव छवी विशाल ।
हानि लाभ यश अयश में सम रह मन दिखलाय कमाल ॥ हमें० ॥
सतयुग सम युग ये नहि नटवर, है कलिकाल कराल ।
वरद हस्त नित रहे दास पर, विनय करत "श्रीलाल" ॥ हमें० ॥

* श्रीकृष्णार्पणमस्तु *





श्रीकृष्ण चरित्र अथवा श्रीमद्भागवत

बीसवां भाग

परिक्षित मोक्ष

रचयिता—

श्रीलाल खत्री

प्रकाशक—महाभारत पुस्तकालय, अजमेर

मुद्रक—कें. हमीरमल लूनिया, दि डायमण्ड जुबिली प्रेस, अजमेर.

प्रथम बार २,००० | सम्वत १९९१ विक्रमी, सन् १९३४ ईस्वी | मूल्य ।) आने

स्तुति

(१)

धन्य हैं हरि चरित्र भय जीत ॥
समझो इनको कलि मल नाशक नर के सच्चे मीत ।
व्यास सुवन ने नृपहिं सुनाकर हरा जगत का भीत ॥
श्रवण करे जो निशिदिन इनको त्याग काम विपरीत ।
कृष्ण चरण की मिले भक्ति अरु हो कारज मन चीत ॥
केवल सातहि दिन में नृप ने पाई मुक्ति पुनीत ।
गये धेनुपुर यान में चढ़कर सत्य लोक तक जीत ॥
भव तरना यदि चाहते हो तो अपनाओ ये नीत ।
ध्यान धरो नित मुरलीधर का जिनके कटि पट पीत ॥

मंगलाचरण

(२)

पीताम्बर धर पाप हर, गोकुलेश गोपाल ।
ताप हरन जन सुख करन, जय जय दीन दयाल ॥
जय जलशायी जलदसम, सुभग सुहावन रूप ।
सृष्टि रचन, पालन, हरन, शिव अज विष्णु स्वरूप ॥
तुम गुरु गणपति शारदा, सहस बदन तुम शेष ।
विघन हरो मंगल करो, जग व्यापक अखिलेश ॥
बंदहुं वेदव्यास सुत, श्री शुकदेव सुजान ।
गायो कलिमल हरन जिन, "कृष्ण चरित" गुणखान ॥

❋ श्लोक ❋

वंशीविभूषितकरान्नवनीरदाभात्पीतांबरादरुणबिंबफलाधरोष्ठात् ।
पूर्णेन्दुसुन्दरमुखादरविन्दुनेत्रात्कृष्णात्परं किमपितत्वमहं न जाने ॥

❁ कथा प्रारम्भ ❁

मन मोहन राधारमन, जन परिपूरन काम ।
गोर्वधन धारी तुम्हें बारम्बार प्रणाम ॥
चरण कमल में आपके, नावउँ सादर शीश ।
करके दया दयानिधे, भक्ति करो बकशीश ॥
तुम्हरी कृपा कटाक्ष ते, विमल चरित्र तुम्हार ।
गाता हूँ कलिमल हरन, करिय सहाय मुरार ॥
गंगा तट पर छः दिवस, हुई कथा अभिराम ।
सप्तम दिन के प्रात में, बोले ऋषि सुखधाम ॥

कुरुराज प्रभू की विमल कथा, त्रय ताप नशाने वाली है ।
श्रोता वक्ता दोनों ही को, हरिधाम पठाने वाली है ॥
एकाग्र चित्त कर सुना है जो, तुमने यश गिरिवरधारी का ।
जनमनरञ्जन भवभयभञ्जन, श्री चक्रपाणि बनवारी का ॥
इसलिये सकल शुभ अशुभ कर्म, हे नृपवर तुम्हरे नष्ट हुये ।
पावोगे मन चाहा सुलोक, विचरोगे तहां पर मस्त हुये ॥
अब सांझ तलक का सकल समय, हरि कीर्तन में खोना चहिये ।
कर चित्त स्थिर प्रभु चरणों में, नृप तुमको रत होना चहिये ॥
भक्तों के लिये भोग, मुक्ती, जग सुख श्रीकृष्ण पियारे हैं ।
जीवन सर्वस सुत मात पिता, बस कमल नयन व्रजवारे हैं ॥

आदि मध्य अरु अंत में, हैं इकसार अनंत ।
उनका ही विश्वास रख, रटो सदा भगवंत ॥

जो जन प्रभु के गुणगण सुनकर, श्रद्धा हृदय में लाते हैं ।
वे अंत समय हरिपुर जाकर, हरि सन्मुख आसन पाते हैं ॥

हो जाता मोहन सम स्वरूप, पुनि उनके संग निशिदिन रहकर ।
सब तरह की अंतर लीला में, होते श्यामिल वे भक्त प्रवर ॥
है सच्चा संत वही जग में, जिसने सत से नाता जोड़ा ।
सब पाप उसी के भस्म हुये, जिसने अधर्म से मुख मोड़ा ॥
इन ही के लिये सगुण वपुधर, निर्गुण जग में प्रगटाते हैं ।
साकार रूप हो, निराकार, शक्ती युत यहां पर आते हैं ॥

व्यास सुवनके वाक्य सुन, हरषाये नरनाथ ।
हाथ जोड़ कहने लगे, झुका के अपना माथ ॥

हो गया कृतार्थ मुनीश्वर मैं, तुमसम सद्गुरु को पाकर के ।
निर्भय बन गया हृदय मेरा, मृत्यू का सोच गमा कर के ॥
पर जिस प्रकार भौंरा मुनिवर, पंकज खुशबू से अघाता नहीं ।
बस उसी तरह प्रभु गुण सुनकर, मेरा मन विरता पाता नहीं ॥
चाहता है और श्रवण करना, अस्तू फरमाओ मुनि ज्ञानी ।
कुछ और चरित्र मुरारी के, जब तलक शेष है जिन्दगानी ॥
किसी पूर्वजन्म के सुकृत वश, मिल गया है तुम्हरा दर्श प्रभो ।
कर सका हूँ महा भाग्य से मैं, तुम चरणों का स्पर्श प्रभो ॥
अस्तू एक पल भी वृथा नहीं, जाना चहिये अब मुनिराई ।
करिये मुख से हरियश रूपी, अमृत की वर्षा सुखदाई ॥
सब से पहिले हे मुनीराज, पुनि कहो कि अंत समय नरका ।
क्या कर्तव्य है जिसके द्वारा, मग पावे ईश्वर के घर का ॥
रहते अजान निज मृत्यू से, इस दुनियां के सारे प्राणी ।
अस्तू अंतिम कर्तव्य है क्या, ये जान न पाते अज्ञानी ॥
लेकिन मुनि श्राप से मुझको तो, ये विदित है मेरे प्राण प्रभो ।
निश्चय हि तुच्छ तक्षक द्वारा, बस करेंगे आज पयाम प्रभो ॥

अस्तु कहो इस समय मैं, करूं कौन सा काम ।
तन को तजते ही मिले, जिससे मुक्ति ललाम ॥

मुस्काये शुकदेवजी, सुनकर नृप अरदास ।
पुनि बोले हरषाय कर सुन नृप रख विश्वास ॥
अंत काल हरि पद विमल, धरे ध्यान जो जीव ।
उसका बस कल्याण है, जमे मुक्ति की नींव ॥
इसलिये उपाय वही करना, जो अंतकाल हरि ध्यान लगे ।
सुत, मात, पिता भ्रातादिक से, तज नेह कृष्ण के ध्यान पगे ॥
जीवों की अंतिम गति वे हैं, भजने वालों को भजते हैं ।
जो माया में फंस जाता है, उस जीवको प्रभु भी तजते हैं ॥
सच्ची श्रद्धा दृढ़ निष्ठा से, गुरु वचनों पर विश्वास करो ।
हर पल में मोहन प्यारे का, तुम ध्यान सहित सहवास करो ॥
यद्यपि हे नृप जो कहा मैंने, सुनने में सुलभ दिखाता है ।
पर कार्य रूप में लाने पर, अति कठिन नजर में आता है ॥
अस्तु कहूँ जो कुछ सुनो, राजन कान लगाय ।
जिससे अंतिम स्वांस तक, कृष्ण ध्यान नहिं जाय ॥
चाहे हो ज्ञान से, आसन से, हठ योग, प्राण संचालन से ।
अथवा हो भक्ती से हे नृप, है काम चित्त एकायन से ॥
मन का एकाग्रहि हो जाना, बस आवागमन नशा देता ।
फिर यदि वो होवे ज्ञान सहित, तो चट शुभ गती दिला देता ॥
इसलिये विवेक विराग सहित, तुम भक्ति मार्ग को अपनावो ।
है श्रेष्ट तुम्हारे लिये यही, इस ही से मुक्ती पद पावो ॥
ब्रह्म सदा अद्वैत है, निर्गुण निर आकार ।
भक्तों का संकल्प बस, करे उसे साकार ॥
अस्तू अपनी भावना सरिस, एक रूप प्रभू का अपनावो ।
"ऐसा ही है मम इष्ट देव", दृढ़ता से हिय में ठहरावो ॥
पुनि उनके चरणों में अर्पण, कर दो सब तनमन धन अपना ।
जल पंकजवत् दुनियां में रह, सब ठाठ लखो जैसे सपना ॥

जिमि वायु रहित कमरे भीतर, दीपक लौ थिर हो जाती है ।
वैसे ही प्रभु पद पंकज में, जिसकी मति थिरता पाती है ॥
उसका ही जन्म सफल समझो, भगवान उसीसे राजी हैं ।
दृढ़ता संकल्प में होय अगर, तकदीर उसी की ताजी है ॥
नवधा भक्ती में से कोई, रुचि माफिक नृप चुन डालो तुम ।
पुनि भाव अनन्य हृदय में रख, निज इष्ट में चित्त लगालो तुम ॥
निज सम चेतन्य मूर्ती गिन, उसके संग प्रीती फैलावो ।
सच्चे सेवक की भांति सदा, उसकी सेवा में लगजावो ॥
कुछ समय तलक मूरति सन्मुख, जा प्रेम से पूजन भजन करो ।
फिर धरो मानसिक ध्यान भूप, मन माहिं इष्ट का मनन करो ॥
संसारी भाव अगर जागें, बल पूर्वक उन्हें हटावो तुम ।
कर विनती श्याम बिहारी से, चितकी दृढ़ निष्ठा चावो तुम ॥

कुछ दिन में हो जायगा, मन इकाग्र भूपाल ।
देंगे दर्शन नित्य प्रति, फिर तो दीनदयाल ॥
है सर्वोत्तम पद यही, यही जीव का ध्येय ।
इसीको पुरुषारथ कहें, यही मुक्ति का गेह ॥
कृत्यकृत्य तुम हो चुके, तुम्हें न इसकी चाह ।
कही बात संसार हित, सुन लो हे नरनाह ॥
अच्छा अब हरिनाम की, ध्वनी शुरू हो जाय ।
उपजे जिससे सौख्य अति, पातक पुंज बिलाय ॥

शुकदेवजी के कथनानुसार, प्रभु नामकी ध्वनी शुरू करके ।
हो गये मगन सब कीर्तन में, मन में मुरलीधर को धरके ॥
नृप का तो हाल न पूछो कुछ, देदीप्यमान दरसाता था ।
चहरे पर था अति विमल तेज, सूरज सम शोभा पाता था ॥
सारे संशय से निवृत हो, वह परम शान्त भगवत जन बन ।
था लीन कृष्ण जप के अंदर, आते थे दृष्टि उर में मोहन ॥

बाहिर भी जल थल नभ भीतर राधिकानाथ दरसाते थे ।
यहां तक ऋषिमुनि शुकआदिक भी, सब कृष्ण रूप दिखलाते थे ॥
कुछ देर बाद नृप को नटवर, मुरली ध्वनि करते दृष्टि पड़े ।
पुनि लखा कदंब की छांह तले, हैं खड़े सकल श्रृंगार जड़े ॥
फिर अवलोका एक निमिष बाद, पयपान पूतना का करते ।
शकटासुर को कर प्राण हीन, खल त्रणावर्त का जी हरते ॥
देखा पुनि यशुदा गोद लिये, शंकर को दर्श दिखाती है ।
हो रहे अनंदित आशुतोष, महिमा बरनी नहिं जाती है ॥
पुनि लखा यशोदा छड़ी लिये, मोहन के पीछे धाय रही ।
फिर अवलोका कर कसने हित, हो क्रोधित रस्सी लाय रही ॥
एक छिन उपरान्त दृष्टि आया, बंध रहे हैं ऊखल से नटवर ।
दुतियः क्षण देखा फिरते हैं, माखन खाते माधव घर घर ॥
अवलोका पुनि वत्स ले, जाय रहे व्रजनाथ ।
फेर लखा भोजन करत, ग्वाल बालकन साथ ॥
ब्रह्माजी का आगमन लखा, बछड़े ले निजपुर जाते हैं ।
मायापति अपनी माया से, तत्क्षण नवीन उपजाते हैं ॥
पुनि लज्जित हो, कर नम्रकंध, विधि को स्तुति करते देखा ।
काली का गर्व गमाने हित उसके सिर पद धरते देखा ॥
क्षण बाद निहारा वस्त्र हरन, गोपियों का करके बनवारी ।
जा चढ़े हैं एक कदंब ऊपर, कर रही हैं विनती बेचारी ॥
इन्द्र यज्ञ का भंग पुनि, अवलोका तत्काल ।
फेर लखा सब विरज का, वर्षा से बद हाल ॥
गोवर्धन धारन किये फेर, देखा गोवर्धनधारी को ।
पुनि लखा रास में लीन हुये, सखियों संग रासबिहारी को ॥
व्रज तज कर फिर अक्रूर संग, हरि को देखा मथुरा जाते ।
रासेश्वरि को गोपियों सहित, पुनि अवलोका अति दुख पाते ॥

कंस निधन का दृष्य लख, जरासंध संग्राम ।
लखा व देखा जिमि बनी द्वारावती ललाम ॥
रुक्मणी विवाह की छवी निरख, पुनि पाणिग्रहण सतभामा का ।
देखा फिर अवलोका विहार, रानियों संग अभिरामा का ॥
भौमासुर वध स्त्रियाँ विवाह इन संग प्रभु को तन्मय देखा ।
पुनि शोणितपुर में ईश साथ, केशव का रण अभिनय देखा ॥
इसके उपरान्त निहारा प्रभु, सेवा कर रहे सुदामा की ।
पुनि तुला में बैठे हुये लखी, मंजुल मूरति घनश्यामा की ॥
बाद इसके देखा कौरव सब, पांडवों से लड़ने की खातिर ।
हैं खड़े हुये रणभूमी में, श्री भीष्म, द्रोण को आगे कर ॥
पुनि कायरता का रूप धरे, अवलोका वीर धनंजय को ।
उपदेश सुनाते हुये लखा, फिर जगदीश्वर करुणामय को ॥
फिर दृष्टि पड़ा महाभारत का, संग्राम भयंकर भयकारी ।
कर रहे हैं अर्जुन के रथ का, संचालन श्री गिरिवरधारी ॥
कुरुक्षेत्र में पुनि लखा, राधा कृष्ण मिलाप ।
उद्धव को सतज्ञान दे, खोया सब संताप ॥
अति सज धज सहित निहारा फिर, आखिरी रास यमुना तटपर ।
पुनि अवलोका दे रहे गती, अपने भक्तों को करुणा कर ॥
बाद इसके गिरि गोवर्धन पर, प्रभु को रासेश्वरि सहित लखा ।
सुर दुर्लभ अनुपम शोभा का, आनन्द वर्णनातीत लखा ॥
शुभ दर्शन श्यामा श्याम के कर, पुलकाय मान भुपाल हुये ।
लग गई समाधी निर्विकल्प, प्रभु पद में थिर सब ख्याल हुये ॥
श्रोताओं इत हो रहे, नृप नटवर में लीन ।
उत इनके सुतने किया, तुरत प्रबंध नवीन ॥
सप्तम दिन का आगमन देख, जन्मेजय अतिशय घबराया ।
सोचा कैसे हो इन्तजाम, जिससे न तजे तन नरराया ॥

इसमें तो कुछ संदेह नहीं, मुनि शाप रंग दिखलावेगा ।
वो पापी तक्षक भी निश्चय, डसने हित यहां आजावेगा ॥
यदि किसी तरह से दुष्ट नाग, सूर्यास्त तलक रोका जावे ।
तब तो मम पितु को मृत्यु कभी, दर्शन न आज देने पावे ॥
कर ये विचार जन्मेजय ने, फौरन प्रबन्ध दृढ़ करवाया ।
पक्षी तक पर ना मार सके, इस तरह का पहरा बिठलाया ॥
पुनि यहां से ले कई मीलों तक, सेना को ला तैनात किया ।
कोई अजान तहं आ न सके, ऐसा कठोर झट हुक्म दिया ॥
भूपाल परिक्षित दयावान, प्रजा पालक अरु न्यायी था ।
संतो दीनों का हितकारी, दुष्टों को अति भयदाई था ॥
अस्तू सारे पुरवासी गण, नृप सुत का रुख अवलोकन कर ।
आ जुटे बिना ही बुलवाये, ले लेकर हाथों में शस्तर ॥
हो गये अनंदित जन्मेजय, जिस समय ये सब आ खड़े हुवे ।
तक्षक तो क्या यमराज से भी, लड़ने हित सारे अड़े हुवे ॥
नृप सुत भी खुद निज कमर बांध, पांचों शस्त्रों से सजा हुआ ।
कर रहा था निज पितु की रक्षा, कर्तव्य कर्म में लगा हुआ ॥

बड़े बड़े भेषज रतन, वैद्य तहां बुलवाय ।
औषधि युत बिठला दिये, विष हर हेतु उपाय ॥

पुनि यंत्र मंत्र के ज्ञाता भी, काफी गिनती में आगे थे ।
मृत्युंजय जप हित विप्रों को, भी नृप सुत ने बैठाये थे ॥
टलजाय विघ्न इसके हित वो, भूखों को अन्न बटवाता था ।
कोमल अरु हरी घास मंगवा, गायों को भी खिलवाता था ॥
पुनि मन ही मन कर रहा था वो, विनती प्रभु से हे नाथ मेरे ।
कर दया मुझे ये भिक्षा दो, बच जायं मृत्यु से तात मेरे ॥
आशान्वित नेत्रों से पल पल, ऋषि मुनियों को भी तकता था ।
शायद शुक मुनि कुछ मदद करें, अस्तू उन पद चित धरता था ॥

ज्यों ज्यों दिन ढलता जाता था, उसकी उत्कंठा बढ़ती थी।
पश्चिम में जाते लख रवि को, उर में आतुरता चढ़ती थी॥
मन की गति मम अति वेग सहित, सारा प्रबंध लखता था वो।
सब को चैतन्य देख फिर आ, निज पिता का मुख तकता था वो॥
नर बुद्धी से हो सके, उतना किया प्रबंध।
पुनि अदृष्ठ पर हो स्थित, हरा शोक दुख द्वंद॥
इस तरफ परिच्छित लखता था, उर में श्री श्याम बिहारी जी।
गोवर्धन पर हैं खड़े हुये, संग हैं रासेश्वरि प्यारी जी॥
लेकिन कुछ देर बाद इसको, मूरति में फर्क नज़र आया।
देखा होते जा रहे हैं कुछ, छोटे पल पल में ब्रजराया॥
आख़िर हो गये सूक्ष्म इतने, नहिं निरख सका फिर नरराई।
हो गई समाधी भंग रत, पुनि लाभ करी चेतनताई॥
देखा ऋषि मुनि योगिन्द्र यती, श्री परमहंस अरु सन्यासी।
लख रहे हैं सब राजा की तरफ, शुक मुनि भी मय सब पुरवासी॥
राजा ने फौरन उठ करके, श्री व्यास सुवन को सिरनाया।
अरु कहा धन्य हो हे मुनिवर, सत मार्ग प्रदर्शक गुरुराया॥
संकल्प विकल्प सकल मेरे, हो गये नष्ट श्री ऋषिराई।
आत्मा का अंतिम ध्येय है क्या, देता ये साफ अब दिखलाई॥
अरु मृत्यू जो जग जीवों को, अति भय दायक दरसाती है।
वो भी मुझको हे व्यास सुवन, अति सरल दृष्टि में आती है॥
अब तो मेरा इस दुनिया में, रहने को करता हृदय नहीं।
मम इष्ट देव केशव हैं जहां, जाना चाहता है ये भि वहीं॥
बढ़ रही है आतुरता उर में, उन चरणों के अवलोकन की।
तव कृपा से थोड़े समय में ही, पलटा खा गई गती मन की॥
कहो तो प्राणायाम से, प्राण वायु को खींच।
करूं स्थिर तत्काल में, निज मस्तक के बीच॥

पुनि प्राणों को कर मुक्त मुने, नश्वर शरीर को त्यागूं मैं ।
गो लोक पहुँच शीघ्राति शीघ्र, नटवर पद मन अनुरागूं मैं ॥
हे गुरू ! वो देखो कदंब तले, भगवान कृष्ण जन दुख हारी ।
रासेश्वरि सहित खड़े होकर, कर रहे हैं मुरली ध्वनि प्यारी ॥
आहा कैसा अनुपम स्वरूप, व्रज जीवन ने स्वीकारा है ।
हो गया प्रफुल्लित हृदय मेरा, बहती आनंद की धारा है ॥
पुनि देखो, मेरी ओर निरख, आनंदकन्द मुस्काते हैं ।
अरु अपने ढिंग आने के लिये, मुझको संकेत जनाते हैं ॥
कह रही है राधेरानी भी, आवो हे नृप जल्दी आवो ।
अपनी अति कठिन तपस्या का, आकर अति सुन्दर फल पावो ॥
आ गया है एक विमान भी तहं, मोती माणिक से जड़ा हुआ ।
मुझको ले चलने की खातिर, गोलोकेश्वर ढिंग खड़ा हुआ ॥
है धन्यवाद जगदीश्वर को, जिन गर्भ में मेरी रक्षा की ।
श्रृंगीऋषि भी हैं धन्य धन्य, मम हित जिन शाप व्यवस्था की ॥
यदि उदर में ही तन तज देता, किस तरह शाप लगने पाता ।
पुनि तुमसे मिलने का भी गुरु, अवसर किस भांति हाथ आता ॥
कर दया दयासागर ने ही, हे मुनिवर तुम्हें पठाया है ।
जिनके द्वारा सुर मुनि दुर्लभ, हरि यश सुनने में आया है ॥
हो गया कृतार्थ मुनिश्वर मैं, कृपया आज्ञा दो जाने को ।
सच्चिदानंद के नित्य प्रती, अति अनुपम दर्शन पाने को ॥

चरण पकड़ कर नाथ के, मैं होऊंगा निहाल ।
कहूंगा मेटो शीघ्र अब, भव भटकन जंजाल ॥

पुनि पश्चिम की जानिब विलोक, आतुर हो बोले नरराई ।
जा रहे अस्त होने दिनमणि, निशि आती देती दिखलाई ॥
पर पता नहीं है तक्षक का, क्या जाने कब तक आवेगा ।
हे विधिना शाप मुनीश्वर का, क्या रंग नहीं दिखलावेगा ॥

ज्यों ज्यों दिन ढ़लता जाता था, उसकी उत्कंठा बढ़ती थी।
पश्चिम में जाते लख रवि को, उर में आतुरता चढ़ती थी॥
मन की गति मम अति वेग सहित, सारा प्रबंध लखता था वो।
सब को चेतन्य देख फिर आ, निज पिता का मुख तकता था वो॥

नर बुद्धी से हो सके, उतना किया प्रबंध।
पुनि अदृष्ट पर हो स्थित, हरा शोक दुख द्वंद॥

इस तरफ़ परिक्षित लखता था, उर में श्री श्याम बिहारी जी।
गोवर्धन पर हैं खड़े हुये, संग हैं रासेश्वरि प्यारी जी॥
लेकिन कुछ देर बाद इसको, मूरति में फर्क नज़र आया।
देखा होते जा रहे हैं कुछ, छोटे पल पल में ब्रजराया॥
आखिर हो गये सूक्ष्म इतने, नहिं निरख सका फिर नरराई।
हो गई समाधी भंग रत, पुनि लाभ करी चेतनताई॥
देखा ऋषि मुनि योगिन्द्र यती, श्री परमहंस अरु सन्यासी।
लख रहे हैं सब राजा की तरफ, शुक मुनि भी मय सब पुरवासी॥
राजा ने फौरन उठ करके, श्री व्यास सुवन को सिरनाया।
अरु कहा धन्य हो हे मुनिवर, सत मार्ग प्रदर्शक गुरुराया॥
संकल्प विकल्प सकल मेरे, हो गये नष्ट श्री ऋषिराई।
आत्मा का अंतिम ध्येय है क्या, देता ये साफ़ अब दिखलाई॥
अरु मृत्यू जो जग जीवों को, अति भय दायक दरसाती है।
वो भी मुझको हे व्यास सुवन, अति सरल दृष्टि में आती है॥
अब तो मेरा इस दुनिया में, रहने को करता हृदय नहीं।
मम इष्ट देव केशव हैं जहां, जाना चाहता है ये भि वहीं॥
बढ़ रही है आतुरता उर में, उन चरणों के अवलोकन की।
तव कृपा से थोड़े समय में ही, पलटा खा गई गती मन की॥

कहो तो प्राणायाम से, प्राण वायु को खींच।
करूं स्थिर तत्काल में, निज मस्तक के बीच॥

पुनि प्राणों को कर मुक्त मुने, नश्वर शरीर को त्यागूं मैं।
गो लोक पहुँच शीघ्राति शीघ्र, नटवर पद मन अनुरागूं मैं॥
हे गुरू! वो देखो कदंब तले, भगवान कृष्ण जन दुख हारी।
रासेश्वरि सहित खड़े होकर, कर रहे हैं मुरली ध्वनि प्यारी॥
आहा कैसा अनुपम स्वरूप, व्रज जीवन ने स्वीकारा है।
हो गया प्रफुल्लित हृदय मेरा, बहती आनंद की धारा है॥
पुनि देखो, मेरी ओर निरख, आनंदकन्द मुस्काते हैं।
अरु अपने ढिंग आने के लिये, मुझको संकेत जनाते हैं॥
कह रही है राधेरानी भी, आवो हे नृप जल्दी आवो।
अपनी अति कठिन तपस्या का, आकर अति सुन्दर फल पावो॥
आ गया है एक विमान भी तहं, मोती माणिक से जड़ा हुआ।
मुझको ले चलने की खातिर, गोलोकेश्वर ढ़िंग खड़ा हुआ॥
है धन्यवाद जगदीश्वर को, जिन गर्भ में मेरी रक्षा की।
शृंगीऋषि भी हैं धन्य धन्य, मम हित जिन शाप व्यवस्था की॥
यदि उदर में ही तन तज देता, किस तरह शाप लगने पाता।
पुनि तुमसे मिलने का भी गुरु, अवसर किस भांति हाथ आता॥
कर दया दयासागर ने ही, हे मुनिवर तुम्हें पठाया है।
जिनके द्वारा सुर मुनि दुर्लभ, हरि यश सुनने में आया है॥
हो गया कृतार्थ मुनिश्वर मैं, कृपया आज्ञा दो जाने को।
सच्चिदानंद के नित्य प्रती, अति अनुपम दर्शन पाने को॥

चरण पकड़ कर नाथ के, मैं होऊंगा निहाल।
कहूंगा मेटो शीघ्र अब, भव भटकन जंजाल॥

पुनि पश्चिम की जानिब विलोक, आतुर हो बोले नरराई।
जा रहे अस्त होने दिनमणि, निशि आती देती दिखलाई॥
पर पता नहीं है तक्षक का, क्या जाने कब तक आवेगा।
हे विधिना शाप मुनीश्वर का, क्या रंग नहीं दिखलावेगा॥

आजा प्यारे तक्षक आजा, आकर ये बदन छुड़ादे तू ।
गिरिवरधारी के चरणों में, हे सखा शीघ्र पहुँचादे तू ॥
कुछ देर तलक यदि हुआ नहीं, तू दृष्टी गोचर हे भाई ।
तो योग अग्नि से तन तज मैं, पहुँचूंगा प्रभु के ढिंग जाई ॥

श्रृंगी ऋषि के वाक्य मैं, सत्य करूंगा आज ।
देखूंगा अति शीघ्र जा, चरण गरीब-निवाज ॥

सुनकर भूपाल परिक्षित के, ऐसे बचनों को मुनिराई ।
बोले, नरनाथ धन्य हो तुम, जिनको प्रभु छवि दी दिखलाई ॥
होगये हो जीवन मुक्त भूप, कहिं नहीं अटकने पावोगे ।
इस तन को तजते ही निश्चय, सीधे गोलोक सिधावोगे ॥
आगया समय अब तक्षक भी, निज शक्ल दिखाने वाला है ।
रवि के छिपते छिपते तू भी, दुनियां से छिपने वाला है ॥
प्रभु इच्छा में बाधा देना, हे नृप होता है नीक नहीं ।
टुक धैर्य धरो योगाग्नी से, तन को तज देना ठीक नहीं ॥
कारण ये आत्मघात होगा, पुनि इसका फल पावेगा तू ।
गोलोक देखने की बजाय, लख नरक को पछतावेगा तू ॥

मानव तन को श्रेष्ठता, नहीं कथन में आय ।
लख चौरासी योनियां, नीचो मानो जायं ॥

सब जूनों में भ्रमते भ्रमते, जब जीवात्मा थक जाता है ।
तब करके दया दयालु प्रभू, उनको नर योनि दिलाता है ॥
पाकर ये सुर दुर्लभ शरीर, जिसने प्रभु से नाता जोड़ा ।
उस ही का आवागमन छुटा, सब जूनों का मस्तक फोड़ा ॥
पर जिसने दुनियां में फसकर, माया मरीचनी अपनाई ।
तन तजते ही उसके सिर पर, वो ही लख चौरासी छाई ॥
इसलिये जहां तक सम्भव हो, तन की रक्षा करना चहिये ।
पापों से हृदय हटा नितप्रति, प्रभु चरणों में धरना चहिये ॥

नाशवान है तन सदां, थिर नहिं रहने पाय ।
पर हठ करके त्यागना, पातक माना जाय ॥
इस समय तमाम झंझटें तज, बस सुमिरन हरिका नाम करो ।
जो मूरति अभी निहारी थी, उस ही का उर में ध्यान धरो ॥
जिस समय वो अनुपम महा छबी, दृष्टी आवे हृदय अंदर ।
बस तभी मानसिक पूजा में, हो जाना हे राजन तत्पर ॥
मणिमय चौकी पर बिठा उन्हें, सुन्दर उबटना लगाना तुम ।
पुनि स्वर्ण पात्र में निर्मल जल, भरकर हे भूप निल्हाना तुम ॥
फिर मनमथ मंजुल वस्त्र मंगा, मंजुल अंग श्री व्रजराई के ।
तत्काल पौंछना हे भूपति, आहिस्ता कोमलताई से ॥
पुनि सुघड़ मुलायम रेशम के, कपड़े नटवर को पहिराना ।
रत्नों से जड़े हुए भूषण, फिर अंग अंग में सजवाना ।
केशर कस्तुरी युत चंदन चर्चित करना पुनि हर्षित हो ।
कमलों की माला पहिराना, अति नेह सहित आकर्षित हो ॥
इसके उपरान्त भूप वर तुम, एक रत्न जड़ित सिंहासन पर ।
निज इष्ट देव का बिठलाना, विनती द्वारा निज सिर नाकर ॥
फिर रुचि माफिक नैवेद्य बना, अति प्रेम सहित आगे धरना ।
जब तक वे खाते रहें नृपति, बैठे बैठे पंखा करना ॥
करा आचमन मानसिक, शुचि ताम्बूल खवाय ।
कर्पूरादिक से करो, आरति अति हरषाय ॥
यों नख से शिख तक लखोभूप, शोभा, शोभा के सागर की ।
फिर करो प्रार्थना यों मन में, आनंदकंद नट नागर की ।
हे निराकार साकार प्रभो, हे निर्मम निरवय निरहारी ।
हे जग अहार भव के विहार, हे दयाधार हे सुखकारी ॥
तुम हो अनंत पाया न अंत, नहिं आदि मध्य तुम में आवे ।
वेदादि शास्त्र थक गये विभो, विधि तक तुम्हरा न भेद पावे ॥

चर अचर लक्ष चौरासी में, व्यापक होकर भी न्यारे हो ।
सिर झुका नमन करता हुँ तुम्हें, तुम भव दुख टारन हारे हो ॥
जब जब भक्तों पर भीड़ पड़ी, तुमने आ काज संवारा है ।
उसका झट आवागमन मिटा, जिसने प्रभु तुम्हें पुकारा है ॥
हे कृष्ण कृपालु व्रजेश हरी, आल्हादिन पति ! राधेमोहन ।
असुरारी ! गिरिवर धारी हे, हे जनके सकल विघ्न मोचन ॥
तुमने जगमें अवतार धार, सत धर्मका यहां प्रचार किया ।
भूलों को राय बताई है, भक्तो को सर्वाधार किया ॥
करके अब जरा दया स्वामी, मेरे शिर पर भी हाथ धरो ।
माया सागर में डूब रहा, कर पकड़ मुझे उस पार करो ॥
इस प्रकार भगवान के, करो गुणों का गान ।
छुटे तुरत आवागमन, होय परम कल्याण ॥

* गाना *

प्रभू की कृपा से हुआ थिर तेरा मन ।
परम सुख मिला है मुझे भी इसी छन ॥
मिले तुमसा श्रोता तो वक्ता भी अपना ।
हृदय खोलकर सामने रखता राजन ॥
मुनि श्राप को भूप वरदान समझो ।
मिलेंगे अवसि कृष्ण तजते हि ये तन ॥
रहे ध्यान इसका पलक एक भी तू ।
न मन से हटाना खयाले जनार्दन ॥

तुमने श्री हरि की कथा, सुनी सप्रेम सुवार ।
बेड़ा तुम्हरा होगया, निश्चय भव के पार ॥
जो कही है मैंने कथा तुम्हें, ये कृष्ण चरित्र कहावेगो ।
भावुक जनता इस गाथा को, "मद्भागवत" कह सिर नावेगी ॥

हो जायगी जिसके हृदय में, थोड़ी भी श्रद्धा यह सुनकर ।
पहुँचेंगे वे गोलोक तुरत, नश्वर तन त्यागन करके पर ॥
तुम्हरे माफिक श्रोता राजन, विरले वक्ता को मिलता है ।
बिन मिले मनुज श्रद्धा वाला, वक्ता का दिल नहिं खिलता है ॥
अच्छा जो समझाया है मैंने, उसका अनुसरन नृपाल करो ।
धर ध्यान देवकीनंदन का, इस अंत समय सब दुःख हरो ॥
जा चुके हैं रवि अस्ताचल पर, तक्षक आया ही चाहता है ।
कर भिन्न देह से प्राण तेरे, सत्वर गोलोक पठाता है ॥
हो चुका पूर्ण सत्संग आज, अब विचरूंगा मैं भूमी पर ।
हो सका तो पुनि गोलोक में ही, आ मिलूंगा तुमको राजेश्वर ॥
पर वहां व्यासनंदन, शुकमुनि, हे राजन नहीं कहाऊंगा ।
अरु तुमको भी इस चोले में, इस सूरत में नहिं पाऊंगा ॥
वहां तो हम और तुम दोनों ही, एक शक्ल में दृष्टी आवेंगे ।
माना है जिनको इष्ट देव, वे निज सम रूप बनावेंगे ॥

वहां नहीं सत्संग है, नहीं कुसंग भुवार ।
ऊंचा नीचा पद नहीं, चोर न साहूकार ॥

अद्वैत का है साम्राज्य तहां, नहिं द्वैत दृष्टि आता भाई ।
उस जगह अनंत काल तक रह, हम भोगेंगे सुख हरषाई ॥
अच्छा अब जय सच्चिदानंद, जय आनंदकंद बिहारी की ।
जय गोलोकेश जनार्दन की, जय चक्रपाणि बनवारी की ॥
इस तरह बोल जय बारबार, उठकर चल दिये व्यासनंदन ।
जाती बिरियां अति प्रेम सहित, राजा ने किये चरण वंदन ॥
पा आशिर्वाद मुनिश्वर का, अटिके नृपाल कुशासन पर ।
वायू बिन दीप शिखा जैसे, थिर हुये मौन को धारण कर ॥
कुछ क्षण तो मनही मन नृप ने, श्री कृष्णचन्द्र का नाम रटा ।
दृढ़ निष्ठा चित में धारण कर, दुनियवी प्रेम सब दिया हटा ॥

इन्द्रियों को कर मन के बस में, मनको बुद्धी में लगा दिया ।
बुद्धी द्वारा आत्मा को पुनि, परमात्म ध्यान में लीन किया ॥
लगी समाधी भूप की, मिटा जगत जंजाल ।
हुआ पाप किम पूर्ण अब, उसका सुनो हवाल ॥
होते हि उपस्थित सप्तम दिन, तत्त्वक अपने घर से निकला ।
और गंगा तट नृपवर थे जहां, उनको डसने के लिये चला ॥
रस्ते में इसको ज्ञात हुआ, वहां पर प्रबंध अति भारी है ।
तत्त्वक का जी लेने के लिये, सेना हाज़िर तहां सारी है ॥
इसके अतिरिक्त प्रजा भी सब, तत्पर है युद्ध मचाने को ।
निज बल प्रकाश कर किसी तरह, राजा का प्राण बचाने को ॥
ये बात श्रवण कर तत्त्वक ने, अपने स्वरूप को बदल लिया ।
कर भेष ब्रह्मचारी द्विजका, राजा की जानिब गमन किया ॥
कश्यप नाम इक विप्र थे, तेज पुंज विद्वान ।
विष उतारने में नहीं, था इन सम कोइ आन ॥
यदि मर भी गया हो मनुज कोई, कैसा भि नाग डस जाने से ।
ये तत्त्वण जीवित करते थे, केवल एक मंत्र सुनाने से ॥
सब तरह सुखी थे ये ब्राह्मण, था किसी बात का फिक्र नहीं ।
स्त्री थी, सुत थे, विद्या थी, पर था लक्ष्मी का जिक्र नहीं ॥
गो पुरुषारथ अति करते थे, तोभी न दरिद्रता जाती थी ।
ब्राह्मणी कुपित हो दिन भर में, ताने कई बार सुनाती थी ॥
जिससे होकर उदास एक दिन, ये विप्र कुमार विपिन धाया ।
रस्ते में भूप परित्त्वित का, सारा वृतान्त तिन सुन पाया ॥
होगया ज्ञात, सातवें दिवस, तत्त्वक डसने को आवेगा ।
यदि किसी ने बचा लिया नृप को, मुंह मांगा धन वो पावेगा ॥
था अपनी विद्या पर इसको, पूरा विश्वास अस्तु हरषा ।
ये वापिस अपने घर आया, सब हाल पत्नि को दिया बता ॥

हुई खुशी वो नारि भी, पुनि सप्तम दिन प्रात ।
रवि उगते ही कह उठी, प्रीतम से ये बात ॥
हे प्राणनाथ झट गमन करो, अपनी किस्मत अजमावो तुम ।
भूपति को विष से मुक्ति दिला, ऐवज़ में अति धन लावो तुम ॥
सुन बचन इष्ट का ध्यान धार, हर्षित हो विप्र कुमार चले ।
घर से बाहिर आतेहि उन्हें, कई शगुन दिखाई दिये भले ॥
निज कार्य सिद्ध होगा अवश्य अनुमान ये कर श्री द्विजराया ।
जा रहे थे जल्दी इतने में, एक बटुक इन्हें दृष्टी आया ॥
ये तक्षक ही था जो नृप को, इस भेष से डसने जाता था ।
पहिचाने जाने के डर से, अति ही सतर्क दरसाता था ॥
ज्यों हीं पन्नग के निकट, आये विप्र सुजान ।
पूछा इनसे शीघ्र ही, हे भूसुर मतिमान ॥
जा रहे हो कहां शीघ्रता से, किस काम की जल्दी है भाई ।
यदि कहने में कुछ हर्ज़ न हो तो कृपया दीजे बतलाई ॥
ये सुन इस को भूदेव समझ, द्विज कश्यप ने ये फरमाया ।
तक्षक डसने से आज बदन, त्यागेंगे कुरुकुल नरराया ॥
मैं उन्हें पुनर्जीवित करके, अतुलित धनराशी लाऊंगा ।
कर दरिद्रता का नाश विप्र, सुख पूर्वक आयु बिताऊंगा ॥
है पास मेरे ऐसी विद्या, जो कभी व्यर्थ नहिं जाती है ।
तीक्षण से तीक्षण विष को भी, पलभर में दूर हटाती है ॥
तक्षक से पहिले नृप समीप, जा पहुँचूं यही बिचारा है ।
बस इसीलिये अति फुरती से, चलना मैंने स्वीकारा है ॥
नाग खिल खिला कर हंसा, पुनि बोला तत्काल ।
विष उतारने का तजो, भोले विप्र ख़याल ॥
मैं ही तक्षक हूँ मम विष को, हे द्विज साधारण गिनो मती ।
डस लिया जिसे उसकी आत्मा, पाती निश्चय तन से मुक्ती ॥

इसलिगे कष्ट क्यों करते हो, गंगा के तट पर जाने का
यदि हठ वस तुम वहां गये भि तो, एक धेला हाथ न आने का ॥
उल्टे अपयश के भागी बन, लज्जित हो वापिस आवोगे ।
अस्तू लौटो तुम किसी तरह, मुझ से न फतह द्विज पावोगे ॥
गम्भीर भाव धारन करके, काश्यप मुनि ने ये फरमाया ।
मम विद्या की करते हो क्यों बिरथा अवहेलना अहिराया ॥
यदि तुम्हें गर्व है निज विष का तो डसो किसी को हे भाई ।
फिर अपने दोनों नेत्र खोल, लखना मेरी भी चतुराई ॥
केवल एक पल में ही उसको असली हालत में लाऊंगा ।
यदि कहा है जो कर सका नहीं, तो शीघ्र लौट घर जाऊंगा ॥

तत्तक बोला है तेरे, मन में बहुत गरूर ।
ठहर उसे एक पलक में, करता हूँ मैं दूर ॥

ले देख इस वट का तरफ देख, जो हरा भरा दरसाता है ।
एक त्तण में इसको नागराज बस भस्मी भूत बनाता है ॥
यदि है घमंड कुछ विद्या का तो चमत्कार दिखला देना ।
जैसा ये वृत्त खड़ा है अब वैसा ही इसे बना देना ॥
यों कह क्रोधित हो पन्नग ने, वट मूल में एक दांत मारा ।
तत्त्तण विष की ज्वाला फैली चट जलने लगा वृत्त सारा ॥
होगया भस्म कुछ देर में ही, ये देख नाग ने फरमाया ।
अब अपना सारा जोर लगा, जी दान इसे दो द्विजराया ॥

कर एकत्रित विप्र ने, वट की राख तमाम ।
कहा नाग से देख अब मेरा भी तू काम ॥

यों कह चुल्लू में जल लेकर, पढ़ मंत्र एक छींटा मारा ।
जिससे कुछ भी देरी न लगी, हो गया हरा झट वट सारा ॥
अति अचरज में नागेन्द्र हुआ, भूला अपना विष गर्व सभी ।
सोचा यदि ये नृप ढिंग पहुँचा, उसको मरने देगा न कभी ॥

होगया पुनर्जीवित राजा, मम अपयश जग में छायेगा ।
अरु शाप भी मुनिवर श्रृंगी का, विरथा ही माना जायेगा ॥
इसलिये बने जैसे इसको, वापिस लौटा देना चहिये ।
मेरे मगके इस कांटे को, तत्काल हटा देना चहिये ॥
ऐसा बिचार कर तत्तक ने, कर जोड़ विप्र को शिरनाया ।
पुनि बोला ब्रह्मन धन्य हो तुम, धन धन तव विद्या द्विजराया ॥
इसमें तो कुछ सन्देह नहीं, तुम मे विद्या बल भारी है ।
तोभी वहां जाने पर तुम्हरी, होगी कीरति की ख्वारी है ॥
इसका कारण है मुनियों का, कभि शाप वृथा नहिं जाता है ।
उसको तो खुद त्रिभुवन स्वामी, पूरा करके दिखलाता है ॥
अस्तू श्रृंगी ऋषि के भी बचन, हे विप्र वृथा नहिं जावेंगे ।
तुमतो क्या विधि भी आवें तो नहिं बचा भूप को पावेंगे ॥
फिर बिना मृत्यु आये द्विज वर. कुछ भी न बहाना हो सकता ।
रोगों से शाप से शस्तर से, किसि भांति न नर जो खो सकता ॥
हो चुके हैं नृप के दिवस पूर्ण, तब ही तो शाप लगा आकर ।
इसलिये तुम्हारा जाना वहां. बिल्कुल फिजूल है हे द्विजवर ॥
फिर तुमतो केवल धन की ही, इच्छा करके जा रहे वहां ।
सो जितना चहिये मुझ से लो, मैं तुम्हें अभी देता हूँ यहां ॥

यों पूरी हो जायगी, तुम्हरी चाह तमाम ।
रहेगी अक्षत कीर्ति भी, नहिं होगे बदनाम ॥

पन्नग की युक्ति पूर्ण बातें, सुन लगे सोचने द्विजराई ।
आखिर समाधि द्वारा भविष्य, जानन की मन में ठहराई ॥
हो आसन पर आसनासीन, चट आचमन प्राणायाम किया ।
फिर प्राण वायु को मस्तक में स्थिर करने में चित्त दिया ॥
लगतेहि समाधी द्विजवर को, सारा भविष्य दरसाने लगा ।
हो गई है आयू राजा की, सम्पूर्ण ये दृष्टी आने लगा ॥

दिव्य ज्ञान से जानकर, राजा का सब हाल ।
धन पा तक्षक से गये, द्विज निज घर तत्काल ॥
होकर प्रसन्न नागेन्द्र तुरत, गंगाजी के तट पर आया ।
वहां का अति दृढ़ प्रबन्ध लखकर, हृदय में अतिशय घबराया ॥
सोचा किस तरह प्रवेश करूं, इस विकट किले बंदी भीतर ।
रह गया समय थोड़ा क्यों के, जा पहुँचे रवि अस्ताचल पर ॥
इस समय यदि डस सका नहीं, सब श्रम विनष्ट हो जायेगा ।
शृंगी ऋषि वाक्य मृषा होंगे, मम शान में बट्टा आयेगा ॥
ये सोच रहा था इतने में, देखा कइ अनुचर आते हैं ।
सुन्दर पुष्पों की मालायें, राजा के ढिंग ले जाते हैं ॥
तत्काल कीट का रूप धरा, पन्नग ने ये अवसर लखकर ।
जा बैठा झट एक माला में, हिय में अति आनंदित होकर ॥
उस तरफ सूर्य को जाते लख, हरषाय रहे थे पुर वासी ।
जन्मेजय अतिशय पुलकित था, थे मुदित सभी ऋषि सन्यासी ॥
करते थे विनय सभी विधि से, दो घड़ी और टल जाने दे ।
जब तक न अस्त होते दिनमणि, अहि को मत दर्श दिखाने दे ॥
वरना रवि के साथ ही साथ, हमरे रवि भी छिप जायेंगे ।
पुनि अस धर्मात्मा प्रजा-त्राण, भूपाल कहां हम पायेंगे ॥
हो रही थी ऐसी बात यहां, उत अनुचर पहुँचे राजा पर ।
धर दिये थाल मालाओं के, मणि जटित चौकियों पर सत्वर ॥
पुनि जन्मेजय की आज्ञा से, मालायें तहां बंटाने लगीं ।
हर एक ऋषि मुनि सन्यासी के, गल में पहिराई जाने लगीं ॥
महक उठा मंडप तुरत, पा फूलों की गंध ।
सब जय जय करने लगे, पाकर अति आनंद ॥
यों होते होते आखिर में, कुरुकुल नृप की बारी आई ।
बस माल कंठ में डालते ही, मुनि शाप ने रंगत दिखलाई ॥

इस ही माला में कीट बना, तक्षक बैठा था छिपा हुआ ।
ज्यों ही गल में माला पहुँची, धर रूप असल वो खड़ा हुआ ॥
फुंकार मार अति क्रोध सहित, आतुर हो नृप सन्मुख धाया ।
डस लिया पांव में फौरन ही, ये लख ऋषि मंडल थर्राया ॥
चहुँ दिशि में हा हा कार मचा, सुन जन्मेजय हैरान हुआ ।
इस गड़बड़ में अहि तक्षक तो, फौरन ही अंतरध्यान हुआ ॥
राजा इस समय समाधी में, था लीन बदन की सुधि बिसरा ।
दे रहे थे दर्शन हृदय में, उसको जगजीवन जनसुखदा ॥
इसलिये उसे नहिं ज्ञात हुआ, कब तो तक्षक वहां पर आया ।
कब माल गले में पड़ी और, किस समय डसा और कब धाया ॥

तीव्र ज़हर से नाग के, पल में भस्म शरीर ।
हुआ परिक्षित भूप का, भई जरा नहिं पीर ॥
जन्मेजय की चतुरता, और प्रबंध तमाम ।
काम न आया इस समय, हुआ विधाता वाम ॥

रह गये हाथ मलते सारे, आखिर सब नृप सुत पै आये ।
गम्भीर भाव धारन करके, कइ धर्म तत्त्व तिन बतलाये ॥
फिर कहा टले नहिं होनहार चाहे कितना भी यत्न करो ।
बस अब तो ज्ञान दृष्टि द्वारा, हे सुत जन्मेजय धीर धरो ॥
यों कह इनका राज्याभिषेक, ऋषियों ने मिल तत्काल किया ।
पुनि नृप को अंतेष्टी क्रिया, करने में सब ने चित्त दिया ॥
ये काम पूर्ण हो जाने पर, बोले जन्मेजय चिन्ता से ।
हे मुनीश्वरों झट बतलाओ, किम बदला लूं पितु हंता से ॥
जब तक तक्षक इस दुनिया से, ऋषियो ! न कूंच कर जावेगा ।
तब तक जन्मेजय इक दिन भी, सुख से नहिं रहने पावेगा ॥
बोलो झट बोलो भुजबल से, या दैविक अनुष्टान द्वारा ।
वो पन्नग प्राण गमावेगा, ताके करदूं प्रबंध सारा ॥

ये सुन कर कहने लगा, एक मुनी विद्वान ।
सर्प-सत्र के बिन किये, तजे न तक्षक प्रान ॥
अस्तू करके ये अनुष्ठान, शत्रू का खोज मिटा डालो ।
कर शान्त चित्त फिर धर्म सहित, हे नृप निज रैयत को पालो ॥
श्रोताओं ये सुन सर्प सत्र करने में नृप लग जाते हैं ।
मरने पर भूप परिच्छित का, क्या हुआ वो अब बतलाते हैं ॥
तन तजते ही भूप का, हुआ कृष्ण सम रूप ।
गऊ लोक से यान इक, आया परम अनूप ॥
तत्काल पारषद कई एक, उतरे अरु नृप के ढिंग आये ।
कर नम्र कंध, दोउ हाथ जोड़, प्रार्थना सहित मस्तक नाये ॥
अरु बोले हर्ष दिखाते हुये, चलिये घनश्याम के धाम प्रभो ।
घनश्याम के गुण सुनकर तुम भी, हो गये स्वयम् घनश्याम प्रभो ॥
तुम्हरे हित गोलोकाधिपती, गोलोक में उत्सव ठानेंगे ।
तुमको निज जन, नहिं परम सखा, नहिं नहिं राधा सम मानेंगे ॥
गोलोक अनंत सौख्य प्रद है, कोई बड़ भागी पाता है ।
स्वर्गादिक सम ऊंचा नीचा, तहां भाव न दृष्टी आता है ॥
अस्तु विलम्ब करो नहीं, बैठो नृप हरषाय ।
बाट निहार रहे तहां, तुम्हरो त्रिभुवन राय ॥
ये सुनकर अति आनंदित हो, नृप विमान में चढ़ जाते हैं ।
नभ स्थित सुर ये दृश्य देख चट पुष्पांजलि बरसाते हैं ।
लख नृप का अनुपम दिव्य रूप, यम इन्द्र वरुण आदिक सारे ।
हो गये विमोहित हाथ जोड़, स्तुति करने में चित धारे ॥
निश्चल श्रद्धा उत्पन्न हुई, राजा के प्रति सब के उर में ।
सब लगे सोचने यही बात, ये आय बसें हमरे पुर में ॥
अतएव सभी लोकाधिपती, नृप को निज घर ले जाने को ।
तैयारी कर राह लखने लगे, उनके विमान के आने की ॥

नहिं ज्ञात थी भोले देवों को, इच्छा उस जगतनियंता की ।
भूपाल परिक्षित हित उसने किस लोक की सुघड़ व्यवस्था की ॥
इतने में उड़ता हुआ, दीखा नृप का यान ।
बढ़े देव आगे सकल, करने को सन्मान ॥
सब निज निज लोकों के बाहिर, आखड़े हुये सब साज सजा ।
कुछ देर बाद "यम" लोक निकट पहुँचा विमान राजा का आ ॥
श्री धर्मराज अगवानी हित अनुचरों सहित आगे आये ।
पर रुका नहीं वो यान तहां, ये लख मन में अति पछताये ॥
आखिर ये पता लगाने को, नृप कौन लोक में जाते हैं ।
यमराज भी निज विमान में चढ़, राजा के पीछे धाते हैं ॥
चलते चलते इनका विमान, आ पहुँचा "स्वर्ग" लोक ऊपर ।
यहां इन्द्र सुरों के साथ चले, सन्मान करन को हर्षाकर ॥
लेकिन इनका भी व्यर्थ हुआ, सब साज सजा यहां पर आना ।
चल दिया यान आगे ये लख, शचिपति ने अति अचरज माना ॥
सोचा ऐसा क्या किया, इसने पुन्य अनूप ।
स्वर्ग लोक तक छोड़ कर, गया जो आगे भूप ॥
चलूं देख आऊं जरा, मिला कौनसा धाम ।
ये गुन सुरपति भी चले, ले इक यान ललाम ॥
इसके उपरान्त कुवेरालय पहुँचा विमान पर रुका नहीं ।
पुनि वरुण लोक भी तज करके, सत्वर आगे की राह गही ॥
फिर आगे सूर्य अरु चन्द्र लोक, पर यान गती नहिं रुक पाई ।
यों एक एक कर सकल लोक तजते हि गये श्री नरराई ॥
इन सब लोकों के स्वामी भी, यम इन्द्र सरिस पीछे धाये ।
इस तरह कई सुन्दर विमान, नभ मंडल में दृष्टी आये ॥
श्रोताओं सब से आगे था, राजा का यान प्रभा वाला ।
बाजों का मधुर रव करता हुआ, फैलाय रहा था उजियाला ॥

तत्पर थे सेवा में पार्षद, ले मोरछल कोई डुलाता था ।
पगचंपी करता था कोई, कोई कलगान सुनाता था ॥
चलते चलते इनका समूह, गुजरा हिमगिरि ऊपर होकर ।
जा पड़ी उमा की दृष्टि तुरत, सुन करके वाद्य ध्वनी मनहर ॥
इन्द्रादिक देवों के विमान पहिचानती थी श्री पार्वती ।
पर यान विलोक परिक्षित का, थिर रह नहिं सकी हृदय की गती ॥
दौड़ी आई झट शंकर पै कर जोड़ प्रेम से शिर नाकर ।
बोली प्राणेश बताओ ना, जा रहे आज सब देव किधर ॥
अरु सब के आगे अति सुन्दर, जाता है किसका यान प्रभो ।
कभि देखा हो ऐसा विमान, आता नहिं मुझको ध्यान प्रभो ॥

भूतनाथ ये बात सुन, हुये ध्यान में लीन ।
पुनि बोले दृग खोलकर, सुनो वृतान्त नवीन ॥

महा भाग्यवान कुरुकुल प्रदीप, भूपाल परिक्षित तन तजकर ।
जा रहे कृष्ण के धाम प्रिया, पाया है परमपद अति सुन्दर ॥
ये बात विदित नहि देवों को, इसलिये ये पीछे जाते हैं ।
चाहते हैं जानना ये सारे, "नृप कौन से लोक सिधाते हैं" ॥
इच्छा है गोलोकेश्वर की, नृप के गोलोक सिधाने पर ।
एक उत्सव तहां किया जावे, सब देव भाग लेवें आकर ॥
अस्तू हे देवि ! देवता तो यों तहां पहुँच ही जावेंगे ।
हम तुम भी कुछ ही देर बाद, नटवर के धाम सिधावेंगे ॥

कृष्ण कृपा से कृष्ण की, चाह हुई मालूम ।
तैयारी करलो प्रिये, देखें उत्सव धूम ॥

*** गाना ***

हे प्राण प्रिया ये है सारी, श्रीमद्भागवत की प्रभुताई ।
कर श्रवण जिसे अति श्रद्धा से, जा रहे हैं गोपुर नरराई ॥

कर्मों के फंद विदारन को, पापों के झुंड संहारन को ।
मनचीता काज संवारन को, मुनि व्यास ने जग में प्रगटाई ॥
अष्टांग योग, तप, नित्य नियम, अध्ययन शास्त्र आगम व निगम ।
नहि हो सकते सब मिल इस सम, देखे कोई भी अजमाई ॥
कलि मे इसको ही पढ़ सुनकर, जायेंगे धेनुपुर भक्त प्रवर ।
राधा सम प्रिय इनको नटवर, समझेंगे निशिदिन हरषाई ॥

बात शिवाशिव में यहां, होती थी इस भांति ।
सत्यलोक पहुँची उधर, सब यानों की पांति ॥
मन में सब देव समझते थे, बस यही धाम नृप पायेंगे ।
विधि को भी था विश्वास यही, मम लोक त्याग कहां जायेंगे ॥
अस्तू तयार कर रक्खा था, अगवानी का सामान सभी ।
ज्योंहीं आया नृप यान निकट, धाये उठ चतुरानन भी तभी ॥
हरि इच्छा से यान वो, ठहरा यहां क्षण एक ।
विधि ने हर्षित हो किया, नृप आदर सविवेक ॥
पुनि ज्यों ही विधि ने भूपति को, निज लोक में ले जाना चाया ।
त्यों ही गति पैदा होने से, वो यान तुरत नभ में धाया ॥
हो गये चकित ये दृष्य देख, सब देवों के श्री चतुरानन ।
इतने ही में सुन पड़ी इन्हें, शुभ गगन गिरा सब शोक हरन ॥
"निज पुन्य से भूप परिक्षित ने, गोलोक धाम को पाया है ।
बस इसीलिये सब लोक छोड़, सीधा वो वहीं सिधाया है ॥
आज्ञा है गोलोकेश्वर की, हे देवो ! तुम भी चलो वहीं ।
तहां होगा इक उत्सव विशाल, कर नेत्र सफल लौटना यहीं" ॥
ये सुन हर्षित व चकित हो सब, राधिकानाथ की जय बोले ।
पुनि चले धेनुपुर इतने में, आ गये यहां शंकर भोले ॥
सुधि पाय कहीं से नारद भी, अपनी वीणा खटकाते हुये ।
आ मिले तुरत इस टोली में, गुण कृष्णचन्द्र के गाते हुये ॥

जा पहुँचे कुछ देर में, ये गोलोक समीप ।
देखा द्वारे पर खड़े, हैं कुरुवंश प्रदीप ॥
एक निमिष उपरान्त पुनि, भीतर धंसे नरेश ।
चले पिछाड़ी देव भी, मय विधि इन्द्र महेश ॥

श्रोताओ ! तृतियः हिस्से में, गोपुर का वर्णन आया है ।
बस इसीलिये हमने उसको, पुनि यहां नहीं दोहराया है ॥
मतलब है हरि का प्यारा नृप, पहुँचा जब हरि के द्वारे पर ।
लखते हि इसे मस्तक झुकाय, फौरन अनुचर धाया भीतर ॥
अरु कहा कृष्ण से दीनबंधु, द्वारे अभिमन्यु सुवन आये ।
सुनते ही आतुर हो मोहन, निज परम भक्त सन्मुख धाये ॥
आते ही हृदय से नृप को, झट लगा लिया गिरिधारी ने ।
लख जन का मिलन जनार्दन से, जय बोली मंडलि सारी ने ॥

बहुत देर तक भक्त को, भक्त सुखद भगवान ।
उर से लिपटाये रहे, होय प्रसन्न महान ॥

पुनि हाथ पकड़ भीतर ले जा, एक दिव्य सिंहासन मंगवाया ।
अति प्रेम प्रदर्शित करते हुये, अभिमन्यु सुवन को बिठलाया ॥
फिर आज्ञा दी सब देवों को, वे भी सत्वर भीतर आवें ।
और दिव्य गान द्वारा सब मिल, नृपवर के मन को बहलावें ॥

आ बैठे सब देव झट, प्रभु अनुशासन पाय ।
इतने में श्री विष्णु भी, पहुँचे तहां पर आय ॥
शेष नाग ने भी दिया, अपना दर्श तुरंत ।
बैठे आय समाज में, बंदि चरण भगवंत ॥

इस समय प्रभू के मंदिर की, शोभा बरणी नहिं जाती थी ।
पड़ती थी दृष्टि जहां नृप की, बस वहीं अटक रह जाती थी ॥
इक तो गोलोक धाम खुद ही, शोभा सुन्दरता का घर था ।
प्रभु इच्छा से नृप स्वागत हित, बन गया और भी सुन्दर था ॥

पुनि दिव्य रूप धर मुक्तात्मा, अनगिनतो तहां विराजते थे ।
जिस तरफ नज़र भर कर देखो, मोहन के भक्तहि राजते थे ॥
लख अनुपम दृष्य परिक्षित तो, वे सुध सा हो प्रभु चरनन में ।
पड़ गया नयन में आसूं भर, बोला धन धन अतिही धन मैं ॥
हे भक्त सुखद, राधिका कान्त, हे पर ते पर, हे बनवारी ।
हे एक मात्र मम इष्ट देव, हे मुरली अरु गिरिवर धारी ॥
हे कमलनयन पीताम्बर धर, हे मधुसूदन त्रिभुवन स्वामी ।
सर्वत्र व्याप्त सबसे न्यारे, गोविंद गुपाल गरुड़गामी ॥
आया हूँ शरण तुम्हारी मैं, हे वासुदेव जन दुःख हरन ।
चरणों में रखना सदा मुझे, कर जोड़ विनय करता भगवन ॥
आश्वासन दे नृप बिठलाया, पुनि संकीर्तन का ठाठ जमा ।
जो जिस कौशल में आला था, उसने वहां पर वो खेल रमा ॥
गोपियों ने भी अति भक्ति सहित, पुनि नाच दिखाना शुरू किया ।
जिस तरह हो सका सबने मिल, नृप मन बहलाना शुरू किया ॥

परम अलौकिक देख सुन, दिव्य नाच अरु गान ।
भूल गया अभिमन्यु सुत, अपने तन का भान ॥

हो गई चित्त वृत्ती एकाग्र, गोलोक कृष्ण मय दृष्टि पड़ा ।
अति आनंदित हो कुरुकुल नृप, तज सिंहासन होगया खड़ा ॥
पुनि जैसे ही दोउ हाथ चढ़ा, इसने नटवर के चरण छुये ।
मुस्काय उठे गोलोकेश्वर, प्रभु पद में नृपवर लीन हुये ॥
मिल गई जोति में जोति तुरत, यों पाई मोक्ष नृपाला ने ।
कर दिया अभय सारे भय से, पलभर में दीनदयाला ने ॥
जय घोष से श्री मधुसूदन के, गोलोक धाम गुंजार उठा ।
जय हो कुरुकुल भूषण की भी, पुनि देव समूह पुकार उठा ॥
इतने ही में देखा सबने, सखियां राधा में लीन हुईं ।
पुनि मूर्ति गोप ग्वालों की भी, प्रभु के तन मांहि विलीन हुईं ॥

रह गई जुगल जोड़ी इकली, तब देवों ने आज्ञा पाई ।
"अपने अपने लोकों में जा, निज काम करो तन मन लाई" ॥

अनुमति राधा कृष्ण की, पाकर देव तुरंत ।
सत्य लोक में आगये, गाते गुण भगवंत ॥

सब सुरों ने विधि से यहां आकर, पूछा चतुरानन ! बतलाओ ।
किस महत् पुन्य से प्रभु पद में, नृप हुआ लीन ये कह जाओ ॥
हमने तो अपनी आंखों से, देखा न कोई ऐसा प्रानी ।
जिसने गोलोक धाम जाकर, पाई हो मुक्ती सुखखानी ॥
लख ज्ञान दृष्टि से वेदजनक, सब भेद भूप की मुक्ती का ।
बोले, लो सुनो परिच्छित ने, आसरा लिया जिस युक्ती का ॥
कर चित एकाग्र दिन सात तलक, "भागवत" सुनी नरराई ने ।
उसके प्रभाव से मुक्ती दी, मधुसूदन जन सुखदाई ने ॥
इसलिये "भागवत" का प्रताप, देवो ! न कथन में आ सकता ।
शुभ कर्म कोई भी हो इससे, बढ़कर नहिं माना जा सकता ॥
लेकिन देवों को जची नहीं, ये बात जो विधि ने फरमाई ।
तब बोले ब्रह्मदेव मुस्का, कर लो न परिच्छा हे भाई ॥

एक तुला अरु ग्रंथ को, मंगवा अपने पास ।
तोलो सारे कर्म धर, तब होगा विश्वास ॥

आदेश विधाता का सुनकर, सब वस्तु सुरों ने मंगवाई ।
एक पलड़े में रख कर्म ज्ञान, दूजे में भागवत धरवाई ॥
पुनि तोला तब ये ज्ञात हुआ, भागवत का पलड़ा भारी है ।
पड़ गये हैं हलके कर्म ज्ञान, बस भक्ती की बलिहारी है ॥
तब समझ में आया देवों के, जो विधि ने कहा वो सच्चा है ।
सब तरफ से चित्त हटा अब तो, भागवत सुनना ही अच्छा है ॥

पुनि भागवत रख सामने, हाथ जोड़ सिरनाय ।
करन लगे सब देवता, आरति अति हरषाय ॥

* आरती *

आरति श्री मद्भागवतजी की, प्रति मूरति आल्हादिनि पी की ॥ टेर ॥
कलिमल हरनि तरनि भवसरकी, निर्मल कृती व्यास मुनिवर की ।
इष्ट देवि श्री शुक के उर की, अति अनुपम प्रतिमा भक्ती की ॥ १ ॥
नारायन ने विधि हि सुनाई, ब्रह्मा ने नारद प्रति गाई ।
इनसे द्वैपायन ने पाई, प्रिय सुर नर ऋषि मुनि सब ही की ॥ २ ॥
वेद पुराण आदि तज सारे, जो केवल इहि पठन विचारे ।
वो निश्चय गोपुर पग धारे, मिटे अशान्ति तुरत सब जी की ॥ ३ ॥
अस्तु जयति जय भागवत माता, जय जय मुक्ति देनि विख्याता ।
जय भक्तन आनंद की दाता, श्यामसुन्दर की गाथा नीकी ॥ ४ ॥

प्रेम है यदि कुछ कृष्ण से, तो श्रोताओ ! आव ।
पढ़ो भागवत में सुयश, हरिका, भरम मिटाव ॥

जैसी भी भाषा में मित्रो, प्रभु का चरित्र लिख पाया है ।
निष्कपट भाव से ज्यों का त्यों, तुम्हरे समीप पहुँचाया है ॥
है मुझे खुशी बस इतनी सी, जो पल लिखने में बीते हैं ।
हैं सफल वे ही पल जीवन में, बाकी विरथा अरु रीते हैं ॥
इसको पढ़कर यदि एक भी नर, नटवर के पद में चित देगा ।
गिन उसे भाग्यशाली लेखक, अपना श्रम सफल समझ लेगा ॥
कविता के बड़े पुजारी गण, मुमकिन है हंसी उड़ायेंगे ।
कर समालोचना कई तरह, गलतियां अनेक बतायेंगे ॥
पर इसमें मुझे न दुख होगा, मैं कवी न कविता गुण जानूं ।
कैसे होते हैं अलंकार, अनुप्रास आदि नहिं पहिचानूं ॥
जैसी भी तुकबंदी की है, अर्पण है श्याम बिहारी के ।
गोविंद, गरुड़ध्वज, गोवर्द्धेश, गोपालक, गिरवरधारी के ॥
यदि जनता महाभारत की तरह, इस ग्रंथ को भी अपनायेगी ।
तो कृष्ण कथित "गीता" को भी, जल्दी ही सन्मुख पायेगी ॥

अच्छा श्रोताओ जय नटवर, जय चक्रपाणि जय मधुसूदन ।
जय जय श्रीकृष्ण जयति माधव, जय अल्हादिनि पति मनमोहन ॥
होते हैं तुमसे विदा, अंतिम विनय सुनाय ।
"करो कृष्ण की भक्ति" सब, सारी आश विहाय ॥
मंदमती अल्पज्ञ हूँ, सुनो सुजन धर ध्यान ।
करना त्रुटियों की क्षमा, पढ़ना हरियश जान ॥
हे माधव हे मुरलिधर, नटवर नंद किशोर ।
वरदो तव पद कमल में, रहे नित्य मनमोर ॥
हे राधे हे मातुमम, आल्हादिनि सुखरूप ।
चरणाम्बुज की दीजिये, मुझ को भक्ति अनूप ॥
तुम्हरी कृपा कटाक्षते, पूर्ण हुआ ये काम ।
बसो हृदय 'श्रीलाल' के, हरदम श्यामाश्याम ॥
मुक्त किया नृप को सुना, जिन्होंने कृष्ण चरित्र ।
ग्रहण करें परणाम मम, वे शुकमुनी पवित्र ॥

※ गाना ※

विनय है नाथ मेरी बिगड़ी को बना देना ।
शरण हूँ तेरी सहारा जरा लगा देना ॥
गई है आयु, मेरी नाथ वृथा अब तक तो ।
बने वो सार्थक आगे, ये मत भुला देना ॥
फिर रहा हूँ कई जन्मों से भटकता स्वामी ।
मगर अब तो प्रभू आवागमन छुड़ा देना ॥
करूं मैं भक्ति तेरी जग की झंझटें तजकर ।
वर यही है श्री गिरधर ! मुझे दिलादेना ॥

॥ इति श्रीमद्भागवत् समासम् ॥

※ श्रीकृष्णार्पणमस्तु ※

(लेखक—प्रो० पनराज पुष्टिकरणा ब्राह्मण, अजमेर)

श्री कृष्ण राधारमण दीनानाथ दीनदयाल हे,
गोविंद गिरिधर श्यामसुन्दर सोहनी गल माल हे।
अखिलेश हे सर्वेश जीवन प्राण आश्रितपाल हे,
आनंदसतचित हे सनातन अजर अनघ गुपाल हे॥

(२)

हे ब्रह्म पूरनकाम करुणासिन्धु हे जगदात्मा,
हे सर्व सृष्टी के नियंता आत्मा परमात्मा।
हे असुर खल दल के विनाशक संत हित सुखदात्मा,
हो सोम्य सीधे जन प्रती, क्रूरों के हित क्रूरात्मा॥

(३)

हे नंद के सुत अरु यशोमति लाल गोपों के सखा,
हे द्रौपदी की लाज रक्षक दीन गज जीवन रखा।
यदुनाथ बल के भ्रात हे विख्यात जग कीरति महा,
भवजाल से चट तरगया जिसने तेरा शुभ यश कहा॥

(४)

अवतार के आरम्भ में मारो भयंकर पूतना,
बचता था जिसकी दृष्टि से उस वक्त कोई पूत ना।
बक त्रणावर्त वृषभ अघा शकटादि दानव को वधा,
कंसादि को कर कालतट महि भार हे मोहन हरा॥

(५)

दिव प्रेम की ध्वनि वेणु से आती थी व्रज में नितप्रती,
सुन जिसे गोपरु गोपियों की होगई निर्मल मती।
रहने लगे तव ध्यान में आखिर वे सब गोपुर गये,
पाई थी अति उत्तम गती तव कृपा से करुणामये॥

(६)

दुनियवी जीवों की दृष्टी में तजा ब्रज श्यामजी,
पर भक्त तुमको नित वहीं लखते हैं ब्रज-आरामजी।
हो सर्व व्यापक आप पुनि जाना व आना क्या रहे,
जो जिस तरह ध्यावे तुम्हें वैसाहि दृग सन्मुख लहे॥

(७)

हे ईश परमानंद हे मम इष्ट हे माधव प्रभो,
हे हे कन्हैयालाल केशव कृष्ण हे ब्रज के विभो।
मम हृदय में कर वास नित प्रति शुद्ध बुद्धी दीजिये,
चंचल प्रकृती चित्त की हर शरण में प्रभु लीजिये॥

(८)

विद्युत सरिस मम मन विभो इक ठौर पर टिकता नहीं,
रहता है विषयाशक्त नित तव चरण में झुकता नहीं।
हांमी तो भरता है सदां ध्याऊंगा अब घनश्याम को,
लेकिन प्रभो! तजता नहीं एक पल भी जग आराम को॥

(९)

शैशव अवस्था जा चुकी युव काल भी आधा गया,
आता है दृष्टी वृद्धपन तो भी न यह वश में भया।
अब भी यदि किरपा न की यह जन्म यों ही जायेगा,
अरु शीश पर फिर वोहि लख चौरासि चक्कर छायेगा॥

(१०)

अस्तू दया की दृष्टि अब गोपाल मुझ पर कीजिये,
अच्छा बुरा हूं हूँ सो हूँ तोभी शरण में लीजिये।
मैं खोल बैठा हूँ हृदय इसको स्वधाम बनाइये,
करता विनय "पनराज" प्रभु! आजाइये आजाइये॥
